सामान्य रसायन

पुस्तक १

नि॰ ग्लीन्का

Mendeleev's Periodic Table of the Elements

→

Periods	Rows	I	II	III	IV	V
1	I	(H)				
2	II	Li 3 6.94_1 $2s^1$ 1 2 Lithium	Be 4 9.01218 $2s^2$ 2 2 Beryllium	5 B 10.81 3 2 $2p^1$ Boron	6 C 12.011 4 2 $2p^2$ Carbon	7 1 5 2 $2p^3$ Ni
3	III	Na 11 22.98977 $3s^1$ 1 8 2 Sodium	Mg 12 24.305 $3s^2$ 2 8 2 Magnesium	13 Al 26.98154 3 8 2 $3p^1$ Aluminium	14 Si 28.085_5 4 8 2 $3p^2$ Silicon	15 3(5 8 2 $3p^3$ Phos
4	IV	K 19 39.098_3 $4s^1$ 1 8 8 2 Potassium	Ca 20 40.08 $4s^2$ 2 8 8 2 Calcium	Sc 21 44.9559 $3d^14s^2$ 2 9 8 2 Scandium	Ti 22 47.90 $3d^24s^2$ 2 10 8 2 Titanium	V 50.9415 3 Vanadiu
	V	29 Cu 63.54_6 1 18 8 2 $3d^{10}4s^1$ Copper	30 Zn 65.38 2 18 8 2 $4s^2$ Zinc	31 Ga 69.72 3 18 8 2 $4p^1$ Gallium	32 Ge 72.5_9 4 18 8 2 $4p^2$ Germanium	33 5 18 8 2 $4p^3$
5	VI	Rb 37 85.467_8 $5s^1$ 1 8 18 8 2 Rubidium	Sr 38 87.62 $5s^2$ 2 8 18 8 2 Strontium	Y 39 88.9059 $4d^15s^2$ 2 9 18 8 2 Yttrium	Zr 40 91.22 $4d^25s^2$ 2 10 18 8 2 Zirconium	Nb 92.9064 Niobium
	VII	47 Ag 107.868 1 18 18 8 2 $5s^1$ Silver	48 Cd 112.41 2 18 18 8 2 $5s^2$ Cadmium	49 In 114.82 3 18 18 8 2 $5p^1$ Indium	50 Sn 118.6_9 4 18 18 8 2 $5p^2$ Tin	51 5 18 18 8 2 $5p^3$ Ar
6	VIII	Cs 55 132.9054 $6s^1$ 1 8 18 18 8 2 Caesium	Ba 56 137.33 $6s^2$ 2 8 18 18 8 2 Barium	La 57 138.905_5 $5d^16s^2$ 2 9 18 18 8 2 Lanthanum	Hf 72 178.4_9 $5d^26s^2$ 2 10 32 18 8 2 Hafnium	Ta 180.947_9 5 Tantalur
	IX	79 Au 196.9665 1 18 32 18 8 2 $5d^{10}6s^1$ Gold	80 Hg 200.5_9 2 18 32 18 8 2 $6s^2$ Mercury	81 Tl 204.3_7 3 18 32 18 8 2 $6p^1$ Thallium	82 Pb 207.2 4 18 32 18 8 2 $6p^2$ Lead	83 2(5 18 32 18 8 2 $6p^3$ E
7	X	Fr 87 [223] $7s^1$ 1 8 18 32 18 8 2 Francium	Ra 88 226.0254 $7s^2$ 2 8 18 32 18 8 2 Radium	Ac 89 [227] $6d^17s^2$ 2 9 18 32 18 8 2 Actinium	Ku 104 [261] $6d^27s^2$ 2 10 32 32 18 8 2 Kurchatovium	

* Lanthanides	Ce 58 140.12 Cerium	Pr 59 140.9077 Praseodymium	Nd 60 144.24 Neodymium	Pm 61 [145] Promethium	Sm 62 150.4 2 8 24 18 8 2 Samarium	Eu 63 151.96_5 2 8 25 18 8 2 Europium	G 157 Gad
** Actinides	Th 90 [illegible] [illegible]	Pa 91 [illegible] [illegible]	U 92 [illegible] [illegible]	Np 93 237.0482 Neptunium	Pu 94 [244] Plutonium	Am 95 [243] Americium	C [2 Cu

	VI	VII	VIII		
		1 **H** 1.0079 $1s^1$ 1 Hydrogen	2 **He** 4.00280 $1s^2$ 2 Helium		
N 4.0067 trogen	8 **O** 15.999$_4$ 6 2 $2p^4$ Oxygen	9 **F** 18.998403 7 2 $2p^5$ Fluorine	10 **Ne** 20.17$_9$ 8 2 $2p^6$ Neon		
P).97376 phorus	16 **S** 32.06 6 8 2 $3p^4$ Sulphur	17 **Cl** 35.453 7 8 2 $3p^5$ Chlorine	18 **Ar** 39.94$_8$ 8 8 2 $3p^6$ Argon		
23 2 11 8 2 d^34s^2 m	**Cr** 24 51.996 $3d^54s^1$ 1 13 8 2 Chromium	**Mn** 25 54.9380 $3d^54s^2$ 2 13 8 2 Manganese	**Fe** 26 55.84$_7$ $3d^64s^2$ 2 14 8 2 Iron	**Co** 27 58.9332 $3d^74s^2$ 2 15 8 2 Cobalt	**Ni** 28 58.70 $3d^84s^2$ 2 16 8 2 Nickel
As 74.9216 Arsenic	34 **Se** 78.9$_6$ 6 18 8 2 $4p^4$ Selenium	35 **Br** 79.904 7 18 8 2 $4p^5$ Bromine	36 **Kr** 83.80 8 18 8 2 $4p^6$ Krypton		
41 1 12 18 8 2 $4d^45s^1$	**Mo** 42 95.94 $4d^55s^1$ 1 13 18 8 2 Molybdenum	**Tc** 43 98.9062 $4d^55s^2$ 2 13 18 8 2 Technetium	**Ru** 44 101.0$_7$ $4d^75s^1$ 1 15 18 8 2 Ruthenium	**Rh** 45 102.9055 $4d^85s^1$ 1 16 18 8 2 Rhodium	**Pd** 46 106.4 $4d^{10}5s^0$ 0 18 18 8 2 Palladium
Sb 121.7$_5$ ntimony	52 **Te** 127.6$_0$ 6 18 18 8 2 $5p^4$ Tellurium	53 **I** 126.9045 7 18 18 8 2 $5p^5$ Iodine	54 **Xe** 131.30 8 18 18 8 2 $5p^6$ Xenon		
73 2 11 32 18 8 2 $5d^36s^2$ n	**W** 74 183.8$_5$ $5d^46s^2$ 2 12 32 18 8 2 Tungsten	**Re** 75 186.207 $5d^56s^2$ 2 13 32 18 8 2 Rhenium	**Os** 76 190.2 $5d^66s^2$ 2 14 32 18 8 2 Osmium	**Ir** 77 192.2$_2$ $5d^76s^2$ 2 15 32 18 8 2 Iridium	**Pt** 78 195.0$_9$ $5d^86s^2$ 1 17 32 18 8 2 Platinum
Bi)8.9804 Bismuth	84 **Po** 209 6 18 32 18 8 2 $6p^4$ Polonium	85 **At** [210] 7 18 32 18 8 2 $6p^5$ Astatine	86 **Rn** [222] 8 18 32 18 8 2 $6p^6$ Radon		
105 2 11 32 32 18 8 2 $6d^37s^2$					

Atomic masses are given according to the International Table of 1977.

The accuracy of the last significant digit is ±1 or ±3 if it is set in small type.

The numbers in brackets are the mass numbers of the most stable isotopes.

The names and symbols of elements in parentheses are not generally adopted.

Atomic mass — Atomic number

U 92 238.02$_9$ Uranium 2 9 21 32 18 8 2

Distribution of electrons by unfilled and following completed sublevels

Distribution of electrons by levels

d 64 2 9 25 18 8 2 .2 iolinium	**Tb** 65 158.9254 2 8 27 18 8 2 Terbium	**Dy** 66 162.5$_0$ 2 8 28 18 8 2 Dysprosium	**Ho** 67 164.930$_4$ 2 8 29 18 8 2 Holmium	**Er** 68 167.2$_6$ 2 8 30 18 8 2 Erbium	**Tm** 69 168.9343 2 8 31 18 8 2 Thulium	**Yb** 70 173.0$_4$ 2 8 32 18 8 2 Ytterbium	**Lu** 71 174.96$_7$ 2 9 32 18 8 2 Lutetium
m 96 2 9 25 32 18 8 2 !7]	**Bk** 97 [247] 2 8 27 32 18 8 2 Berkelium	**Cf** 98 [251] 2 8 28 32 18 8 2 Californium	**Es** 99 [254] 2 8 29 32 18 8 2 Einsteinium	**Fm** 100 [257] 2 8 30 32 18 8 2 Fermium	**Md** 101 [258] 2 8 31 32 18 8 2 Mendelevium	**(No)** 102 [255] 2 8 32 32 18 8 2 (Nobelium)	**(Lr)** 103 [256] 2 9 32 32 18 8 2 (Lawrencium)

"मीर" प्रकाशन-गृह

Н. Л. ГЛИНКА

ОБЩАЯ ХИМИЯ

ИЗДАТЕЛЬСТВО «ХИМИЯ»
ЛЕНИНГРАД

GENERAL CHEMISTRY
N. L. GLINKA

सामान्य रसायन

नि॰ ग्लीनका

पुस्तक १

"मीर"
प्रकाशन-गृह
मास्को

अनुवादक : मोहन मूर्त्ति शांडिल्य

На языке хинди

विषय-सूची

हिन्दी संस्करण की प्रस्तावना

हिन्दी भाषा में अनुदित प्रो० नि० ले० ग्लीनका की प्रस्तुत पुस्तक "सामान्य रसायन" बहुत प्रचलित है। लेखक के जीवन काल में ही रूसी भाषा में इसके 12 संस्करण प्रकाशित हुए, अंग्रेजी भाषा में अनुदित की गई एवं सोवियत संघ की प्रांतीय भाषाओं में अनेक बार प्रकाशित हुई। यह पुस्तक न केवल उच्च अध्ययन संस्थानों और तकनीकी विद्यालयों के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के बीच प्रचलित थी, बल्कि अरासायनिक व्यवसायों के विशेषज्ञों के बीच भी लोकप्रिय थी जो स्वयं अध्ययन विधि द्वारा रसायन के बारे में अपना ज्ञान बढ़ाना चाहते थे। रसायन का तीव्रता से लगातार विकास, आर्थिक व्यवस्था में उसका अधिक महत्वपूर्ण स्थान, अनेक व्यवसायों के विशेषज्ञों को तैयार करने में उसके योग का बढ़ना तथा रसायन का अनुभवमूलक विज्ञान से प्रकृति विज्ञान के उस क्षेत्र में तीव्रतापूर्ण प्रवेश करने की क्रिया, जो पदार्थ-संरचना के आधुनिक विचारों और तापीयगतिकी के नियमों पर आधारित है – ये सभी प्रस्तुत पुस्तक में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने के कारण बनें।

ये परिवर्तन रूसी भाषा में प्रकाशित नि० ले० ग्लीनका की पुस्तक के दसवें संस्करण (1973) में लेखकजनों द्वारा जिनके नाम निम्न हैं, कर दिये गये थे: प० न० सोकोलोव, रीडर, पी० एच० डी०; व० सु० राबीनोविच, रीडर, पी० एच० डी०; ज० या० हावीन, रीडर, पी० एच० डी०; अ० व० मारकोविच, प्रोफेसर, डी० एस० सी०; अ० ई० स्तेत्सेन्को, प्रोफेसर, डी० एस० सी० और क० व० कोतेगोव, रीडर, पी० एच० डी०। इसके संपादक व० अ० राबीनोविच थे। उन अध्यायों में अत्यधिक परिवर्तन किये गये हैं जो पदार्थ की संरचना, रासायनिक तापीय गतिकी के नियमों, विलयनों के सिद्धाँत, अपचयोपचयन क्रियाओं, धातुओं तथा ऐलायों के गुणों के साथ सम्बंधित हैं पृथक तत्त्वों के रसायन को समर्पित की गई सामग्री को भी नए रूप में प्रस्तुत किया गया है। अतिरिक्त परिवर्तन, जो विशेषतः भौतिकीय परिमापों की इकाईयों (अन्तर्राष्ट्रीय सिस्टम) के लागू किये जाने से सम्बंधित हैं, पुस्तक के 19 वें संस्करण (1979) में कर दिये गये थे।

प्रस्तुत अनुवाद पुस्तक के रूसी भाषा में 21 वें संस्करण से किया गया है। हिन्दी भाषा में अनुवाद करने के समय पुस्तक की सामग्री का पुनः अध्ययन किया गया तथा उसमें आवश्यक सामग्री सम्मिलित की गई। मानव और प्राकृतिक वातावरण की पारस्परिक क्रिया के रासायनिक पक्षों पर विशेष ध्यान दिया गया है, और इसके साथ-साथ प्रस्तुत संस्करण में अणुओं की ज्यामिती का अध्ययन न केवल संकरण विधि के दृष्टिकोण से अपितु संयोजकता कोश के इलेक्ट्रानी युगलों की प्रतिकर्षण विधि के आधार पर भी किया गया है। इस संदर्भ में §40, 41, 58, 64, 69, 70, 71, 72, 73, 78, 115, 116, 123, पुनः लिखे गये हैं या इनमें परिवर्तन किये गये हैं। कुछ अन्य अध्यायों में भी परिवर्तन किये गये हैं।

नि० ले० ग्लीनका की पुनः लिखी गई पुस्तक अनेक बार रूसी भाषा तथा सोवियत संघ की प्रांतीय भाषाओं में प्रकाशित की जा चुकी है। इसका अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी भाषाओं में अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। आशा है कि इस पुस्तक का हिन्दी भाषा में अनुवाद अध्यापकगणों एवं विद्यार्थियों को स्वीकृत होगा।

लेनिनग्राद — व० अ० राबीनोविच

अप्रैल, 1981

भूमिका

1. **द्रव्य और उसकी गति**. रसायन विज्ञान की गिनती प्रकृति-विज्ञानों में की जाती है। प्रकृति-विज्ञानों में हमारे चारों ओर के संसार उसके रूपों की संपूर्ण विपुलता तथा संसार में होने वाली घटनाओं की अनेकरूपता का अध्ययन किया जाता है।

समस्त प्रकृति और सारा संसार वस्तुगत दृष्टि से मानव चेतना से दूर एवं उससे स्वतंत्र हैं। संसार भौतिक है; इसमें विद्यमान सभी कुछ गतिशील द्रव्य के विभिन्न रूपों का परिचायक है। गतिशील द्रव्य सदैव अनवरत गति, परिवर्तन और विकास की अवस्था में रहता है। गति निरन्तर परिवर्तन के रूप में समूचे द्रव्य तथा उसके प्रत्येक सूक्ष्मतम कण के लिए स्वाभाविक है।

द्रव्य की गति के विभिन्न रूप हैं। पदार्थों का गर्म और ठंडा होना प्रकाश-विकिरण, विद्युत-धारा, रासायनिक रूपांतरण, जीवन-क्रियाएँ—ये सब द्रव्य की गति के विभिन्न रूप हैं। द्रव्य की गति का एक रूप दूसरे रूप में परिणत हो सकता है। जैसे यांत्रिक गति तापीय गति में परिणत हो सकती है, तापीय गति रासायनिक गति में, और रासायनिक गति वैद्युत गति में, इत्यादि। ये परिवर्तन गुणात्मक दृष्टि से गति के विभिन्न रूपों की समानता तथा उनके परस्पर अटूट संबन्ध को प्रमाणित करते हैं।

गति के एक रूप से दूसरे रूप में विभिन्न प्रकार के सभी परिवर्त्तनों में प्रकृति के मूल नियम—"द्रव्य व उसकी गति की शाश्वतता का नियम"—का यथावत् पालन होता है। यह नियम सभी प्रकार के द्रव्य तथा गति के सभी रूपों पर लागू होता है। द्रव्य एवं गति का कोई भी रूप न तो अनस्तित्व से बन सकता है और न ही अनस्तित्व में परिणत हो सकता है। विज्ञान का कई शताब्दियों का अनुभव इस बात की पुष्टि करता है।

द्रव्य की गति के अलग-अलग रूपों का अध्ययन अलग-अलग विज्ञानों के अन्तर्गत किया जाता है, जैसे भौतिकी, रसायनिकी, जीव-विज्ञान, इत्यादि। प्रकृति के विकास

के सामान्य नियमों का अध्ययन भौतिकवादी तर्क-शास्त्र के अंतर्गत किया जाता है।

2. **पदार्थ तथा पदार्थों के परिवर्तन. रसायन का विषय** दी गई स्थितियों में निश्चित भौतिक गुण रखने वाला द्रव्य का प्रत्येक पृथक रूप जैसे जल, लोहा, गन्धक, चूना आक्सीजन इत्यादि, रसायन-शास्त्र में पदार्थ कहलाता है। उदाहरणतया, गन्धक—यह एक हल्के पीले रंग का जल में अविलेय तथा भंगुर क्रिस्टल है जिसका घनत्व 2.07 ग्रा०/सें० मी०^3 और गलनांक 112.8° सें० ग्रे० है। ये सब गन्धक के विशिष्ट भौतिक गुण है।

पदार्थ के गुणों को निर्धारित करने के लिए उस पदार्थ का यथासम्भव शुद्ध रूप में होना आवश्यक है। कभी-कभी न्यूनतम अतिन्यून अशुद्धता भी पदार्थ के कुछ गुणों में बहुत बड़े परिवर्त्तन कर देती है। उदाहरणार्थ जिंक में लोहे या ताम्र का नाम मात्र मिश्रण जींक की हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ अभिक्रिया को कई सौ गुना बढ़ा देता है।

प्रकृति में पदार्थ शुद्ध रूप में नहीं मिलते हैं बल्कि मिश्रित रूप में पाए जाते हैं और कभी-कभी तो मिश्रण में पदार्थों की संख्या बहुत अधिक होती है। इस प्रकार प्राकृतिक जल में विलेय लवण तथा गैसें सदैव पाई जाती हैं। जब मिश्रण में कोई एक पदार्थ प्रचुर मात्रा में होता है तो संपूर्ण मिश्रण को साधारणतया उस पदार्थ का ही नाम दे दिया जाता हैं।

रासायनिक उद्योगों में बने पदार्थों—रासायनिक उत्पादों—में भीं अशुद्धता की कुछ मात्रा होती है। उनकी शुद्धता की मात्रा व्यक्त करने के लिए विशेष उपकन-पद्धति या शब्द (कोटि-निर्धारण) प्रयोग किए जाते हैं: औद्योगिक (technical) शुद्ध (pure or p), विश्लेषण के लिए शुद्ध (pure for analyses or pfa) रसायनत: शुद्ध (chemically pure) अति शुद्ध (chemical of High Purity)। औद्योगिक श्रेणी के पदार्थों में प्राय: काफी अशुद्धता होती है; शुद्ध में—उससे कम; विश्लेषण के लिए शुद्ध में—और भी कम; रसायनत: शुद्धमें—सबसे कम; अति शुद्ध श्रेणी वाले पदार्थों का औद्योगिक निमणि बहुत ही कम मात्रा में होता है। विभिन्न श्रेणियों के रासायनिक पदार्थों में अशुद्धि की अनुमेय सीमा का निर्धारण विशेष राष्ट्रीय मानकों द्वारा किया जाता है।

शुद्ध पदार्थ सदैव समांगी होता है। मिश्रण समांगी हो सकता है या विषमांगी। ऐसे मिश्रण समांगी कहलाते हैं, जिनमें पदार्थों के कणों को उनके नगण्य आकार के कारण न तो प्रत्यक्ष रीति से और न ही सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जा सकता है, जैसे गैसों का मिश्रण, कई प्रकार के द्रव-मिश्रण, अनेक मिश्रधातु आदि।

विषमांगी मिश्रणों के उदाहरण हैं: विभिन्न शैल, मृदा, गंदला जल, धूल आदि। मिश्रण की विषमांगता हमेशा प्रत्यक्ष नहीं होती। कभी-कभी केवल सूक्ष्मदर्शी द्वारा

ही उसको मालूम किया जा सकता है। जैसे कि, रक्त देखने में एक समांगी लाल रंग का द्रव प्रतीत होता हैं, परन्तु सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर ज्ञात होता है कि वह एक रंगहीन द्रव है जिसमें लाल व श्वेत रंग की छोटी-छोटी कणिकाएं तैर रही हैं।

पदार्थों के विभिन्न प्रकार के परिवर्त्तन प्रतिदिन देखे जा सकते है: बंदूक से दागी गई सीसे की गोली चट्टान से टकराने पर इतनी अधिक गर्म हो जाती है कि सीसा पिघल कर द्रव में परिवर्त्तित हो जाता है; लोहे की वस्तू को नम वायु में रखने पर जंग लग जाता है; लकड़ी अग्नि में जलने के बाद मात्र राख रह जाती है, वृक्षों से झड़े पत्ते धीरे-धीरे सड़ने लगते हैं और फिर खाद में परिवर्त्तित हो जाते हैं, इत्यादि।

सीसे की गोली के पिघलने पर यांत्रिक गति तापीय गति में परिवर्त्तित हो जाती है। परन्तु इस रूपांतरण के उपरांत भी सीसे में कोई रासायनिक परिवर्त्तन नहीं होता—ठोस या तरल सीसा एक ही पदार्थ होता है।

यह दूसरी बात है कि जब सीसे को वायु में दीर्घ काल तक गर्म किया जाता है, तब वह लेडऑक्साइड (लिथार्ज) में बदल जाता है। इस स्थिति में सीसे की अपेक्षा सर्वथा भिन्न गुणों वाला एक नया पदार्थ प्राप्त होता है। ठीक इसी प्रकार लोहे पर जंग लगना, लकड़ी का जलना, पत्तों का सड़ना, आदि अभिक्रियाओं के फलस्वरूप नए पदार्थ बनते हैं।

ऐसी परिघटनाएं, जिनके फलस्वरूप एक प्रकार के पदार्थो से अन्य प्रकार के नए पदार्थ प्राप्त होते हैं, रसायनिक परिघटनाएं कहलाती हैं। इन परिघटनाओं का अध्ययन रसायन-विज्ञान में किया जाता हैं। रसायन-विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है, जिसमे पदार्थों के रूपांतरण का अध्ययन किया जाता है, इसके अंतर्गत पदार्थों का संघटण, संरचना, पदार्थों के गुणों का उन के संघटण व संरचना के साथ संबन्ध तथा एक पदार्थ के दूसरे में रूपांतरण होने की स्थितियों और विधियों का अध्ययन किया जाता है।

रासायनिक परिवर्त्तनों के साथ सदैव भौतिक परिवर्त्तन भी होते हैं। अत: रसायन विज्ञान का भौतिक विज्ञान के साथ गहरा सम्बन्ध है। इसी प्रकार रसायन विज्ञान जीव-विज्ञान के साथ भी सम्बंधित है, क्योंकि जैव क्रियाओं के साथ रासायनिक परिवर्त्तन निरंतर होते रहते हैं। लेकिन रासायनिक परिघटनाओं को भौतिक क्रिया नहीं माना जा सकता है, और न ही जैव क्रियाओं को रासायनिक तथा भौतिक क्रियाएँ। द्रव्य की गति के प्रत्येक रूप की अपनी ही विशेषता होती है।

आधुनिक जीवन में, विशेष रूप से मानव की उत्पादन सम्बंधी गतिविधियों में रसायन का विशिष्ट महत्व है। उद्योग के लगभग सभी क्षेत्र रसायन के अनुपयोग से किसी न किसी रूप से सम्बंधित हैं। प्रकृति से हमें केवल कच्चा माल प्राप्त होता

हैं, जैसे लकड़ी, अयस्क, पेट्रोलियम, इत्यादि। इन प्राकृतिक पदार्थों से रासायनिक विधियों द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं, जो कृषि, उद्योगों एवं घर में प्रयोग होती हैं, जैसे उर्वरक, धातु, सुघट्य, पेन्ट, औषधियाँ, साबुन, सोग, इत्यादि।

प्रकृति से प्राप्त होने वाले कच्चे पदार्थों के रासायनिक प्रक्रमण के लिए पदार्थों के रूपांतरण के साधारण नियमों का ज्ञान आवश्यक है, और यह ज्ञान रसायन-विज्ञान से प्राप्त होता हैं।

अध्याय I

परमाण्वीय-आण्विक सिद्धाँत

परमाण्वीय परिकल्पना की यह धारणा कि पदार्थ भिन्न-भिन्न बहुत ही छोटे-छोटे कणों से बना है, प्राचीन यूनान में ही कर ली गई थी। परन्तु परमाण्वीय आण्विक सिद्धाँत का वैज्ञानिक आधार बहुत समय के बाद ही सम्भव हो पाया, जब 18 वीं-19 वीं शताब्दी में भौतिकी ने यथावत् प्रयोगों को अपना आधार बनाया। रसायन विज्ञान में विश्लेषण की मात्रात्मक विधियों का प्रयोग 18 वीं० शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मिखाईल वसीलेविच लोमोनोसोव ने किया।



मिखाइल वसीलेविच लोमोनोसोव
(1711 — 1765)

[मिखाईल लोमोनोसोव का जन्म 8 नवम्बर सन् 1711 में अरखांगेल्स्क प्रान्त में खोलमोगोरी के समीप मीशानीन्स्काग्रा गाँव में एक मछेरे परिवार में हुआ। अपने ही गाँव में किसी की मदद से लिखना व पढ़ना सीख कर लोमोनोसोव ने गाँव में उपलब्ध सभी पुस्तकें पढ़ डाली। अत्यधिक जिज्ञासा और ज्ञान की उत्कट लगन ने उन्हें 19 वर्ष की आयु में ही गाँव छोड़ने के लिए विवश कर दिया। सन् 1730 की शीत ऋतु में लोमोनोसोव धनाभाव के कारण मास्को के लिए पैदल ही चल पड़े और वहाँ स्लाव्यानोग्रेकोलातिन्स्की अकादमी में दाखिला लिया, जो उन दिनों मास्को में एकमात्र उच्चतम शिक्षा-संस्थान थी। प्रतिभाशाली योग्यता और दृढ़ मेहनत के बल पर लोमोनोसोव ने अकादमी की सात

कक्षाओं का पाठ्य-क्रम चार वर्षों में ही समाप्त कर लिया। बारह सर्वोत्तम छात्रों में एक लोमोनोसोव को भी पीटर्सबर्ग में विज्ञान-अकादमी में अध्ययन के लिए भेजा गया।

पीटर्सबर्ग आने के एक वर्ष के अन्दर ही लोमोनोसोव को धात्विकी व खनन के अध्ययन के लिए विदेश भेज दिया गया। सन 1741 में स्वदेश लौटने पर लोमोनोसोव को अकादमी की भौतिक कक्षा का अदयून्कत बना दिया गया, और शीघ्र ही रसायन का प्रोफेसर तथा रूसी विज्ञान अकादमी का सदस्य बना दिया गया।

लोमोनोसोव उन दुर्लभ, विशिष्ट तथा अनन्य रूप से, मेधावी लोगों में से थे, जिनके वैज्ञानिक विचार अपने समय से कई दशक आगे निकल जाते हैं। उनके गहन अध्ययन और व्यावहारिक कार्य की विशिष्टता थी—आश्चर्यान्वित व्यापकता एवं बहुज्ञता। अकादमीशियन वावीलोव के शब्दों में "भौतिकी, रसायन, खगोल-विज्ञान, भूविज्ञान, यंत्रीकरण भाषा-विज्ञान, इतिहास के क्षेत्रो में उन की स्वयं की उपलब्धियाँ सम्पूर्ण अकादमी के कार्य के बराबर थी।

लोमोनोसोव सर्वप्रथम ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने रसायन को एक ऐसे विज्ञान के रूप में माना जिसमें "मिश्रित पदार्थ में होने वाले परिवर्त्तनों का अध्ययन किया जाता है।" लोमोनोसोव के विचार में इस विज्ञान का अर्थ है—रासायनिक तथ्य, जो गणितीय विधि द्वारा सम्बंधित हैं और पदार्थ की संरचना के नियमों के आधार पर पद्धतिबद्ध हैं। "माप व भार" के आधार पर शुद्ध पदार्थों पर किए गए यथावत प्रयोगों के परिणामों का सैद्धांतिक विश्लेषण अनिवार्य है। अपने साथियों को दशकों पीछे छोड़ कर लोमोनोसोव ने पदार्थ की संरचना का कणिका सिद्धाँत (corpuscular theory) प्रस्तुत किया जिससे आधुनिक परमाणवीय आण्विक सिद्धाँत का पूर्वाभास हुआ।

लोमोनोसोव ने अपना "मुख्य विषय" रसायन विज्ञान को माना, लेकिन इसके साथ-साथ वे प्रथम अद्वितीय रूसी भौतिक-वैज्ञानिक भी थे। रसायन तथा भौतिकी के गहरे सम्बन्ध की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से समझते हुए लोमोनोसोव ने कहा कि रसायन विज्ञान का अध्ययन भौतिकी की मदद से किया जाना चाहिए और रासायनिक विश्लेषणों को सही रूप से केवल भौतिकी के नियमों के आधार पर ही समझा जा सकता है। रासायनिक परिघटनाओं में समझने के लिए भौतिकी का प्रयोग कर के लोमोनोसोव ने एक नए विज्ञान-भौतिकीय रसायन (Physical chemistry) की नीव रखी।

लोमोनोसोव न केवल एक महान वैज्ञानिक थे, बल्कि एक भौतिकवादी दार्शनिक भी थे। प्राकृतिक परिघटनाओं का अध्ययन करते हुए उन्होंने दर्शन-शास्त्र के मुख्य प्रश्न चिन्तन व अस्तित्व के सम्बन्ध पर भौतिकवादी रूप से विचार किया।

लोमोनोसोव के आग्रह और योजना पर सन 1755 में रूस का सर्व प्रथम मास्को विश्वविद्यालय खोला गया जो कि आगे चलकर रूसी शिक्षा व विज्ञान का एक केन्द्र बना।]

3. **संहति-संरक्षण नियम** (mass conservation law). लोमोनोसोव ने विज्ञान अकादमी में रासायनिक प्रयोगशाला की स्थापना की। वहां उन्होंने रासायनिक क्रियाओं, क्रिया से पूर्व पदार्थों का तथा अभिक्रिया के परिणामी भारों का अध्ययन किया। इसके आधार पर उन्होंने संहति-संरक्षण नियम को निर्धारित किया: क्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों का द्रव्यमान (भार) (mass (weight)) क्रिया के फलस्वरूप प्राप्त पदार्थों के द्रव्यमान (भार) के बराबर होता है।

लोमोनोसोव ने सर्वप्रथम उस नियम को सन् 1748 में सूत्रबद्ध किया और सन् 1756 में सील-बंद बर्त्तनों में धातुओं को जलाकर इस नियम की प्रायोगिक रूप से पुष्टि की।

कुछ समय पश्चात (सन् 1789 में) लोमोनोसोव से स्वतंत्र रूप से कार्य करते हुए एक फ्रांसीसी रसायनज्ञ लाऊज्यों ने संहति-संरक्षण नियम को निर्धारित किया। उन्होंने दिखाया कि रासायनिक प्रतिक्रिया के समय न केवल पदार्थ का कुछ द्रव्यमान बल्कि आपसी प्रतिक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों के प्रत्येक तत्त्व का द्रव्यमान समान रहता है।


अनतुआं लोरां लाऊज्यो
(1743 — 1794)

प्रमुख फ्रांसीसी वैज्ञानिक अनतुआं लोरां लाऊज्यो का जन्म 26 अगस्त सन् 1743 में पेरिस में हुआ। लोमोनोसोव की तरह उन्होंने क्रमानुसार रसायनिकी की मुख्य समस्याओं के समाधान के लिए समकालीन भौतिकी के सैद्धांतिक विचारों व विधियों का सहारा लिया, जिसके फलस्वरूप बहुत ही महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धियां प्राप्त की।

रसायनिकी के विशाल वस्तुगत कार्य को क्रमबद्ध करने में लाऊज्यो का सबसे बड़ा योग है। उन्होंने (तीन अन्य फ्रांसीसी वैज्ञानिकों की मदद से) परिमेय रासायनिक नाम-पद्धति बनाई (rational chemical nomenclature) और उस समय ज्ञात सभी पदार्थों (तत्त्वों तथा रासायनिक यौगिकों) का यथावत वर्गीकरण किया।

सन् 1905 में अ० आइन्सटाइन (दे० पृ० 75) ने सिद्ध किया कि वस्तु का द्रव्यमान (m) और उसकी ऊर्जा (E) के पारस्परिक संबंध को निम्न समीकरण द्वारा दिखाया जा सकता है:

$$E = mc^2$$

[illegible] = $2.997925 \times 10^{8}\ m \cdot s^{-1}$ (या लगभग 300 000 कि० मी० से०)। आइन्सटाइन का यह समीकरण न केवल स्थूल वस्तुओं पर, बल्कि सूक्ष्म-जगत के कणों (जैसे, इलेक्ट्रान, प्रोटोन) पर भी लागू होता है। रासायनिक प्रतिक्रियाओं में सदैव ही या तो ऊर्जा का विमोचन होता है, अथवा उसका अवशोषण (दे० § 54) इसीलिये पदार्थ के द्रव्यमान को निर्धारित करने के लिए नियत रासायनिक प्रतिक्रिया में ऊर्जा के विमोचन या अवशोषण पर आधारित ऊर्जा की वृद्धि या ह्रास पर ध्यान देना आवश्यक है। लेकिन c^2 का परिमाण बहुत अधिक होने के कारण उन ऊर्जाओं का जिनका रासायनिक त्रिया में विमोचन या अवशोषण होता है, बहुत ही कम द्रव्यमान होता है। और इसे मापना संभव नहीं है।* इस प्रकार रासायनिक प्रतिक्रियाओं में विमोचित या अवशोषित ऊर्जाओं के द्रव्यमानों पर ध्यान देना संभव नहीं है।

4. **परमाण्वीय-आण्विक सिद्धाँत का मुख्य विजय.** परमाण्वीय-आण्विक सिद्धांत के मूलतत्त्व या मूलाधार सर्वप्रथम लोमोनोसोव ने प्रस्तुत किऐ थे। सन् 1741 में अपने पहले लेखों में से एक लेख "गणितीय रसायनिकी का मूलतत्त्व" में लोमोनोसोव ने स्वयं द्वारा प्रस्तुत पदार्थ की संरचना के कणिका-सिद्धाँत की मुख्य रूप-रेखा को क्रम-बद्ध किया।

लोमोनोसोव के अनुसार सब पदार्थ सूक्ष्म "हीन ग्राही" कणों से बने हैं। ये कण अभाज्य है और इनमें पारस्परिक युग्मन करने की विशिष्टता है। पदार्थों के गुण इन कणों के गुणों पर आधारित होते हैं। लोमोनोसोव ने इन कणों को दो वर्गों में बाँटा है: अधिक छोटे –" तत्त्व", और बड़े –"कणिका" जिन्हें वर्तमान काल में क्रमश: परमाणु एवं अणु कहा जाता है। प्रत्येक कणिका की संरचना पदार्थ की संरचना के समान होती है। रासायनिक रूप से भिन्न पदार्थों में कणिकाओं की संरचना भी भिन्न होती है।" सजातीय कणिकाएँ वे होती हैं, जिनमें एक ही प्रकार के तत्त्वों का एक ही सँख्या में एक ही प्रकार से युग्मन हुआ हो," और "विषमजातीय कणिकाएँ वे होती हैं, जिनमें विभिन्न तत्त्व या तो भिन्न प्रकार से जुड़े होते हैं या भिन्न-भिन्न सँख्या में होते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि लोमोनोसोव के विचार में पदार्थों की भिन्नता का कारण न केवल कणिकाओं की भिन्न संरचना है, बल्कि कणिकाओं में तत्त्वों की भिन्न स्थिति भी है। लोमोनोसोव ने इस वात पर विशेष जोर दिया कि कणिकाएँ यांत्रिकी के नियमों के आधार पर गतिशील होती हैं। गतिशीलता के बिना न तो कणिकाओं का एक दूसरे के साथ टकराव सम्भव है; और न ही

---

*उदाहरणार्थ, हाइड्रोजन व क्लोरीन से हाइड्रोजन क्लोरीन के एक मोल (36.461 ग्रा०) वनाने में करीव 10^{-9} ग्र० द्रव्यमान के अनुरूप ऊर्जा का विमोचन होता है।

वे एक दूसरे पर असर डाल सकती हैं, तथा इस प्रकार उनमें परिवर्त्तन असम्भव होता है। चूँकि पदार्थों का परिवर्त्तन कणिकाओं की गति पर आधारित होता है, इसलिए रासायनिक परिवर्त्तनों के अध्ययन के लिए न केवल रासायनिक विधियों, बल्कि भौतिकी व गणित की विधियों द्वारा भी किया जाना चाहिए।

लोमोनोसोव के पश्चात इन 200 से अधिक वर्षों में पदार्थों की संरचना के विषय पर उनके विचारों का हर प्रकार से अवलोकन हो चुका है, और उनकी यथार्थता की पुष्टि हो चुकी है। आधुनिक समय में द्रव्य की संरचना, पदार्थों की विशेषताओं और भौतिक तथा रासायनिक परिघटनाओं के स्वभाव के प्रति हमारे सभी विचारों का आधार परमाण्विक आण्विक सिद्धाँत है।

परमाण्विक-आण्विक सिद्धाँत का आधार है विविक्ति का नियम [quantization principle (principle of noncontinuons structure)]। कोई भी द्रव्य अपने आप में सतत् नहीं होता है, बल्कि पृथक सूक्ष्म कणों से बना होता है। द्रव्यों की भिन्नता का कारण उनके कणों की भिन्नता है: एक द्रव्य के कण समान होते हैं; विभिन्न द्रव्यों के कण विभिन्न होते हैं। सभी स्थितियों में पदार्थों के कण गतिशील रहते हैं: वस्तु का तापमान जितना अधिक होगा, उतनी ही तीव्र यह गति होगी।

अधिकांश द्रव्यों के कण अणु होते हैं। अणु द्रव्य का वह सबसे छोटा कण है, जिसमें उस द्रव्य की रासायनिक विशेषताएँ विद्यमान होती हैं। स्वयं अणु परमाणुओं से बना होता है। परमाणु तत्त्व का वह सबसे छोटा कण है, जिसमें उस तत्त्व की रासयनिक विशेषताएँ होती हैं। अणु में परमाणुओं की संख्या भिन्न हो सकती है। इस प्रकार उत्कृष्ट गैसों (noble gases) के अणु एकपरमाणुक होते हैं, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आदि गैसों के अणु – द्विपरमाणुक होते हैं, और जल के अणु त्रिपरमाणुक इत्यादि। संरचना की दृष्टि से अधिक जटिल पदार्थों, जैसे उच्च प्रोटीन (high proteins) व न्यूक्लीक अम्ल के अणुओं में परमाणुओं की सँख्या कई लाखो में होती है। इसके साथ ही परमाणु एक दूसरे के साथ न केवल विभिन्न अनुपातों में बल्कि विभिन्न विधियों द्वारा संयोजित हो सकते हैं। यही कारण है कि रासायनिक तत्त्वों की संख्या अपेक्षाकृत छोटी होने पर भी विभिन्न पदार्थों की सख्या काफी बड़ी है।

प्राय: पाठक यह प्रश्न करता है कि पदार्थ के अणु में उसके भौतिक गुण क्यों नहीं होते। इस प्रश्न के उत्तर को भली-भांति समझने के लिए द्रव्यों के कुछ भौतिक गुणों को देखें:गलनांक, क्वथनांक, उष्मा-धारिता, यांत्रिक-सामर्थ्य, कठोरता, घनत्व, वैद्युत-चालकता इत्यादि।

गलनांक व क्वथनांक, यांत्रिक सामर्थ्य व कठोरता जैसे गुण प्रस्तुत द्रव्य की निश्चित समुच्चयावस्था में अन्तराण्विक आबंध की दृढ़ता पर निर्भर करते हैं। इसलिए एक पृथक अणु के लिए उपरोक्त धारणाओं का प्रयोग अर्थहीन है।

घनत्व – वह गुण है, जो एक पृथक अणु में विद्यमान है, और इसका परिकलन किया जा सकता है। लेकिन अणु का घनत्व पदार्थ के घनत्व से सदैव अधिक होता है (यहाँ तक कि ठोस अवस्था में भी), क्योंकि सभी पदार्थों में अणुओं के बीच हमेशा थोड़ा-सा मुक्त आकाश होता है। वैद्युत चालकता व उष्मा-धारिता जैसे गुण अणुओं के गुणों पर नहीं निर्भर करते हैं, बल्कि पदार्थ की संपूर्ण संरचना पर निर्भर करते हैं। इस बात का प्रमाण यह तथ्य है कि पदार्थ की समुच्चयावस्था में परिवर्तन होने पर इन गुणों में भी गहरा परिवर्तन हो जाता है जबकि ऐसा होने पर अणुओं में कोई गहन परिवर्तन नहीं होते। इस प्रकार, एक पृथक अणु पर कुछ भौतिक गुणों से सम्बंधित धारणाएँ तो लागू होती हैं, और कुछ लागू नहीं होती। लेकिन स्वयं ये गुण अपने परिमाण के अनुसार अणु के लिए विभिन्न होते हैं और सम्पूर्ण पदार्थ के लिए विभिन्न होते हैं।

पदार्थों को बनाने वाले कण सदैव अणु नहीं होते। अनेक ठोस व तरल पदार्थों, अधिकांश लवणों की संरचना आण्विक न होकर, आयनिक होती है। कुछ पदार्थों की परमाणु संरचना होती है। ठोस पदार्थों व द्रवों की संरचना का विस्तारपूर्वक अध्ययन पाँचवें अध्याय में किया गया है। यहाँ हम केवल इतना ही बताएँगे कि आयनिक संरचना या परमाणु-संरचना वाले पदार्थों में रासायनिक गुणों के वाहक अणु नहीं, बल्कि आयन या परमाणुओं के वे संयोग होते है, जिनसे प्रस्तुत पदार्थ बना है।

5. **सरल पदार्थ व रासायनिक तत्व.** द्मीतरी ईवानोविच मेन्डेलीफ उन प्रथम रसायनज्ञों में थे, जिन्होंने सरल (मूल) पदार्थ और रासायनिक तत्त्व की धारणाओं में भेद करने की आवश्यकता की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

वस्तुतः प्रत्येक सरल पदार्थ के अपने विशिष्ट निश्चित भौतिक एवं रासायनिक गुण होते हैं। जब कोई सरल पदार्थ रासायनिक क्रिया में भाग लेता है और नया पदार्थ बनाता है, तो ऐसा करने पर उसके अधिकांश गुण नष्ट हो जाते हैं। उदाहरणतया, गन्धक के साथ क्रिया कर के लोहा धातुद्युति (metallic lustre) घातवर्ध्यता (malleability) चुम्बकीय गुण इत्यादि खो देता है। अतः लोह सल्फाइड में लोहा नहीं होता, जिसे हम सरल पदार्थ के रूप में जानते हैं। लेकिन चूंकि रासायनिक क्रियाओं के द्वारा लोह सल्फाइड से लोहा धातु पुनः प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए रसायनज्ञों के विचार में लोह सल्फाइड लोहा तत्त्व से बना है। ठीक लोह की तरह लोह सल्फाइड में गंधक एक भंगुर पीले रंग के दाह्य पदार्थ के रूप में न होकर गन्धक तत्त्व के रूप में होती है। ठीक इसी प्रकार जल में स्थित हाइड्रोजन व ऑक्सीजन जल में अपने विशेष गुणधनों सहित गैसों के रूप में नहीं, बल्कि हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन तत्त्वों के रूप में होती है। जब ये तत्त्व " स्वतंत्र अवस्था " में पाए जाते हैं तो ये सरल पदार्थ कहलाते हैं।

रासायनिक तत्त्व की परिभाषा निम्न प्रकार दी जा सकती है :—यह परमाणु का वह रूप है, जिसमें गुणधर्मों का एक विशेष निश्चित योग होता है।* एक ही तत्त्व के परमाणुओं के परस्पर संघटन से सरल पदार्थ बनता है, तथा भिन्न तत्त्वों के परमाणुओं के मिलने से या तो सरल पदार्थों का मिश्रण, या फिर यौगिक पदार्थ प्राप्त होता है।

सरल पदार्थ एवं तत्त्व का भेद विशेष रूप से उस समय स्पष्ट होता है, जब हम एक ही तत्त्व के अनेक सरल पदार्थों को देखते हैं। उदाहरणतया, आइये, फास्फोरस का एक टुकड़ा लें। यह श्वेत रंग का अर्धपारदर्शी पदार्थ है, जिसका गलनांक 44.2° श० ग्रे० है। यह अत्यंत विषैला है। वायु के सम्पर्क में, अंधेरे में फास्फोरस चमकता है, और स्वयं प्रज्वलित भी हो सकता है। फास्फोरस एक सरल पदार्थ है, जिसका और अधिक सरल पदार्थों में विघटन नहीं हो सकता। लेकिन वायु की अनुपस्थिति में फ़ास्फोरस को गर्म करने पर कुछ समय पश्चात उसके गुणों में बहुत अधिक परिवर्त्तन हो जाते हैं। इसका रंग लाल-बैंगनी-सा हो जाता है, अंधेरे में चमकना बंद कर देता है, तथा विषैलापन भी दूर हो जाता है एवं वायु में स्वयं प्रज्वलित होने का गुण भी नष्ट हो जाता है। ये सभी नए गुण गर्म करने की क्रिया को रोकने के बाद भी मौजूद रहते हैं। इस प्रकार निस्संदेह एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में रूपांतरण हो गया है, लेकिन यह एक विशेष रूपांतरण है : फास्फोरस का न तो विघटन ही हुआ है, और न ही उसमें किसी अन्य पदार्थ का मिलन हुआ है। इस प्रकार हम यह मानने के लिऐ विवश हो जाते हैं कि प्रारंभिक पदार्थ एवं गर्म करने के पश्चात प्राप्त पदार्थ—दोनों एक ही तत्त्व फास्फोरस, के स्वतंत्र अवस्था में पाए जाने वाले विभिन्न रूप हैं। इनमें पहला श्वेत फास्फोरस कहलाता है, और दूसरा लाल फास्फोरस।

इस बात का प्रमाण कि श्वेत व लाल फास्फोरस एक ही तत्त्व के विभिन्न रूप हैं, और समान परमाणुओं से बने हैं—हमें ऑक्सीजन के साथ उनकी अभिक्रिया से मिलता है : ऑक्सीजन में गर्म करने पर श्वेत व लाल फास्फोरस दोनों ही ऑक्सीजन के साथ पारस्परिक अभिक्रिया करके एक ही पदार्थ बनाते हैं—फास्फोरस ऐनहाइड्राइड अतः, फास्फोरस तत्त्व स्वतंत्र अवस्था में विभिन्न सरल पदार्थों के रुप में मिलता है। फास्फोरस की भाँति और भी अनेक तत्त्व स्वतंत्र अवस्था में कई विभिन्न सरल पदार्थों के रूपों में मिलते हैं।

रासायनिक तत्त्व का कई सरल पदार्थों के रूप में मिलना अपररूपता (allotropy) कहलाता है, और एक ही तत्त्व से बने विभिन्न प्रकार के सरल पदार्थ इस तत्त्व के अपररूपी रूपांतरण कहलाते हैं।

अपररूपता एक तो उस स्थिति में पाई जाती है, जब विभिन्न अपररूपी रूपांतरणों

---

* परमाणु-संरचना पर आधारित "रासायनिक तत्त्व" की परिभाषा § 34 में दी गई है।

के अणुओं की संरचना में परमाणुओं की सँख्या भिन्न होती है, और दूसरी, जब इन रूपांतरणों के क्रिस्टलों की संरचना भिन्न होती है। इस प्रकार, श्वेत फ़ास्फोरस P_4 अणुओं से बना है, तथा लाल फास्फोरस के क्रिस्टलों की एकदम भिन्न बहुलक संरचना होती है।

पृथ्वी में तत्त्व विभिन्न मात्राओं में पाए जाते हैं। भू-पर्पटी में उनके वितरण से सम्बंधित बातों का अध्ययन भू-रसायन में किया जाता, जिसके सृजन में सोवियत वैज्ञानिक वी० आई० वेरनादस्की तथा ए० ई० फेर्समान का महत्वपूर्ण योगदान है।* भू-पर्पटी में सर्वाधिक मिलने वाला तत्त्व है—ऑक्सीजन। दूसरे स्थान पर सिलिकन (27%) आता है, और उसके बाद आते हैं: ऐलुमिनियम, लोहा, कैल्सियम, सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम और हाइड्रोजन। भू-पर्पटी का 9.8% से अधिक भाग इन नौ तत्त्वों से बना है। अर्थात् शेष सभी तत्त्वों का अंश 2% से भी कम है। इन्हीं 2% में हमारी अर्थ-व्यवस्था में बहुत अधिक प्रयोग होने वाले तत्त्व भी शामिल हैं, जैसे ताम्र, जिंक, सीसा, निकैल, गन्धक, फास्फोरस, इत्यादि।

भू-पर्पटी में तत्त्वों के वितरण को समझने के लिए फेर्समान ने परमाण्वीय प्रतिशत का, यानी भू-पर्पटी में तत्त्वों के परमाणुओं की प्रतिशत मात्रा का विचार प्रस्तुत किया। एक ही तत्त्व का परमाण्वीय प्रतिशत और द्रव्यमान प्रतिशत भिन्न-भिन्न होता है। परमाणुओं की सँख्या के अनुसार हाइड्रोजन का भू-पर्पटी पर तीसरा स्थान है (17%), जबकि द्रव्यमान के अनुसार—नौवाँ (1%)।

6. **स्थिर अनुपात का नियम** (law of constant proportions) **गुणित अनुपात का नियम** (law of multiple proportions). पदार्थ की संरचना के बारे में लोमोनोसोव के गहन विचार उनके समकालीन वैज्ञानिक समझ नहीं पाए। इसके

---

*व्लादीमीर ईवानोविच वेरनादस्की, (1863—1945) अकादमीशियन, राष्ट्रीय पुरस्कार विजेता, महान खनिज-वैज्ञानिक तथा भू-रसायनज्ञ; भू-रसायन और उसकी शाखा, जीव-भूरसायन, के संस्थापकों में से एक है। उन्होंने जीव भू-रासायनिक क्रियाओं में जीवों के रोल का अध्ययन किया, और कई वर्षों तक खनिज-निर्माण क्रियाओं व भू-पर्पटी की संरचना का भी अध्ययन किया। रेडियोऐक्टिव खनिजों और दुर्लभ धातुओं की अयस्क पर वेरनादस्की के कार्य ने सोवियत संघ में दुर्लभ धातु उद्योग के विकास का वैज्ञानिक आधार तैयार किया।

अलेक्सान्द्र ईवगेनेविच फेर्समान. (1883—1945) अकादमीशियन, लेनिन व राष्ट्रीय पुरस्कार विजेता, वेरनादस्की के शिष्य थे। वे भू-रसायन के विषय पर कई मुख्य कार्यों के लेखक हैं। उन्होंने सोवियत संघ में खनिजों पर बहुत काम किया और बहुमूल्य खनिजों की खानों का पता लगाया।

अलावा उस समय उनके इन विचारों का प्रायोगिक प्रमाण असम्भव था। यही कारण था कि परमाण्विक-आण्विक सिद्धाँत का 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अधिक विकास नहीं हो पाया। इस सिद्धाँत को अंतिम रूप से सूत्रबद्ध करने के लिए रासायनिक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले तथा परस्पर प्रतिक्रिया करने वाले पदार्थों की मात्राओं का अनुपात निकालने के नियमों के ज्ञान का अभाव था। इन नियमों का ज्ञान केवल 18 वीं शताब्दी के अंत एवं 19 वीं शताब्दी के आरम्भ में हो सका। प्रकृति-संरक्षण नियम के ज्ञान होने से 18 वीं शताब्दी के अंत से रसायन में विश्लेषण की मात्रात्मक विधियों का प्रयोग निश्चित हो गया। अनेक पदार्थों के मात्रात्मक संयोजन का अध्ययन किया गया और इस प्रकार स्थिर अनुपात नियम का जन्म हुआ, जो इस प्रकार है:

> किसी भी यौगिक में विद्यमान तत्त्वों के द्रव्यमानों का अनुपात सदैव स्थिर होता है और यह अनुपात इस यौगिक को प्राप्त करने की विधि पर निर्भर नहीं करता।

बहुत-से तत्त्व परस्पर मिलकर भिन्न-भिन्न पदार्थ बनाते हैं, इनमे से प्रत्येक की विशेषता इन अवयवी तत्त्वों के द्रव्यमानों का निश्चित अनुपात होती है। उदाहरणतया, कार्बन ऑक्सीजन के साथ मिलकर दो यौगिक बनाता है। एक है कार्बन आक्साइड II (या कार्बन मोनोक्साइड), जिसमें कार्बन 42.88% (द्रव्यमान)[1] तथा ऑक्सीजन 57.12% (द्रव्यमान) हैं। दूसरे यौगिक–डाइआक्साइड या कार्बन डाइआक्साइड में कार्बन 27.29% (द्रव्यमान) तथा ऑक्सीजन 72.71% (द्रव्यमान) होता है। समान यौगिकों का अध्ययन करने पर डाल्टन[2] ने सन् 1803 में गुणित अनुपात का नियम बनाया, जो इस प्रकार है:

> यदि दो तत्त्व परस्पर मिलकर कई रासायनिक यौगिक बनाते हैं, तो एक तत्त्व के द्रव्यमान, जो दूसरे तत्त्व के समान द्रव्यमान से संयुक्त होते हैं, आपस में लघु पूर्णांकों के अनुपात में होते हैं।

---

[1] यहाँ व आगे द्रव्यमानों का प्रतिशत अनुपात % (द्रव्यमान) और आयतनों का प्रतिशत अनुपात – % (आय०) से दर्शाया जाएगा।

[2] जान डाल्टन (1766-1844) अंग्रेज वैज्ञानिक ने भौतिकी, रासायनिकी और मौसम-विज्ञान के क्षेत्रों में कार्य किया। गैसों के गुणों का अध्ययन करते समय गैसों के आंशिक दाब का नियम ज्ञात किया। परमाणु-सिद्धाँत के विकास में उनका विशेष योगदान है।

डाल्टन ने पदार्थ की संरचना के परमाण्वीय सिद्धाँत का समर्थन किया। गुणित अनुपात के नियम ने इस सिद्धाँत की पुष्टि कर दी। इस नियम से यह स्पष्ट हो गया कि यौगिक में उसके तत्त्व केवल निश्चित मात्रा में होते हैं। आइए अब ऑक्सीजन के द्रव्यमान का परिकलन करें जो कार्बन मोनोक्साइड (II) और कार्बन डाइआक्साइड में कार्बन की एक ही मात्रा से संयोजन करता है। दोनों ऑक्साइडों में ऑक्सीजन की % (द्रव्यमान) मात्रा को कार्बन की % (द्रव्यमान) मात्रा से विभाजित करने पर हम पाते हैं कि कार्बन डाइआक्साइड में कार्बन मोनोक्साइड की अपेक्षा कार्बन के एक द्रव्यमान के साथ संयोजित ऑक्सीजन की मात्रा दुगुनी है।

यौगिक	मात्रा % (द्रव्यमान)		कार्बन के इकाई द्रव्यमान से संयुक्त ऑक्सीजन के द्रव्यमान की इकाइयों की संख्या
	कार्बन	ऑक्सीजन	
कार्बन मोनोक्साइड II	42.88	57.12	1.33
कार्बन डाइआक्साइड	27.29	72.71	2.66

तत्त्वों द्वारा यौगिक-संयोगों में केवल निश्चित अंशों में भाग लेने की क्षमता पदार्थ की छिन्न संरचना का प्रमाणक है। परमाणु सिद्धाँत का विकास करते हुये डाल्टन ने इसे सिद्ध किया और परमाणु तथा तत्त्वों के आपेक्षिक परमाण्वीय द्रव्यमान के विचार प्रस्तुत किये जो आधुनिक विचारों से काफी निकट थे। परमाण्वीय द्रव्यमान के मात्रक के रूप में उन्होंने सबसे हलकी गैस होने के कारण हाइड्रोजन के परमाणु का द्रव्यमान लिया। रसायन के इतिहास में पहली बार डाल्टन ने परमाण्वीय द्रव्यमानों की सारणी तैयार की जिसमें 14 तत्त्व थे।

स्थिर अनुपात का नियम तथा गुणित अनुपात का नियम परमाण्विक-आण्विक सिद्धाँत पर आधारित हैं। आण्विक संरचना वाले पदार्थ समान अणुओं से बने होते हैं। इसीलिये यह स्वाभाविक है कि ऐसे पदार्थों की अंतर्रचना स्थिर होगी। जब दो तत्त्वों से कई यौगिक बनते हैं, तो इन तत्त्वों के परमाणु परस्पर संयुक्त हो कर भिन्न लेकिन निश्चित अन्तर्रचना के अणु बनाते हैं। उदाहरणतया कार्बन मोनोक्साइड (II) के एक अणु में कार्बन का एक परमाणु तथा ऑक्सीजन का एक परमाणु होता है; लेकिन कार्बन डाइआक्साइड के एक अणु में कार्बन का एक परमाणु और ऑक्सीजन के दो परमाणु होते हैं। स्पष्ट है कि ऑक्सीजन का जो द्रव्यमान कार्बन के समान द्रव्यमान से क्रिया करता है, वह दूसरे यौगिक में पहले की अपेक्षा दुगुना है।

संहति-संरक्षण नियम की तुलना में, जिसकी सत्यता बाद के अन्वेषणों द्वारा पूर्णतः प्रमाणित हो चुकी थी, स्थिर अनुपात तथा गुणित अनुपात के नियम अधिक व्यापक सिद्ध नहीं हुए। समस्थानिक (isotope, § 34) की खोज के फलस्वरूप स्पष्ट हो गया कि दिये गये पदार्थ में तत्त्वों के द्रव्यमान का अनुपात केवल उस स्थिति में स्थिर होता है जब इन तत्वों का समस्थानिकी संयोजन स्थिर हो। तत्त्व के समस्थानिकी संयोजन में परिवर्तन के साथ यौगिक के द्रव्यमान का अनुपात भी बदल जाता है। उदाहरणतया, भारी जल (§ 72) में लगभग 20% (द्रव्यमान) हाइड्रोजन होती है और सामान्य जल में केवल 11% ही होती है। 20 वीं शताब्दी के आरम्भ के धातु के ऐलॉय का अध्ययन करते समय कुरनाकोव ने चर-संहति वाले यौगिको की खोज की। इन यौगिकों में प्रस्तुत तत्त्व के इकाई द्रव्यमान के साथ दूसरा तत्त्व भिन्न द्रव्यमानों में संयुक्त हो सकता है। इस प्रकार, बिस्मथ और थैलियम के यौगिकों में थैलियम के एक मात्रक द्रव्यमान के साथ बिस्मथ 1.24 स 1.82 इकाई के द्रव्यमानों में संयोजित हो सकता है।

20 वीं शताब्दी के तीसरे दशक में यह ज्ञात हुआ कि चर-संहति वाले यौगिक न केवल धातुओं की परस्पर अभिक्रिया से बने यौगिकों में पाये जाते हैं, बल्कि अन्य ठोस पदार्थों में भी मिलते हैं, जैसे ऑक्साइड धातुओं के गन्धक, नाइट्रोजन, कार्बन व हाइड्रोजन के साथ बने यौगिकों में भी पाये जाते हैं।

कई चर-संहति वाले यौगिकों के लिये उनके अवयवानुपात के परिवर्तन की सीमा निर्धारित की जा चुकी है। इस प्रकार टाइटेनियम डाइआक्साइड (TiO_2) में टाइटेनियम के एक मात्रक द्रव्यमान का संयोजन ऑक्सीजन के 0.65 से 0.67 इकाई द्रव्यमान के साथ हो सकता है। यह $TiO_{1.9-2.0}$ सूत्र के अनुकूल है। निस्संदेह ये सूत्र अणु के अवयवानुपात को व्यक्त नहीं करते। चर-संहति वाले यौगिकों की संरचना आण्विक नहीं वरन् परमाण्विक होती है। ये केवल पदार्थ के अवयवानुपात की सीमा बताते हैं। चर-संहति वाले भिन्न यौगिकों के लिये अवयवानुपात में परिवर्तन की सीमाएँ भी भिन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त वे तापमान में परिवर्तन के साथ भी परिवर्तित होती हैं।

यदि दो तत्त्व परस्पर मिलकर कई चर-संहति वाले यौगिक बनाते हैं तो इस स्थिति में गुणित अनुपात का नियम लागू नहीं होता। उदाहरणतया, टाइटेनियम ऑक्सीजन के साथ मिलकर कई चर-संहति वाले आक्साइड बनाता है, जिनमें मुख्य निम्न हैं: $TiO_{1.46-1.56}$ तथा $TiO_{1.9-2.0}$ स्पष्ट है कि इस और अन्य समान स्थितियों में गुणित अनुपात का नियम लागू नहीं होता।

इस प्रकार गुणित अनुपात का नियम उन पदार्थों पर भी लागू नहीं होता जिनके अणु परमाणुओं की बहुत बड़ी सँख्या से बने हों। उदाहरण के तौर पर,

आइए हम हाइड्रोकार्बनों $C_{20}H_{42}$ व $C_{21}H_{44}$ को लें। इन और इनके समान अन्य यौगिकों में कार्बन के द्रव्यमान के एक मात्रक के अनुपात में हाइड्रोजन के द्रव्यमान मात्रक की सँख्याएँ परस्पर पूर्ण सँख्याएँ हैं, लेकिन उनको छोटी सँख्या नहीं कहा जा सकता।

7. **आयतन अनुपात का नियम. अवोगाड्रो का नियम.** गैसों की अभिक्रियाओं के सर्वप्रथम साँख्यिक विश्लेषण का श्रेय फ्रांसीसी वैज्ञानिक गै-लुसैक को प्राप्त है, जिन्हें गैसों के तापीय प्रसार के प्रसिद्ध नियम का जन्मदाता भी माना जाता है। अभिक्रिया में भाग लेने वाली और अभिक्रिया के फलस्वरूप बनने वाली गैसों के आयतनों को मापकर गै-लुसैक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि "गैसें अपने उन आयतनों में अभिक्रिया करती हैं जिनका परस्पर और अभिक्रिया के गैसीय अवस्था में उत्पादों के आयतनों के बीच अनुपात लघु पूर्ण सँख्या होता है।" यह "गै-लुसैक नियम" या "गैसीय आयतन का नियम" कहलाता है।

उदाहरणतया, हाइड्रोजन के दो तथा ऑक्सीजन के एक आयतनों की अभिक्रिया के फलस्वरूप जल-वाष्य के दो आयतन बनते हैं।

निस्संदेह, यहाँ यह माना गया है आयतनों के सभी माप एक ही ताप एवं दाब पर लिये जाते हैं।

सन् 1811 में इटली के प्रसिद्ध भौतिकविद् अवोगाड्रो ने रासायनिक क्रियाओं के समय गैसों के आयतनों के सरल अनुपातों के कारण को निम्न नियम निर्धारित करके समझाया: समान ताप व समान दाब पर सभी गैसों के समान आयतनों में अणुओं की सँख्याएँ भी समान होती हैं।

इस नियम (अवोगाड्रो नियम) ने अणु की वैज्ञानिक धारणा द्रव्य के सूक्ष्मतम कण के रूप में दी। इससे तत्त्व के सूक्ष्मतम कण के रूप में परमाणु की धारणा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अवोगाड्रो ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि सरल पदार्थों के अणु और परमाणुओं को कदापि एक नहीं माना जा सकता। उल्टे, अणु प्रायः विचाराधीन तत्त्व के कई परमाणुओं से बने होते है।

अवोगाड्रो नियम से गैसों के अणुओं में परमाणुओं की संख्या ज्ञात करने में मदद मिली। विशेषतः इस नियम के आधार पर यह कल्पना की गई थी कि हाइड्रोजन, क्लोरीन, ऑक्सीजन नाइट्रोजन के अणु में दो परमाणु होते हैं। इस परिकल्पना ने गै-लुसैक द्वारा निर्धारित गैसों के आयतनों के बीच अनुपात को स्पष्ट किया।

तत्त्वों के परमाण्वीय द्रव्यमान तथा यौगिक पदार्थों के आण्विक द्रव्यमान को निर्धारित करने में अवोगाड्रो नियम का बहुत अधिक योग है (दे० §9)।

8. **परमाण्वीय और आण्विक द्रव्यमान. मोल.** गैसीय अवस्था में पदार्थों के अणु द्रव्यमान ज्ञात करने की महत्त्वपूर्ण विधि अवोगाड्रो नियम पर आधारित है। इस

विधि के बारे में कुछ बतलाने से पूर्व यह बतलाना जरूरी होगा कि परमाण्वीय और अणु द्रव्यमानों को किन इकाईयों में व्यक्त किया जाता है।

परमाणु-द्रव्यमान का परिकलन करने के लिये प्रारंभ में सबसे हलके तत्त्व, हाइड्रोजन के परमाणु-द्रव्यमान को मात्रक मान कर अन्य परमाणुओं के द्रव्यमानों को ज्ञात किया गया था। चूंकि अधिकांश तत्त्वों के परमाणु-द्रव्यमान उनके ऑक्सीजन यौगिकों के संयोजन के आधार पर निश्चित किये जाते हैं, इस लिये परिकलन वस्तुतः ऑक्सीजन के परमाणु-द्रव्यमान को मात्रक मानकर किए गए। ऑक्सीजन का परमाणु-द्रव्यमान 16 है। ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन के परमाण्वीय द्रव्यमानों का अनुपात 16:1 के बराबर माना जाता था। भविष्य में और अधिक शुद्ध परिकलनों द्वारा ज्ञात हुआ कि यह अनुपात 15.874:1 या 16:1.0079 के बराबर है। आक्सीजन के परमाण्वीय द्रव्यमान में परिवर्तन होने के कारण अधिकतर तत्त्वों के परमाण्वीय द्रव्यमानों में परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है। इस लिये आक्सीजन का परमाण्वीय द्रव्यमान 16 ही रखने का निश्चय किया गया और हाइड्रोजन का परमाण्वीय द्रव्यमान 1.0079 स्वीकार कर लिया गया।

इस प्रकार परमाण्वीय द्रव्यमान की इकाई के रूप में आक्सीजन के परमाण्वीय द्रव्यमान का 1/16 वाँ भाग मान लिया गया, जिसका नाम रखा गया "आक्सीजन मात्रक"।

कुछ समय पश्चात यह सिद्ध हुआ कि प्राकृतिक ऑक्सीजन अपने समस्थानकों का मिश्रण है (§ 34), जिसका अर्थ यह हुआ कि आक्सीजन द्रव्यमान मात्रक आक्सीजन के प्राकृतिक समस्थानकों के परमाण्वीय द्रव्यमानों का माध्य है। परमाणु भौतिकी के लिये यह मात्रक अस्वीकार्य था और विज्ञान के इस क्षेत्र में परमाण्वीय द्रव्यमान का मात्रक ^{16}O आक्सीजन के परमाण्वीय द्रव्यमान का 1/16 वाँ भाग माना जाने लगा फलस्वरूप, हमारे पास परमाण्वीय द्रव्यमान के दो मापक्रम हो गये – रासायनिक तथा भौतिक। परमाण्वीय द्रव्यमान के दो मापक्रमों के कारण बहुत-सी कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई।

सन् 1961 में आपेक्षिक परमाण्वीय द्रव्यमानों का एक मापक्रम स्वीकार किया गया जिसका आधार परमाण्वीय द्रव्यमान मात्रक (संक्षेप में द्र० प० मा०), अर्थात कार्बन के ^{12}C समस्थानिक के परमाण्वीय द्रव्यमान का 1/12 वाँ भाग, था। इस मापक्रम के अनुसार आक्सीजन तथा हाइड्रोजन के आपेक्षिक परमाण्वीय द्रव्यमान क्रमशः 15.9994 और 1.0079 (द्र० प० मा०) के बराबर होते हैं। इस प्रकार, आधुनिक समय में किसी तत्त्व का आपेक्षिक परमाण्वीय द्रव्यमान (या सिर्फ परमाण्वीय द्रव्यमान) उसके परमाणु का वह द्रव्यमान है जो परमाण्वीय द्रव्यमान मात्रक के रूप में व्यक्त किया जाता है।

किसी भी पदार्थ के अणु का द्रव्यमान उस अणु के परमाणुओं के द्रव्यमानों के योग के बराबर होता हैं। इसीलिए अणु द्रव्यमान तदनुरूपी परमाण्वीय द्रव्यमानों के योग के बराबर होता है। उदाहरणतया ; दो परमाणुओं से बने हाइड्रोजन के अणु का आण्विक द्रव्यमान 2.0158 (द्र० प० मा०) के बराबर है ; हाइड्रोजन के दो परमाणुओं तथा आक्सीजन के एक परमाणु से बने जल का आण्विक द्रव्यमान बराबर होगा $15.9994 + 2 \cdot 1.0079 = 18.0152$ द्र० प० मा० इत्यादि। अतएव, किसी सरल या मिश्रित पदार्थ का आपेक्षिक आण्विक द्रव्यमान (या सिर्फ अणु द्रव्यमान) उस अणु के द्रव्यमात को कहते हैं जो परमाण्वीय द्रव्यमान मात्रक में व्यक्त किया जाता है। यहाँ पर यह ध्यान देना आवश्यक है कि कुछ समय पहले तक "परमाण्वीय द्रव्यमान" और "अणु द्रव्यमान" के स्थान पर "परमाणु भार" और "अणु भार" शब्द प्रयोग किये जाते थे।

द्रव्यमान और आयतन के मात्रक के साथ-साथ रसायन में पदार्थ की मात्रा की एक और इकाई प्रयोग की जाती ही जो "मोल" (mole) कहलाती है।

"मोल" – किसी पदार्थ की वह मात्रा है जिसमें ^{12}C कार्बन समस्थानिक के 12 ग्रा० में स्थित परमाणुओं की सँख्या के बराबर की सँख्या में अणु, परमाणु, आँयन, इलैक्ट्रान या अन्य संरचनात्मक इकाइयाँ प्रस्तुत हों। "मोल" को प्रयोग करते समय प्रत्येक निश्चित स्थिति में यथावत रूप से यह बताना अनिवार्य है कि वस्तुत : कौन सी संरचनात्मक इकाइयों को लिया गया है। जैसे परमाणु-मोल H, अणु-मोल H_2 और आयन-मोल H^+ में विभेद किया जाना चाहिये। एक मोल में संरचनात्मक इकाइयों की सँख्या (अवोगाड्रो की सँख्या) आधुनिक समय में काफ़ी परिशुद्धता के साथ ज्ञात की जा सकती है। व्यवहारिक कार्यों के लिये यह सँख्या 6.02×10^{23} के बराबर मानी गई है।

दिये गये पदार्थ के एक मोल का द्रव्यमान, उसका मोल द्रव्यमान कहलाता है। सामान्य रूप से मोल द्रव्यमान ग्रा०/मोल में व्यक्त किया जाता है। चूंकि किसी भी पदार्थ के एक मोल में संरचनात्मक इकाइयों की सँख्या समान होती है, इस लिये पदार्थ का मोल द्रव्यमान (M. ग्रा०/मोल) तदनुरूपी संरचनात्मक एकक के द्रव्यमान के अनुपात में होता है, यानि कि प्रस्तुत पदार्थ के अणु (या परमाण्वीय) द्रव्यमान के अनुपात में ($M_{\text{अनुप०}}$, द्र० प० मा०) :

$$M = KM_{\text{अनुप०}}$$

यहाँ K – नियत समानुपातिक (आनुपातिक गुणांक) है जो सभी पदार्थों के लिये समान है। विदित है कि $K = 1$; वस्तुत : ^{12}C कार्बन के समस्थानिक $M_{\text{अनुप}} = 12$ द्र० प० मा०, और मोल द्रव्यमान (मोल की परिभाषा के

अनुसार) 12 ग्रा०/मोल के बराबर है। अत: M (ग्रा०/मोल) और $M_{अनुप०}$ (द्र० प० मा०) का संख्यात्मक मान एक जैसा है ; यानी $K = 1$ । यहाँ से निष्कर्ष निकलता है कि ग्रा० में व्यक्त किया गया किसी पदार्थ के मोल द्रव्यमान का संख्यात्मक मान उसके आपेक्षिक आण्विक (परमाण्वीय) द्रव्यमान , जो द्र० प० मा० में व्यक्त किया गया हो , के समान होता है। इस प्रकार परमाण्वीय हाइड्रोजन का मोल द्रव्यमान 1.0079 ग्रा०/मोल के बराबर है, और आण्विक हाइड्रोजन का– 2.0158 ग्रा०/मोल, आण्विक ऑक्सीजन – 31.9988 ग्रा०/मोल। अवोगाड्रो के नियम के अनुसार किसी भी गैस के अणुओं की एक ही सँख्या का समान अवस्थाओं में समान आयतन होता है। दूसरी ओर से, किसी भी पदार्थ के एक मोल में (परिभाषा के अनुसार) कणों की सँख्या समान होती है। यहाँ से यह निष्कर्ष निकलता है कि नियत ताप और दाब पर गैसीय अवस्था में किसी पदार्थ के एक मोल का आयतन समान होगा। सामान्य अवस्थाओं में, यानि कि सामान्य वायुमंडलीय दाब) 101.325 कि० पा० या 760 मि० मि० पारद स्तंभ) और 0° से० ताप पर गैस के एक मोल का आयतन ज्ञात करना कठिन नहीं होना चाहिये। जैसा कि प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया गया है कि एक लिटर आक्सीजन का द्रव्यमान सामान्य अवस्थाओं में 43 ग्रा० के बराबर है। अत: उन्ही अवस्थाओं में आक्सीजन के एक मोल (32 ग्रा०) का आयतन होगा $32 : 1.43 = 22.4$ लिटर। हाइड्रोजन, कार्बन डाइआक्साइड, इत्यादि के एक मोल का आयतन निकालने पर यही सँख्या प्राप्त होगी।

सामान्य अवस्थाओं में किसी गैस के एक मोल का आयतन 22.4 लिटर होता है। यह आयतन "सामान्य अवस्थाओं* में गैस का मोल आयतन" कहलाता है।

9. **गैसीय पदार्थों का अणु द्रव्यमान निश्चित करना.** किसी पदार्थ का आपेक्षिक आण्विक द्रव्यमान (द्र० प० मा० में) निश्चित करने के लिये सामान्यत: उस पदार्थ के अणुओं की सँख्या के बराबर का (ग्रा० में) मोल द्रव्यमान निकाला जाता है। यदि पदार्थ गैसीय अवस्था में हो तो उसका मोल द्रव्यमान अवोगाड्रो के नियम की मदद से निकाला जाता है।

अवोगाड्रो नियम के अनुसार समान ताप और दाब पर गैसों के समान आयतनों में अणुओं की सँख्या भी समान होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दो गैसों

---

*सामान्य अवस्थाओं में आदर्श गैस का मोल आयतन (22.4122 ± 0.0070) लि० के बराबर है। वास्तविक गैसों के मोल आयतन भिन्न होते है। ये 22.4138 लि० के लगभग होते हैं। अधिकतर यह भेद केवल चौथे या उसके बाद के सार्थक अँक में प्रगट होता है। इसी लिये वास्तविक गैसो के लिये 22.4 लि० मात्रा प्रयोग करनी चाहिये या फिर यदि अधिक परिशुद्धता आवश्यक है तो दी गई गैस के मोल आयतन की मात्रा प्रयोग करनी चाहिये।

[illegible] के द्रव्यमानों का वही अनुपात होना चाहिये, जो उनके अणु द्रव्य-[illegible] उनके बराबर की संख्या के मोल द्रव्यमानों का :

$$\frac{m_1}{m_2} = \frac{M_1}{M_2}$$

यहाँ m_1 और m_2 – द्रव्यमान, और M_1 तथा M_2 – पहली और दूसरी गैस के मोल द्रव्यमान।

समान ताप व दाब पर दी गई एक गैस के द्रव्यमान व समान आयतन वाली दूसरी गैस के द्रव्यमान के अनुपात को पहली गैस का दूसरी गैस के प्रति आपेक्षिक घनत्व कहते हैं।

उदाहरणतया 1 लि० कार्बन डाइआक्साइड का द्रव्यमान 1.98 ग्रा० है और उन्ही अवस्थाओं में 1 लि० हाइड्रोजन का 0.09 ग्रा०। अतः कार्बन डाइआक्साइड का हाइड्रोजन के प्रति घनत्व होगा $1.98 : 0.09 = 22$। गैस के आपेक्षिक घनत्व $\frac{m_1}{m_2}$ को अक्षर D से दर्शाते हैं। क्योंकि

$$D = \frac{M_1}{M_2}$$

अतः

$$M_1 = DM_2$$

एक गैस का मोल द्रव्यमान उसके दूसरी गैस के प्रति घनत्व और दूसरी गैस के मोल द्रव्यमान के गुणनफल के बराबर होता है। सामान्यतः भिन्न गैसों का घनत्व हाइड्रोजन के सापेक्ष निकाला जाता है, क्योंकि हाइड्रोजन सबसे हलकी गैस है। चूंकि हाइड्रोजन का मोल द्रव्यमान 2.0158 ग्रा०/मोल के बराबर होता है, तो मोल द्रव्यमान निश्चित करने का सूत्र बना : $M_1 = 2.0158D$ या, हाइड्रोजन के मोल द्रव्यमान को 2 के लगभग करने पर :

$$M_1 = 2D$$

उदाहरणतया, इस समीकरण से कार्बन डाईआक्साइड का मोल द्रव्यमान निकालने पर (हाइड्रोजन के आधार पर जिसका घनत्व, जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, 22 के बराबर है) :

$$M_1 = 2 \cdot 22 = 44$$

इसी प्रकार सामान्यत : गसो का मोल द्रव्यमान वायु पर आधारित उसके घनत्व से निश्चित किया जाता है। हालाँकि वायु कई गैसों का मिश्रण है, वायु का माध्य मोल द्रव्यमान हाइड्रोजन पर आधारित वायु के घनत्व से निकाला जा सकता है। इस विधि से वायु का मोल द्रव्यमान 29 ग्रा०/मोल के बराबर है।

वायु के आधार पर विचाराधीन गैस का घनत्व $D_{वायु}$ से सूचित करने पर मोल द्रव्यमान निकालने का निम्न समीकरण प्राप्त होता है :

$$M_1 = 29D_{वायु}$$

किसी पदार्थ का मोल द्रव्यमान (या उसका आपेक्षिक आण्विक द्रव्यमान) दूसरी विधि से भी निश्चित किया जा सकता है जिसमें गैसीय पदार्थ के मोल आयतन का प्रयोग होता है। इसके लिये दिए गये गैसीय पदार्थ के नियत द्रव्यमान का सामान्य अवस्थाओं में आयतन मालूम किया जाता है और फिर समान अवस्थाओं में इस पदार्थ के 22.4 लि० का द्रव्यमान निकाला जाता है। इस प्रकार प्राप्त मान पदार्थ का मोल द्रव्यमान (ग्रा० मोल में) कहलाता है। उदाहरण : 0.7924 ग्रा० क्लोरीन का 0° से० ताप व 101.325 कि० पा० दाब पर 250 मि० मि० आयतन है। क्लोरीन का आपेक्षिक अणु द्रव्यमान ज्ञात करें।

22.4 लि० (22 400 मि० लि०) क्लोरीन का द्रव्यमान हुआ :

$$m = \frac{22400 \cdot 0.7924}{250} \approx 71 \text{ ग्रा०}$$

अत: क्लोरीन का मोल द्रव्यमान 71 ग्रा०/मोल और आपेक्षिक अणु द्रव्यमान 71 द्र० प० मा० के बराबर हुआ।

सामान्यत:, गैसों का आयतन विशेष अवस्थाओं में मापा जाता है। गैसों के आयतन को सामान्य अवस्था के रूप में लाने के लिये निम्न समीकरण का प्रयोग किया जाता है जिसमें वायल-मेरिओट व गै-लुसैक के नियम सम्मिलित हैं :

$$\frac{PV}{T} = \frac{P_0V_0}{T_0}$$

यह V – गैस का आयतन, P – दाब और T – ताप, V_0 – सामान्य दाब P_0 (101.325 कि० पा० या 760 मि० मि० पारद स्तंभ) और ताप T_0 (273 K)* पर गैस का आयतन। इसी प्रकार गैसों के मोल द्रव्यमानों को, आदर्श गैसो . के अवस्था समीकरणों [equating of state] को प्रयोग करके निश्चित किया जा सकता है। यह समीकरण क्लेपेरॉन-मेन्डेलीफ का समीकरण है :

$$PV = \frac{m}{M} RT$$

यहाँ P = गैस का दाब, पा०; V-उसका आयतन, m^3, m – पदार्थ का द्रव्यमान, ग्रा० ; M – उसका मोल द्रव्यमान, ग्रा० मोल ; T – परम ताप, K; R – सार्वत्रिक गैस नियतांक जो 8.314 (जूल/मोल · K) के बराबर है।

*अधिक शुद्ध, 273.15 K.

यदि गैस का आयतन लि० में दिया गया है तो क्लेपेरॉन-मेन्डेलीफ समीकरण का यह रूप होगा :

$$PV = 1000 \frac{m}{M} RT$$

ऊपरिलिखित विधियों द्वारा केवल गैसों का ही नहीं, बल्कि उन सभी पदार्थों का जो गर्म करने पर बिना अपघटित हुए गैसीय अवस्था में परिवर्तित हो जाते हैं, अणु द्रव्यमान निश्चित किया जा सकता है। इसके लिये दिए गये पदार्थ के प्रतिदर्श को वाष्प में परिवर्तित करके उसका आयतन, ताप और दाब मापा जाता है। शेष गणनाएँ वही हैं, जो गैसों के अणु द्रव्यमान को निश्चित करने के लिये की जाती हैं।

इन विधियों द्वारा प्राप्त अणु द्रव्यमान पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं होता, क्योंकि ऊपर दिये गये गैसों के नियम तथा क्लेपेरॉन-मेन्डेलीफ समीकरण केवल बहुत कम दाब के लिये उपयुक्त है (दे० § 10)। अधिक परिशुद्ध अणु द्रव्यमान ज्ञात करने के लिये पदार्थ के विश्लेषण के आधार पर की गई गणनाओं का प्रयोग किया जाता है (दे० § 13)।

10. **गैस का आंशिक दाब.** गैसों के अणु द्रव्यमान का निश्चित करते समय अधिकतर गैसों का आयतन जल स्तर पर मापा जाता है, अतः गैसें जल के स्तर पर होने के कारण जल वाष्प से सन्तृप्त होती हैं। इस स्थिति में गैस का दाब निश्चित करने पर उसमें जल वाष्प के आंशिक दाब की शुद्धि करनी चाहिये।

सामान्य अवस्थाओं में भिन्न गैसें परस्पर किसी भी अनुपात में मिल सकती हैं। अतः मिश्रण में उपस्थित प्रत्येक गैस का अपना आंशिक दाब होता है। यह उसका वह दाब है जो मिश्रण में उपस्थित केवल दी गई गैस की मात्रा का आयतन उसी ताप पर सम्पूर्ण मिश्रण के आयतन के बराबर होने पर होता।

आंशिक दाब का डाल्टन का नियम इस प्रकार है :

> रसायनिक रूप से परस्पर अक्रिय गैसों के मिश्रण का दाब मिश्रण में उपस्थित गैसों के आंशिक दाबों के योग के बराबर होता है।

मान लें कि जल के ऊपर 20° से० ताप 104.1 कि० पास्कल दाब पर 570 मि० लि० गैस है। यह दाब दो मात्राओं से मिलकर बना है—गैस का अपना आंशिक दाब और संतृप्त जल-वाष्पीय दाब। अन्तिम दाब की हर ताप पर अपनी ही विशेष मात्रा होती है, और 20° से० पर 2.34 कि० पा० (दे० पृ० 249) के बराबर होती है। अतः यहां आंशिक दाब 104.1 = 2.34 = 101.76 कि० पा० के बराबर है। मापे हुये आयतन को सामान्य अवस्था में लाने पर समीकरण में गैस मिश्रण के सामान्य दाब (104.1 कि० पा०) के स्थान पर गैस का आंशिक दाब (101.76 कि० पा०) प्रयोग करना चाहिये :

$$V_0 = \frac{PVT_0}{P_0T} = \frac{101.76 \cdot 570 \cdot 273}{101.325\,(273 + 20)} = 533 \text{ मि० लि०}$$

जल-वाष्प के दाब में शुद्धि न करने से आयतन प्राप्त होगा :

$$V_0 = \frac{104.1 \cdot 570 \cdot 273}{101.325\,(273 + 20)} = 546 \text{ मि० लि०}$$

इससे त्रुटि 13 मि० लि० यानि 2.5% के लगभग होगी, जिसे केवल लगभग परिकलनों में छोड़ा जा सकता है।

ऊपर दिये गये गैसों के नियम—डाल्टन का नियम, गै-लुसैक का नियम और अवोगाद्रो का नियम—सब सन्निकट नियम हैं। ये शुद्धता के साथ केवल बहुत कम दाब पर लागू होते है, जब अणुओं की परस्पर दूरी उनके अपने आकार से काफी अधिक हो तथा अणुओ की परस्पर अभिक्रिया वस्तुतः होती ही नहीं हो। सामान्य कम दाब पर ये नियम आसन्न हैं तथा बहुत अधिक दाब के लिये ये अस्वीकृत है।

11. **तुल्य. तुल्यता नियम.** स्थिर अनुपात के नियम के अनुसार तत्त्व आपस में केवल निश्चित साँख्यिक अनुपात में जुड़ते हैं। इसीलिये रसायनिकी में तुल्य और तुल्य द्रव्यमान की धारणाओं को प्रस्तुत किया गया। तुल्य का अर्थ है—"समान मूल्य का"।

वर्त्तमान समय में तत्त्व का तुल्य उसकी उस मात्रा को कहते हैं जो हाइड्रोजन के परमाणु के एक मोल के साथ मिलती है या रासायनिक प्रतिक्रिया में हाइड्रोजन के परमाणु की उसी सँख्या का स्थान लेती है। जैसे कि HCl, H_2S, NH_3, CH_4 यौगिकों में क्लोरीन, गन्धक, नाइट्रोजन और कार्बन के तुल्य क्रमशः 1 मोल, 1/2 मोल, 1/3 मोल और 1/4 मोल के बराबर हैं। किसी तत्त्व के 1 तुल्य का द्रव्यमान उसका तुल्य द्रव्यमान कहलाता है। ऊपरिलिखित उदाहरणों में क्लोरीन, गन्धक, नाइट्रोजन, कार्बन के तुल्य द्रव्यमान क्रमशः 34.45 ग्रा०/मोल, 32/2 = 16 ग्रा०/मोल, 14/3 = 4.67 ग्रा/०मोल, 12/4 = 3 ग्रा०/मोल होंगे।

तुल्य तथा तुल्य द्रव्यमान निकालने की विधि सामान्यतः या तो यौगिको के विश्लेषणों के आँकड़ों पर आधारित होती है या एक तत्त्व द्वारा दूसरे तत्त्व को हटाए जाने के परिणामों पर आधारित होती है। किसी तत्त्व का तुल्य या तुल्य द्रव्यमान निकालने के लिये उसके हाइड्रोजन वाले यौगिक का होना आवश्यक नहीं है। किसी दिये गये तत्त्व का तुल्य या तुल्य द्रव्यमान उसके किसी भी दूसरे तत्त्व के साथ बने यौगिक के संयोजन के आधार पर निश्चित किया जा सकता है, यदि इस दूसरे तत्त्व का तुल्य या तुल्य द्रव्यमान ज्ञात हो।

उदाहरणतः 1.50 ग्रा० सोडियम को क्लोरीन के साथ मिलाने से 3.81 ग्रा० सोडियम क्लोराइड बना। सोडियम का तुल्य द्रव्यमान ($तु_{Na}$) और तुल्य क्या होगा, यदि क्लोरीन का तुल्य द्रव्यमान 35.45 ग्रा०/मोल है? ऊपरिलिखित आँकड़ो के अनुसार सोडियम क्लोराइड में 1.50 ग्रा० सोडियम और 3.81 — 1.50 = 2.31 ग्रा० क्लोरीन है। अतः सोडियम के $तु_{Na}$ ग्रा०/मोल बराबर है 35.45 ग्रा०/मोल क्लोरीन

के; और 1.50 ग्रा० सोडियम के बराबर है 2.31 ग्रा० क्लोरीन के, यानि

$$तु_{Na} = \frac{1.50 \cdot 35.45}{2.31} = 23.0 \text{ ग्रा०/मोल}$$

सोडियम के परमाणुओं का मोल द्रव्यमान (सँख्यात्मक रूप से सोडियम के आपेक्षिक परमाण्वीय द्रव्यमान के बराबर) 23.0 ग्रा० मोल है। अतः सोडियम के मोल द्रव्यमान तथा तुल्य द्रव्यमान एक समान है और इस प्रकार सोडियम का तुल्य 1 मोल हुआ।

कई तत्त्व एक दूसरे के साथ मिलकर अनेक यौगिक तैयार करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि तत्त्व का तुल्य और उसका तुल्य द्रव्यमान यौगिक के संयोजन के आधार पर भिन्न-भिन्न हो सकते है। लेकिन इन सभी अवस्थाओं में एक ही तत्त्व के भिन्न तुल्य (या तुल्य द्रव्यमान) आपस में छोटी पूर्ण सँख्याओं का सा अनुपात रखते हैं। जैसे कि, कार्बन डाइआक्साइड और कार्बन आक्साइड के आधार पर कार्बन के तुल्य द्रव्यमान क्रमशः 6 ग्रा०/मोल और 3 ग्रा०/मोल के बराबर है। इनका अनुपात हुआ :– 1 : 2

तुल्य द्रव्यमान के साथ-साथ कभी-कभी तुल्य आयतन का प्रयोग करना आसान रहता है। तुल्य आयतन का अर्थ है वह आयतन जो दीं गई अवस्थाओं में विचाराधीन पदार्थ के एक तुल्य के आयतन के बराबर होगा। जैसे कि, सामान्य अवस्था में हाइड्रोजन का तुल्य आयतन 11.2 लि०/मोल के बराबर है, और आक्सीजन का तुल्य आयतन 5.6 लि०/मोल।

तुल्य और तुल्य द्रव्यमान यौगिक पदार्थों पर भी लागू होते हैं। किसी मिश्रित पदार्थ का तुल्य उसकी वह मात्रा है जो बिना कुछ शेष रहे हाइड्रोजन के या अन्य किसी पदार्थ के एक तुल्य के साथ परस्पर अभिक्रिया करती है।*

रसायन में तुल्य की परिभाषा से एक नियम बना जिसे तुल्यता नियम कहते हैं: पदार्थ अपने तुल्यो की अनुपातिक मात्रा में परस्पर प्रतिक्रिया करते हैं।

कुछ अन्य प्रश्नों के हल में तुल्यता नियम की निम्न परिभाषा अधिक आसान रहेगी: परस्पर अभिक्रिया करने वाले पदार्थों के द्रव्यमान (आयतन) उनके तुल्य द्रव्यमानों (आयतनों) के अनुपात में होते हैं। रसायनिकी का वह भाग जो पदार्थों का मात्रात्मक संयोजन और परस्पर प्रतिक्रिया करने वाले पदार्थों के मात्रात्मक अनुपात (द्रव्यमान, आयतन) का अध्ययन करता है, स्टाइकियोमिट्री (stoichiometry) कहलाता है। इसके अनुसार यौगिको के तत्त्वों के या रसायनिक अभिक्रियाओं में पदार्थों के मात्रात्मक अनुपात के परिकलन स्टाइकियोमेट्रिक परिकलन कहलाते हैं (§ 15)। इनका आधार है: संहति-संरक्षण नियम, स्थिर अनुपात का नियम, गुणित अनुपात का नियम, तथा गैसीय नियम – गै-लुसैक और अवोगाद्रो नियम। ये सब नियम स्टाइकियोमिट्री के मुख्य नियम है।

---

* यौगिक पदार्थों – अम्ल, क्षारक, लवण – के तुल्य और तुव्य द्रव्यमानों को निश्चित करने की विधि § 15 में वर्णित है।

12. **परमाण्वीय द्रव्यमान का निर्धारण. संयोजकता.** सरल गैसों के अणुसंयोजन में प्रयुक्त परमाणुओं की सँख्या अवोगाड्रो नियम द्वारा निश्चित की जा सकती है। ऐसी रासायनिक अभिक्रियाएँ जिनमें हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन और क्लोरीन भाग लेते हैं, उनके आयतन अनुपात के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि इन गैसों के अणु द्विपरमाणुक हैं। अतः इन गैसों में से किसी एक का आपेक्षिक आण्विक द्रव्यमान निकाल कर उसे दो से विभाजित करके तदनुरूप तत्त्व का आपेक्षिक परमाण्वीय द्रव्यमान निकाला जा सकता है। जैसे कि, क्लोरीन का अणु द्रव्यमान 70.90 के बराबर निश्चित हुआ, तो क्लोरीन का परमाण्वीय द्रव्यमान 70.90 : 2 या 35.45 के बराबर हुआ।

परमाण्वीय द्रव्यमान निश्चित करने की दूसरी विधि, जो अधिक प्रचलित हुई, सन् 1858 में इटली के वैज्ञानिक स० कान्नीत्सारो ने प्रस्तुत की। इस विधि में सर्वप्रथम दिये गये तत्त्व के गैसीय या हल्के यौगिकों की यथासम्भव बड़ी सँख्या का आण्विक द्रव्यमान निकाला जाता है। उसके पश्चात, विश्लेषण के आँकड़ो के आधार पर यह निश्चित किया जाता है कि दिष्ट यौगिक के प्रत्येक अणु में तत्त्व के इस अंश के कितने परमाण्वीय द्रव्यमान मात्रक आते है। प्राप्त सँख्याओं में सबसे छोटी सँख्या ही परमाण्वीय द्रव्यमान है।

आइये, इस विधि को निम्न उदाहरण की मदद से समझे: तालिका 1. में कार्बन के कई यौगिकों के अणु द्रव्यमान और उनमें से प्रत्येक में कार्बन की प्रतिशत मात्रा दी गई है। तालिका I के अन्तिम कालम में प्रत्येक यौगिक के अणु में कार्बन का द्रव्यमान दिया गया है, जो प्रत्येक यौगिक के अणु द्रव्यमान तथा उसमें कार्बन की प्रतिशत मात्रा के आधार पर निश्चित किया गया है।

तालिका 1.

अनेक कार्बन यौगिकों के अणु द्रव्यमान तथा उनमें कार्बन की प्रतिशत मात्रा

यौगिक	अणु द्रव्यमान, द्र० प० मा०	कार्बन की % मात्रा (द्रव्यमान)	एक अणु में कार्बन द्रव्यमान, द्र० प० मा० में
कार्बन डाइऑक्साइड	44	27.27	12
कार्बन ऑक्साइड	28	42.86	12
ऐसीटिलीन	26	92.31	24
बेन्जीन	78	92.31	72
ईथर	74	64.86	48
ऐसीटोन	58	62.07	36

तालिका I के आँकड़ों से स्पष्ट है कि ऊपरलिखित यौगिकों के अणुओं में कार्बन का सबसे कम द्रव्यमान 12 द्र० प० मा० के बराबर है। स्पष्ट है कि कार्बन का परमाण्वीय द्रव्यमान 12 द्र० प० मा० से अधिक नहीं हो सकता (जैसे कि 24 या 36 द्र० प० मा०), वरना यह स्वीकार करना होगा कि कार्बन डाइआक्साइड व कार्बन आक्साइड के अणु संयोजन में कार्बन के परमाणु अंश या खंड में हैं। इसी प्रकार कार्बन का परमाण्वीय द्रव्यमान 12 द्र० प० मा० से कम मानने का भी कोई कारण नहीं है, क्योंकि 12 द्र० प० मा० से कम कार्बन वाले अणु नहीं होते। यही कार्बन का द्रव्यमान, पूर्ण सँख्या में, रासायनिक अभिक्रिया के समय एक अणु से दूसरे में परिणत हो जाता है। कार्बन के शेष सभी द्रव्यमान पूर्ण सँख्या के रूप में होते हैं और 12 के अपवर्त्य होते हैं। अतः 12 द्र० प० मा० ही कार्बन का परमाण्वीय द्रव्यमान है।

कान्नीत्सारो की विधि से केवल उन्ही तत्त्वों का परमाण्वीय द्रव्यमान निश्चित किया जा सकता है जिनके यौगिक गैसीय अवस्था में हों, या आसानी से गैसीय अवस्था में आ सकें। धातु इस] प्रकार के यौगिक नहीं बनाते। यही कारण था कि धातुओं के परमाण्वीय द्रव्यमान निश्चित करने के लिये उस समय एक अन्य विधि का प्रयोग किया जाता था जो तत्त्व के परमाण्वीय द्रव्यमान तथा ठोस अवस्था में तदनुरूप सरल पदार्थ की विशिष्ट उष्मा की आपसी निर्भरता पर आधारित थी।

सन् 1819 में धातुओं की विशिष्ट उष्मा ज्ञात करते समय फ़ांसीसी वैज्ञानिक प० ल० डयूलाँ और अ० पेती ने यह सिद्ध किया कि सरल पदार्थ (ठोस अवस्था में) की विशिष्ट उष्मा तदनुरूप तत्त्व के परमाणुओं के प्रति मोल द्रव्यमान के लिये अधिकांश तत्त्वों के लिये लगभग एक समान ही होती है। इसका माध्य 26 जूल/(मोल·K) के बराबर है। चूंकि यह सँख्या उष्मा की मात्रा है जो तत्त्व के एक मोल परमाणुओं को एक अंश गर्म करने के लिये आवश्यक है तो यह परमाण्वीय ऊष्मा-धारिता कहलाती है। इस नियम का नाम "डयूलाँ-पेती नियम" रखा गया: अधिकतर ठोस सरल पदार्थों की परमाण्वीय उष्मा-धारिता 22 से 29 जूल/(मोल·K) है।

डयूलाँ-पेती नियम से यह निष्कर्ष निकलता है कि 26 को सरल पदार्थ की विशिष्ट उष्मा-धारिता से, जो आसानी से प्रयोग द्वारा निश्चित की जा सकती है, विभाजित करके तदनुरुपी तत्त्व के परमाणु का सन्निकृत मोल द्रव्यमान, और इसीलिये सन्निकृत परमाण्वीय द्रव्यमान भी, निकाला जा सकता है। परमाण्वीय द्रव्यमान निकालने की विधियाँ अपूर्ण हैं, क्योंकि एक ओर तो वाष्प के घनत्व के आधार पर निश्चित किये गये अणु द्रव्यमान की शुद्धता 1% से अधिक नहीं होती तथा दूसरी ओर से डयूलाँ-पेती नियम केवल लगभग परमाण्वीय द्रव्यमान ही वतलाता है। लेकिन इन विधियों द्वारा प्राप्त तत्त्व के मोल द्रव्यमानो के लगभग मान की उसके तुल्य द्रव्यमान के साथ तुलना की जानी चाहिये। यह तुलना काफी उपयोगी साबित होगी,

ाकि तत्त्व के परमाणुओं के मोल द्रव्यमान तथा उसके तुल्य द्रव्यमान में संबंध ाता है, जिसमें तत्त्व की संयोजकता सम्मिलित होती है।

आइये इस धारणा को और अधिक विवरण में देखे। संयोजकता की धारणा को रसायनिकी में 19 वीं शताब्दी के मध्य में प्रस्तुत किया गया। तत्त्व की संयोजकता और आवर्त प्रणाली में उसके स्थान के बीच सम्बन्ध को सर्वप्रथम मेन्डेलीफ ने निश्चित किया। उन्होंने परिवर्ती संयोजकता की धारणा प्रस्तुत की। आण्विक तथा परमाणुक संरचना के विकास के साथ संयोजकता की धारणा को भौतिक आधार प्राप्त हो गया।

संयोजकता – यह एक जटिल धारणा है। इसीलिये संयोजकता के अनेक पहलुओं को व्यक्त करने के लिये अनेक परिभाषाएँ हैं। निम्न परिभाषा को सर्वसामान्य कहा जा सकता है: तत्त्व की संयोजकता – यह उसके परमाणुओं की अन्य परमाणुओं के साथ एक निश्चित अनुपात में संयोग करने की क्षमता है।

आरम्भ में संयोजकता के मात्रक के रूप में हाइड्रोजण के परमाणु की संयोजकता मानी गई। इस प्रकार किसी अन्य तत्त्व की संयोजकता हाइड्रोजन के परमाणुओं की वह सँख्या होगी जो इस तत्त्व के एक परमाणु से संयोग करे या उसका स्थान ले सके। इस प्रकार निश्चित की गई संयोजकता हाइड्रोजन के यौगिकों में संयोजकता या हाइड्रोजन के प्रति संयोजकता कहलाती है: अतः HCl, H_2O, NH_3, CH_4 यौगिकों में हाइड्रोजन के प्रति क्लोरीन की संयोजकता एक, आक्सीजन की दो, नाइट्रोजन की तीन और कार्बन की चार मात्रकों के बराबर है।

नियमानुसार आक्सीजन की संयोजकता दो के बराबर है। इस प्रकार किसी तत्त्व के आक्सीजन यौगिक की संरचना या सूत्र मालूम होने पर उसकी संयोजकता मालूम की जा सकती है, जो आक्सीजन के परमाणुओं की वह दुगुनी सँख्या होगी जो दिये गये तत्त्व के एक परमाणु से संयोग करे।

इस प्रकार निर्धारित संयोजकता तत्त्व की आक्सीजन यौगिक में या ऑक्सीजन के प्रति संयोजकता कहलाती है: अतः N_2O, CO, SiO_2, SO_3 यौगिकों में ऑक्सीजन के प्रति नाइट्रोजन की संयोजकता एक, कार्बन की दो, सिलिकन की चार और गन्धक की छः मात्रक के बराबर है।

हाइड्रोजन व ऑक्सीजन के आधार पर अधिकतर तत्त्वों की संयोजकता के मान अलग-अलग होते हैं। उदाहरण के तौर पर, गन्धक की हाइड्रोजन के प्रति संयोजकता (H_2S) दो के बराबर है, और आक्सीजन के प्रति (SO_3) छः के बराबर है। इसके अलावा अधिकांश तत्त्वों की उनके अपने विभिन्न यौगिकों में विभिन्न संयोजकता होती है। जैसे कि कार्बन आक्सीजन के साथ दो आक्साइड बनाता है: कार्बन मोनोआक्साइड CO तथा कार्बन डाइआक्साइड CO_2। कार्बनआक्साइड में कार्बन की संयोजकता दो के बराबर है, जबकि कार्बन डाइआक्साइड में चार के बराबर। ऊपर दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट है कि किसी तत्त्व की संयोजकता को नियमानुसार किसी एक

सँख्या में नहीं लिखा जा सकता है। हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के सापेक्ष संयोजकता के अलावा दिये गये तत्त्व के परमाणुओं की परस्पर या अन्य तत्त्वों के परमाणुओं के साथ मिलने की विशेषता को दूसरी विधियों के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। जैसे कि दिये गये तत्त्व के परमाणु द्वारा बनाए गये रासायनिक सम्बंधों की सँख्या द्वारा (सहसंयोजकता दे० § 38); या दिये गये परमाणु के सीधे सम्पर्क में स्थित परमाणुओं की सँख्या द्वारा व्यक्त किया जा सकता है (समन्वयन सँख्या दे० पृ० 191)। इन और ऐसी ही अन्य धारणाओं की चर्चा हम परमाणु सँरचना के नियम के अध्ययन के बाद करेंगे।

दिये गये यौगिक में तत्त्व की संयोजकता, उसके परमाणु के मोल द्रव्यमान तथा उसके तुल्य द्रव्यमान के बीच एक सरल संबंध है, जो सीधे परमाण्वीय सिद्धाँत एवं "तुल्य द्रव्यमान" धारणा की परिभाषा पर आधारित है। उदाहरणतया मान लो कि किसी तत्त्व की हाइड्रोजन के प्रति संयोजकता एक है। इसका अर्थ यह हुआ कि दिये तत्त्व के परमाणुओं का एक मोल हाइड्रोजन के परमाणुओं के एक मोल अर्थात एक तुल्य हाइड्रोजन के साथ संयोग कर सकता है या उसका स्थान ले सकता है। अतः इस तत्त्व का तुल्य द्रव्यमान उसके परमाणुओं के मोल द्रव्यमान के बराबर है। और यदि तत्त्व की संयोजकता दो के बराबर है, तो उसके परमाणुओं का मोल द्रव्यमान तथा उसका तुल्य द्रव्यमान एक दूसरे से भिन्न होंगे व तुल्य द्रव्यमान मोल द्रव्यमान का आधा होगा। जैसे कि ऑक्सीजन का तुल्य द्रव्यमान (8 ग्रा०/मोल) उसके परमाणुओं के मोल द्रव्यमान (16 ग्रा०/मोल) का आधा है, क्योंकि ऑक्सीजन के परमाणुओं का एक मोल हाइड्रोजन के परमाणुओं के दो मोल के साथ संयोजित होता है, यानी कि हाइड्रोजन के दो तुल्यों से, जिसका अर्थ हुआ 1.0079 ग्रा० हाइड्रोजन के लिये 16/2 = 8 ग्रा० ऑक्सीजन आती है। ऐलुमिनियम का तुल्य द्रव्यमान, जिसकी संयोजकता तीन के बराबर है, उसके परमाणुओं के मोल द्रव्यमान से तीन गुना कम है, इत्यादि।

इस प्रकार, किसी तत्त्व का तुल्य द्रव्यमान उसके परमाणुओं के दिये गये यौगिक में तत्त्व की संयोजकता से विभाजित मोल द्रव्यमान के बराबर होता है। इसे निम्न प्रकार लिखा जा सकता है:

तुल्य द्रव्यमान = (परमाणुओं का मोल द्रव्यमान)/संयोजकता

या

संयोजकता = परमाणुओं का मोल द्रव्यमान/तुल्य द्रव्यमान

अन्तिम विधि द्वारा प्राप्त की गई संयोजकता तत्त्व की स्टाइकियोमिट्री संयोजकता कहलाती है। इस विधि द्वारा किसी तत्त्व का बिल्कुल सही परमाण्वीय द्रव्यमान नि-

निश्चित किया जा सकता है, यदि उसके तुल्य द्रव्यमान के सही और लगभग मूल्य ज्ञात हो। इसके लिए सर्वप्रथम तत्त्व के परमाणुओं के मोल द्रव्यमान के लगभग मूल्य को तुल्य द्रव्यमान से विभाजित करके तत्त्व की स्टाइकियोमिट्री संयोजकता ज्ञात की जाती है। चूंकि स्टाइकियोमिट्री संयोजकता सदैव पूर्ण सँख्या में प्रकट की जाती है तो प्राप्त सँख्या को सबसे समीप की पूर्ण सँख्या में परिवर्तित कर दिया जाता है। इसके पश्चात, तुल्य द्रव्यमान को संयोजकता से गुणा करके तत्त्व के परमाणुओं के मोल द्रव्यमान का सही मान ज्ञात किया जाता है, जो मात्रिक रूप से तत्त्व के परमाण्वीय द्रव्यमान के बराबर होता है।

उदाहरण: इंडियम का तुल्य द्रव्यमान 38.273/ग्रा० मोल के बराबर है; इस धातु की विशिष्ट ऊष्मा 0.222 जूल/(ग्रा० · K) के बराबर है। इंडियम का परमाण्वीय द्रव्यमान ज्ञात करें। सर्वप्रथम, डयूलाँ-पेती नियम द्वारा इंडियम के परमाणुओं के मोल द्रव्यमान का लगभग मान ज्ञात करें: 26 : 0.222 = 117 ग्रा०/मोल इसके पश्चात, इस लगभग मान को तुल्य द्रव्यमान से विभाजित करके इंडियम की संयोजकता मालूम करें:

$$117 : 38.273 \approx 3$$

तुल्य द्रव्यमान को संयोजकता से गुणा करके इंडियम के परमाणुओं का मोल द्रव्यमान प्राप्त होगा:

$$38.273 \times 3 = 114.82 \text{ ग्रा०/मोल}$$

अतः इंडियम का परमाण्वीय द्रव्यमान = 114.82 द्र० प० मा०

13. **रासायनिक प्रतीक.** रासायनिक तत्त्वों के लिये आधुनिक प्रतीकों का विज्ञान में सर्वप्रथम प्रयोग बेरत्सेलुईस ने सन् 1813 में किया। उनके अनुसार तत्त्वों के लातिनी नामों के आरंभिक अक्षर उनके प्रतीक बनते है। उदाहरणतया, ऑक्सीजन (oxygenium) का प्रतीक उसके लातीनी नाम का आरम्भिक अक्षर “O” है; गन्धक (sulfur) का – “S”; और हाइड्रोजन (hydrogenium) का – “H” है। उन स्थितियों में, जब कई तत्वों के लातीनी नामों के आरंभ में एक ही अक्षर आता हो, उस तत्त्व का प्रतीक तत्त्व के नाम के पहले अक्षर और उससे अगले अक्षर को मिला कर बनता है। जैसे, कार्बन (carboneum) का प्रतीक है – “C” कैल्सियम (calcium) का – “Ca”; ताम्र (cuprum) का – “Cu”, इत्यादि।

रासायनिक प्रतीक तत्त्वों के केवल संक्षिप्त नाम ही नहीं हैं, बल्कि वे उनकी निश्चित मात्रा (या द्रव्यमान) का भी प्रतीक हैं, यानी हर प्रतीक तत्त्व के एक परमाणु, या उसके परमाणुओं के एक मोल, या तत्त्व के द्रव्यमान को (जो तत्त्व के मोल द्रव्यमान के बराबर या अनुपात में हैं) व्यक्त करता है। उदाहरण के लिये,

"C" या तो कार्बन के एक परमाणु, या कार्बन के द्रव्यमान के 12 (सामान्यत: 12 ग्रा०) मात्रकों को व्यक्त करता है।

इसी प्रकार पदार्थों के सूत्र पदार्थों के संयोजन ही नहीं, अपितु उनकी मात्रा और द्रव्यमान भी व्यक्त करते हैं। प्रत्येक सूत्र या तो पदार्थ का एक अणु या पदार्थ का एक मोल या उसके मोल द्रव्यमान के बराबर का (या अनुपात में) द्रव्यमान व्यक्त करते हैं। उदाहरणतया, H_2O या तो जल के एक अणु या जल के एक मोल या जल के द्रव्यमान के 18 मात्रक (सामान्यत: 18 ग्रा०) का प्रतीक है।

इसी प्रकार सरल पदार्थ भी सूत्रों द्वारा लिखे जाते हैं, जो यह व्यक्त करते हैं कि सरल पदार्थ का अणु कितने परमाणुओं से बना है जैसे हाइड्रोजन का सूत्र : H_2 है। यदि सरल पदार्थ के अणु का परमाणुक संयोजक सही ज्ञात नहीं है या पदार्थ के अणु परमाणुओं की विभिन्न सँख्याओं से बने हैं, या इसी प्रकार यदि पदार्थ की संरचना आण्विक न होकर परमाणुक या धात्विक है, तो उस सरल पदार्थ को तत्त्व के प्रतीक से व्यक्त किया जाता है। उदाहरणतया फ़ास्फ़ोरस सरल पदार्थ को P सूत्र द्वारा व्यक्त किया जाता है क्योंकि स्थिति के अनुसार फास्फोरस के संयोजन में विभिन्न सँख्या वाले परमाणुओं से बने अणु हो सकते हैं या उसकी बहुलक सँरचना हो सकती है।

किसी पदार्थ का सूत्र उसके विश्लेषणों के परिणामो के आधार पर बनाया जाता है। जैसे कि, विश्लेषण के परिणामों के अनुसार ग्लूकोस में 40.00% (द्रव्यमान) कार्बन, 6.72% (द्रव्यमान) हाइड्रोजन और 53.28% (द्रव्यमान) ऑक्सीजन होती है। अत: कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन के द्रव्यमानों का परस्पर अनुपात हुआ – 40.00 : 6.72 : 53.28। ग्लूकोस का सूत्र अब निम्न प्रकार से लिखें $C_xH_yO_z$ जहाँ x,y और z अणु में कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन के परमाणुओं की सँख्या हैं। इन तत्त्वों के परमाण्वीय द्रव्यमान क्रमश: 12.01, 1.01 और 16.00 द्र० प० मा० के बराबर हैं। इस प्रकार ग्लूकोस के अणु में 12.01x द्र० प० मा० कार्बन, 1.01y द्र० प० मा० हाईड्रोजन और 16.00z द्र० प० मा० ऑक्सीजन हैं। इन द्रव्यमानों का अनुपात हुआ

$$12.01x : 1.01y : 16.00z$$

लेकिन यह अनुपात हमने विश्लेषण के परिणामों के आधार पर पहले ही प्राप्त कर लिया है अतएव,

$$12.01x : 1.01y : 16.00z = 40.00 : 6.72 : 53.28$$

अनुपात की विशेषताओं के अनुसार.

$$x : y : z = \frac{40.00}{12.01} : \frac{6.72}{1.01} : \frac{53.28}{16.00}$$

या $x:y:z = 3.33:6.65:3.33 = 1:2:1$। इस प्रकार ग्लूकोस के अणु में कार्बन के एक परमाणु के साथ हाइड्रोजन के दो परमाणु और ऑक्सीजन का एक परमाणु आते हैं। इस अनुबंध का तोषण CH_2O; $C_2H_4O_2$; $C_3H_6O_3$ इत्यादि सूत्र करते हैं। इनमें से पहला सूत्र – CH_2O – सरलतम या मूलानुपाती सूत्र कहलाता है और इसका अणु द्रव्यमान 30.02 द्र० प० मा० के बराबर है। वास्तविक या अण्विक सूत्र मालूम करने के लिये दिये गये पदार्थ का अणु द्रव्यमान ज्ञात होना आवश्यक है। गर्म करने पर ग्लूकोस गैस में परिवर्तित हुए बिना नष्ट हो जाता है। लेकिन VII अध्याय में दी गई विधियों द्वारा उसका अणु द्रव्यमान निश्चित किया जा सकता है। यह 180 द्र० प० मा० के बराबर है। इस अणु द्रव्यमान और मूलानुपाती सूत्र द्वारा ज्ञात किये गये अणु द्रव्यमान की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाएगा कि ग्लूकोस का सूत्र $C_6H_{12}O_6$ है।

रासायनिक सूत्रों के निष्कर्षों के साथ परिचित होने के बाद यह आसानी से समझा जा सकता है कि अणु द्रव्यमानों के सही मूल्य किस प्रकार निश्चित किये जाते हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, अणु द्रव्यमान निश्चित करने की प्रचलित विधियों द्वारा अधिकांश स्थितियों में बिल्कुल सही परिणाम प्राप्त नहीं किये जा सकते। लेकिन केवल लगभग अणु द्रव्यमान और पदार्थ का प्रतिशत संयोजन ही मालूम होने पर उसका सूत्र ज्ञात किया जा सकता है, जो अणु के परमाण्वीय संयोजन को व्यक्त करेगा। चूंकि अणु द्रव्यमान उसके परमाणुओं के द्रव्यमानों के योग के बराबर होता है, तो उसके अणुओं के द्रव्यमानों का योग करके उसका द्र० प० मा० में द्रव्यमान अर्थात पदार्थ का अणु द्रव्यमान ज्ञात किया जाता है। प्राप्त अणु द्रव्यमान की शुद्धता पदार्थ के विश्लेषण की शुद्धता पर निर्भर करेगी।

14. **अकार्बनिक पदार्थों के मुख्य वर्ग.** सब पदार्थ सरल और मिश्रित पदार्थों में बाँटे गये हैं। सरल पदार्थ एक तत्त्व से बने हैं और मिश्रित पदार्थ दो या दो से अधिक तत्त्वों से बने हैं। सरल पदार्थ क्रमशः धातु और अधातु या उपधातुओं में बाँटे गये हैं।* यह विभाजन सरल पदार्थों के भौतिक गुणों में विभेद पर आधारित है।

धातुओं की विशेषताएँ हैं : विशिष्ट "धात्विक" द्युति, आघातवर्ध्यता (malleability) तन्यता (ductibility)। इन की चादरें आदि बनाई जा सकती हैं और इन्हें खींचकर उनका तार बनाया जा सकता है। ये ऊष्मा व विद्युत की सुचालक होती हैं। सामान्य ताप पर सभी धातु (पारद को छोड़ कर) ठोस होते हैं।

---

*अधात्विक गुण वाले सरल पदार्थों के लिये रसायानिकी में "उपधातु" नाम का प्रयोग सन् 1808 में बेरत्सेलुइस ने किया। आजकल यह नाम तत्वों के कुछ माध्यमिक उपधातु जैसे आर्सेनिक, जिसके रासायनिक गुण एक धातु जैसे होते हैं, के लिये प्रयुक्त किया जाता है।

अधातुओं में धातुओं की तरह विशिष्ट धात्विक द्युति नहीं होती, वे भंगुर होते हैं तथा ऊष्मा एवं विद्युत के अच्छे चालक नहीं होते। इनमें से कई सामान्य ताप पर गैसीय अवस्था में होते हैं। मिश्रित पदार्थ कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थों में बाँटे गये हैं। कार्बन के संयोजनों को कार्बनिक कहते हैं* और शेष सभी यौगिक पदार्थों को "अकार्बनिक" कहा जाता है (कभी-कभी इनके लिये "खनिज" शब्द का भी उपयोग किया जाता है)। रसायन में अकार्बनिक पदार्थों में से अधिकतर आक्साइड, क्षारक अम्ल और लवण का प्रयोग किया जाता है। अकार्बनिक पदार्थों के इन मुख्य वर्गों का अध्ययन माध्यमिक कक्षाओं में ही कर लिया जाता है। इसलिये यहाँ हम उनके बारे में केवल आवश्यक जानकारी ही देंगे। आक्साइड—यह किसी तत्त्व के साथ ऑक्सीजन का संयोजन है। रासायनिक गुणों के आधार पर ये लवणकारी, अलवणकारी और उदासीन होते हैं। लवणकारी क्रमशः क्षारकीय, अम्लीय व उभयधर्मी में बाँटे गए हैं। क्षारकीय ऑक्साइडक्षारक बनाते हैं; और अम्लीय ऑक्साइड—अम्ल; उभयधर्मी ऑक्साइड हाइड्रेट होते हैं, जिनमें अम्लीय तथा क्षारकीय—दोनों ही गुण होते हैं। उभयधर्मी का अध्ययन §87 में किया गया है। उदासीन ऑक्साइड न तो अम्ल बनाते हैं और न ही क्षारक।

क्षारकीय ऑक्साइड के उदाहरण हैं: कैल्सियम ऑक्साइड CaO व मैगनीशियम ऑक्साइड MgO। कैल्सियम ऑक्साइड पानी से मिलकर कैल्सियम हाइड्रोक्साइड $Ca(OH)_2$ बनाता है।

$$CaO + H_2O = Ca(OH)_2$$

मैगनीशियम ऑक्साइड पानी में कम विलयशील है। लेकिन उसका भी तदनुरूप क्षारक है—मैगनीशियम हाइड्रोक्साइड $Mg(OH)_2$—जिसे MgO से अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

अम्लीय ऑक्साइड के उदाहरण हैं: सल्फर ट्राइआक्साइड SO_3 और सिलिकन डाइआक्साइड SiO_2। इनमें से पहली पानी के साथ अभिक्रिया करके गन्धक का अम्ल बनाती है।

$$SO_3 + H_2O = H_2SO_4$$

सिलिकन डाइआक्साइड पानी के साथ अभिक्रिया नहीं करता, लेकिन उसका तदनुरूप सिलिकन अम्ल है H_2SiO_3, जिसे SiO_2 से अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त किया जा सकता है। अम्लीय ऑक्साइड को अम्ल से पानी पृथक कर के प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए उन्हें निर्जलीय (ऐनहाइड्राइड) अम्ल या केवल निर्जलीय (ऐनहाइ-

---

*कार्बन के सरलतम यौगिक (CO, CO_2, H_2CO_3, और कार्बोनेट HCN व सायनाइड, कार्बाइड तथा कई अन्य) सामान्यतः अकार्बनिक रसायन के पाठ्य-क्रम में आते हैं।

ाइड) भी कहा जाता है। उदासीन ग्राक्सीड का उदाहरण है नाइट्रोजन ग्राक्साइड (II) NO; इस ग्राक्साइड का कोई भी ग्रम्ल या क्षारक नहीं है।

कुछ पदार्थ तत्त्वों के ग्राक्सीजन के साथ यौगिक-ग्रॉक्साइड के वर्ग में केवल ग्रौपचारिक रूप से ग्राते हैं। ऐसे पदार्थ हैं: विशेषतः धातु की परक्साइड (पेरेकिस) जैसे कि बेरियम परग्रॉक्साइड BaO_2। ग्रपने स्वभाव के ग्रनुसार ऐसे पदार्थ बहुत क्षीण ग्रम्ल के लवण होते हैं। जैसे हाइड्रोजन परग्रॉक्साइड। लवणकारी यौगिकों के ग्रन्य उदाहरण ऐसे पदार्थ हैं; जैसे कि Pb_2O_3 ग्रौर Pb_3O_4

क्षारक किसी धातु ग्रौर उस की संयोजकता के बराबर की सँख्या में एक संयोजकता वाले हाइड्रोक्सीग्रुप* OH से बनते हैं। क्षारक के उदाहरण के रूप में सोडियम हाइड्रोक्साइड NaOH तथा ताम्र हाइड्रोक्साइड $Cu(OH)_2$ को लिया जा सकता है।

क्षारक का सबसे महत्त्वपूर्ण रासायनिक गुण है: उसकी ग्रम्ल के साथ लवण बनाने की विशेषता। उदाहरणतया, ऊपरिलिखित क्षारकों की हाइड्रोक्लोरिक ग्रम्ल के साथ प्रतिक्रिया के फलस्वरूप धातुग्रों के क्रमशः क्लोराइड लवण प्राप्त होते हैं—सोडियम क्लोराइड या ताम्र क्लोराइड:

$$NaOH + HCl = NaCl + H_2O$$
$$Cu(OH)_2 + 2HCl = CuCl_2 + 2H_2O$$

क्षारकों को उनकी जल में विलयशीलता ग्रौर उनकी प्रबलता के ग्राधार पर क्षारक विलयशील (या क्षार) तथा ग्रविलयशील कहते हैं। ग्रधिक महत्त्वपूर्ण क्षार हैं: सोडियम हाइड्रोक्साइड NaOH, पोटैशियम हाइड्रोक्साइड KOH ग्रौर कैल्सियम हाइड्रोक्साइड $Ca(OH)_2$। प्रबलता के ग्राधार पर क्षारक प्रबल ग्रौर क्षीण होते हैं। (§ 84) ग्रमोनियम हाइड्रोक्साइड के ग्रलावा सभी क्षार प्रबल होते हैं। ग्रन्तर्राष्ट्रीय नाम पद्धति के ग्रनुसार हाइड्रोक्सीग्रुप वाले यौगिक हाइड्रोक्साइड कहलाते हैं; परिवर्ती संयोजकता वाले धातुग्रों के लिये कोष्ठकों में दिये गये यौगिक की धात्विक संयोजकता लिख दी जाती है; जैसे कि, $Ca(OH)_2$ – कैल्सियम हाइड्रोक्साइड, $Fe(OH)_2$ – लौह हाइड्रोक्साइड (II), $Fe(OH)_3$ – लौह हाइड्रोक्साइड (III).

ग्रम्ल धातु को प्रतिस्थापित करने वाली हाइड्रोजन ग्रौर ग्रम्लीय मूलक के मिलने से बनते हैं। इनमें हाइड्रोजन के परमाणुग्रों की सँख्या ग्रम्लीय मूलक की संयोजकता

---

*संयोजकता की धारणा न केवल तत्त्वों के लिये लागू है बल्कि परमाणुग्रों के उन ग्रुपों के लिये भी लागू है जो रासयनिक यौगिकों में होते हैं तथा रासायनिक प्रतिक्रियाग्रों में एक पूर्ण के रूप में भाग लेते हैं। ग्रकार्बनिक रसायन में ऐसे सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रुप हैं: हाइड्रोक्सी ग्रुप OH, ग्रम्लीय मूलक, ग्रमोनिया ग्रुप NH_4।

के बराबर होती है। अम्ल के उदाहरण हैं: हाइड्रोक्लोरिक अम्ल HCl, सल्फ्यूरिक अम्ल H_2SO_4, नाइट्रिक अम्ल HNO_3, ऐसीटिक अम्ल CH_3COOH।

अम्ल का महत्वपूर्ण रासायनिक गुण है—उसकी क्षारकों के साथ लवण बनाने की विशेषता। जैसे, अम्ल की सोडियम हाइड्रोक्साइड के साथ प्रतिक्रिया के फलस्वरूप इन अम्लों के सोडियम लवण प्राप्त होते हैं:

$$2NaOH + H_2SO_4 = Na_2SO_4 + 2H_2O$$
$$NaOH + HNO_3 = NaNO_3 + H_2O$$

अम्लों की प्रबलता, क्षारकीयता और अम्लीय संयोजन में आक्सीजन की मात्रा के आधार पर उन्हें विभिन्न वर्गों में बाँटा गया है। प्रबलता के आधार पर अम्ल प्रबल तथा क्षीण होते हैं। (§ 84) सबसे महत्वपूर्ण प्रबल अम्ल हैं—नाइट्रिक अम्ल, सल्फ्यूरिक अम्ल व हाइड्रोक्लोरिक अम्ल।

अम्ल की क्षारकीयता अम्ल के अणु में हाइड्रोजन के उन परमाणुओं की सँख्या कहलाती है जो धातु द्वारा प्रतिस्थापित होकर लवण बनाते हैं। हाइड्रोक्लोरिक व ऐसीटिक अम्ल एकक्षारिक अम्ल कहलाते हैं, सल्फ्यूरिक अम्ल द्विक्षारिक, तथा ऑर्थोफास्फोरिक अम्ल H_3PO_4 त्रिक्षारिक कहलाते हैं।

संयोजन में ऑक्सीजन की उपस्थिती के आधार पर अम्ल आक्सीजन गर्भित और आक्सीजनरहित होते हैं। नाइट्रिक व सल्फ्यूरिक अम्ल आक्सीजन गर्भित अम्ल कहलाते हैं तथा हाइड्रोक्लोरिक HCl अम्ल व हाइड्रोजन सल्फाइड H_2S आक्सीजनरहित अम्ल हैं।

अम्ल के नाम उसको बनाने वाले तत्त्वों में नाम पर रखे जाते हैं। और आक्सीजनरहित अम्लों के नाम के आरम्भ के हाइड्रोजन लग जाता है: HCl—हाइड्रोजन क्लोराइड, H_2S—हाइड्रोजन सल्फाइड; HCN—हाइड्रोजन सायनाइड। आक्सीजनगर्भित अम्लों के नाम भी इसी प्रकार तदनुरूप तत्त्वों के नाम से बनते हैं और उनके अंत में "अम्ल" जोड़ दिया जाता है: HNO_3—नाइट्रिक अम्ल, H_2CrO_4—क्रोमिक अम्ल। यदि कोई तत्त्व कई अम्ल बनाता है तो उनका विभेद उनके नाम के अंत में व्यक्त किया जाता है। अधिक संयोजकता वाले तत्व के अम्ल के नाम के अंत में "इक" का प्रयोग किया जाता है। और यदि तत्त्व की संयोजकता अधिकतम से कम हो तो अम्ल के नाम के अंत में "अस", "इयस" जोड़ दिया जाता है। जैसे HNO_3—नाइट्रिक अम्ल; HNO_2—नाइट्रस अम्ल; H_3AsO_4—आर्सेनिक अम्ल; H_3AsO_3—आर्सेनियस अम्ल। इसके अलावा, एक ही ऑक्साइड के कई अम्ल हो सकते हैं, जो आपस में पानी के अणुओं की सँख्या के आधार पर भिन्न होते हैं। जिसमें अधिक जल होता है उसके नाम के पूर्व "आर्थो" और कम जल की मात्रा वाले के नाम के पूर्व "मेटा" लगाया जाता है। अतः अम्ल H_3PO_4 जिसमें फास्फोरस ऐनहाइड्राइट P_2O_5 के एक अणु पर पानी के 3 अणु आते हैं, आर्थो फास्फोरिक अम्ल कहलाता है और अम्ल

HPO_3 – मेटाफास्फोरिक, क्योंकि P_2O_5 के एक अणु पर पानी का एक अणु आता है। ऊपरिलिखित नियम कोई दृढ़ नियम नहीं है। इन नामों को अन्य प्रकार से भी लिखा जा सकता है। इसके अलावा, कई अम्लों के नाम प्राचीन समय से चले आ रहे हैं।

अम्ल में धातु द्वारा हाइड्रोजन के प्रतिस्थापन या क्षारक में अम्लीय मूलक द्वारा हाइड्रोक्सोग्रुप के प्रतिस्थापन के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले पदार्थों को लवण कहते हैं। पूर्ण प्रतिस्थापन के फलस्वरूप उदासीन (या सामान्य) लवण, तथा अपूर्ण प्रतिस्थापन के फलस्वरूप – अम्लीय, या क्षारकीय लवण प्राप्त होते हैं। अम्लीय लवण धातु द्वारा अम्ल की हाइड्रोजन के अपूर्ण प्रतिस्थापन के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं। क्षारकीय लवण क्षारक के हाइड्रोक्सोग्रुप के अम्लीय मूलक द्वारा अपूर्ण प्रतिस्थापन के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि अम्लीय लवण केवल उस अम्ल द्वारा ही बन सकता है, जिसकी क्षारकीयता दो या दो से अधिक है, और क्षारकीय लवण – केवल उस धातु द्वारा, जिसकी संयोजकता दो या दो से अधिक हो।

लवण के बनने के उदाहरण:

$$Ca(OH)_2 + H_2SO_4 = CaSO_4 + 2H_2O$$

$CaSO_4$ – उदासीन लवण – कैल्सियम सल्फेट ;

$$KOH + H_2SO_4 = KHSO_4 + H_2O$$

$KHSO_4$ – अम्लीय लवण – पोटैशियम हाइड्रोसल्फेट ;

$$Mg(OH)_2 + HCl = MgOHCl + H_2O$$

$MgOHCl$ – क्षारकीय लवण – हाइड्रोक्सो मैगनीशियम क्लोराइड।

दो धातु और एक अम्ल द्वारा बने लवण द्वि-लवण कहलाते हैं। और एक धातु व दो अम्लों द्वारा बने लवण संमिश्रित लवण कहलाते हैं। द्विलवण के उदाहरण हैं: ऐलुमिनोपोटैशियम फिटकरी (ऐलम) या पोटैशियम ऐलुमिनियम सल्फेट, $KAl(SO_4)_2$। सम्मिश्रित लवण के उदाहरण हैं: $CaClOCl$ (या $CaOCl_2$) – हाइड्रोक्लोरिक और हाइपोक्लोरिक अम्लों का कैल्सियम लवण। एक ही लवण के कई नाम हो सकते हैं। जैसे कि KNO_3 को पोटैशियम नाइट्रेट या पोटैशियम नाइट्रेट लवण। आजकल अधिकांश रसायनज्ञ लवणों के लिये अन्तर्राष्ट्रीय (लातीनी) नाम पद्धति का प्रयोग करते हैं। इस नामपद्धति के अनुसार लवण का नाम धातु के नाम तथा अम्लीय मूलक के लातीनी नाम से बनता है। अम्ल व अम्लीय मूलक का लातीनी नाम, साधारणतया, अम्ल बनाने वाले तत्त्व के लातीनी नाम से बनता है। इस तरह आक्सीजनरहित अम्ल के लवणों के नामों में – "आइड" लगता

है। आक्सीजनगर्भित अम्लों के लवणों के नाम – "एट" से अंत होते हैं, यदि अम्ल-जनक तत्त्व की संयोजकता अधिकतम हो, और – "आइट" से – जब उसकी संयोजकता न्यूनतम होती हो। इस प्रकार हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के लवणों के नाम "क्लोराइड"; हाइड्रोसल्फ्यूरिक अम्ल के – "सल्फाइड", सल्फ्यूरिक के – "सल्फेट"; सल्फ्यूरस के – "सल्फाइट" होते हैं।

परिवर्ती संयोजकता वाले धातुओं से बने लवणों के लिये धातु की संयोजकता कोष्ठक में लिख दी जाती है, जैसे आक्साइड या क्षारकों के लिये लिखी जाती है: अतः, $FeSO_4$ – लोह सल्फेट (II) $Fe_2(SO_4)_3$ – लोह सल्फेट (III)।

अम्लीय लवणों के नाम के आरम्भ में – "हाइड्रो" का प्रयोग किया जाता है जो लवण में हाइड्रोजन के प्रतिस्थापित न होने वाले परमाणुओं को व्यक्त करता है। यदि ऐसे परमाणु दो या दो से अधिक हों तो उनकी सँख्याओं को ग्रीक सँख्या वाचक उपसर्गों (डाइ –, ट्राइ –, इत्यादि). द्वारा व्यक्त किया जाता है। अतः Na_2HPO_4 का नाम हुआ – सोडियम हाइड्रोफास्फेट, और NaH_2PO_4 का सोडियम डाइहाइड्रोफास्फेट।

इसी प्रकार क्षारकीय लवण के नाम हाइड्रोक्सी से आरम्भ किये जाते है जो प्रतिस्थापित न होने वाले हाइड्रोक्सिलीय ग्रुपों को व्यक्त करते हैं। उदाहरणतया, $AlOHCl_2$ – ऐलुमिनियम हाइड्रोक्सी क्लोराइड कहलाता है और $Al(OH_2)Cl$ – ऐलुमिनियम डाइहाइड्रोक्सी क्लोराइड कहलाता है। नीचे कुछ महत्वपूर्ण अम्लों के लवणों के नाम दिये गये हैं:

अम्ल

नाम	सूत्र	तदनुरूप उदासीन लवणों के नाम
नाइट्रिक	HNO_3	नाइट्रेट
नाइट्रस	HNO_2	नाइट्राइट
ऐलूमिनियम	H_3AlO_3	ऐलुमिनेट
बोरिक (आर्थोबोरिक)	H_3BO_3	बोरेट (आर्थोबोरेट)
हाइड्रोजन ब्रोमाइड	HBr	ब्रोमाइड
हाइड्रोजन आयोडाइड	HI	आयोडाइड
सिलिसिक	H_2SiO_3	सिलिकेट
परमैंगनिक	$HMnO_4$	परमैंगनेट
मेटाफास्फोरिक	HPO_3	मेटाफास्फेट
आर्सेनिक	H_3AsO_4	आर्सेनेट

नाम	सूत्र	क्रमशः उदासीन लवणों के नाम
आर्सेनियस	H_3AsO_3	आर्सेनाइट
आर्थोफास्फोरिक	H_3PO_4	आर्थोफास्फेट (फास्फेट)
पायरोफास्फोरिक	$H_4P_2O_7$	पायरोफास्फेट
सल्फ्यूरिक	H_2SO_4	सल्फेट
सल्फ्यूरस	H_2SO_3	सल्फाइट
कार्बोनिक	H_2CO_3	कार्बोनेट
फास्फोरस	H_3PO_3	फास्फाइट
फ्लुओरीन हाइड्राइड	HF	फ्लुओराइड
हाइड्रोक्लोरिक	HCl	क्लोराइड
परक्लोरिक	$HClO_4$	परक्लोरेट
क्लोरिक	$HClO_3$	क्लोरेट
हाइपोक्लोरस	HClO	हाइपोक्लोराइट
क्रोमिक	H_2CrO_4	क्रोमेट
हाइड्रोजन सायनाइड	HCN	सायनाइड

15. **रासायनिक परिकलन**. परमाण्वीय-आण्विक सिद्धाँत की सबसे महत्त्वपूर्ण व्यवहारिक सिद्धि है: रासायनिक परिकलन की संभावना का प्रमाणित होना। ये गणनाएँ इस बात पर आधारित हैं कि प्रत्येक पृथक पदार्थ के संघटन को रासायनिक सूत्रों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है और पदार्थों की पारस्परिक प्रतिक्रिया रासायनिक समीकरणों पर आधारित होती है। सूत्रों पर आधारित परिकलन: किसी भी पदार्थ का रासायनिक सूत्र उसके प्रति कई बातें बता सकता है। सर्वप्रथम, वे दिखाते हैं कि पदार्थ किन तत्त्वों से बना है और उसके अणु में तत्त्वों के कितने परमाणु हैं। उसके बाद सूत्र की मदद से दिये पदार्थ में गुणों को व्यक्त करने वाली अनेक मात्राओं का परिकलन किया जा सकता है। आइये कुछ महत्वपूर्ण परिकलन देखें।

किसी भी पदार्थ का आण्विक द्रव्यमान उसके सूत्र द्वारा निर्दिष्ट पदार्थ के अणु के अवयवी परमाणुओं के परमाण्विक द्रव्यमानों के योग से निश्चित किया जा सकता है।

पदार्थ का तुल्य द्रव्यमान उसके मोल द्रव्यमान के आधार पर निश्चित किया जाता है। अम्ल का तुल्य द्रव्यमान अम्ल के मोल द्रव्यमान को इसकी क्षारकीयता से विभाजित करने पर प्राप्त होता है। क्षारक का तुल्य द्रव्यमान क्षारक जनक धातु की

संयोजकता से विभाजित क्षारक के मोल द्रव्यमान के बराबर होता है। लवण का तुल्य द्रव्यमान धातु की संयोजकता और अणु में उसके परमाणुओं की सँख्या के गुणनफल से विभाजित लवण के मोल द्रव्यमान के बराबर होता है।

उदाहरण :

HNO_3. मोल द्रव्यमान 63 ग्रा०/मोल,
तुल्य द्रव्यमान $63:1=63$ ग्रा०/मोल।

H_2SO_4. मोल द्रव्यमान 98 ग्रा०/मोल,
तुल्य द्रव्मान $98:2=49$ ग्रा०/मोल।

$Ca(OH)_2$. मोल द्रव्यमान 74 ग्रा०/मोल,
तुल्य द्रव्यमान $74:2=37$ ग्रा०/मोल।

$Al_2(SO_4)_3$. मोल द्रव्यमान 342 ग्रा०/मोल,
तुल्य द्रव्यमान $342:(2\times3)=57$ ग्रा०/मोल।

तत्त्व के तुल्य द्रव्यमान की भाँति मिश्रित पदार्थ के तुल्य द्रव्यमान के भी कई मूल्य होसकते हैं, यदि यह पदार्थ कई प्रकार की प्रतिक्रियाओं में भाग ले सकता है। जैसे अम्लीय लवण $NaHSO_4$ सोडियम हाइड्रोक्साइड या बेरियम हाइड्रोक्साइड के साथ अभिक्रिया कर सकता है।

$$NaHSO_4+NaOH=Na_2SO_4+H_2O$$
$$NaHSO_4+Ba(OH)_2=BaSO_4\downarrow+NaOH+H_2O$$

लवण की एक ही मात्रा पहली स्थिति में संयोजकता वाले धातु के क्षारक के एक मोल से यानी क्षारक के एक तुल्य से प्रतिक्रिया करती है और दूसरी स्थिति में–द्विसंयोजकता वाले धातु के एक मोल क्षारक से, यानी कि क्षारकीयता के दो तुल्य से। इसीलिये पहली स्थिति में $NaHSO_4$ का तुल्य द्रव्यमान लवण के मोल द्रव्यमान (120 ग्रा०) के बराबर है और दूसरी स्थिति में–दो से विभाजित मोल द्रव्यमान (60 ग्रा०) के।

मिश्रित पदार्थ का प्रतिशत अवयवानुपात (percentage composition).

साधारणतया पदार्थ का अवयवानुपात प्रतिशत द्रव्यमान में व्यक्त किया जाता है। उदाहरण के लिये, आइये, मैगनीशियम कार्बोनेट ($MgCO_3$) में मैगनीशियम की मात्रा ज्ञात करे। इसके पहले इस योगिक का अणु द्रव्यमान ज्ञात करें, जो $24.3+12+$ $+3\times16=84.3$ द्र० प० मा० के बराबर है। इसको 100 मान कर मैगनीशियम की प्रतिशत मात्रा मालूम करें: $x=24.3\times100/84.3=28.8\%$ (द्रव्यमान)

0° से० और सामान्य वायु दाब (101.325 कि० पा० या 760 मि० मि०) पर एक लिटर गैस का द्रव्यमान.

किसी भी गैस के एक मोल का आयतन सामान्य अवस्थाओं में 22.4 लि० होता है। अतः उन्हीं अवस्थाओं में एक लि० गैस का द्रव्यमान 22.4 से विभाजित उसके मोल द्रव्यमान के बराबर होता है। गैस के दिये गये द्रव्यमान का आयतन 0° से० और सामान्य वायु दाब पर किसी गैस के लिये यह परिकलन उसके मोल आयतन (22.4 लि०/मोल) के आधार पर किया जा सकता है। किसी अन्य ताप व दाब पर गैस का आयतन क्लेपेरॉन-मेन्डेलीफ समीकरण की मदद से निश्चित किया जाता है :

$$PV = \frac{m}{M} RT$$

(प्रतीकों के अर्थ § 9 में दिये गये हैं।) इसी समीकरण की मदद से विपरीत परिकलन भी किया जा सकता है, यानी गैस के दिये गये आयतन का द्रव्यमान निश्चित किया जा सकता है।

समीकरण द्वारा परिकलन. परमाण्वीय आण्विक सिद्धांत के अनुसार रसायनिक प्रतिक्रिया में मूल पदार्थों के कण प्रतिक्रिया के उत्पाद के कणों में परिवर्तित हो जाते हैं। यदि मूल पदार्थ के कणों और प्रतिक्रिया के उत्पाद के कणों के अवयवानुपात ज्ञात हों तो किसी भी प्रतिक्रिया को रासायनिक समीकरणों में व्यक्त किया जा सकता है। क्रिया का समीकरण लिखने के बाद उसके दक्षिण व वाम पक्षों में परमाणुओं की सँख्या समान की जाती है। लेकिन इसमें पदार्थों के सूत्रों को नहीं बदला जाता। मूल पदार्थो व प्रतिक्रिया के उत्पादों के सूत्रों के पूर्व लिखे हुए गुणाँकों के सही चुनाव के द्वारा ही पूर्ण समानीकरण किया जा सकता है। कभी-कभी प्रतिक्रिया के पूर्ण समीकरण के स्थान पर उसके आरेख का प्रयोग किया जाता है, अर्थात प्रतिक्रिया में भाग लेने वाले तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त होने वाले पदार्थों को केवल सूत्रों द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है। इस स्थिति में बराबर के प्रतीक की जगह तीर का चिन्ह लगाया जाता है। उदाहरणतया, हाइड्रोजन सल्फाइड के जलने की प्रतिक्रिया का आरेख इस प्रकार होगा :

$$H_2S + O_2 \rightarrow H_2O + SO_2$$

रासायनिक समीकरणों का प्रयोग प्रतिक्रियाओं से सम्बंधित अनेक परिकलनों के लिये किया जाता हैं। यह याद दिलाना आवश्यक है कि रासायनिक प्रतिक्रिया के समीकरण में प्रत्येक सूत्र तदनुरूप पदार्थ का एक मोल व्यक्त करता है। इसीलिये प्रतिक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों के मोल द्रव्यमान और समीकरणों में उनके गुणाँक ज्ञात होने पर प्रतिक्रिया में भाग लेने वाले व उसके फलस्वरूप प्राप्त होने वाले पदार्थों के परस्पर साँख्यिक अनुपात मालूम किये जा सकते हैं। जैसे, समीकरण

$$2NaOH + H_2SO_4 = Na_2SO_5 + 2H_2O$$

से स्पष्ट है कि सोडियम हाइड्रोक्साइड के दो मोल सल्फ्यूरिक अम्ल के एक मोल के

साथ प्रतिक्रिया करते हैं और सोडियम सल्फेट का एक मोल और पानी के दो मोल बनाते हैं। प्रतिक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों के मोल द्रव्यमान हैं :

$M_{NaOH} = 40$ ग्रा०/मोल ; $M_{H_2SO_2} = 98$ ग्रा०/मोल ;

$M_{Na_2SO_4} = 142$ ग्रा०/मोल ; $M_{H_2O} = 18$ ग्रा०/मोल

अतः ऊपर दी गई प्रतिक्रिया के समीकरण को इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है : 80 ग्रा० सोडियम हाइड्रोक्साइड 98 ग्रा० सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ प्रतिक्रिया करके 142 ग्रा० सोडियम सल्फ़ेट व 36 ग्रा०* पानी बनाते है।

यदि प्रतिक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थ गैसीय अवस्था में हों तो प्रतिक्रिया का समीकरण इन गैसों के आयतनों का पारस्परिक अनुपात व्यक्त करता है। उदाहरण : एक ग्रा० ऐथिल ऐलकोहॉल C_2H_5OH को जलाने के लिये सामान्य ताप व दाब पर कितने ली० ऑक्सीजन की आवश्यकता होगी ? ऐथिल ऐलकोहॉल का अणु द्रव्यमान $12 \times 2 + 1 \times 5 + 16 + 1 = 46$ द्र० प० मा० है। अतः ऐथिल ऐलकोहॉल का मोल द्रव्यमान 46 ग्रा०/मोल हुआ। ऐलकोहॉल के जलने की अभिक्रिया के समीकरण के अनुसार

$$C_2H_5OH + 3O_2 = 2CO_2 + 3H_2O$$

ऐलकोहॉल का एक मोल जलाने के लिये ऑक्सीजन के तीन मोल की आवश्यकता है। अन्य शब्दों में, 46 ग्रा० ऐलकोहॉल को जलाने के लिये $22.4 \times 3 = 67.2$ ली० ऑक्सीजन की आवश्यकता है। या एक ग्रा० ऐथिल ऐलकोहॉल को जलाने के लिये $\frac{67.2 \times 1}{46} = 1 \cdot 46$ ली० ऑक्सीजन की सामान्य ताप व दाब पर आवश्यकता है।

*अभिक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों की मात्रा को न केवल ग्रा० में, बल्कि अन्य मात्रकों में भी लिखा जा सकता है, जैसे कि० ग्रा०, टन इत्यादि। इससे उनके सांख्यिक अनुपात पर कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा।

अध्याय II

द० ई० मेन्डेलीफ का आवर्त-नियम.

परमाण्वीय-आण्विक सिद्धांत की स्थापना के पश्चात् रसायन में एक और महत्त्वपूर्ण खोज हुई—आवर्त-नियम की खोज। महान् रूसी वैज्ञानिक द० इ० मेन्डेलीफ ने सन् 1869 में यह खोज करके रसायन के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ किया और आने वाले कई दशकों के लिये रसायन के विकास की रूप-रेखा बना दी। आवर्त नियम पर आधारित रासायनिक तत्त्वों के वर्गीकरण ने जिसको मेन्डेलीफ ने आवर्त प्रणाली के रूप में प्रस्तुत किया, रासायनिक तत्त्वों के गुणों को समझने में व पदार्थ के संरचना सिद्धांत के विकास में बहुत बड़ी भूमिका निभायी। मेन्डेलीफ से पूर्व भी रासायनिक तत्त्वों की प्रणाली बनाने के कई प्रयत्न किये गये थे। लेकिन उन सब का ध्येय केवल वर्गीकरण तक ही सीमित रहा और आगे अलग-अलग तत्त्वों को उनके रासायनिक गुणों में समानता के आधार पर अलग-अलग ग्रुप में डालने की कोशिश नहीं की गई। इस प्रकार प्रत्येक तत्त्व को एक पृथक तत्त्व के रूप में देखा जाता था, अन्य तत्त्वों के साथ उसके संबंधों की उपेक्षा की जाती थी।

16. **मेन्डेलीफ का आवर्त नियम**. अपने समकालिनों की अपेक्षा मेन्डेलीफ को इस बात का दृढ़ विश्वास था कि सभी रासायनिक तत्त्वों के बीच नियमित सम्बन्ध होने चाहिये, जो उनको एक प्रणाली में बाँध सके। इस बात पर विचार करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि तत्त्वों की प्रणाली का आधार उनका आनुपातिक परमाण्वीय द्रव्यमान होना चाहिये।

वस्तुत:, जब मेन्डेलीफ ने सब तत्वों को उनके परमाण्वीय द्रव्यमान के वर्धमान क्रम में रखा तो यह प्रतीत हुआ कि रासायनिक रूप से समान तत्त्व एक ठीक अंतराल के बाद आते है और तत्त्वों के इस क्रम में उनके कई गुणों की नियत अंतराल पर पुनरावृति होती है। इस विशेष खोज का नाम आवर्त नियम रखा गया और मेन्डेलीफ ने इस नियम को निम्न शब्दों में व्यक्त किया: सरल पदार्थों के गुण और उसी

प्रकार तत्वों के यौगिकों के गुण व रूप तत्वों के परमाण्वीय भार पर आवर्त रूप से आधारित है।*

मेन्डेलीफ के इस नियम को अच्छी तरह समझने के लिये, आइये, पहले 20 तत्त्वों को उनके परमाण्वीय द्रव्यमानों के वर्धमान क्रम में लिखें। इसमें केवल पोटै-

H हाइड्रोजन 1 H_2O	He हीलियम 4 —	Li लीथियम 6.9 Li_2O	Be बेरिलियम 9 BeO	B बोरान 10.8 B_2O_3	C कार्बन 12 CO_2	N नाइट्रोजन 14 N_2O_5
O आक्सीजन 16 —	F फ्लुओरीन 19 F_2O	Ne निओन 20.2 —	Na सोडियम 23 Na_2O	Mg मैगनीशियम 24.3 MgO	Al ऐलुमिनियम 27 Al_2O_3	Si सिलिकन 28.1 SiO_2
P फास्फोरस 31 P_2O_5	S गन्धक 32.1 SO_3	Cl क्लोरीन 35.5 Cl_2O_7	Ar आर्गन 39.9 --	K पोटैशियम 39.1 K_2O	Ca कैल्सियम 40.1 CaO	

शियम अपवाद है। नियमानुसार इसे आर्गान के पहले होना चाहिये था। लेकिन आगे यह स्पष्ट हो जाएगा कि यह अपवाद परमाण्वीय संरचना-सिद्धांत के अनुसार पूर्ण रूप से उचित है। हाइड्रोजन और हीलियम के बाद, आइये, देखें, कि शेष तत्त्वों के गुणों में परिवर्तनों का क्या क्रम है: लीथियम – एक संयोजकता वाला धातु है जो बहुत ही तीव्रता से पानी का अपघटन करके क्षार बनाता है। लीथियम के बाद आता है बेरिलियम – एक और धातु, लेकिन द्विसंयोजक, जो सामान्य ताप पर पानी का धीरे-धीरे अपघटन करता है। बेरिलियम के बाद बोरॉन आता है – त्रिसंयोजक तत्व, जिसमें अधात्विक गुण बहुत ही क्षीणता के साथ व्यक्त हैं, लेकिन कुछ धात्विक गुण विद्यमान हैं। अगला तत्त्व है – कार्बन – चतुर्संयोजक अधातु। उसके बाद: नाइट्रोजन – तत्त्व, जिसमें अधातु के गुण पूर्णतया स्पष्ट हैं; ऑक्सीजन – सामान्य अधातु, और

---

*यह याद रहे कि पहले "आनुपातिक परमाण्वीय द्रव्यमान" के स्थान पर "परमाण्वीय भार" का प्रयोग किया जाता था।

अंत में सातवाँ तत्त्व–फ्लुओरीन–आता है, जो अधातु में सबसे अधिक क्रियाशील है और "हैलोजेन" ग्रुप का है। इस प्रकार, धात्विक गुण जो लीथियम में प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत हैं, धीरे-धीरे एक तत्त्व से दूसरे में कम होते जाते हैं और अधात्विक गुणों को स्थान दे देते हैं, जो सबसे अधिक स्पष्टता से फ्लुओरीन में हैं। और परमाण्वीय द्रव्यमान के बढ़ने के आधार पर तत्त्वों की ऑक्सीजन के प्रति संयोजकता लीथियम से शुरू होकर प्रत्येक तत्त्व के लिये एक मात्रक से बढ़ जाती है। (यहाँ अपवाद केवल फ्लुओरीन है जिसकी संयोजकता एक के बराबर है। इसका कारण है फ्लुओरीन के परमाणु की विशेष संरचना, जिसका अध्ययन आने वाले अध्यायों में किया गया है।)

यदि गुणों में परिवर्तन आगे भी इसी क्रम में चलता रहता तो फ्लुओरीन के बाद एक ऐसा तत्त्व आता जिसमें अधात्विक गुण और भी अधिक प्रत्यक्ष होते। वस्तुतः फ्लुओरीन के बाद का तत्त्व–निऑन है, जो एक उत्कृष्ट गैस है, जो अन्य तत्त्वों के साथ संयुक्त नहीं होती तथा जिसमें न तो धात्विक गुण हैं, और न ही अधात्विक गुण हैं।

निऑन के बाद सोडियम आता है–एक संयोजकता वाला धातु, जो लीथियम से मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है, मानों इसके साथ हम अभी-अभी देखे गये पिछले क्रम पर वापिस आ गए हैं। और वस्तुत: सोडियम के बाद मैगनीशियम आता है, जो बेरिलियम से मिलता जुलता है, इसके बाद ऐलुमिनियम आता है, जो हालाँकि धातु है और अधातु नहीं है, बोरॉन की तरह :मिलता-जुलता है। वह त्रिसंयोजक है और कुछ अधात्विक गुण भी रखता है। इसके बाद सिलिकन आता है, जो चतु: संयोजक आधातु है व अनेक प्रकार से कार्बन से मिलता-जुलता है; पंचसंयोजक फास्फ़ोरस, जो रासायनिक गुणों के आधार पर नाइट्रोजन से मिलता-जुलता है; गन्धक तत्त्व, जिसमें अधात्विक गुण बहुत ही प्रत्यक्ष है: क्लोरीन बहुत ही क्रियाशील अधातु और फ्लुओरीन की तरह "हैलोजेन" ग्रुप का है और अंत में उत्कृष्ट गैस-आर्गान आता है। यदि शेष सभी तत्त्वों के गुणों में परिवर्तन का अध्ययन किया जाए, तो मालूम होगा कि वे इसी क्रम में होते है; जिसमें कि ये 16 तत्त्व (यदि हाइड्रोजन व हीलियम को छोड़ दिया जाए) आर्गान के बाद फिर एकसंयोजकता वाला क्षारीय धातु आता है–पोटैशियम, उसके बाद-द्विसंयोजक धातु-कैल्सियम जो मैगनीशियम से मिलता है, इत्यादि।

इस प्रकार, रासायनिक तत्त्वों के परमाण्वीय द्रव्यमान के बढ़ने के आधार पर उनके गुणों के परिवर्तन एक ही दिशा में नहीं होते हैं, बल्कि आवर्त रूप से दुहराये जाते हैं। तत्त्वों की एक निश्चित सँख्या के बाद ऐसा लगता हैं, जैसे फिर आरम्भिक गुणों पर लौट आए हों, और उसके बाद पुनः पहले तत्त्वों के गुणों के परिवर्तनों की तरह उसी क्रम में, लेकिन कुछ परिमाणवाचक व गुणात्मक रूप से, परिवर्तन शुरू हो जाते हैं।

17. **तत्वों की आवर्त-प्रणाली**. मेन्डेलीफ ने तत्त्वों की उन श्रेणियों को आवर्त नाम दिया, जिनमें गुण क्रमबद्धता के साथ परिवर्तित होते है, जैसे कि लीथियम से निऑन तक या सोडियम से आर्गान तक की आठ तत्त्वों की श्रेणी। इन दो आवर्तो को ऊपर नीचे इस प्रकार लिखने से कि लीथियम के नीचे सोडियम आए और निऑन के नीचे आर्गन, तत्त्वों के विस्तारण का निम्न रूप प्राप्त होगा :

Li	Be	B	C	N	O	F	Ne
Na	Mg	Al	Si	P	S	Cl	Ar

इस प्रकार, ऊध्र्वाधर स्तम्भों में वे तत्त्व हैं जिनके गुण व संयोजकता एक समान हैं, जैसे लीथियम और सोडियम, बेरिलियम और मैगनीशियम, इत्यादि।

सब तत्त्वों को आवर्तो में बाँट कर और एक आवर्तक को दूसरे के नीचे इस प्रकार रख कर ताकि समान गुणों वाले व समान यौगिकों को बनाने वाले तत्त्व एक दूसरे के नीचे आएँ, मेन्डेलीफ ने एक तालिका बनाई, जिसका नाम रखा : ग्रुपों व श्रेणियों के आधार पर तत्त्वों की आवर्त्त प्रणाली। यह तालिका आधुनिक रूप में व मेन्डेलीफ के बाद आविष्कृत नए तत्त्वों सहित पुस्तक के आरम्भ में दी गई है। यह आठ ऊध्र्वाधर स्तम्भों और दस क्षैतिज श्रेणयों से बनी हैं, जिन्हें ग्रुप भी कहा जाता है; और परस्पर समान तत्त्व इसमेंएक दूसरे के नीचे हैं।

आइये, पहले क्षैतिज श्रेणियों में तत्त्वों के विस्तारण पर ध्यान दें। पहली श्रेणी में केवल दो तत्त्व है:—हाइड्रोजन व हीलियम। ये दो तत्त्व मिलकर पहला आवर्त्तक बनाते हैं। दूसरी व तीसरी श्रेणियाँ ऊपर देखे गये तत्त्वों से बनी हैं। और आठ-आठ तत्त्वों के दो आवर्त बनाती हैं। दोनों आवर्तक क्षारीय धातुओं से शुरू होते हैं और उत्कृष्ट गैसां पर समाप्त होते हैं। ये तीनों आवर्त लघु आवर्त्त कहलाते हैं।

चौथी श्रेणी इसी प्रकार क्षारीय धातु—पोटैशियम—से शुरू होती है। पिछली दो श्रेणियों में हुये गुणों के परिवर्तनों के आधार पर यह आशा की जा सकती थी कि इस श्रेणी में उसी क्रम में परियर्तन होगा व श्रेणी में सातवाँ तत्त्व पुनः हैलोजेन होगा और आठवाँ—उत्कृष्ट गैस होगी। लेकिन ऐसा देखने में नहीं आता। सातवें स्थान पर हैलोजेन की जगह मैंगनीज धातु है, जो क्षारकीय तथा अम्लीय आक्साइड बनाता है, जिनमें से केवल उच्च आक्साइड Mn_2O_7 ही क्लोरीन की तदनुरूपी आक्साइड (Cl_2O_7) से मिलती है। उसी श्रेणी मे मैंगनीज के बाद तीन अन्य धातु है—लोह, कोबाल्ट एवं निकैल, जो आपस मे बहुत मिलते—जुलते हैं। और अगली श्रेणी—पाँचवीं श्रेणी—जो ताम्र से शुरू होती है, उत्कृष्ट गैस क्रिप्टॉन पर समाप्त होती है। छठी श्रेणी पुनः क्षारीय धातु रूबिडियम से आरम्भ होती है। इस प्रकार, आर्गन के बाद आने वाले तत्त्वों के गुणों की लगभग पूर्ण पुनरावृत्ति अठारह तत्त्वों के बाद होती है, न कि आठ के बाद,

ाग कि दूसरी व तीसरी श्रेणियों में होती है। ये अठारह तत्त्व चौथी श्रेणी बनाते ! जिसे दो श्रेणियों से बना दीर्घ आवर्त्त कहते हैं।

पाँचवा दीर्घ आवर्त्त छठी और सातवीं क्षारकीय श्रेणियों से मिलकर बना है। यह आवर्त्त धातु रूबिडियम से आरम्भ होकर उत्कृष्ट गैस – जीनॉन – पर समाप्त होता है।

आठवीं श्रेणी में लैन्थेनम के बाद लैन्थेनाइड नाम के अंतर्गत चौदह तत्त्व आते हैं, जो लैन्थेनम के साथ और परस्पर बहुत ही अधिक समानता रखते हैं। इन तत्त्वो के परमाणुओं की विशेष संरचना के कारण बनी इस समानता को ध्यान में रखते हुये (§ 31) साधारणतया, लैन्थेनाइडों को सामान्य तालिका के बाहर रखा जाता है और तालिका में लैन्थेनम के कोष्ठक में केवल उनका स्थान निर्धारित कर दिया जाता है।

चूंकि जीनॉन के बाद अगली उत्कृष्ट गैस रेडॉन केवल नवीं श्रेणी के अंत में आती है, तो आठवीं एवं नवीं श्रेणियाँ भी एक दीर्घ आवर्त बनाती है – छठा आवर्त्त जिसमें 32 तत्त्व हैं। दूसरे एवं तीसरे आवर्त्तों की तरह दीर्घ आवर्त्तों में तत्त्वों के सभी गुणों का क्रमबद्ध परिवर्तन नहीं होता। यहाँ स्वयं आवर्त्तों में भी तत्त्वों के गुणों के परिवर्त्तनों में एक प्रकार का आवर्त्तन पाया जाता है। अतः आरम्भ में एक तत्त्व से दूसरे तत्व पर आते समय ऑक्सीजन के प्रति उच्च संयोजकता एकरूपता से बढ़ती है, लेकिन बाद में आवर्त्त के मध्य में, जहाँ वह अधिकतम होने के पश्चात दो तक नीचे आ जाती हैं फिर पुनः सात तक आवर्त्त के अंत में बढ़नी शुरू हो जाती है। इसी कारण दीर्घ आवर्त्त दो भागों में बाँटे होते हैं (प्रत्येक की दो श्रेणियाँ होती हैं)।

दसवी श्रेणी में, जो सातवां आवर्त्त (अभी तक अपूर्ण) बनाती है, उन्नीस तत्व हैं। इनमें पहला तथा आखिरी तेरह तत्व अपेक्षाकृत हाल ही में कृत्रिम रूप से प्राप्त किये गये हैं। एक्टिनियम के बाद चौदह तत्व अपनी परमाण्वीय संरचना के आधार पर एक्टिनियम के साथ मिलते-जुलते हैं। इसी लिये उन्हें, लैन्थेनाइड की तरह, ऐक्टिनाइड का नाम देकर सामान्य तालिका के बाहर रखा गया है।

तालिका के ऊर्ध्वाधर स्तम्भों या ग्रुपों में समान गुण वाले तत्व हैं। इसीलिये प्रत्येक ऊर्ध्वाधर ग्रुप तत्त्वों का एक प्रकार का प्राकृतिक परिवार है। तालिका में ऐसे कुल आठ ग्रुप हैं। ग्रुपों के नम्बर तालिका के ऊपर रोमन सँख्या में लिखे गये हैं।

ये तत्व ग्रुपों में आक्साइड बनाते हैं और पहले ग्रुप में इनका सूत्र हैं : R_2O दूसरे में – RO, तीसरे में – R_2O_3 इत्यादि। इस प्रकार प्रत्येक ग्रुप में तत्व की ऑक्सीजन के प्रति अधिकतम संयोजकता कुछ अपवादों के साथ ग्रुप के नम्बर से मिलती है।

एक ही ग्रुप के तत्त्वों की परस्पर तुलना से स्पष्ट है कि पाँचवीं श्रेणी (चौथा आवर्त्त) से प्रत्येक तत्व की अधिकतम समानता उस के एकदम ऊपर या नीचे स्थित तत्त्वों के साथ न होकर उससे एक कोष्ठक छोड़कर स्थित तत्त्वों के साथ है। उदाहरणतया, सातवें ग्रुप में ब्रोमाइड का क्लोरीन या आयोडिन के साथ कोई सीधा सम्पर्क नहीं है, क्लोरीन से मैंगनीज द्वारा एवं आयोडिन से टेक्नीशियम द्वारा पृथक किया

हुआ है; छठें ग्रुप में स्थित समान तत्त्व सिलीनियम व टैल्यूरियम मॉलिब्डेनम द्वारा पृथक किये गये हैं, जिसके साथ उनकी एकदम प्रत्यक्ष असमानता है; प्रथम ग्रुप में स्थित रूबिडियम आठवीं श्रेणी में स्थित सीज़ियम के साथ बहुत समानता रखता है, और स्वयं के एकदम नीचे स्थित रजत के साथ बिल्कुल नहीं, इत्यादि।

इसका कारण चौथी श्रेणी से शुरू होने वाले दीर्घ आवर्त्त हैं, जो एक दूसरे के ऊपर स्थित दो श्रेणियों से मिल कर बने हैं। चूंकि एक आवर्त्त में धात्विक गुणों के क्षीण होने की दिशा बायीं ओर से दायीं ओर है, तो स्पष्ट है कि प्रत्येक दीर्घ आवर्त में नीचे की (विषम) श्रेणी में स्थित तत्त्वों की अपेक्षा ऊपर की (सम) श्रेणी के तत्व में वे अधिक सस्पष्ट हैं। श्रेणियों में भेद व्यक्त करने के लिये दीर्घ आवर्त्तों की पहली श्रेणियों में तत्त्वों को कोष्ठक के बायें भाग में रखा गया है और दूसरी श्रेणियों में—दायी ओर।

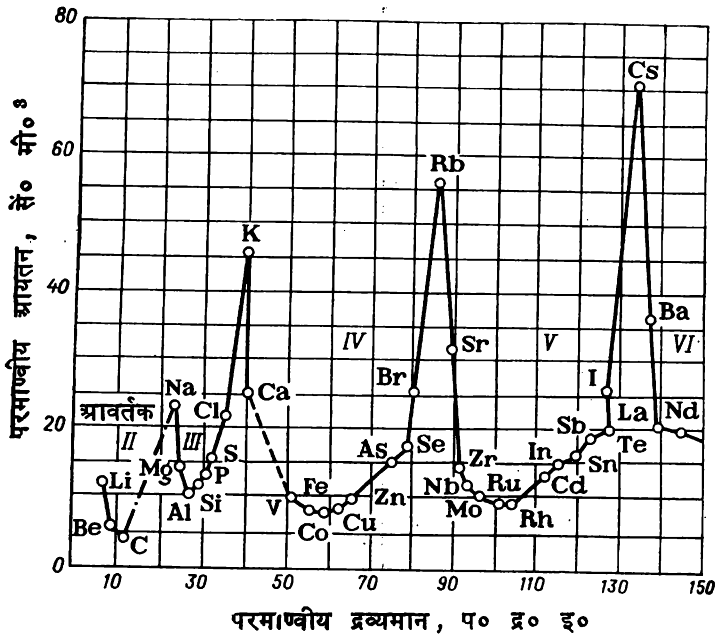
इस प्रकार, चौथे आवर्त्त से आवर्त्त-प्रणाली के प्रत्येक ग्रुप को दो उपसमुदायों में बाँटा जा सकता है: "सम"—जिसमें ऊपर की श्रेणियों के तत्त्व हैं, और "विषम"—जिसमें नीचे की श्रेणियों के तत्त्व हैं। जहाँ तक लघु आवर्त्तों के तत्वों का प्रश्न है, जिन्हें मेन्डेलीफ ने "विशिष्ट" कहा है, तो पहले व दूसरे ग्रुप में ये अपने गुणों के आधार पर सम श्रेणियों के तत्वों के करीब हैं तथा बायीं ओर लिखे गये हैं; और अन्यों में—विषम श्रेणियों के तत्त्वों से मिलते हैं एवं दायीं ओर लिखे गये हैं। इस प्रकार ये विशिष्ट तत्त्व सामान्यतः सम तथा विषम श्रेणियों के समान तत्वों के साथ मिलकर एक "मुख्य" उपसमुदाय बनाते है। दूसरा उपसमुदाय "गौण" कहलाता है।

आवर्त्त प्रणाली को तैयार करते समय मेन्डेलीफ ने बढ़ते हुये परमाण्वीय द्रव्यमान के आधार तत्त्वों के विस्तारण के नियम का प्रयोग किया। लेकिन, जैसा कि तालिका से स्पष्ट है नियम टूट जाता है। जैसे कि आर्गान (परमाण्वीय द्रव्यमान 39.948 द्र० प० मा०) पोटैशियम (39.098 द्र० प० मा०) से पहले है, कोबाल्ट (58.9332 द्र० प० मा) निकैल से पहले है जिसका परमाण्वीय द्रव्यमान है 58.70 द्र० प० मा०) और टैल्यूरियम (127.60 द्र० प० मा०) आयोडिन (126.9045 द्र० प० मा०) से पहले है। यहाँ मेन्डेलीफ ने प्रणाली को भंग कर दिया। इसका कारण इन तत्त्वों के वे गुण थे जिनके अनुसार विस्तारण में उनका यही स्थान व क्रम होना चाहिये था। इस प्रकार मेन्डेलीफ ने पूर्ण रूप से परमाण्वीय द्रव्यमान को प्रणाली का आधार नहीं बनाया, बल्कि आवर्त्त प्रणाली में तत्व का स्थान निश्चित करते समय उसके पूर्ण गुणों को भी ध्यान में रखा। भविष्य की खोजों ने यह सिद्ध कर दिया कि आवर्त्त प्रणाली में मेन्डेलीफ द्वारा तत्वों का स्थान व क्रम एक दम ठीक है तथा परमाणु की संरचना के अनुकूल है (व्योरे में दे० अध्याय III)।

इस प्रकार, आवर्त प्रणाली में तत्त्वों के गुण, उनका परमाण्वीय द्रव्यमान, संयोजकता व रासायनिक गुण क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर दिशाओं में निश्चित क्रम में परिवर्तित

ाते हैं। आवर्त्त प्रणाली में तत्व का स्थान उसके गुणों के आधार पर निश्चित किया जाता है और इसी प्रकार प्रत्येक तत्व के गुण तदनुरूप स्थान के अनुसार होते हैं। अत: प्रणाली में किसी तत्व का स्थान मालूम हो तो उसके गुणों को पूर्णरूप से बताया जा सकता है।

तत्वों के रासायनिक गुण ही नहीं, बल्कि सरल पदार्थों के कई भौतिक गुण भी आवर्त्त रूप से परिवर्त्तित हो जाते हैं, यदि उन्हें परमाण्वीय द्रव्यमान के प्रकार्य के



चित्र 1. तत्व के परमाण्वीय आयतन व परमाण्वीय द्रव्यमान की पारस्परिक निर्भरता।

रूप में देखा जाए। सरल पदार्थों के भौतिक गुणों के परिवर्त्तनों की आवर्त्तता, उदाहरणतया, उनके परमाण्वीय आयतनों की तुलना में अधिक स्पष्टता से व्यक्त होती है।*

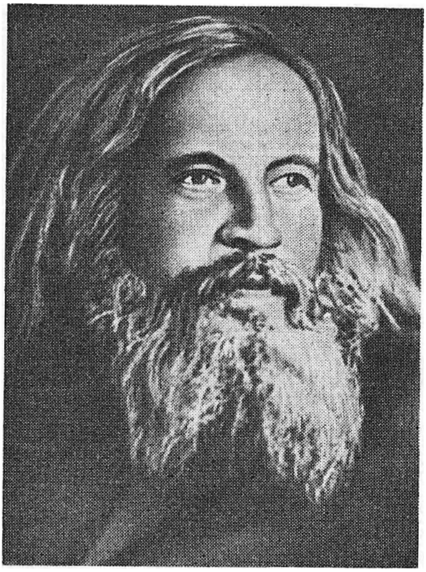
चित्र 1 में दिया गया आरेख हमें यह बतलाता है कि तत्वों का परमाण्वीय आयतन परमाण्वीय द्रव्यमान के बढ़ने से किस प्रकार परिवर्तित होता है: अधिकतम परमाण्वीय द्रव्यमान क्षारीय धातुओं के होते हैं।

---

*परमाण्वीय आयतन – वह आयतन है, जो ठोस अवस्था में सरल पदार्थ के एक मोल परमाणुओं का होता है।

इसी प्रकार सरल पदार्थों के कई अन्य भौतिक स्थिरांक (physical constants) आवर्त्त रूप से परिवर्त्तित होते हैं।

द्मीत्री ईवानोविच मेन्डेलीफ का जन्म 27 जनवरी (8 फरवरी) 1834 में तोबोल्स्क शहर में स्थानीय हाई-स्कूल के मुख्याध्यापक के परिवार में हुआ था। तोबोल्स्क हाई-स्कूल पास करने के बाद उन्होंने पीटर्सबर्ग शिक्षा संस्थान में प्रवेश लिया, और इस संस्थान से सन् 1855 में स्वर्ण-पदक के साथ शिक्षा समाप्त की।



द्मीतरी ईवानोविच मेन्डेलीफ
(1834 — 1907)

सन् 1859 में "विशिष्ट आयतन" विषय पर शोध-कार्य लिख कर एम० ए० की डिग्री प्राप्त कर, वे अनुसंधान कार्य के लिए 2 वर्ष के लिए विदेश चले गए। स्वदेश लौटने पर पहले उन्हें पीटर्सबर्ग टेक्नालाजीकल संस्थान में प्रोफेसर बना दिया गया, और फिर दो वर्ष पश्चात् पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय में आये, जहाँ उन्होंने 33 वर्ष तक अनुसंधान वं शिक्षा-शास्त्र सम्बन्धी कार्य किया।

सन् 1892 में मेन्डेलीफ को "आदर्श मात्रकों एवं भारों" के संग्रह का संग्रहाध्यक्ष बना दिया गया। यह संग्रह उन्हीं के नेतृत्व में सन् 1893 में मात्रकों व भारों के मुख्य भवन में खोला गया (यह वर्तमान समय में द० ई० मेन्डेलीफ अखिलसंघीय मापविज्ञान अनुसंधान संस्थान के नाम से है)।

सन् 1869 में, 35 वर्ष की आयु में, की गई आवर्त्त नियम की खोज व तत्त्वों की आवर्त्त प्रणाली का निर्धारण उनके अनुसंधान कार्य का श्रेष्ठतम परिणाम है। मेन्डेलीफ के अन्य शोध-कार्यों में से कुछ महत्वपूर्ण निम्न हैं: "विशिष्ट भार के आधार पर जल-विलयनों पर अनुसंधान-कार्य"; पी० एच० डी० शोर्ध-कार्य, "जल के साथ ऐल्कोहॉल का यौगिक" व "विलयनों की संगुणनों के रूप में व्याख्या"। रासायनिक या जलयोजित, विलयनवाद (chemical, or hydrated, solution theory.) के बारे में मेन्डेलीफ के मुख्य विचार आधुनिक विलयन सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण अंग हैं।

मेन्डेलीफ की पुस्तक "रासायनिकी के मूल सिद्धांत" उनका अद्वितीय शोध-कार्य है। इसमें समस्त अकार्बनिक रसायनिकी को आवर्त्त नियम की दृष्टि से सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है।

सिद्धाँतों को व्यावहारिक कार्य का रूप देते हुए, मेन्डेलीफ ने अपने जीवन में स्वदेशी उद्योगों के विकास पर काफी ध्यान दिया।

सन् 1969 में सोवियत संघ के विज्ञान-संघ एवं विश्व के अनेक देशों ने मेन्डेलीफ द्वारा आवर्त्त नियम की खोज व तत्त्वों की आवर्त्त प्रणाली के निर्धारण की सौंवीं वर्षगाँठ धूम-धाम से मनाई।

18. **आवर्त प्रणाली का महत्व.** रसायनिकी के भावी विकास पर तत्त्वों की आवर्त्त प्रणाली का काफ़ी प्रभाव पड़ा। यह न केवल रासायनिक तत्त्वों का सर्वप्रथम प्राकृतिक वर्गीकरण था, जिसने सिद्ध किया कि तत्त्व एक सुव्यवस्थित प्रणाली बनाते हैं तथा परस्पर गहरा संबन्ध रखते हैं, बल्कि भावी अनुसंधान कार्यों के लिए एक महत्वपूर्ण साधन भी था।

जब मेन्डेलीफ स्वयं द्वारा अन्वेषित आवर्त्त नियम के आधार पर आवर्त्त प्रणाली तैयार कर रहे थे, उस समय कई तत्त्व अज्ञात थे। जैसे, चौथे आवर्त्त का तत्त्व "स्कैन्डियम" ज्ञात नहीं था। परमाण्वीय द्रव्यमान के अनुसार कैल्सियम के बाद टाइटेनियम आता है, लेकिन उसे कैल्सियम के तुरंत बाद नहीं लिखा जा सकता था, क्योंकि वह फिर तीसरे आवर्त्त में आ जाता, जबकि टाइटेनियम TiO_2 उच्च ऑक्साइड बनाता है। और, इसके अलावा, अन्य गुणों के आधार पर उसे चौथे आवर्त्त में ही लिखा जाना चाहिए था। इसी कारणवश, मेन्डेलीफ ने एक कोष्ठक खाली छोड़ दिया, यानी कैल्सियम और टाइटेनियम के बीच एक खाली कोष्ठक रहने दिया। इन्हीं कारणों से चौथे आवर्त्त में जिंक व आर्सेनिक के बीच दो खाली कोष्ठकों को छोड़ दिया गया, जिनमें अब गैलियम व जर्मेनियम तत्त्व स्थित हैं। अन्य श्रेणियों में भी खाली कोष्ठक छोड़े गए थे। मेन्डेलीफ को न केवल इस बात का दृढ़ विश्वास था कि इन खाली कोष्ठकों की पूर्त्ति करने के लिए अभी तक अज्ञात ऐसे तत्त्व अवश्य ही हैं, बल्कि उन्होंने इन अज्ञात तत्त्वों के गुणों के बारे में आवर्त्त प्रणाली में तत्त्वों के बीच उनके स्थान के आधार पर पहले से ही विचार प्रकट कर दिए थे। अज्ञात तत्त्वों में से एक को, जो कैल्सियम व टाइटेनियम के बीच रिक्त कोष्ठक में लिखा जाना था, मेन्डेलीफ ने "ऐकाबोर" का नाम दिया (क्योंकि उसके गुण बोरॉन के गुणों से मिलते हैं। दो अन्य तत्त्वों को, जिनके लिए रिक्त कोष्ठक आवर्त्त प्रणाली में जिंक व आर्सेनिक के बीच छोड़ दिए गए थे, "ऐकाऐलुमिनियम" व "एकासिलिसियम" का नाम दिया गया।

15 वर्ष पश्चात् मेन्डेलीफ के ये पूर्वकथन पूर्णतः सही सिद्ध हुए; तीनों प्रत्याशित तत्त्वों की खोज हुई; सर्वप्रथम फ्रांसीसी रसायनज्ञ लेकॉक द. ब्यूबोदराँ ने गैलियम

की खोज की, जिसमें "ऐकाऐलुमिनियम" के सभी गुण मौजूद थे, उसके बाद स्वीडन में ल० फ० नीलसन ने स्कैन्डियम की खोज की, जिसमें ऐकाबोर के सभी गुण थे, और अंत में, कुछ वर्षों के बाद जर्मनी में क० अ० विन्कलेर ने जर्मेनियम नामक तत्त्व की खोज की, जिसमें ऐकासिलिसियम के गुण विद्यमान थे।

मेन्डेलीफ की आश्चर्यजनक परिशुद्धता को परखने के लिए, आइए, सन् 1871 में ऐकासिलिसियम के गुणों के प्रति उनके पूर्वकथनों की तुलना सन् 1886 में अन्वेषित जर्मेनियम के गुणों से करें:

एकासिलिसियम के गुण	जर्मेनियम के गुण
एकासिलियम Es पिघलने वाला धातु है और अधिक गर्म करने पर वाष्पित हो जाता है।	जर्मेनियम Ge एक भूरा धातु है; 936°C पर पिघलता है और अधिक ताप पर वाष्पित हो जाता है।
Es का परमाण्वीय द्रव्यमान 72 के लगभग है।	Ge का परमाण्वीय द्रव्यमान 72.59 है।
Es का घनत्व लगभग 5.5 ग्रा०/से० मी०^3 है।	20° C पर Ge का घनत्व 5.35 ग्रा०/से० मी०^3 है।
EsO_2 का आसानी से अपचयन हो जाता है।	GeO_2 का कार्बन या हाइड्रोजन द्वारा आसानी से धातु में अपचयन हो जाता है।
EsO_2 का घनत्व ≈ 4.7 ग्रा०/से० मी०^3 होगा।	GeO_2 का घनत्व 18° C पर 4.703 ग्रा०/से० मी०^3 है।
$EsCl_4$ एक द्रव है, जो 90° C पर उबलता है; इसका घनत्व ≈ 1.9 ग्रा०/से० मी०^3 है।	$GeCl_4$ एक द्रव है, जो 83° C पर उबलता है; इसका घनत्व 18° C पर 1.88 ग्रा०/से० मी०^3 है।

गैलियम, स्कैंडियम व जर्मेनियम की खोज आवर्त्त नियम के लिए एक महान विजय थी। इसी प्रकार, कुछ तत्त्वों की संयोजकता व परमाण्वीय द्रव्यमानों को निश्चित करने में आवर्त्त प्रणाली का महत्वपूर्ण योग है। जैसे, बहुत समय तक बेरिलियम को ऐलुमिनियम का अनुरूप माना जाता था। और उसकी आक्साइड को Be_2O_3 सूत्र द्वारा लिखा जाता था। प्रतिशत संयोजन व बेरिलियम आक्साइड के अनुमानित सूत्र के आधार पर उसका परमाण्वीय द्रव्यमान 13.5 माना जाता था। लेकिन आवर्त्त प्रणाली ने सिद्ध किया कि बेरिलियम का प्रणाली में केवल एक ही स्थान है और वह स्थान मैगनीशियम के ऊपर है; अतएव, उसकी

ग्राक्साइड का सूत्र BeO_2 होना चाहिए, ग्रौर इस प्रकार उसका परमाण्वीय द्रव्यमान 9 होना चाहिए। इस निष्कर्ष का प्रमाण बेरिलियम की क्लोराइड की वाष्प के घनत्व द्वारा निर्धारित बेरिलियम के परमाण्वीय द्रव्यमान से मिला।

ठीक इसी प्रकार ग्रावर्त्त प्रणाली ने कई तत्त्वों के परमाण्वीय द्रव्यमानों को परिशुद्ध करने की प्रेरणा दी। जैसे, पहले सीज़ियम का परमाण्वीय द्रव्यमान 123.4 माना जाता था। मेन्डेलीफ ने प्रणाली में तत्त्वों का स्थान निश्चित करते हुए सिद्ध किया कि गुणों के ग्राधार पर सीज़ियम का स्थान प्रथम ग्रुप के मुख्य उपसमुदाय में रूबीडियम के नीचे होना चाहिए, ग्रौर उसका परमाण्वीय द्रव्यमान 130 होना चाहिए। ग्राधुनिक विश्लेषणों से स्पष्ट है कि सीज़ियम का परमाण्वीय द्रव्यमान 132.9054 द्र० प० मा० है।

वर्तमान समय में भी ग्रावर्त्त नियम रसायनिकी का मार्गदर्शक है। इसी के ग्राधार पर ही पिछले दशकों में कृत्रिमता से परायूरेनियम तत्त्वों (transuranium elements) का निर्माण हुग्रा, जिन्हें ग्रावर्त्त प्रणाली में यूरेनियम के बाद रखा गया हैं। इनमें एक तत्त्व का नाम तत्त्व न० 101 जो सर्वप्रथम सन् 1955 में प्राप्त किया गया, महान रूसी वैज्ञानिक मेन्डेलीफ के सम्मान में मेन्डेलीवियम रखा गया।

ग्रावर्त्त नियम की खोज व तत्वों की ग्रावर्त्त प्रणाली का निर्माण केवल रसायनिकी के लिए ही नहीं, बल्कि दर्शन-शास्त्र तथा विश्व दृष्टिकोण के लिए भी महत्व रखता है। मेन्डेलीफ ने सिद्ध किया कि रासायनिक तत्त्व एक सुव्यवस्थित प्रणाली बनाते हैं, जिसका ग्राधार प्रकृति के मुख्य नियम हैं। इस प्रणाली में प्रकृति की परिघटनाग्रों के पारस्परिक सम्बन्धों व ग्रन्त: कारणों के प्रति भौतिकवादी दर्शन-शास्त्र के विचारों की ग्रभिव्यक्ति हुई। रासायनिक तत्त्वों के गुणों एवं उनके परमाणुग्रों में पदार्थ की मात्रा के सम्बन्धों की व्याख्या करते हुए, ग्रावर्त्त नियम ने प्रकृति के विकास के सामान्य नियमों में से एक नियम—मात्रा का गुणता में रूपांतरण का नियम—को प्रतिभाशाली ढंग से सिद्ध किया।

विकास करते हुए विज्ञान ने ग्रावर्त्त प्रणाली के ग्राधार पर मेन्डेलीफ के समय की ग्रपेक्षा वर्तमान समय में पदार्थ-संरचना को बहुत ही गहराई में समझा। बीसवीं शताब्दी में प्रस्तुत किए गए परमाण्वीय संरचना के सिद्धाँत ने ग्रावर्त्त नियम व ग्रावर्त्त प्रणाली का ग्रौर ग्रधिक गूढ़ ग्रध्ययन किया। मेन्डेलीफ की निम्न भविष्यवाणी यथावत् रूप से सिद्ध हुई:

"ग्रावर्त्त नियम के नष्ट होने का कोई भी डर नहीं है, बल्कि उसका विकास ग्रवश्यमेव है।"

अध्याय III

परमाण्वीय संरचना. आवर्त्त नियम का विकास.

विज्ञान में बहुत समय तक यह धारणा बनी रही कि परमाणु अभाज्य है; यानी परमाणुओं में और अधिक छोटे प्रारम्भिक अवयव नहीं हैं। इसी प्रकार यह धारणा भी बनी रही कि परमाणुओं का रूपांतरण नहीं हो सकता, अर्थात् किसी तत्त्व के परमाणुओं का किसी भी स्थिति में किसी भी अन्य तत्त्व के परमाणुओं में रूपांतरण नहीं हो सकता।

लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में अनेक तथ्य निर्धारित किए गए, जिन्होंने परमाणुओं की जटिल संरचना एवं उनके पारस्परिक रूपांतरणों की सम्भावना को सिद्ध किया। इंग्लैंड के भौतिकविद् ज० ज० टामसन द्वारा की गई इलेक्ट्रान की खोज इन्हीं खोजों में से एक है।

इलेक्ट्रान एक मूलकण है, जिस पर प्रकृति में पाया जाना वाला न्यूनतम ऋणात्मक विद्युत् आवेश (1.602×10^{-19} कूलॉम) (negative electric charge) होता है। इलेक्ट्रान का द्रव्यमान $9.1095 \cdot 10^{-28}$ ग्रा० है, यानी हाइड्रोजन के परमाणु के द्रव्यमान से 2000 गुना कम है। यह भी सिद्ध किया गया कि इलेक्ट्रान किसी भी तत्त्व से पृथक किया जा सकता है। इस प्रकार, वे धातुओं में वैद्युत्-धारा के वाहक का कार्य करते हैं, ज्वाला में पाए जाते हैं, अनेक पदार्थों द्वारा गर्म होने पर प्रदीपन या एक्स्-विकिरण के समय इनका उत्सर्जन होता हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इलेक्ट्रान सभी तत्वों के परमाणुओं में विद्यमान हैं। लेकिन इलेक्ट्रानों का ऋणात्मक विद्युत आवेश होता है, जबकि स्वयं परमाणुओं का कोई भी विद्युत आवेश नहीं होता, अर्थात वे विद्युत के प्रति निष्प्रभावी होते हैं। अतः परमाणुओं में, इलेक्ट्रान के अलावा, धनात्मक विद्युत आवेश (positive electric charge) वाले कण भी होने चाहिए। अन्य शब्दों में, परमाणु जटिल संरचना वाले कण हैं, जो और अधिक सूक्ष्म संरचनात्मक एककों से बने हैं।

परमाणु की जटिल प्रकृति एवं उसकी संरचना को स्पष्ट करने में विघटनाभिकता (radioactivity) का बहुत बड़ा योग है।

19. **विघटनाभिकता** (radioactivity) . कुछ तत्त्वों की विकिरण करने की परिघटना को , जो पदार्थों के अन्त: प्रवेश करने की , वायु को आयनित करने की व फ़ोटोग्राफिक फ़िल्म का कृष्णकरण (blackening.) करने की क्षमता रखती है ,विघटनाभिकता कहते हैं ।*

सन् 1896 में यूरेनियम के यौगिकों में इस परिघटना का पता फ़्रांसीसी वैज्ञानिक अा० बेक्केरेल ने लगाया। उसके शीघ्र पश्चात ही मारिया क्यूरी-स्क्लोदोवस्काया ने सिद्ध किया कि थोरियम के यौगिकों में भी विघटनाभिकता विद्यमान है। सन् 1898 में अपने पति, फ्रांसीसी भौतिकविद् , प्येर क्यूरी , के साथ कार्य करते हुए यूरेनियम अयस्क में दो नए विघटनाभिक तत्त्वों की खोज की, जिनके नाम मारिया क्यूरी के सुझाव पर रखे गए: पोलोनियम (लातीनी polonia – पोलैंड) और रेडियम (लातीनी radius – किरण) । यूरेनियम और थोरियम की अपेक्षा नए तत्त्व विघटनाभिकता के अधिक शक्तिशाली साधन निकले ।



मारिया क्यूरी-स्कलोदोवस्काया
(1867 — 1934)

मारिया क्यूरी-स्क्लोदोवस्काया का जन्म 7 नवम्बर सन् 1867 में वारसावा में हुआ था। युवा अवस्था में उन्होंने क्रांतिकारी गतिविधियों में , जो उनके पिता के शिष्यों द्वारा आयोजित की जाती थी, सक्रिय भाग लिया। उनके पिता स्थानीय हाई स्कूल में गणित व भौतिकी के अध्यापक थे। पेरिस विश्वविद्यालय पास करने के बाद अपने पति के साथ मैडम क्यूरी विघटनाभिकता के अध्ययन में लीन हो गई। इस क्षेत्र में उनके प्रतिभाशाली कार्य के लिए उन्हें भौतिकविज्ञान की पी० एच० डी० उपाधि दी गई। पति की मृत्यु के पश्चात् (सन 1906 में) मैडम क्यूरी ने विघटनाभिकता पर अनुसंधान कार्य जारी रखा। सन 1910 में रेडियम धातु सर्वप्रथम उन्होंने प्राप्त किया। मैडम क्यूरी को नोबल पुरस्कार से दो बार सम्मानित किया गया (रसायनिकी व भौतिकी के क्षेत्रों में) । वे सन् 1926 से सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी की माननीय सदस्य थीं।

क्यूरी दम्पति एवं इंग्लैंड के भौतिकविद अ० रदरफोर्ड के अनुसंधानों ने यह सिद्ध किया कि विघटनाभिक विकिरण एक समान नहीं होता : चुंबकीय क्षेत्र के प्रभाव के

* विघटनाभिकता की अधिक पूर्ण परिभाषा § 35 में दी गई है।

कारण वह तीन किरण पुंजों में विभाजित हो जाता है, जिनमें से एक किरण-पुंज अपनी आरंभिक दिशा नहीं बदलता, एवं शेष दो किरण-पुंज विपरीत दिशाओं में विचलित हो जाते हैं।

वे किरणें, जो चुंबकीय क्षेत्र के प्रभाव से विचलित नहीं होती, यानी जिनमें कोई विद्युत आवेश नहीं होता, गामा किरणें कहलाई। ये विद्युत-चुंबकीय विकिरण हैं, जो एक्स-किरण से मिलती-जुलती हैं और काफ़ी बेधन क्षमता रखती हैं।

दो अन्य किरण-पुंजो का चुंबकीय क्षेत्र के प्रभाव से विचल हो जाना यह बतलाता है कि ये पुंज विद्युत आवेश वाले कणों से बने हैं। विचलनो की विपरीत दिशाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि एक पुंज में ऋणात्मक विद्युत आवेश के कण हैं (विकिरण के इस रूप का नाम बीटा-किरण रखा गया। और दूसरे पुंज में धनात्मक विद्युत् आवेश के कण हैं (इनका नाम एल्फा किरण रखा गया)। ज्ञात हुआ कि β-किरणें तेज गति वाला इलेक्ट्रान प्रवाह है। यह पुनः सिद्ध करता है कि परमाणुओं में इलेक्ट्रान होते हैं।

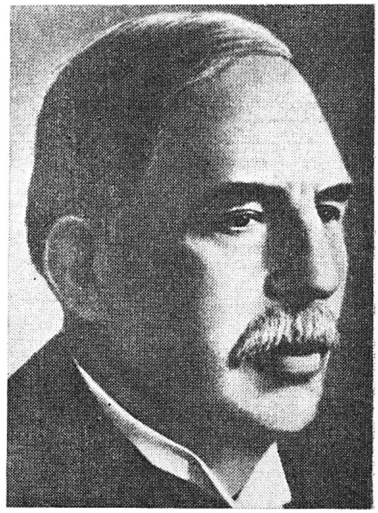
जहाँ तक धनात्मक विद्युत आवेश वाली α-किरणों का प्रश्न है, तो ज्ञात हुआ कि ये उन कणों से बनी हैं, जिनका द्रव्यमान हीलियम के परमाणु के बराबर है और आवेश का निरपेक्ष मान इलेक्ट्रान के आवेश का दुगुना है। रदरफ़ोर्ड ने प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि ये कण हीलियम के आवेशित परमाणु हैं। उन्होंने एक पतले ऐम्प्यूल में रेडियम की थोडी-सी मात्रा रख दी और फिर इस ऐम्प्यूल को एक परखनली में, जिसमें से वायु को निकाल लिया गया था, रख दिया। किरणें पतले ऐम्प्यूल को तो पार कर गई, लेकिन परखनली के मोटे शीशे को पार नहीं कर पायीं, अर्थात् α-कण परखनली और ऐम्प्यूल के बीच के अवकाश में रह गए। स्पेक्ट्रमी रसायनिक विश्लेषण द्वारा इस अवकाश में हीलियम की उपस्थिति ज्ञात हुई।

प्रयोग के परिणामों से यह सिद्ध हुआ कि विघटनाभिक विकिरण के समय रेडियम के परमाणुओं का क्षय हो जाता है और उनका अन्य तत्त्वों के परमाणुओं में रूपांतरण हो जाता है, विशेषत: हीलियम के परमाणुओं में। बाद में ज्ञात हुआ कि रेडियम के क्षय का अन्य उत्पाद रेडॉन तत्त्व है, जो स्वयं विघटनाभिक है तथा आदर्श गैसों के परिवार से है। अन्य विघटनाभिक तत्त्वों के अनुसंधान द्वारा ऐसे ही परिणाम प्राप्त हुए।

विघटनाभिकता व परमाणु की संरचना के क्षेत्र में महान वैज्ञानिकों में से एक अरनेस्ट रदरफोर्ड का जन्म 30 अगस्त सन् 1871 में नैलसन (न्यूजीलैंड) में हुआ था। वे पहले मोनरियाल विश्वविद्यालय (कनाडा) में, बाद में सन् 1907 से मैन्चेस्टर में, और फिर सन् 1919 से लन्दन के कैम्बरीज़ में भौतिकी के प्रोफेसर रहे।

सन् 1900 से रदरफोर्ड विघटनाभिकता का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने ही विघटनाभिक पदार्थों की तीन प्रकार की किरणों की खोज की (सोडी के साथ),

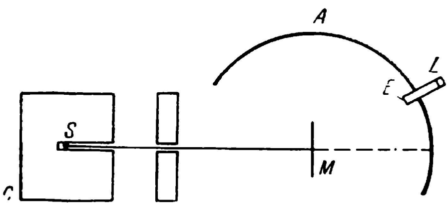
विघटनाभिक क्षय का सिद्धाँत प्रस्तुत किया ; अनेक विघटनाभिक क्रियाओं के दौरान हीलियम के निर्माण को प्रमाणित किया ; परमाणु के नाभिक की खोज की और परमाणु के नाभिकीय मॉडल का अध्ययन किया, जिसके फलस्वरूप आधुनिक परमाणु संरचना के सिद्धाँत का आधार बना। सन् 1919 में कुछ स्थायी तत्त्वों पर α-कणों द्वारा बमबारी करके उनका सर्वप्रथम कृत्रिम रूपांतरण किया। सन् 1908 में उन्हें नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वे सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के भी सदस्य बनाए गए।



अरनेस्ट रदरफोर्ड
(1871 — 1937)

20. **परमाणु का नाभिकीय मॉडल.** परमाणु की जटिल संरचना का प्रमाण विघटनाभिकता के अध्ययन से प्राप्त हो गया। अब परमाणु की आंतरिक संरचना के बारे में प्रश्न उठा।

ज० ज० टामसन द्वारा प्रस्तावित (सन 1903 में) मॉडल के अनुसार परमाणु धनात्मक आवेश, जो परमाणु के संपूर्ण आयतन पर एक समान है, और इलेक्ट्रानों, जो इस आवेश के अन्दर कम्पनिक अवस्था में हैं, से बना है। टॉमसन की परिकल्पना को जाँचने व परमाणु की आंतरिक संरचना को और अधिक स्पष्टता से समझने के लिए रदरफोर्ड ने धातुओं की महीन पन्नियों पर α-कणों का प्रकीर्णन करके अनेक प्रयोग किए। ऐसे ही एक प्रयोग का आरेख चित्र 2 में दिया गया है। α-विकिरण के स्रोत “S” को सीसे के बक्स “C” में, जिसमें एक नालिका बनाई गई है ताकि α-विकिरण के किरण-पुंज की एक निश्चित दिशा हो, रखा गया है। α-कण जिंक सल्फाईड की परत चढ़े स्क्रीन “E” पर टकराने से स्क्रीन को दीप्त कर देते थे। आवर्धक लेंस “L” द्वारा यह न केवल देखा जा सकता था, बल्कि अलग-अलग चमक को, जो स्क्रीन पर प्रत्येक α-कण के टकराने से होती थी, गिना भी जा सकता था। विकिरण स्रोत व स्क्रीन के बीच एक महीन धात्विक पन्नी “M” रखी गई।



चित्र 2. α-कणों के प्रकीर्णन के प्रयोग का आरेख।

स्क्रीन पर होने वाली दीप्ति के आधार पर α-कणों के प्रकीर्णन के बारे में निष्कर्ष निकाला जा सकता था, अर्थात धातु में से गुजरने की क्रिया के दौरान उनकी आरंभिक दिशा में विक्षेपण (deflection) होता है या नहीं, यह जाना जा सकता था।

ज्ञात हुआ कि अधिकांश α-कण अपनी दिशा बदले बगैर पन्नी में से गुजर गए, हालांकि धात्विक पन्नी की मोटाई कई सौ हजार परमाण्वीय व्यास के बराबर थी। α-कणों का कुछ भाग छोटे कोण पर विक्षेपित हुआ। और कभी-कभी तो α-कण अपनी दिशा एक दम बदल देते थे यहाँ तक कि विपरीत दिशा में भी लौटने लगते थे, जैसे कि रास्ते में कोई बड़ी रूकावट आ गई हो। इस प्रकार के α-कणों के प्रचंड विक्षेपण आवर्धक लेंस सहित स्क्रीन को चाप "D" पर स्थानान्तरित करने से देखें जा सकते थे। इन प्रयोगों के परिणाम से स्पष्ट है कि धातु के परमाणु द्वारा घेरे हुए अधिकांश आकाश में भारी कण नहीं हैं–वहाँ केवल इलेक्ट्रान ही हैं। ज्ञात ही है कि इलेक्ट्रान का द्रव्यमान α-कण के द्रव्यमान से लगभग 7500 गुणा कम है, अर्थात इलेक्ट्रान द्वारा टकराने से α-कणों की दिशा पर व्यावहारिक रूप से कोई फ़र्क नहीं पड़ता। प्रचंड विक्षेपण और α-कणों के लौटने का अर्थ है परमाणु में एक ऐसे भारी नाभिक की उपस्थिति, जिसमें परमाणु के संपूर्ण द्रव्यमान का अधिकांश भाग संकेन्द्रित है। इस नाभिक का आयतन बहुत ही कम है, क्योंकि α-कण इससे बहुत ही कम बार टकराता है। और इसका (नाभिक का) आवेश भी धनात्मक होना चाहिए, जिसके कारण धनाविष्ट α-कण वापिस लौट जाते थे।

इन विचारों के आधार पर सन् 1971 में रदरफोर्ड ने परमाणु की संरचना का निम्न मॉडल प्रस्तुत किया, जिसका नाम रखा गया–परमाणु का नाभिकीय मॉडल। परमाणु धनाविष्ट नाभिक, जिसमें परमाणु के द्रव्यमान का अधिकांश भाग सकेंद्रित है, और उसकी परिक्रमा कर रहे इलेक्ट्रानों से बना है। नाभिक का धन आवेश इलेक्ट्रानों के कुल ऋण आवेश द्वारा निष्प्रभावी हो जाता है, अतः स्वयं परमाणु पूर्ण रूप से विद्युत के प्रति उदासीन है। इलेक्ट्रानों की परिक्रमा के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला अपकेन्द्र बल इलेक्ट्रानों के विपरीत आवेशित नाभिक की ओर आकर्षण के स्थिर वैद्युत बल द्वारा संतुलित हो जाता है। परमाणु के पूर्ण रूप के मापों की तुलना में नाभिक बहुत छोटे होते हैं: परमाणु का व्यास 10^{-8} से० मी. के लगभग होता है, जबकि नाभिक का व्यास – 10^{-13} 10^{-12} से० मी० तक के लगभग होता है।

परमाणु की नाभिक का आवेश जितना अधिक होगा, उतने ही अधिक बल से α-कण उससे प्रतिकर्षित होगा, और इसके कारण α-कणों का धातु में प्रवेश करते समय उनकी आरंभिक दिशा से उनके प्रचंड विक्षेपण होने की स्थितियाँ उतनी ही अधिक उत्पन्न होंगी। इस प्रकार α-कणों के प्रकीर्णन के प्रयोग न केवल परमाणु के नाभिक की उपस्थिति को ज्ञात करना सम्भव बनाते हैं, बल्कि उसका आवेश भी निश्चित करने में मदद देते हैं। रदरफोर्ड के प्रयोगों से पहले ही यह निष्कर्ष निकलता है कि नाभिक

का आवेश (इलेक्ट्रान के आवेश के मात्रक में व्यक्त किया गया) साँख्यिक रूप से आवर्त्त प्रणाली में तत्त्व की क्रम सँख्या के बराबर होता है। इस का प्रमाण ग० मोज़ली ने सन् 1913 में तत्त्व के ऐक्स किरण स्पेक्ट्रम के निश्चित रेखाओं के तरंग-दैर्ध्यों और तत्त्व की क्रम सँख्या के बीच सरल संबन्ध निर्धारित करके और द० चाड-विक ने बहुत ही परिशुद्धता से सन् 1920 में कई तत्त्वों के परमाणुओं के नाभिकों के आवेशों को α-कणों के प्रकीर्णन द्वारा निश्चित किया।

आवर्त्त प्रणाली में तत्त्व की क्रम सँख्या का भौतिक अर्थ निर्धारित हुआ: क्रम सँख्या तत्त्व का सबसे महत्वपूर्ण स्थिरांक हुआ, जो उस तत्त्व के परमाणु के नाभिक का धन आवेश अभिव्यक्त करता है। परमाणु का विद्युत के प्रति निष्प्रभावी होने के कारण यह निष्कर्ष निकलता है कि नाभिक की परिक्रमा कर रहे इलेक्ट्रानों की सँख्या भी तत्त्व की क्रम सँख्या के बराबर होती है।

इस खोज ने आवर्त्त प्रणाली में तत्त्वों के विस्तारण का एक नया आधार प्रस्तुत किया। इसके साथ ही इस नई खोज ने मेन्डेलीफ की आवर्त्त प्रणाली के बारे में प्रतीयमान असंगति को दूर कर दिया-जैसे कि, अधिक परमाण्वीय द्रव्यमान वाले कुछ तत्त्वों का कम परमाण्वीय द्रव्यमान वाले तत्त्वों से पहले लिखा जाना (टैल्यूरियम और आयोडिन, ऑर्गान व पोटैशियम, कोबाल्ट व निकैल)। ज्ञात हुआ कि यहाँ असगंति नहीं है, क्योंकि प्रणाली में तत्त्व का स्थान उसके परमाणु के नाभिक के आवेश द्वारा निर्धारित होता है। प्रयोग से पता चला कि टेल्यूरियम के नाभिक का आवेश 52 है, और आयोडिन के परमाणु का – 53; यही कारण है कि अधिक परमाण्वीय द्रव्यमान होते हुए भी टैल्यूरियम आयोडिन से पहले आना चाहिए। इसी प्रकार, ऑर्गान व पोटैशियम, निकैल व कोबाल्ट के परमाणुओं के आवेश आवर्त्त प्रणाली में उनके स्थानों को उचित सिद्ध करते हैं।

अत: परमाणु के नाभिक का आवेश वह मुख्य मात्रा है, जिसपर तत्त्व के गुण और आवर्त्त प्रणाली में उसके स्थान का निश्चित होना आधारित है। इसीलिए वर्तमान समय में मेन्डेलीफ के आवर्त्त नियम को पुन: निम्न रूप में लिखना चाहिए: तत्त्वों के गुण और उन से निर्मित सरल व मिश्रित पदार्थ आवर्त रूप से तत्त्वों के परमाणुओं के नाभिकों के आवेशों पर निर्भर करते हैं।

तत्त्वों के परमाणुओं के नाभिकों के आवेशों के आधार पर तत्त्वों की क्रम सँख्या के निर्धारण ने आवर्त्त प्रणाली में हाइड्रोजन और यूरेनियम, जिनकी क्रमश: क्रम सँख्या 1 और 92 है, के बीच सारे स्थानों की कुल सँख्या को निश्चित करने में मदद दी। उस समय यूरेनियम को आवर्त प्रणाली का अंतिम सदस्य माना जाता था। जब परमाणु संरचना का सिद्धाँत प्रस्तुत किया गया, उस समय 43, 61, 72, 75, 85 व 87 स्थान रिक्त थे। यह उस समय तक अज्ञात तत्त्वों की विद्यमानता की संभावना

का प्रमाण था। और वस्तुत: मन् 1922 में हैफ़नियम तत्त्व की खोज हुई, जिसने 72 वाँ स्थान ग्रहण किया; उसके पश्चात् मन 1925 में रीनियम की खोज हुई जिसने 75 वाँ सथान लिया। शेष चार स्थानों को ग्रहण करने वाले तत्त्व विघटना-भिक तत्त्व निकले और वे प्रकृति में नहीं होते। लेकिन उन्हें कृत्रिमता से प्राप्त करने में सफलता मिल गई। नए तत्त्वों के नाम हैं: टेक्नीशियम (क्रम सँख्या 43), प्रोमिथियम (61) ऐस्टैटीन (85) और फ्रेंसियम (87)। वर्तमान समय में आवर्त्त प्रणाली में हाईड्रोजन व यूरेनियम के बीच सभी कोष्ठक तत्त्वों से पूर्ण हैं। लेकिन स्वयं आवर्त्त प्रणाली अपूर्ण है; इसका प्रमाण है—परायूरेनियम तत्त्वों की खोज (विवरण में दे० §36)

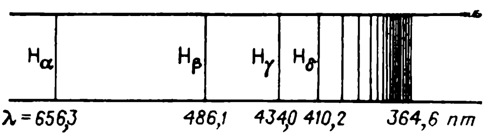
21. **परमाणु-स्पेक्ट्रम.** रदरफ़र्ड द्वारा विकसित नाभिकीय मॉडल परमाणु-संरचना को समझने में एक बहुत बड़ा कदम था। मॉडल की मुख्य रूप-रेखा—परमाणु में इलेक्ट्रानों से घिरा हुआ भारी नाभिकी का धन आवेश का होना—समय की कसौटी पर एवं अनेक प्रयोगों द्वारा पूर्णत: सही प्रमाणित हुई; लेकिन कुछ हद तक रदरफोर्ड का मॉडल प्रमाणित तथ्यों का दृढ़ता से अर्न्तविरोध करता है। ऐसे दो अर्न्तविरोधों का उल्लेख हम यहाँ करेंगे।

प्रथमत:, रदरफोर्ड के सिद्धाँत ने परमाणु के स्थायित्व की व्याख्या नहीं की। धनाविष्ट नाभिक की परिक्रमा करता हुआ इलेक्ट्रान को, उच्चावच वैद्युत आवेश की भाँति, अवश्य ही प्रकाशतरंगों के रूप में विद्युत-चुंबकीय ऊर्जा उत्सर्जन करनी चाहिए। लेकिन, प्रकाश उत्सर्जन के दौरान, इलेक्ट्रान अपनी ऊर्जा का कुछ भाग खो देता है, जिसके कारणवश अपकेन्द्र बल, जो इलेक्ट्रान की परिक्रमा से संबंधित है, और नाभिक की ओर इलेक्ट्रान के आकर्षण के स्थिर वैद्युत बल के बीच संतुलन नष्ट हो जाता है। संतुलन को सही करने के लिए इलेक्ट्रान का नाभिक के समीप आना अनि-वार्य है। इस प्रकार, इलेक्ट्रान निर्विध्न रूप से विद्युत: चुंबकीय ऊर्जा का उत्सर्जन करते हुए और सर्पिल गति में नाभिक के समीप आता जाएगा। अपनी संपूर्ण ऊर्जा समाप्त कर वह नाभिक पर गिर जाएगा—और इसके साथ ही परमाणु भी नष्ट हो जाएगा। यह निष्कर्ष परमाणु के वास्तविक गुणों के विपरीत है, क्योंकि इन गुणों के अनुसार परमाणु स्थिर है और बहुत ही अधिक समय तक, नष्ट हुए बिना, रहता है। दूसरे, रदरफ़ोर्ड के मॉडल ने परमाणु स्पेक्ट्रम की प्रकृति के बारे में गलत निष्कर्षों पर पहुँचा दिया। आपको याद दिला दें, कि तापदीप्त ठोस या तरल पदार्थों (incandescent solids or liquids) द्वारा उत्सर्जित प्रकाश को काँच या स्फटिक प्रिज़्म (glass or quartz prism) में से गुज़ार कर प्रिज़्म के पीछे स्थित आवरण पर डालने से तथाकथित संतत स्पेक्ट्रम (continuous spectrum) दिखाई देता है, जिसका दृश्य भाग इंद्रधनुष के सभी वर्णों की एक पट्टी के समान दिखाई

देना है।* इस परिघटना का कारण है कि तापदीप्त ठोस या तरल पदार्थों द्वारा उत्सर्जन हर प्रकार की आवृत्ति वाली वैद्युत-चुंबकीय तरंगों से बना होता है। विभिन्न आवृत्ति वाली तरंगों का प्रिज़्म द्वारा एक समान अपवर्त्तन नहीं होता और आवरण पर ये तरंगें विभिन्न स्थानों पर पड़ती हैं।

स्पेक्ट्रम प्राप्त करने के लिए प्रिज़्म के स्थान पर विवर्तन ग्रेटिंग (diffraction grating) का भी प्रयोग किया जा सकता है। विवर्तन ग्रेटिंग काँच की एक प्लेट होती है, जिसकी सतह पर बहुत कम-कम दूरी पर महीन समानान्तर रेखाएँ खींची होती हैं (एक मि० मि० में 1500 रेखाएँ)। ऐसी जाली से गुजरते समय प्रकाश की किरण का विघटन हो जाता है और एक स्पैक्ट्रम बनता है, जो प्रिज़्म की मदद से बने स्पैक्ट्रम के समान होता है। विवर्तन प्रत्येक तरंग गति के लिए स्वाभाविक है और प्रकाश की तरंग प्रकृति के मुख्य प्रमाणों में से एक है।

ठोस पदार्थों या द्रवों द्वारा उत्सर्जन से सदैव संतत स्पैक्ट्रम प्राप्त होता है। ठोस और तरल द्रवों के विपरीत तापदीप्त गैसों व वाष्प के उत्सर्जन केवल नियत तरंग दैर्ध्य में होते हैं। इसलिए संतत-पट्टी (continuous strip) के बजाए परदे पर अनेक पृथक वर्ण रेखाओं की पँक्ति बन जाती है, जो एक दूसरे से काले अंतरालों द्वारा पृथक होती हैं। इन रेखाओं की सँख्या व स्थान तापदीप्त गैसों या वाष्प के गुणों पर आधारित होते हैं। जैसे, पोटेशियम की वाष्प तीन रेखाओं का स्पैक्ट्रम बनाती है—दो लाल और एक बैंगनी वर्ण की; तथा कैल्सियम के वाष्प के स्पैक्ट्रम में कई लाल पीले और हरे वर्ण की रेखाएँ होती हैं इत्यादि। इस प्रकार के स्पैक्ट्रम रेखित स्पैकट्रम कहलाते हैं। उदाहरण के लिए चित्र 3 में हाइड्रोजन का परमाणु स्पैक्ट्रम दृश्य और पराबैंगनी के निकटवर्ती क्षेत्र में दिखाया गया है।



चित्र 3. दृश्य क्षेत्र में हाइड्रोजन के परमाणु-स्पेक्ट्रम का आरेख।
(चित्र में पृथक् रेखाओं व तरंग-दैर्ध्यों के मान्य प्रतीक दिये गये हैं)।

प्रत्येक तत्त्व के परमाणु पूर्णतः निश्चित स्पैक्ट्रम बनाते हैं, जो केवल इसी तत्त्व के लिए स्वाभाविक हैं। और तदनुरूपी स्पैक्ट्रमी रेखाओं की तीव्रता जितनी अधिक होती है, परीक्षणाधीन नमूने में तत्त्व की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। यह एक तथ्य है और इस तथ्य का प्रयोग पदार्थों व वस्तुओं के गुणात्मक एवं संख्यात्मक संयोजन

---

* स्पेक्ट्रम पैराबैंगनी (अधिक उच्च आवृतियों) और अवरक्त (अधिक निम्न आवृतियों) क्षेत्रों में प्रवेश कर जाता है तथा इस प्रकार दृश्य प्रकाश के सदृश आवृतियों की सीमा लाँघ जाता है।

को निश्चित करने के लिए किया जाता है। इस विधि को "स्पैक्ट्रमी विश्लेषण" कहते हैं।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, नाभिक की परिक्रमा करते हुए इलेक्ट्रान को निर्विघ्न रूप से अपनी गति बदलते हुए नाभिक के समीप आना चाहिए। इसके द्वारा उत्सर्जित प्रकाश की आवृति उसकी परिक्रमा की आवृति से निश्चित की जाती है, यानी कि वह भी निर्विघ्न रूप से बदलनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि परमाणु के उत्सर्जन का स्पैक्ट्रम भी निर्विघ्न, संतत होना चाहिए, जो जैसा कि हमने अभी देखा, वास्तविकता से भिन्न है। इस प्रकार, रदरफोर्ड का सिद्धाँत न तो स्थिर परमाणुओं की उपस्थिति समझा सका, और न ही उनके रैखिल स्पैक्ट्रमों की विद्यमानता।

परमाणु संरचना के विचारों के विकास में महत्वपूर्ण कार्य सन् 1913 में नील्स बोर ने किया, जिन्होंने परमाणु के नाभिकीय मॉडल और प्रकाश के क्वान्टम सिद्धाँत को मिलाकर एक नया विचार प्रस्तुत किया।

22. **प्रकाश का क्वान्टमी सिद्धाँत.** 1900 में प्लांक* ने सिद्ध किया कि किसी गर्म पदार्थ की उत्सर्जन करने की विशेषता को सही प्रकार से सँख्यात्मक रूप में लिखा जा सकता है, लेकिन इसके लिये यह मानना होगा कि विकिरण ऊर्जा का पदार्थों द्वारा उत्सर्जन व अवशोषण संतत रूप में न होकर, विविक्त छिन्न रूप में होता है, यानी पृथक भागों में या क्वान्टमों में होता है। ऐसे प्रत्येक क्वान्टम की ऊर्जा E उत्सर्जन की आवृत्ति ν से निम्न समीकरण द्वारा सम्बन्धित है:

$$E = h\nu$$

(इस समीकरण का नाम प्लांक समीकरण रखा गया)

यहाँ h – अनुपातिक गुणांक है, जो प्लांक नियतांक (Plank's constant) कहलाता है तथा 6.626×10^{-34} जू० · से० के बराबर है। यह सर्वव्यापी नियतांक है।

स्वयं प्लांक बहुत समय तक यह मानते रहे कि क्वान्टमों में प्रकाश का उत्सर्जन व अवशोषण उत्सर्जन करने वाले पदार्थों की विशेषता है। वह स्वयं उत्सर्जन-क्रिया की विशेषता नहीं है क्योंकि कितनी भी ऊर्जा रख सकती है और इसीलिये उसका निर्विघ्न अवशोषण हो सकता है। लेकिन सन् 1905 में प्रकाश-विद्युत प्रभाव का अध्ययन करते हुए अ० आइन्सटाइन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वैद्युत चुम्बकीय (विकिरणी)

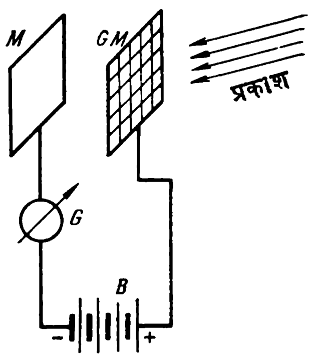
---

*मैक्स प्लांक (1858-1947) महान् जर्मन भौतिकतज्ञ व नोबेल पुरस्कार विजेता। उन्होंने मुख्यत: ऊष्मागतिकी तथा ऊष्मा विकिरण पर कार्य किया। ऊर्जा के विकिरण व अवशोषण के क्वान्टमी गुण संबन्धी प्लांक के विचारों की आधुनिक विज्ञान की प्रगति में काफी महत्वपूर्ण देन है।

ऊर्जा केवल क्वान्टमों के रूप में ही होती है। अतः, उत्सर्जन अभाज्य द्रव्यकणों (फोटान) का पुंज है, जिसकी ऊर्जा प्लांक समीकरण द्वारा निश्चित की जा सकती है।

धातुओं पर प्रकाश के गिरने से उनके द्वारा इलेक्ट्रानों का विकिरण प्रकाश-विद्युत प्रभाव कहलाता है। इस परिघटना का विस्तारपूर्वक अध्ययन सन् 1888-1890 में अ० ग० स्तोलेतोव* ने किया।

प्रकाश-विद्युत प्रभाव को मापने के लिए प्रयोग किए जाने वाले उपकरण का आरेख चित्र 4 में दिया गया है। इस उपकरण को निर्वात में रख कर M पन्नी पर ऋणात्मक विभव डालने से परिपथ में विद्युत्-धारा पास नहीं होती, क्योंकि पन्नी और जाली के बीच अवकाश में विद्युत-धारा के वाहक नहीं हैं। लेकिन पन्नी पर प्रकाश डालने से गैल्वेनोमीटर विद्युत-धारा की उपस्थिति की पुष्टि करता है, यह विद्युत्-धारा "प्रकाश विद्युत-धारा" (photocurrent) कहलाती है। इस धारा के वाहक धातु में से प्रकाश द्वारा निष्काषित इलेक्ट्रान हैं।



चित्र 4. प्रकाश विद्युत-प्रभाव का अध्ययन करने के उपकरण का आरेख:
M– विचाराधीन धातु की पन्नी; *GM*– धातु की जाली; *B*– दिष्ट विद्युत-धारा का स्रोत; *G*– गैल्वेनोमीटर

बाद में ज्ञात हुआ कि प्रकाश की तीव्रता बदलने से केवल धातु से उत्सर्जित इलेक्ट्रानों की सँख्या ही बदलती है, यानी कि प्रकाश विद्युत-धारा की शक्ति ही बदलती है। लेकिन प्रत्येक निष्काषित इलेक्ट्रान की अधिकतम गतिज ऊर्जा प्रकाश की तीव्रता पर निर्भर नहीं करती, बल्कि धातु पर गिरने वाले प्रकाश की आवृत्ति पर निर्भर करती है। केवल तरंग-दैर्ध्यों को बढ़ाने से ही (यानी आवृत्ति को कम करने से**) धातु द्वारा उत्सर्जित इलेक्ट्रानों की ऊर्जा कम हो जाती है, और इसके पश्चात प्रत्येक धातु के लिए निश्चित तरंगदैर्ध्य पर प्रकाश-विद्युत प्रभाव का लोप हो जाता है और

---

*अलेक्सान्द्र ग्रिगोर्येविच स्तोलेतोव (1839-1896), महान रूसी भौतिकविद् मास्को विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे। उन्होंने लोहे के चुंबकीय गुणों का अध्ययन किया, जिसका काफ़ी सैद्धांतिक व व्यावहारिक महत्व है। उन्होंने प्रकाश विद्युत प्रभाव के मुख्य नियमों को निर्धारित किया तथा प्रकाश ऊर्जा के वैद्युत ऊर्जा में रूपांतरण की सम्भावना को सिद्ध किया। दर्शन-शास्त्रीय सार वाले लेखों में वे एक दृढ़ भौतिकवादी चिंतक के रूप में प्रकट हुये।

**यहां यह स्मरण रहे कि प्रकाश का तरंग-दैर्ध्य λ एवं आवृत्ति ν समीकरण $\lambda\nu = c$ द्वारा सम्बंधित है। c = प्रकाश की गति।

बहुत ही अधिक तीव्र प्रकाश डालने पर भी वापिस नहीं आता। जैसे कि, लाल या मंनरी वर्ण के प्रकाश द्वारा सोडियम में प्रकाश-विद्युत प्रभाव नज़र नहीं आता। वह इलेक्ट्रानों का उत्सर्जन केवल 590 nm से कम तरंग-दैर्घ्य (पीत प्रकाश) पर ही करेगा; लीथियम में यह और कम तरंग-दैर्घ्य 516 nm (हरित प्रकाश) से ऊपर ही करेगा। और प्लैटिनम से इलेक्ट्रानों का उत्सर्जन दृश्य प्रकाश में बिल्कुल ही नहीं होता। इस स्थिति में वह केवल पराबैंगनी किरणों के प्लैटिनम पर गिरने से ही आरम्भ होता है।

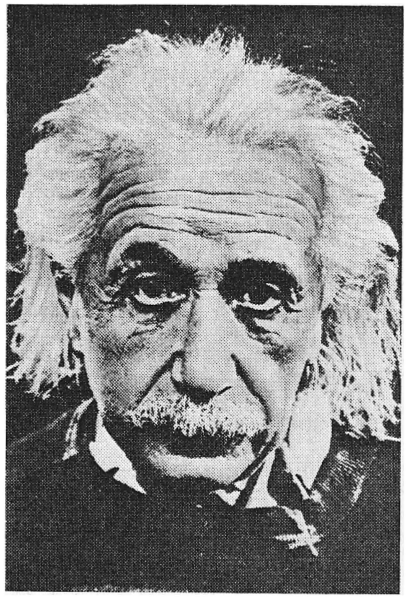
प्रकाश-विद्युत प्रभाव के ये गुण चिरप्रतिष्ठित प्रकाश-तरंग सिद्धांत की दृष्टि से बिल्कुल समझ नहीं आते, क्योंकि इस सिद्धांत के अनुसार (विचाराधीन धातु के लिये) प्रकाश-विद्युत प्रभाव को निश्चित करने की विधि धातु की सतह द्वारा अवशोषित समय के एककों (units) में व्यक्त ऊर्जा की मात्रा पर आधारित होनी चाहिए; और धातु पर गिरने वाले विकिरण के गुणों पर कदापि भी नहीं निर्भर करनी चाहिए। लेकिन यह मान लेने से कि विकिरण पृथक भागों फोटॉनों, से बना है एवं उनमें एक पूर्णतः नियत ऊर्जा भी है, तो हमें उपयुक्त गुणों का सरल व विश्वासजनक हल मिल सकता है।

वस्तुतः, धातु में इलेक्ट्रान धातु के परमाणुओं से सम्बन्धित रहता है, अर्थात धातु से उसको पृथक करने के लिए निश्चित ऊर्जा का खर्च होना अनिवार्य है। यदि फोटॉन में ऊर्जा की आवश्यक मात्रा है (फोटॉन की ऊर्जा विकिरण की आकृति द्वारा निश्चित की जाती है), तो इलेक्ट्रान का निष्काषण हो जाएगा एवं प्रकाश-विद्युत प्रभाव भी देखने में आएगा। धातु के साथ प्रतिक्रिया के समय फोटॉन अपनी संपूर्ण ऊर्जा इलेक्ट्रान को दे देता है, क्योंकि फोटॉन अविभाज्य है। फोंटॉन की ऊर्जा का कुछ अंश धातु से इलेक्ट्रान के निष्काषन पर खर्च होगा, तथा कुछ अंश इलेक्ट्रान को गति के लिए गतिज ऊर्जा देने में खर्च होगा। अतः धातु से निष्काषित इलेक्ट्रान की अधिकतम गतिज ऊर्जा धातु के परमाणुओं और इलेक्ट्रान के सम्बन्ध की ऊर्जा के अंतर से अधिक नहीं हो सकती। अतएव, धातु की सतह पर इकाई समय में गिरने वाले फोटानों की सँख्या बढ़ा देने पर (अर्थात प्रकाश-तीव्रता बढ़ाने पर) केवल धातु से निष्काषित होने वाले इलेक्ट्रानों की सँख्या में ही वृद्धि होगी, जिसके कारण प्रकाश-विद्युत धारा बढ़ जाएगी, पर प्रत्येक इलेक्ट्रान की ऊर्जा में कोई वृद्धि नहीं होगी। और यदि फोटॉन की ऊर्जा इलेक्ट्रान के निष्काषण के लिए आवश्यक न्यूनतम ऊर्जा से कम है, तो धातु की सतह पर किसी भी सँख्या में फोटॉनों के गिरने से प्रकाश-विद्युत प्रभाव देखने में नहीं आएगा, यानी प्रकाश की तीव्रता कितनी भी अधिक हो, यह प्रभाव देखने में नहीं आएगा।

आइन्सटाइन द्वारा विकसित प्रकाश का क्वान्टमी सिद्धाँत प्रकाश विद्युत प्रभाव को ही नहीं बल्कि प्रकाश की रासायनिक क्रियाओं के नियम, ठोस पदार्थों की विशिष्ट

ऊष्मा का तापाश्रय (temperature dependence) एवं कई अन्य परिघटनाओं की भी व्याख्या कर सका।

[अल्बर्ट आइन्सटाइन. अद्वितीय भौतिकविद् का जन्म 14 मार्च 1879 में वेलम शहर (जर्मनी) में हुआ था, और वह 14 वर्ष की आयु से ही स्वीट्ज़रलैंड में रहने लगे थे। वे पहले एक माध्यमिक विद्यालय में अध्यापक रहे, फिर एक पेटेन्ट ब्यूरो में विशेषज्ञ के रूप में कार्य करने लगे, फिर ज्यूरिख विश्वविद्यालय (स्वीट्ज़रलैंड) में प्रोफ़ेसर बने, सन् 1914 से सन् 1933 तक बर्लिन विश्वविद्यालय में उन्होंने प्रोफेसर के पद पर पर कार्य किया। सन् 1933 में हिटलर के विरोध में जर्मनी नागरिकता व प्रशियाई विज्ञान अकादमी की सदस्यता वापिस कर दी। सन् 1933 से अंत तक (स० रा० अमेरिका में) प्रिंस्टन में आधारभूत अनुसंधान संस्थान में प्रोफेसर रहे।



अल्बर्ट आइन्सटाइन
(1879 — 1955)

सन् 1905 में आइन्सटाइन ने विशिष्ट आपेक्षिकता सिद्धाँत (special relativity theory) और 1916 में सामान्य आपेक्षिकता सिद्धाँत (general relativity theory) प्रस्तुत किया, जिनसे आकाश (space), गुरूत्वाकर्षण व समय के बारे में आधुनिक विचारों का आधार बना; प्रकाश के क्वान्टम सिद्धाँत के क्षेत्र में आधारभूत अनुसंधान कार्य किया। उनके कई शोध-कार्य ब्राउनी गति के सिद्धाँत, चुम्वकीयता तथा सैद्धांतिक भौतिकी की अन्य समस्याओं से सम्बंधित हैं। सन् 1921 में उन्हें नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सन् 1927 से वे सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के माननीय सदस्य थे।]

प्रकाश के क्वान्टमी सिद्धाँत से स्पष्ट है कि फोटॉन अभाज्य है। वह धातु के इलेक्ट्रान के साथ एक सम्पूर्ण रूप में क्रिया करके उसे धातु के बाहर निकाल देता है; और संपूर्ण रूप से ही फोटोग्राफ़िक फ़िल्म के प्रकाश-सुग्राही कण के साथ प्रतिक्रिया करता है तथा नियत स्थान पर उसका कृष्णकरण कर देता है, इत्यादि। इस प्रकार फोटॉन का व्यवहार कण की भांति है, यानी यह कणिका गुणों को प्रकट करता

है। लेकिन फोटॉन में तरंग गुण भी विद्यमान है। इसका प्रमाण प्रकाश की तरंग प्रकृति और फोटॉन की विवर्त्तन एवं व्यतिकरण विशेषताओं से मिलता है। फोटॉन का कण से भेद (कण के क्लासिकल अर्थ में) इस बात में है कि किसी भी तरंग की भाँति आकाश में फोटॉन का सही स्थान निश्चित करना असम्भव है। लेकिन फोटॉन "क्लासिकल" तरंग से भी भिन्न हैं, क्योंकि फोटॉन अभाज्य हैं। सच पूछिए तो, कणिका एवं तरंगों के गुण विद्यमान होते हुए भी फोटॉन न तो कण है, और न ही तरंग—उसके लिए कणिका-तरंग की द्वैत-अवस्था स्वाभाविक है।

23. **नील्स बोर के अनुसार परमाणु इलेक्ट्रानी आवरण की संरचना.** जैसा ऊपर बताया जा चुका है, नील्स बोर ने अपने सिद्धाँत का आधार नाभिकीय मॉडल को बनाया था। विकिरण की अनिर्विघ्न असंतत प्रकृति के बारे में प्रकाश के क्वान्टम सिद्धाँत को एवं परमाणु स्पेक्ट्रमों की रेखिल प्रकृति को आधार बना कर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि परमाणु में इलेक्ट्रान की ऊर्जा सतत रूप से नहीं बदलती, बल्कि छलांगों में या असंतत रूप से बदलती है। यही कारण है कि परमाणु में इलेक्ट्रानों की ऊर्जा अवस्थाएँ अनिश्चित न होकर निश्चित "स्वीकृत" होती हैं। अन्य शब्दों में, परमाणु में इलेक्ट्रानों की ऊर्जा अवस्थाएँ क्वान्टित हैं। एक स्वीकृत अवस्था से दूसरी स्वीकृत अवस्था में प्रवेश कुदान की भाँति होता है और इसके साथ विद्युत्-चुम्बकीय क्वान्टम का उत्सर्जन या अवशोषण होता है।

अपने सिद्धाँत के मुख्य विचार बोर ने कुछ मान्यताओं के रूप में प्रस्तुत किए, जिनके सार निम्न हैं:

1. इलेक्ट्रान नाभिक की परिक्रमा किसी मनचाही कक्षा पर नहीं, बल्कि चन्द निश्चित गोल कक्षाओं पर ही कर सकता है। इन कक्षाओं का नाम "स्थायी कक्षा" (stationary orbit) रखा गया।
2. स्थायी कक्षा में इलेक्ट्रान वैद्युत्-चुम्बकीय ऊर्जा उत्सर्जन नहीं करता।
3. उत्सर्जन उस समय होता है जब इलेक्ट्रान एक स्थायी कक्षा से दूसरी स्थायी कक्षा में छलांग लगाकर प्रवेश करता है। इस समय वैद्युत्-चुम्बकीय विकिरण का या तो उत्सर्जन होता है या अवशोषण; और इसकी ऊर्जा परमाणु की प्रारंभिक और अन्तिम अवस्था में मापी गई ऊर्जा के अंतर के बराबर होती है।

यहाँ तीसरी मान्यता की व्याख्या आवश्यक है। नाभिक की परिक्रमा करने वाले इलेक्ट्रान की ऊर्जा कक्षा की त्रिज्या पर निर्भर करती है। नाभिक के सबसे समीप की कक्षा में परिक्रमा कर रहे इलेक्ट्रान की ऊर्जा न्यूनतम होती है (यह परमाणु की तथाकथित सामान्य अवस्था है)। अधिक दूरी पर स्थित कक्षा में इलेक्ट्रान को ले जाने के लिए इलेक्ट्रान को धनात्मक आवेशित नाभिक के आकर्षण पर काबू पाना होगा जिसके लिए ऊर्जा का खर्च होना आवश्यक है। यह क्रिया प्रकाश-क्वान्टम के अवशोषण द्वारा संपन्न होती है। स्पष्ट है कि इस परिवर्त्तन के दौरान परमाणु

की ऊर्जा बढ़ जाएगी और वह उत्तेजित अवस्था में आ जाएगा। विपरीत दिशा में, यानी कि अधिक दूरी पर स्थित कक्षा से नाभिक की समीप की कक्षा में इलेक्ट्रान के स्थानांतरण के फलस्वरूप परमाणु की ऊर्जा कम हो जाएगी; और यह निष्काषित ऊर्जा वैद्युत्-चुम्बकीय विकिरण के क्वान्टम के रूप में होगी। यदि परमाणु की आरम्भिक ऊर्जा को, जब इलेक्ट्रान नाभिक से अधिक दूरी पर स्थित कक्षा में था, E_H द्वारा लिखा जाए, और परमाणु की अन्तिम ऊर्जा को, जब इलेक्ट्रान नाभिक के समीप की कक्षा में था, E_K द्वारा लिखा जाए, तो इलेक्ट्रान की कुदान के समय उत्सर्जित क्वान्टम की ऊर्जा निम्न अंतर के बराबर होगी:

$$E = E_H - E_K$$

प्लांक के समीकरण द्वारा

$$E = h\upsilon$$

यानी

$$h\upsilon = E_H - E_K$$

और

$$\upsilon = (E_H - E_K)/\mathrm{h}$$

उस अन्तिम समीकरण की मदद से उस विकिरण की सभी सम्भव आवृत्तियों (या तरंग-दैर्ध्यों) सम्बन्धी परिकलन किए जा सकते हैं, जो परमाणु द्वारा उत्सर्जित या अवशोषित हो सकता है, अर्थात परमाणु-स्पैक्ट्रम सम्बन्धी परिकलन किए जा सकते हैं।

बोर की परिकल्पना ने बहुत दृढ़ता से क्लासिकल भौतिकी के विचारों का खंडन किया। क्लासिकल यांत्रिकी के अनुसार इलेक्ट्रान किसी भी कक्षा में परिक्रमा कर सकता है, और क्लासिकल विद्युत् गतिकी के अनुसार कोई भी आवेशित कण गोल कक्षा में बगैर विकिरण के चक्कर नहीं लगा सकता। लेकिन ये परिकल्पनाएँ हाइड्रोजन के परमाणु-स्पैक्ट्रम का अध्ययन करते समय बोर द्वारा प्राप्त असाधारण परिणामों द्वारा सिद्ध हुई।

यहाँ नोट करना आवश्यक है कि बोर ने अपना कार्य उस समय (सन् 1913 में) प्रस्तुत किया, जब अनेक तत्त्वों के परमाणु-स्पैक्ट्रमों का अध्ययन किया जा चुका था और स्पैक्ट्रमी विश्लेषण का प्रयोग काफ़ी प्रचलित हो गया था। जैसे कि, आदर्श गैसों की खोज़ स्पैक्ट्रमी विश्लेषण के द्वारा ही हुई थी, और आरम्भ में हीलियम की खोज सूर्य के स्पैक्ट्रम में हुई थी एवं उसके बाद ही पृथ्वी पर हुई। यह स्पष्ट हो गया था कि परमाणु-स्पेक्ट्रम तत्त्वों के एक प्रकार के "पासपोर्ट" हैं। लेकिन इन पासपोर्टों की भाषा अस्पष्ट थी। केवल कुछ अनुभाविक नियमों का ही निर्धारण हुआ था जिनकी सहायता से परमाणु-स्पैक्ट्रमों में रेखाओं का स्थान निश्चित किया गया।

बोर के सिद्धाँत ने एक स्थायी कक्षा से दूसरी स्थायी कक्षा में परमाण्वीय इलेक्ट्रानों के प्रवेश के परिणाम के रूप में न केवल परमाणु-स्पैक्ट्रमों की भौतिक प्रकृति की व्याख्या दी, बल्कि स्पैक्ट्रम सम्बन्धी परिकलनों की सम्भावना भी पहली बार सिद्ध की।

बोर द्वारा सरलतम परमाणु—हाइड्रोजन के परमाणु—के स्पैक्ट्रम के परिकलन ने आश्चर्यजनक परिणाम प्रस्तुत किए: स्पैक्ट्रम के दृश्य भाग में स्पैक्ट्रमी रेखाओं का परिकलित स्थान शुद्ध-शुद्ध स्पैक्ट्रम में उनके वास्तविक स्थान से मिल गया (दे० चित्र 3)। इससे ज्ञात हुआ कि ये रेखाएँ नाभिक से अधिक दूसरी पर स्थित कक्षाओं से नाभिक से दूसरी कक्षा में इलेक्ट्रान के प्रवेश के अनुकूल हैं।

बोर ने स्वयं को हाइड्रोजन के स्पैक्ट्रम के पहले से ज्ञात गुणों के अध्ययन तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि अपने सिद्धांत के आधार पर उस समय अज्ञात हाइड्रोजन की स्पैक्ट्रम श्रेणियों के बारे में भविष्यवाणी की, जो स्पैक्ट्रम के पराबैंगनी और अवरक्त क्षेत्रों में स्थित हैं एवं नाभिक के समीप की कक्षा तथा नाभिक से दूसरी कक्षा से अधिक दूरी पर स्थित कक्षाओं में इलेक्ट्रान के प्रवेश से सम्बंधित हैं। इन सभी स्पैक्ट्रमी श्रेणियों की बाद में प्रयोगों द्वारा खोज हुई और ये आश्चर्यजनक रूप से बोर की परिकल्पनाओं से मिलती हैं।



नील्स बोर
(1885 — 1962)

हाइड्रोजन के परमाणु के स्पैक्ट्रम का परिकलन बोर के सिद्धाँत की महान् उपलब्धि थी।

[नील्स बोर, अद्वितीय डेनिश भौतिकविद्, का जन्म सन् 1885 में हुआ; सन् 1911-12 में उन्होंने रजरफोंड की प्रयोगशाला में कार्य किया; सन 1916 में कॉपेनहेगन विश्वविद्यालय में वे प्रोफेसर बने, और सन् 1920 से इस विश्वविद्यालय के सैद्धाँतिक भौतिकी संस्थान के आजीवन नेतृत्व किया।

बोर सैद्धांतिक भौतिकी के क्षेत्र में महान वैज्ञानिक विचारधारा के अग्रणी हैं; तथा परमाणु-संरचना के आधुनिक क्वान्टम यांत्रिकीय सिद्धाँत का प्रारम्भिक आधार परमाणु-संरचना का मूल क्वान्टम सिद्धांत बोर ही ने प्रस्तुत किया था: सन् 1913 में उन्होंने चिरप्रतिष्ठित विचारों एवं क्वान्टम विचारों में संगति का नियम प्रस्तुत किया। मेन्डेलीफ के आवर्त्त नियम की सैद्धाँतिक व्याख्या एवं परमाण्वीय नाभिक की संरचना पर किए गए शोध-कार्य के लिये उन्हें नोबेल पुरस्कार

द्वारा सम्मानित किया गया। सन् 1929 से वे सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी के अतिथि-सदस्य रहे थे]

इस सब के बावजूद बोर के सिद्धाँत की विजय को पूर्ण नहीं कहा जा सकता। वह अंतर्विरोधों से मुक्त नहीं है, और स्वयं बोर इस बात से अच्छी तरह अवगत थे। यांत्रिकी और विद्युत-गतिकी के नियमों का विरोध करने वाली परिकल्पनाओं के साथ-साथ बोर के सिद्धाँत में इन्हीं नियमों का प्रयोग परमाणु में इलेक्ट्रानों पर लगे बल का परिकलन करने के लिए किया गया है। स्वयं बोर की परिकल्पनाओं से सम्बंधित अनेक प्रश्न अस्पष्ट रह गए, जैसे एक कक्षा से दूसरी कक्षा में प्रवेश करने की क्रिया के दौरान इलेक्ट्रान कहाँ होता है? आपेक्षिकता सिद्धाँत के अनुसार किसी भी भौतिक क्रिया की गति प्रकाश की गति से अधिक नहीं हो सकती। अतएव, इलेक्ट्रान द्वारा एक कक्षा से कुछ दूरी पर स्थित दूसरी कक्षा में प्रवेश करने की क्रिया क्षणिक नहीं होती बल्कि कुछ समय लेती है। इस समय में इलेक्ट्रान पहली व दूसरी कक्षा के बीच कहीं भी अवश्य ही होना चाहिए। और यही वे माध्यमिक अवस्थाएँ हैं, जिन्हें सिद्धाँत निषेध करता है, क्योंकि परिकल्पना के अनुसार केवल स्थायी कक्षाओं में ही इलेक्ट्रान का होना सम्भव है।

अंत में, बोर के सिद्धाँत में जर्मनी भौतिकविद् अ० सोम्मरफेल्ड व अन्य वैज्ञानिकों द्वारा किए गए सुधारों के बावजूद (परमाणु में गोल कक्षा के साथ-साथ, दीर्घवृत्तीय कक्षा में भी इलेक्ट्रान की गति की सम्भावना पर ध्यान दिया गया), बहुइलेक्ट्रान परमाणु के, यहाँ तक कि हाइड्रोजन के परमाणु के भी कई महत्वपूर्ण स्पैक्ट्रमी गुणों को समझाने में यह सिद्धाँत असफल रहा। उदाहरणतया, हाइड्रोजन के परमाण्वीय स्पैक्ट्रम में रेखाओं की विभिन्न तीव्रता का कारण अस्पष्ट ही रहा।

फिर भी, बोर का सिद्धाँत परमाणु-संरचना के विचारों के विकास में महत्वपूर्ण चरण था।

प्लांक व आइन्सटाइन की प्रकाश-क्वान्टम (फोटॉन) परिकल्पना की भाँति, इस सिद्धाँत ने सिद्ध किया कि उन प्राकृतिक नियमों को, जो बड़ी वस्तुओं पानी, ब्रह्माण्ड के बड़े पिण्डों के लिए सही हैं, सूक्ष्म-जगत् के तुच्छ आकार वाले पदार्थों परमाणु, इलेक्ट्रान, फोटॉन आदि परयन्त्रवत् लागू नहीं करना चाहिए। और इसलिए नए भौतिकीय सिद्धांत को विस्तार देने की समस्या का जन्म हुआ, जिसकी मदद से सूक्ष्म-जगत के पदार्थों के गुणों एवं आचरण का अन्तर्विरोधों से मुक्त अध्ययन किया जा सके। और इसके साथ-साथ स्थूल पदार्थों के विषय में भी इस सिद्धाँत के निष्कर्षों का क्लासिकल यांत्रिकी तथा विद्युत्-गतिकी के निष्कर्षों के साथ मेल बैठना चाहिए (बोर का तथाकथित "संगति नियम")।

इस समस्या का समाधान बीसवीं शताब्दी के दूसरी दशक में हुआ, जब सैद्धाँतिक भौतिकी के नए क्षेत्र—क्वान्टम या तरंग यांत्रिकी—का जन्म एवं विकास हुआ।

24. **क्वान्टम यांत्रिकी के मूल विचार.** जब सूक्ष्म-जगत के सभी पदार्थों और प्रथमतः इलेक्ट्रान पर फोटॉन की कणिका-तरंगी द्वैत अवस्था से सम्बंधित विचारों का व्यापकीकरण हुआ, तभी क्वान्टम यांत्रिकी का जन्म हुआ।

फोटॉन के कणिका गुण प्लांक समीकरण द्वारा व्यक्त किए जाते हैं:

$$E = h\upsilon$$

इस समीकरण के अनुसार फोटॉन अभाज्य है और विविक्त रचना के रूप में होता है, फोटॉन के तरंगी गुणों को निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जाता है:

$$\lambda\upsilon = c$$

जो विद्युत-चुम्बकीय दोलन के तरंग-दैर्ध्य λ और उसकी आवृत्ति ν तथा उत्सर्जन गति c को सम्बंधित करता है। यहाँ तरंग-दैर्ध्य का प्रयोग इस अनुमान पर आधारित है कि फोटॉन में तरंगी गुण विद्यमान हैं।

इन समीकरणों से निम्न अनुपात प्राप्त होता है, जो फोटॉन की कणिका विशेषता E और उसकी तरंगी विशेषता λ को संबद्ध करता है:

$$E = \frac{hc}{\lambda}$$

लेकिन आइन्सटाइन के समीकरण (दे० § 3) के अनुसार E ऊर्जा वाला फोटॉन का कुछ द्रव्यमान m भी होना चाहिए:

$$E = mc^2$$

अन्तिम दो समीकरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि

$$mc^2 = \frac{hc}{\lambda}$$

अतः

$$\lambda = \frac{h}{mc}$$

पदार्थ के द्रव्यमान और उसकी गति के गुणलफल को पदार्थ का संवेग या आवेग (momentum or impulse) कहते हैं। फोटॉन का आवेग p द्वारा लिखने पर अन्तिम समीकरण इस प्रकार होगा:

$$\lambda = \frac{h}{p}$$

यहाँ पुनः स्मरण करा देना चाहिए कि यह समीकरण इस मान्यता पर ग्राधारित है कि फोटॉन में तरंगी एवं कणिका दोनों ही प्रकार के गुण विद्यमान है।

सन् 1924 में दे ब्रोइल* ने यह मान्यता रखी कि कणिका-तरंगी द्वैत ग्रवस्था सिर्फ फोटॉन की ही नहीं, बल्कि इलेक्ट्रान की भी विशेषता है। ग्रतएव, इलेक्ट्रान में भी तरंगी गुण होने चाहिए ग्रौर फोटॉन की भाँति उस पर भी ग्रन्तिम समीकरण लागु होना चाहिए, जो सामान्यतः दे ब्रोइल समीकरण कहलाता है। इस प्रकार m द्रव्यमान तथा v गति वाले इलेक्ट्रान को इस प्रकार लिखा जा सकता है :

$$\lambda = \frac{h}{mv}$$

दे ब्रोईल की यह धारणा कि इलेक्ट्रान में तरंगी गुण होते हैं, प्रायोगिक रूप से सन् 1927 में सिद्ध हुई जब ग्रमेरिका में क० द० डेवीसोन ग्रौर ल० ख० जर्मेर ने, इंग्लैंड में ज० प० टामसन ने ग्रौर सोवियत संघ में प० स० तारताकोव्स्की ने स्वतंत्र रूप से कार्य करते हुए यह सिद्ध किया कि विवर्त्तन ग्रेटिंग (जिसके लिए धातु के क्रिस्टल प्रयोग किए गए थे) पर इलेक्ट्रान पुंज के गिरने से ठीक वैसा ही विवर्त्तन चित्र देखने में ग्राता है, जैसा कि उस समय देखने में ग्राता है, जब क्रिस्टल ग्रेटिंग पर एक्स-किरणों का पुंज गिरता है। इन प्रयोगों के समय इलेक्ट्रान का व्यवहार एक तरंग की भाँति था, जिसका दैर्ध्य दे ब्रोईल समीकरण द्वारा परिकलित दैर्घ्य के एकदम बराबर था। वर्तमान समय में इलेक्ट्रानों के तरंगी गुण ग्रनेक प्रयोगों द्वारा प्रमाणित हो चुके हैं। इलेक्ट्रानोग्राफी में इनका प्रयोग बहुत प्रचलित है। इलेक्ट्रानोग्राफ़ी इलेक्ट्रानों के विवर्त्तन पर ग्राधारित वह विधि है। जिसके द्वारा पदार्थों की संरचना का ग्रध्ययन किया जाता है।

कुछ समय पश्चात् यह सिद्ध हुग्रा कि दे ब्रोइल का समीकरण फोटॉन व इलेक्ट्रानों पर ही नहीं बल्कि ग्रन्य सूक्ष्म कण पर भी लागू होता है। इसी प्रकार, पदार्थों की संरचना का ग्रध्ययन करने के लिए न्यूट्रानों के विवर्त्तन का प्रयोग किया जाता है (इन मूल कणों के बारे में देखिये § 34)।

---

*लुई दे ब्रोइल (जन्म सन् 1892), फ्राँस के भौतिकीविज्ञ, ने द्रव्य के तरंगी गुणों की परिकल्पना प्रस्तुत की, जो क्वान्टम यांत्रिकी का ग्राधार बनी। इसी प्रकार, इलेक्ट्रान सिद्धाँतों, परमाणु की नाभिक की संरचना, विद्युत-चुम्बकीय तरंगी के विस्तारण का सिद्धाँत, इत्यादि पर कार्य किया। सन् 1929 में उन्हें नोबेल पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया व सन् 1958 से वे सोवियत संघ की विज्ञान ग्रकादमी के सदस्य हैं।

अन्तिम तथ्य से यह निष्कर्ष निकलता है कि कणिका गुणों की भाँति तरंगी गुण बृहतजगत के पदार्थों में भी विद्यमान होते हैं, क्योंकि ये पदार्थ सूक्ष्म कणों से बने होते हैं। इसी संदर्भ में प्रश्न उठता है कि हमारे चारों ओर के पदार्थों के ये तरंगी गुण अभिव्यक्त क्यों नहीं होते। इसका कारण है कि अधिक द्रव्यमान वाले गतिशील पदार्थों का तरंग दैर्ध्य बहुत ही कम होता है क्योंकि समीकरण $\lambda = h/mv$ में पदार्थ का द्रव्यमान हर (denominator) में आता है। 0.01 मि० ग्रा० द्रव्यमान वाला सूक्ष्म कण, जो एक मि० मी० प्रति से० की गति से चल रहा है, का तरंग दैर्ध्य लगभग 10^{-21} से० मी० होगा। अतएव, इस कण के तरंगी गुण, उदाहरण-तया, इसके विवर्त्तन ग्रेटिंग पर, जिसके छिद्रों की चौड़ाई 10^{-21} से० मी० के करीब है, टकराने से अभिव्यक्त हो सकते थे। लेकिन यह फासला परमाणु के आकार (10^{-8} से० मी०) से बहुत ही कम है और परमाण्वीय नाभिक (10^{-13} — 10^{-12} से० मी०) से भी कम है। इस प्रकार यदि यह कण वास्तविक पदार्थों से भी टकराएँ तो इसके तरंगी गुण अभिव्यक्त नहीं होंगे। लेकिन 9×10^{-28} ग्रा० द्रव्यमान वाला इलेक्ट्रान, जो 1 000 कि० मी० प्रति से० की गति से घूम रहा है, का तरंग-दैर्ध्य 7.3×10^{-8} से० मी० है। ऐसी तरंग का विवर्त्तन इलेक्ट्रान की क्रिस्टल में परमाणुओं के साथ प्रतिक्रिया के समय देखा जा सकता है।

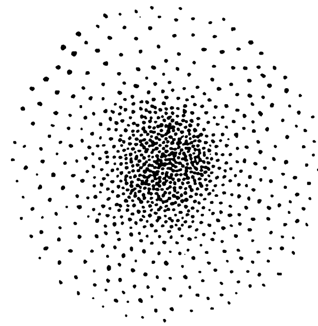
इस प्रकार, फोटॉन की भाँति इलेक्ट्रानों में भी कणिका द्वैत अवस्था पाई जाती है। इलेक्ट्रान के कणिका गुण उसके केवल पूर्ण रूप में ही कार्य करने की विशेषता में अभिव्यक्त होते हैं। इलेक्ट्रान के तरंगी गुण उसकी गति, विवर्त्तन और व्यतिकरण में अभिव्यक्त होते हैं।

अतएव् इलेक्ट्रान एक बहुत ही जटिल द्रव्यात्मक संरचना है। सन् 1907 में ही प्रकृति ज्ञान प्राप्त करने की अनन्त क्रिया का विकास करते हुए लेनिन ने कहा था "परमाणु की भाँति इलेक्ट्रान अक्षय (inexhaustible) हैं।" इस तथ्य की पुष्टि समय के साथ हो गई। परमाणु की आन्तरिक संरचना का काफ़ी गूढ़ ज्ञान प्राप्त हो चुका है और इलेक्ट्रान की प्रकृति के बारे में हमारे विचारों का भी असाधारण विकास हुआ है। निस्संदेह विज्ञान का भावी विकास सूक्ष्म-जगत् की वस्तुओं के गहन और जटिल गुणों को समझने में सहायता देगा।

25. **तरंग-फलन** (wave function). इलेक्ट्रान के तरंगी गुणों के आधार पर सन् 1925 में श्रेडिंगेर ने यह धारणा प्रस्तुत की कि परमाणु में घूमते हुए इलेक्ट्रान की अवस्था भौतिकी में सर्वविदित विद्युत चुम्बकीय स्थायी तरंग के समीकरण द्वारा निश्चित की जा सकती है। इस समीकरण में तरंग दैर्ध्य के स्थान पर दे ब्रोईल समीकरण द्वारा प्राप्त उसका मान लिखने पर एक नया समीकरण प्राप्त होगा जिसमें इलेक्ट्रान की ऊर्जा स्थानिक निर्देशांक (space coordinates) से सम्बन्धित

है। यह तरंग फलन ψ कहलाता है, जो इस समीकरण में त्रिविम तरंगी क्रिया के आयाम का तदनुरूप है।*

इलेक्ट्रान की अवस्था को निश्चित करने में तरंग फलन ψ विशेष महत्व रखता है। किसी भी तरंगी क्रिया के आयाम की भाँति इसके धनात्मक एवं ऋणात्मक मूल्य हो सकते हैं। पर ψ^2 का मूल्य सदैव धनात्मक ही होगा। इस समय उसमें असाधारण गुण होते हैं: आकाश के दिए गए भाग में ψ^2 का मूल्य जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक उसकी इस मात्रा में अभिव्यक्ति की प्रायिकता होगी। अर्थात यहाँ पर किसी भी भौतिक क्रिया में उसकी विद्यमानता नज़र आएगी।



चित्र 5. हाइड्रोजन के परमाणु का इलेक्ट्रान अभ्र।

निम्न परिभाषा अधिक सटीक है—किसी कम आयतन ΔV में इलेक्ट्रान के मिलने की प्रायिकता $\psi^2\Delta V$ के गुणनफल द्वारा व्यक्त की जाती है। इस प्रकार स्वयं ψ^2 का मूल्य आकाश के क्रमशः भाग में इलेक्ट्रॉन के मिलने का प्रायिकता घनत्व व्यक्त करता है।**

तरंग फलन के वर्ग का भौतिक अर्थ समझने के लिए, आइये, चित्र 5 देखे, जिसमें हाइड्रोजन के परमाणु के नाभिक के इर्द-गिर्द कुछ आयतन दिखाया गया है। चित्र 5 में बिंदुओं का घनत्व क्रमशः स्थान में ψ^2 के मूल्य के अनुपात में है: ψ^2 का मूल्य जितना अधिक होगा उतने ही पास-पास बिन्दु होंगे। यदि इलेक्ट्रान में बिन्दु के द्रव्यात्मक गुण हों, तो हाइड्रोजन के परमाणु का कई बार निरीक्षण करके और प्रत्येक बार इलेक्ट्रान का स्थान नोट करके चित्र 5 प्राप्त किया जा सकता है। चित्र में बिंदुओं का घनत्व उतना ही अधिक होगा, जितना कि आकाश में क्रमशः भाग में इलेक्ट्रान देखा जाएगा, या अन्य शब्दों में जितने ही अधिक इस भाग में उसके मिलने की प्रायिकता होगी उतने ही अविक इस भाग में बिंदु होंगे।

लेकिन हमें ज्ञात है कि इलेक्ट्रान की द्रव्यात्मक रूप में धारणा उसकी वास्तविक भौतिक प्रकृति से नहीं मिलती इसलिये चित्र 5 को इलेक्ट्रान के आरेखी चित्र के रूप

---

*यहाँ श्रेडिंगेर का समीकरण उसकी गणितीय जटिलता के कारण प्रस्तुत नहीं किया गया है। इस समीकरण का अध्ययन भौतिकी व भौतिकीय रसायन में किया गया है।

**प्रायिकता घनत्व को समझने के लिए निम्न बात पर ध्यान दें। प्रायिकता का प्रायिकता घनत्व ψ^2 से वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि ΔV आयतन वाले पदार्थ के m द्रव्यमान का पदार्थ के घनत्व $\rho (m - \rho\Delta V)$ के साथ है।

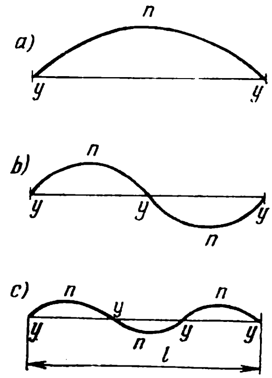
में देखना चाहिए, जो परमाणु के समस्त आयतन पर इलेक्ट्रान अभ्र के रूप में होता है। एक निश्चित स्थान पर बिन्दु जितने अधिक पास-पास होंगे, उतना ही अधिक इस स्थान पर इलेक्ट्रान अभ्र का घनत्व होगा। दूसरे शब्दों में इलेक्ट्रान अभ्र का घनत्व तरंग फलन के वर्ग के अनुपात में है।

विद्युत आवेश के एक निश्चित अभ्र के रूप में इलेक्ट्रान की अवस्था की धारणा बहुत सहायता प्रदान करती है, अणुओं व परमाणुओं में इलेक्ट्रान के मूल व्यवहार की मुख्य विशेषताएँ अच्छी तरह व्यक्त करती हैं और आने वाले अध्यायों में इसका काफ़ी प्रयोग किया गया है। यहाँ यह नोट कर लेना चाहिए कि इलेक्ट्रान अभ्र की कोई विशिष्ट एवं स्पष्ट सीमा नहीं होती। यहाँ तक कि नाभिक से काफ़ी दूरी पर भी इलेक्ट्रान के मिलने की प्रायिकता होती है चाहे वह कितनी ही कम क्यों न हो। अतः इलेक्ट्रान अभ्र से हमारा अभिप्राय होगा परमाणु के नाभिक के पास के आकाश का वह भाग जिसमें इलेक्ट्रान के आवेश और द्रव्यमान का अधिकांश हिस्सा (उदाहरणतया, 90%) सकेन्द्रिय है। आकाश के इस भाग की अधिक स्पष्ट परिभाषा पृष्ठ 91 पर दी गई है।

26. **परमाणु में इलेक्ट्रान की ऊर्जा की अवस्था.** नाभिक के प्रति आकर्षण बल के प्रभाव के अन्तर्गत इलेक्ट्रान पर श्रेडिन्गर समीकरण ऊर्जा के केवल निश्चित मूल्यों के लिए ही लागू होता है और सभी मूल्यों के लिए लागू नहीं होता। इस प्रकार परमाणु में इलेक्ट्रान की ऊर्जा का क्वान्टीकरण (बोर की प्रथम परिकल्पना) का कारण इलेक्ट्रान के तरंगी गुण होते हैं और इसमें विशेष सिद्धांतों की आवश्यकता नहीं होती।

उसको अच्छी प्रकार समझने के लिए, आइये, परमाणु का सरल मॉडल "एकविम परमाणु" को देखें, जिसमें इलेक्ट्रान की अन्तिम बिंदुओं के बीच केवल दोलायमान गति ही सम्भव है। यहाँ हमने यह अनुमान भी किया है कि इलेक्ट्रान परमाणु की सीमा से बाहर नहीं आ सकता और वह केवल परमाणु के अन्दर ही रहता है। हमें पहले से ही ज्ञात है कि परमाणु में इलेक्ट्रान की अवस्था की एक विशिष्ट तरंग होती है (दे ब्रोईल तरंग)। लेकिन यह कहना गलत होगा कि यह तरंग ठीक वैसी ही तरंग की गति के समान होती है जैसे कि पानी में फेंके गये पत्थर द्वारा उसकी सतह पर बनती है: पानी की तरंग अपने बनने के स्थान से असीमित रूप से दूर चली जाती है और धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है अर्थात् उसमें समय की स्थिरता नहीं होती, जबकि परमाणु में इलेक्ट्रान स्थिर होता है। इसलिए यह कहना अधिक ठीक होगा कि परमाणु में इलेक्ट्रान की अवस्था कम्पमान तार की अवस्था जैसी होती है, जिसमें तथाकथित स्थायी तरंग बनती हैं। चित्र 6 मैं स्थायी तरंगों का आरेख दिया गया है जो कम्पमान तार जिसके सिरे बंधे हुए हैं, द्वारा बनी हैं। n बिंदुओं पर प्रस्पंद (antinode) बनते हैं—यहाँ कम्पन का आयाम अधिकतम होता है और y

बिन्दुओं पर तार कम्पन नहीं करता – ये निस्पंद (node) कहलाते हैं, यहाँ कम्पन का आयाम शून्य होता है। प्रस्पंद और निस्पंद के बीच स्थित बिन्दुओं पर कम्पन का आयाम माध्यमिक मूल्य रखता है। चूंकि तार के सिरे बंधे हुये हैं, यहाँ निस्पंदों का होना आवश्यक है। "गतिमान" तरंग की अपेक्षा स्थायी तरंग आकाश में अपने स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तर नहीं करती। यह ऊर्जा तार के एक बिन्दु द्वारा दूसरे बिन्दु को दी जाती है। चित्र 6 से स्पष्ट है कि बंधे हुए सिरे वाले तार पर स्थायी तरंग दैर्घ्य कोई अनिश्चित नहीं होती बल्कि ऐसी होती है कि सारे तार पर अर्धतरंगों की सँख्या पूर्ण सँख्या होती है जैसे एक (चित्र 6, "a"); दो (चित्र 6, "b"); तीन (चित्र 6, "c"); इत्यादि।



चित्र 6. तार पर तरंग का ठहराव।

देखे गए परमाणु के एकविम मॉडल में दे ब्रोईल तरंग भी स्थायी तरंग होनी चाहिए। इसका कारण यह है कि इलेक्ट्रान परमाणु की सीमा के बाहर नहीं आ सकता, अतएव, परमाणु की सीमा पर तरंग फलन ψ (यानी तरंग का आयाम) शून्य के बराबर होना चाहिए। इस प्रकार चित्र 6 को परमाणु के एकविम मॉडल के रूप में देखना चाहिए जिसमें दे ब्रोईल की स्थायी तरंगे हैं, जो इस परमाणु में बन सकती हैं।

यदि एकविम परमाणु की दैर्घ्य l के बराबर है तो चित्र 6 के a, b और c स्थितियों में दे ब्रोईल तरंग का दैर्घ्य निम्न प्रकार निश्चित किया जाएगा।

$$\lambda_1 = 2l = \frac{2l}{1}$$

$$\lambda_2 = l = \frac{2l}{2}$$

$$\lambda_3 = \frac{2l}{3}$$

अतः स्थायी तरंग केवल इस प्रकार प्राप्त होगी

$$\lambda = \frac{2l}{n}$$

जहाँ $n = 1, 2, 3...$ यानी पूर्ण सँख्या। दूसरी ओर से, दे ब्रोईल समीकरण के अनुसार

$$\lambda = \frac{h}{mv}$$

अंतिम दो समीकरणों के दक्षिण पक्षों का समीकरण करने पर इलेक्ट्रान की गति v

के लिए प्राप्त होगा :

$$v = \frac{h}{2ml} \cdot n$$

अब इलेक्ट्रान की गति v ज्ञात होने से उसकी गतिज ऊर्जा E मालूम की जा सकती है :

$$E = \frac{mv^2}{2} = \frac{h^2}{8ml^2} \cdot n^2$$

चूंकि n एक पूर्ण सँख्या है, अंतिम व्यंजक से स्पष्ट है कि एकविम परमाणु में इलेक्ट्रान की ऊर्जा का स्वेच्छ मूल्य नहीं हो सकता : जब $n = 1$, तो वह $h^2/8ml^2$ की भिन्न के बराबर है, और $n = 2$ तो वह चार गुना अधिक है, और जब $n = 3$, तो वह नौ गुना अधिक है, इत्यादि। इस प्रकार, एकविम परमाणु में इलेक्ट्रानों के तरंगी गुण, जो दे ब्रोईल समीकरण द्वारा व्यक्त किये गए हैं वास्तविक रूप से इलेक्ट्रान की ऊर्जा की अवस्था के क्वान्टीकरण की विशेषता रखते हैं। यहाँ इलेक्ट्रान की अनुमत ऊर्जा पूर्ण सँख्या n के मूल्य द्वारा ही निश्चित की जा सकती है जो क्वान्टम सँख्या (quantum number) कहलाती है।

स्पष्ट है कि इलेक्ट्रान की ऊर्जा ज्ञात करने का यह समीकरण परमाणु के सरल मॉडल के लिए सही है। लेकिन वास्तविक परमाणु के लिए भी श्रेडिन्गेर समीकरण परमाणु में इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा अवस्था के क्वान्टीकरण पर पहुँचा देता है।

एकविम परमाणु के मॉडल से हमें यह समझने में सहायता मिलती है कि परमाणु में स्थायी अवस्था में स्थित इलेक्ट्रान विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा का विकिरण क्यों नहीं करता (बोर की दूसरी परिकल्पना)। बोर-रदरफोर्ड मॉडल के अनुसार परमाणु में इलेक्ट्रान त्वरण के साथ निर्विघ्न गति में रहता है यानी हर समय अपनी अवस्था बदलता रहता है। विद्युत गतिकी के अनुसार उसको ऊर्जा का विकिरण अवश्य ही करना चाहिए। परमाणु के एकविम मॉडल में स्थायी अवस्था दे ब्रोईल की स्थिर तरंग से बनती है। जब तक इस तरंग का दैर्घ्य स्थायी रहता है, तब तक इलेक्ट्रान की अवस्था भी स्थायी रहती है, यानी किसी भी प्रकार का विकिरण नहीं होता।

एक स्थायी अवस्था से दूसरी स्थायी अवस्था में (बोर के शब्दों में, एक स्थायी कक्षा से दूसरी स्थायी कक्षा में) प्रवेश करते समय इलेक्ट्रान की अवस्था और भी स्पष्ट हो जाती है। उदाहरण के लिए, यदि इलेक्ट्रान चित्र 6, a, की अवस्था से चित्र 6, b, की अवस्था में प्रवेश करता है, तो इस क्रिया में दे ब्रोईल की तरंग की दैर्घ्य का परिवर्ती मूल्य होगा, जो स्थिर तरंग के बनने के नियम के प्रतिकूल होगा। यही कारण है कि इस माध्यमिक समय में इलेक्ट्रान की अवस्था अस्थिर होगी और वह तब तक बदलती रहेगी जब तक दे ब्रोईल के तरंग का दैर्घ्य पुनः स्थिर तरंग के बनने के नियम के अनुकूल नहीं हो जाएगा, अर्थात जब तक इलेक्ट्रान नई स्थायी अवस्था में नहीं आ जाएगा।

परमाणु के सरल एकविम मॉडल में नाभिक के प्रति इलेक्ट्रान का स्थान एक निर्देशाक द्वारा निश्चित किया जाता है और उसकी स्थिति एक क्वान्टम सँख्या के मूल्य द्वारा। परमाणु के द्विविम (समतल) मॉडल में इलेक्ट्रान का स्थान दो निर्देशाकों द्वारा निश्चित किया जाता है और इस प्रकार उसकी स्थिति दो क्वान्टम सँख्याओं के मूल्यों द्वारा निश्चित की जाती है। अंत में, वास्तविक परमाणुओं के इलेक्ट्रानों के गुणों के अध्ययन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इलेक्ट्रान में एक और क्वान्टम भौतिकीय विशेषता होती है (तथाकथित प्रचक्रण (spin) देखिए § 30)। यह विशेषता आकाश में इलेक्ट्रान के स्थान से सम्बन्धित नहीं है। इस प्रकार वास्तविक परमाणु में इलेक्ट्रान की स्थिति पूर्ण रूप से व्यक्त करने के लिए चार क्वान्टम सँख्याओं के मूल्यों का ज्ञात होना आवश्यक है।

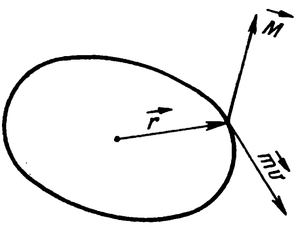
27. **मुख्य क्वान्टम सँख्या.** अतः, परमाणु के एकविम मॉडल में इलेक्ट्रान की ऊर्जा का केवल निश्चित मूल्य हो सकता है या दूसरे शब्दों में वह क्वान्टित होती है। वास्तविक परमाणु में भी इलेक्ट्रान की ऊर्जा क्वान्टित होती है। परमाणु में इलेक्ट्रान की सम्भव ऊर्जा-स्थितियाँ मुख्य क्वान्टम सँख्या n द्वारा निश्चित की जा सकती हैं, जिनका मूल्य धनात्मक पूर्ण सँख्या के रूप में होता है: 1, 2, 3..., इत्यादि। इलेक्ट्रान की सबसे कम ऊर्जा उस समय होती है जब $n=1$ होता है और n के बढ़ने के साथ इलेक्ट्रान की ऊर्जा भी बढ़ जाती है। इसलिए मुख्य क्वान्टम सँख्या के आधार पर निश्चित् की गई इलेक्ट्रान की स्थिति परमाणु में इलेक्ट्रान का ऊर्जा स्तर (energy level) कहलाता है। जब $n=1$ तो इलेक्ट्रान प्रथम ऊर्जा स्तर पर होता है और जब $n=2$ तो द्वितीय ऊर्जा स्तर पर इत्यादि।

मुख्य क्वान्टम सँख्या इलेक्ट्रान अभ्र का आकार भी निश्चित करती है। इलेक्ट्रान अभ्र के आकार को बड़ा करने के लिए उसे नाभिक से अधिक दूर ले जाना आवश्यक है। इसमें नाभिक और इलेक्ट्रान के मध्य स्थिर वैद्युत आकर्षण बल रूकावट डालता है, जिसको दूर करने के लिये ऊर्जा का खर्च होना आवश्यक है। अतएव, इलेक्ट्रान अभ्र का बड़ा आकार इस बात का सूचक है कि परमाणु में इलेक्ट्रान की बहुत अधिक ऊर्जा विद्यमान है और मुख्य क्वान्टम सँख्या n का मूल्य भी अधिक है: मुख्य क्वान्टम सँख्या के एक ही मूल्य वाले इलेक्ट्रान परमाणु में लगभग एक ही आकार के इलेक्ट्रान अभ्र बनाते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि परमाणु में मुख्य क्वान्टम सँख्या के निश्चित मूल्य वाले इलेक्ट्रान कोश (electron shell) होते हैं।

परमाणु में n के अलग-अलग मूल्यों वाले इलेक्ट्रान के विद्युत-स्तरों को निर्दिष्ट करने के लिए (यानी कि इलेक्ट्रान कोश के लिए) निम्न अक्षर स्वीकार किये गये है:

मुख्य क्वान्टम सँख्या n	1	2	3	4	5	6	7
विद्युत स्तर के प्रतीक	K	L	M	N	O	P	Q

28. **कक्षीय क्वान्टम सँख्या. इलेक्ट्रान अभ्रों के रूप.** परमाणु में केवल इलेक्ट्रान की ऊर्जा (और उससे सम्बन्धित इलेक्ट्रान अभ्र के आकार) का ही निश्चित मूल्य नहीं हो सकता। इलेक्ट्रान अभ्र का रूप भी स्वेच्छ नहीं होता। यह कक्षीय क्वान्टम सँख्या l (इसे दिगंशीय (azimuthal) भी कहा जाता है) द्वारा निश्चित की जाती है, जिसका मूल्य 0 से $(n-1)$ तक पूर्ण सँख्या के रूप में होता है; यहाँ n मुख्य क्वान्टम सँख्या है। n के अलग-अलग मूल्य l के अलग-अलग सम्भव मूल्यों को दर्शाते हैं। अतः $(n=1)$ के होने पर कक्षीय क्वान्टम सँख्या का केवल एक मूल्य ही सम्भव है: यानी कि $0 (l=0)$; और $n=2$ होने पर l या तो 0 के बराबर होता है या 1 के बराबर होता है और $n=3$ होने पर l के सम्भव मूल्य हैं: 0, 1 और 2। सामान्यतः मुख्य क्वान्टम सँख्या n के दिये गये मूल्य का अर्थ है कक्षीय क्वान्टम सँख्या के अलग-अलग सम्भव मूल्य।



चित्र 7. गति की मात्रा का कक्षीय आघूर्ण।

यह निष्कर्ष कि परमाण्वीय इलेक्ट्रानिक अभ्र के रूप स्वेच्छ नहीं हो सकते, क्वान्टम सँख्या l के भौतिक अर्थ पर आधारित है। यही इलेक्ट्रान की गति की मात्रा के कक्षीय आघूर्ण का मूल्य निश्चित करती है। ऊर्जा की तरह यह मात्रा परमाणु में इलेक्ट्रान की स्थिति की क्वान्टम भौतिक विशेषता होती है।

यह स्मरण रहे कि केंद्र के गिर्द किसी एक कक्षा पर घूर्णनरत कण की गतिमात्रा का कक्षीय आघूर्ण का $\overleftarrow{M}$ गुणनफल $m\vec{v}\vec{r}$ होता है, जहाँ m — कण का द्रव्यमान है, $\vec{v}$ उसकी गति $\vec{r}$ — ध्रुवांतर है जो घूर्णन के केन्द्र को कण के साथ मिलाता है (चित्र 7)। यह नोट करना आवश्यक है कि $\vec{M}$ – सदिश मात्रा है एवं इस सदिश की दिशा उस समतल से समकोण पर है जिसमें सदिश $\vec{v}$ तथा $\vec{r}$ हैं।

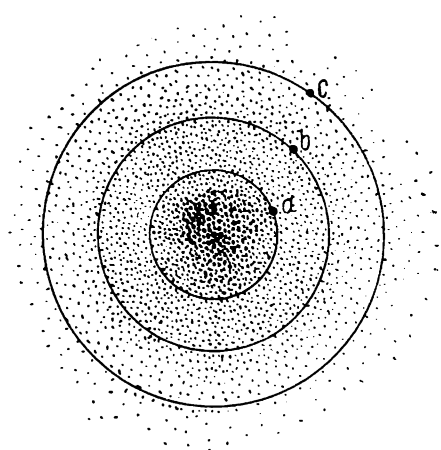
इलेक्ट्रान अभ्र के निश्चित रूप इलेक्ट्रान के लिये गति की मात्रा के कक्षीय आघूर्ण $\vec{M}$ का मूल्य काफी निश्चित होता है। लेकिन चूंकि $\vec{M}$ के केवल विविक्त मूल्य हो सकते हैं, जो कक्षीय क्वान्टम सँख्या l द्वारा निर्धारित होते हैं, तो इलेक्ट्रान अभ्रों के रूप स्वेच्छ नहीं हो सकते: l के प्रत्येक सम्भव मूल्य के लिये इलेक्ट्रान अभ्र का एक निश्चित रूप होता है।

हमें यह ज्ञात ही है कि परमाणु में इलेक्ट्रान की ऊर्जा मुख्य क्वान्टम सँख्या n पर निर्भर करती है। हाइड्रोजन के परमाणु में इलेक्ट्रान की ऊर्जा पूर्णतः n के मूल्य द्वारा निर्धारित होती है। लेकिन अनेक अभ्रों वाले परमाणुओं में इलेक्ट्रान की ऊर्जा कक्षीय क्वान्टम सँख्या l के मूल्य पर भी निर्भर करती है; जिसके कारणों का अध्ययन

§ 30 में किया गया है। इसलिये 1 के विभिन्न मूल्यों पर आधारित इलेक्ट्रान की स्थिति परमाणु में इलेक्ट्रान के ऊर्जा उपस्तर (energy substate) कहलाते हैं। इन उपस्तरों के प्रतीक निम्न हैं:

कक्षीय क्वान्टम सँख्या	0	1	2	3
ऊर्जा उपस्तर के प्रतीक	*s*	*p*	*d*	*f*

इन प्रतीकों के अनुसार *s*-उपस्तर, *p*–उपस्तर, इत्यादि होते हैं। दिगंशीय क्वान्टम सँख्या के 0, 1, 2 व 3 मूल्य वाले इलेक्ट्रान क्रमशः *s*–इलेक्ट्रान, *p*–इलेक्ट्रान, *d*–इलेक्ट्रान व *f*–इलेक्ट्रान कहलाते हैं। मुख्य क्वान्टम सँख्या *n* के दिए गए मूल्य के होने पर न्यूनतम ऊर्जा *s*–इलेक्ट्रानों की होती है, फिर *p*–, *d*–, तथा *f*–इलेक्ट्रानों की होती हैं।

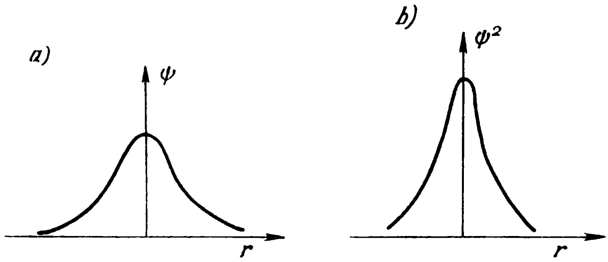


चित्र 8. इलेक्ट्रान के अभ्र के रूप एवं आकार।

परमाणु में *n* तथा *l* के निश्चित मूल्यों वाले इलेक्ट्रानों की स्थिति निम्न प्रकार लिखी जाती है: सब से पहले अक द्वारा मुख्य क्वान्टम सँख्या का मूल्य लिखा जाता है, और फिर अक्षर द्वारा कक्षीय क्वान्टम सख्या लिखी जाती है। इस प्रकार 2*p* उस इलेक्ट्रान को सम्बोधित करती है, जिसकी $n = 2$ तथा $l = 1$; और 3*d*–उस इलेक्ट्रान का प्रतीक है, जिसमें $n = 3$ तथा $l = 2$।

इलेक्ट्रान अभ्र की आकाश में एक निश्चित स्पष्ट सीमा नहीं होती, इसलिए उसके आकार व रूप को स्पष्टता से समझना आवश्यक है, उदाहरणतया, आइये, हाइड्रोजन के परमाणु में 1*s*–इलेक्ट्रान का इलेक्ट्रान अभ्र देखें (चित्र 8)। बिन्दु 'a' पर, जो नाभिक से कुछ दूरी पर है, इलेक्ट्रान अभ्र का घनत्व तरंग फलन के वर्ग ψ_a^2 द्वारा निश्चित किया जाता है। अब बिन्दु "a" में से समान इलेक्ट्रान घनत्व वाले पृष्ठ को गुजार दें, जो ψ_a^2 मूल्य वाले ही इलेक्ट्रान अभ्र के घनत्व के बिन्दुओं को मिलाता है। 1*s*–इलेक्ट्रान की स्थिति में ऐसा पृष्ठ गोल होता है, जिसके अन्दर इलेक्ट्रान अभ्र का कुछ भाग समाविष्ट है (चित्र 8 में इस गोलक का परिच्छेद, जो चित्र के पृष्ठ द्वारा किया गया है, गोलाई में है और यह गोलाई "a" बिन्दु में से गुजर रही है)। अब हम बिन्दु "b" लेते हैं जो नाभिक से अधिक दूरी पर है

श्रौर इसके बीच में से समान इलेक्ट्रान घनत्व वाले पृष्ठ को गुजारते हैं। इस पृष्ठ का रूप भी गोल ही होगा लेकिन इसमें "a" गोल की अपेक्षा इलेक्ट्रान अभ्र का अधिक भाग होगा। और, अंत में, किसी बिंदु "c" में से गुजर रहे समान इलेक्ट्रान घनत्व वाले पृष्ठ के अन्दर इलेक्ट्रान अभ्र का अधिकांश भाग समाविष्ट है। साधारणतया, इस पृष्ठ को इस प्रकार गुजारते हैं कि उसमें इलेक्ट्रान का 90% आवेश एवं द्रव्यमान आ जाए। ऐसा पृष्ठ "अंतरापृष्ठ" (interface) कहलाता है और इसी पृष्ठ का रूप एवं आकार ही इलेक्ट्रान अभ्र का रूप एवं आकार माना जाता है। 1*s*- इलेक्ट्रान का अंतरापृष्ठ भी गोलक होता है। लेकिन p – और d – इलेक्ट्रानों के अंतरापृष्ठों का रूप बहुत ही जटिल होता है (दे० नीचे)



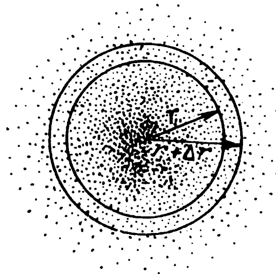
चित्र 9. 1*s* – इलेक्ट्रान के लिये ψ व ψ^2 फलनों के आरेख।

चित्र 9 में 1*s* – इलेक्ट्रान के लिए नाभिक से r दूरी के आधार पर तरंग फलन ψ (चित्र 9, a) तथा उसके वर्ग (चित्र 9, b) के मूल्य दिए गए हैं। दिए गए वक्र नापे जाने वाले फासले r की दिशा पर निर्भर नहीं करते। इसका अर्थ यह हुआ कि 1*s* – इलेक्ट्रान के इलेक्ट्रान अभ्र की गोलीय सममिति होती है, अर्थात् वह एक गोले के रूप में होती है। चित्र 9 "a" में वक्र फासले के अक्ष की एक ओर है (कोटि-अक्ष, axis of ordinate)। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 1*s* – इलेक्ट्रान का एक नियत चिन्ह होता है, जिसे हम धनात्मक मान लेते है।

चित्र 9 "b" से स्पष्ट है कि नाभिक से दूरी के बढ़ने से ψ^2 की मात्रा एकदिष्ट रूप से घटती है। इसका अर्थ यह हुआ कि नाभिक से दूरी बढ़ने के साथ 1*s* – इलेक्ट्रान के इलेक्ट्रान अभ्र का घनत्व कम हो जाता है। इसका प्रमाण हमें चित्र 5 से मिलता है।

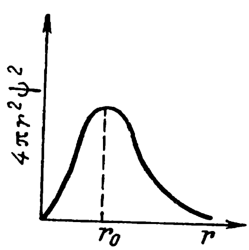
लेकिन इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं कि r के बढ़ने से 1*s* – इलेक्ट्रान के मिलने की प्रायिकता एकदिष्ट रूप से कम हो जाती है। चित्र 10 में एक महीन कोश r तथा $(r + \Delta r)$ त्रिज्या वाले गोलकों के बीच में है, यहाँ Δr – एक छोटी मात्रा है। इस गोलीय कोश में r के बढ़ने से इलेक्ट्रान अभ्र का घनत्व कम हो जाता है, लेकिन इस कोश का आयतन उसी समय बढ़ना शुरू हो जाता है, जो $4\pi r^2 \Delta r$ के

बराबर है। जैसा कि § 25 में बताया गया है कि ΔV कम आयतन में इलेक्ट्रान के मिलने की प्रायिकता $\psi^2 \Delta V$ के गुणनफल द्वारा निश्चित की जाती है। उपर्युक्त स्थिति में $\Delta V = 4\pi r^2 \Delta r$; अतएव, r एवं $(r + \Delta r)$ के बीच गोलीय कोश में इलेक्ट्रान के मिलने की प्रायिकता $4\pi r^2 \psi^2$ के अनुपात में होती है। इसमें r के बढ़ने से गुणक $4\pi r^2$ भी बढ़ जाता है और गुणक ψ^2 कम हो जाता है। r के कम मूल्य होने पर ψ^2 की अपेक्षा $4\pi r^2$ की मात्रा अधिक तेजी से बढ़ती है, और r के मूल्य के अधिक होने पर–विपरीत होता है। नाभिक से r दूरी पर इलेक्ट्रान के मिलने की प्रायिकता की विशेषता रखने वाला $4\pi r^2 \psi^2$ का गुणनफल r के बढ़ने से शिखर के बीच में से गुजरता है।



चित्र 10. 1s-इलेक्ट्रान का इलेक्ट्रानी अभ्र।

$1s$–इलेक्ट्रान के लिए r पर $4\pi r^2 \psi^2$ की निर्भरता चित्र 11 में दिखाई गई है (ऐसे आरेख इलेक्ट्रान के ज्ञात करने की प्रायिकता के त्रिज्या वितरण के आरेख कहलाते हैं)। जैसा कि चित्र 11 से स्पष्ट है, $1s$–इलेक्ट्रान को नाभिक से कम दूरी पर ज्ञात करने की प्रायिकता शून्य के बराबर है, क्योंकि r कम है। इलेक्ट्रान को ज्ञात करने की प्रायिकता नाभिक से बहुत अधिक दूरी पर भी नगण्य है: यहाँ गुणक ψ^2 शून्य के लगभग है (दे० चित्र 9" b") नाभिक से कुछ दूरी r_0 पर इलेक्ट्रान को ज्ञात करने की प्रायिकता का अधिकतम मूल्य होता है। हाइड्रोजन के परमाणु के लिए यह दूरी 0.053nm के बराबर होती है, जो नाभिक के समीपतम इलेक्ट्रान की कक्षा की (बोर द्वारा ज्ञात की गई) त्रिज्या के मूल्य के बराबर है। लेकिन इस मात्रा की परिभाषा बोर के सिद्धाँत व क्वान्टम यांत्रिकी के अनुसार भिन्न है। बोर के अनुसार हाइड्रोजन के परमाणुओं में इलेक्ट्रान नाभिक से 0.053nm की दूरी पर है, और क्वान्टम यांत्रिकी के अनुसार इस दूरी पर केवल इलेक्ट्रान के मिलने की अधिकतम प्रायिकता होती है।

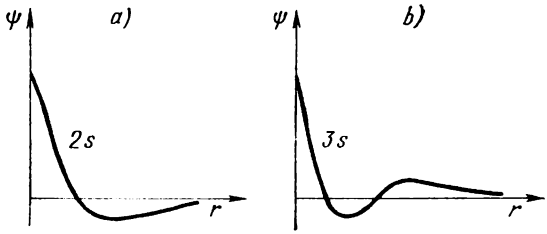


चित्र 11. 1s-इलेक्ट्रान के लिये प्रायिकता के त्रिज्या वितरण का आरेख।

$1s$–इलेक्ट्रानों की भाँति प्रथम, द्वितीय तथा अन्य कोशों वाले s–इलेक्ट्रानों में भी गोलीय सममिति होती है, अर्थात उनका रूप गोल होता है। लेकिन यहाँ तरंग फलन नाभिक से दूरी के बढ़ने के साथ बहुत ही जटिल रूप से बदलता है। जैसा कि चित्र 12 से स्पष्ट है कि $2s$-व $3s$-इलेक्ट्रानों के लिए r पर ψ की निर्भरता एकदिष्ट नहीं होती, और नाभिक से अलग-अलग दूरी पर तरंग फलन के अलग-अलग चिन्ह होते हैं तथा तदनुरूपी वक्रों पर निस्पंद बिन्दु (या निस्पंद) होते हैं, जिनमें तरंग फलन का मूल्य शून्य होता है। $2s$–इलेक्ट्रान में एक निस्पंद होता है तथा

3s – इलेक्ट्रान में 2 निस्पंद, इत्यादि। इसके अनुसार इलेक्ट्रान अभ्र की संरचना यहाँ उसी प्रकार 1s – इलेक्ट्रान की अपेक्षा अधिक जटिल होती है। चित्र 13 में उदाहरण के तौर पर 2s – इलेक्ट्रान के इलेक्ट्रान अभ्र का आरेख दिया गया है।

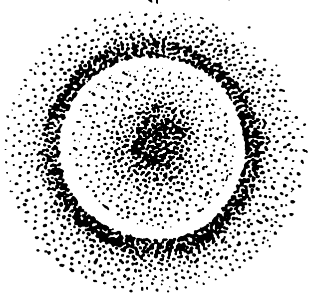
2s – तथा 3s – इलेक्ट्रानों की प्रायिकता के त्रिज्या-विस्तारण के आरेखों का रूप और भी जटिल होता है (दे० चित्र 14)। यहाँ, जैसा कि, 1s – इलेक्ट्रान में एक शिखर होता है, यहाँ क्रमशः दो या तीन शिखर होते हैं। और इसमें मुख्य शिखर



चित्र 12. 2s तथा 3s-इलेक्ट्रानों के लिये तरंग फलन का आरेख।

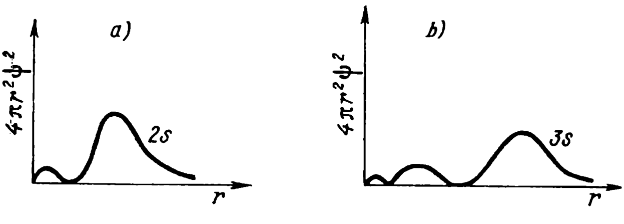
नाभिक से जितनी अधिक दूरी पर होगा, मुख्य क्वान्टम सँख्या n का मूल्य उतना ही अधिक होगा।

आइये, अब 2p इलेक्ट्रान के इलेक्ट्रान अभ्र की संरचना को देखें। किसी दिशा में नाभिक से दूरी बढ़ने पर 2p इलेक्ट्रान का तरंग फलन चित्र 15 'a' में दिए गए वक्र के अनुसार बदलता है। नाभिक के दूसरी ओर (चित्र में बायीं ओर) तरंग फलन ऋणात्मक है और वक्र पर निम्निष्ठ होता है, तथा निर्देशांक के आरम्भ में ψ का मूल्य शून्य हो जाता है, 1s – इलेक्ट्रानों की अपेक्षा, 2p – इलेक्ट्रानों के तरंग फलन की गोलीय सममिति नहीं होती। इसका कारण है कि शिखर की ऊँचाई (क्रमशः निम्निष्ठ की गहराई) चित्र 15 में ध्रुवांतर r की दिशा पर निर्भर करती है। किसी एक दिशा में (दिशा को निश्चित करने के लिए निर्देशांक अक्ष 'x' को उसकी दिशा मान लेते है) शिखर की ऊचाई अधिकतम होती है (चित्र 15 "a")। उन दिशाओं में, जो अक्ष "x" के साथ किसी कोण को बनाती हैं, शिखर की ऊँचाई उतनी ही कम होगी, जितना अधिक वह कोण होगा (चित्र 15 "b" और "c"); यदि वह कोण 90° का हो, तो ψ का मूल्य क्रमशः दिशा में शून्य होगा चाहे नाभिक से दूरी कितनी भी अधिक क्यों न हो।



चित्र 13. 2s-इलेक्ट्रान का इलेक्ट्रानी अभ्र।

$2p$– इलेक्ट्रान के लिए प्रायिकता के त्रिज्या विस्तारण का आरेख (चित्र 16) चित्र 15 से मिलता है। लेकिन इनमें निम्न भेद भी है: चित्र 16 में नाभिक से कुछ दूरी पर इलेक्ट्रान के मिलने की प्रायिकता धनात्मक है। प्रायिकता विस्तारण वक्र पर शिखर का स्थान दिशा के चयन पर निर्भर नहीं करता। लेकिन शिखर की ऊँचाई दिशा पर निर्भर करती है: जब ध्रुवांतर अक्ष "x" से मिलता है तो यह

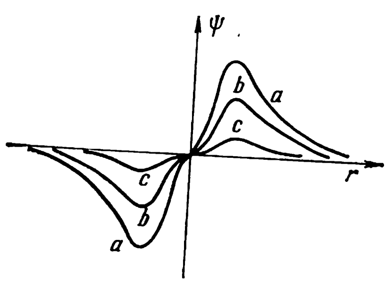


चित्र 14. $2s$ तथा $3s$-इलेक्ट्रानों के लिये प्रायिकता के त्रिज्या विस्तारण के आरेख।

ऊँचाई अधिकतम होती है, तथा जब ध्रुवांतर इस दिशा से हट जाता है तो यह ऊँचाई भी कम हो जाती है।

$2p$ – इलेक्ट्रान के मिलने की प्रायिकता के विस्तारण का तदनुरूप इलेक्ट्रान अभ्र जुड़वां नाशपाती जैसा होता है। (चित्र 17)।

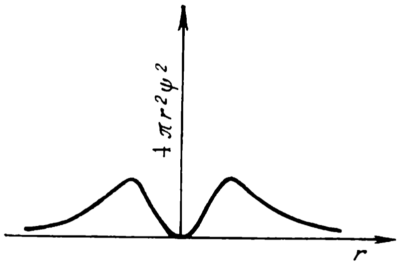
जैसा कि विदित है कि इलेक्ट्रान अभ्र अक्ष "x" के समीप सकेन्द्रित है, और yz समतल पर, जो अक्ष "x" पर लम्ब है, इलेक्ट्रान अभ्र नहीं है। और यहाँ $2p$ – इलेक्ट्रान के मिलने की प्रायिकता शून्य है। चित्र 17 में "+" तथा "—" चिन्ह इलेक्ट्रान के मिलने की प्रायिकता को सम्बोधित नहीं कर रहे हैं (वह तो हमेशा ही धनात्मक है), बल्कि तरंग फलन ψ को दर्शाते हैं जो इलेक्ट्रान अभ्र के विभिन्न भागों में विभिन्न चिन्ह रखता है।



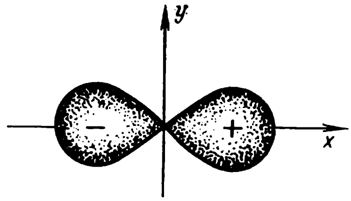
चित्र 15. $2p$-इलेक्ट्रान के तरंग फलन का आरेख।

चित्र 17 में $2p$ – इलेक्ट्रानों के ही नहीं बल्कि तृतीय व अन्य कोशों के p – इलेक्ट्रानों के इलेक्ट्रान अभ्र के रूप से मिलता-जुलता चित्र प्रस्तुत किया गया है। लेकिन यहाँ प्रायिकता के त्रिज्या विस्तारण के आरेखों का और अधिक जटिल रूप है: चित्र 16 के दक्षिण पक्ष में दिखाए गए एक शिखर की अपेक्षा यहाँ क्रमश: स्थान पर दो शिखर ($3p$ – इलेक्ट्रान), तीन शिखर ($4p$ – इलेक्ट्रान), इत्यादि हैं। और इसके साथ-साथ सबसे बड़ा शिखर नाभिक से अधिक दूरी पर है।

d – इलेक्ट्रानों ($l = 2$) के इलेक्ट्रान अभ्र का रूप तो इससे भी अधिक जटिल होता है। इनमें से प्रत्येक का रूप "चार पंखड़ीनुमा" आकार का है और तरंग फलन के चिन्ह इन "पंखड़ियों में" बारी-बारी से आते हैं। (दे० चित्र 18)।

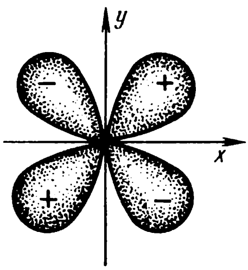


चित्र 16. $2p$-इलेक्ट्रान के लिये प्रायिकता के त्रिज्या विस्तारण का आरेख। (ऊध्र्वाक्ष पर पढ़ें $4\pi r^2\psi^2$)



चित्र 17. $2p$-इलेक्ट्रान के इलेक्ट्रानी अभ्र का आरेख।

29. **चुम्बकीय और प्रचक्रण क्वान्टम सँख्या**. पिछले पाठों से हमें यह स्पष्ट हो गया है कि परमाणु में इलेक्ट्रान अभ्रों के आकार एवं रूप स्वेच्छ नहीं होते बल्कि क्वान्टम सँख्याओं n और l के सम्भव मूल्यों पर निर्भर करते हैं। श्रेडिन्गेर समीकरण से निष्कर्ष निकलता है कि आकाश में भी इलेक्ट्रान अभ्र का अभिविन्यास (orientation) स्वेच्छ नहीं होता, वह एक तीसरी तथाकथित चुम्बकीय क्वान्टम सँख्या m पर निर्भर करता है।



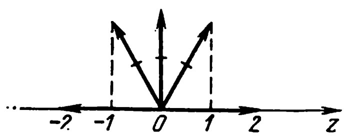
चित्र 18. 3d-इलेक्ट्रान के इलेक्ट्रानी अभ्र का आरेख।

चुम्बकीय क्वान्टम सँख्या का मूल्य कोई भी पूर्ण सँख्या, धनात्मक एवं ऋणात्मक, तथा $+l$ से $-l$ तक, हो सकती है। इस प्रकार, l के विभिन्न मूल्यों के लिए m के मूल्य भी विभिन्न हो सकते हैं। अतः, s – इलेक्ट्रानों ($l = 0$) के लिए m का केवल एक ही मूल्य सम्भव है ($m = 0$); p — इलेक्ट्रानों ($l = 1$) के लिए m के तीन मूल्य सम्भव हैं ($-1, 0, +1$); $l = 2$ होने पर (d – इलेक्ट्रानों) m के पाँच विभिन्न मूल्य हो सकते हैं ($-2, -1, 0, +1, -2$)। वैसे, साधारणतया, l के कोई निश्चित मूल्य होने पर चुम्बकीय क्वान्टम सँख्या के ($2l + 1$) मूल्य सम्भव हैं, यानी इलेक्ट्रान अभ्र के आकाश में ($2l + 1$) स्वरूप सम्भव हैं।

हमें ज्ञात ही है कि इलेक्ट्रान कीं गति की मात्रा का कक्षीय आघूर्ण $\vec{M}$ सदिश है, जिसकी मात्रा क्वान्टित है और यह कक्षीय क्वान्टम सँख्या l द्वारा निश्चित की जाती है। श्रेडिन्गेर समीकरण से स्पष्ट है कि इस सदिश की मात्रा ही नहीं बल्कि दिशा भी, जो इलेक्ट्रान अभ्र के आकाश अभिविन्यास के लिये वैशिष्ट्य है, स्वेच्छ

नहीं हो सकती, अर्थात् क्वान्टित है। $\vec{M}$ सदिश की स्वीकृत दिशाएँ ही चुम्बकीय क्वान्टम सँख्या m के मूल्यों द्वारा निश्चित की जाती हैं।

आइये, m के कुछ सम्भव मूल्यों को निम्न प्रकार समझें। उदाहरणत: में आकाशः कोई दिशा, जेसे z-अक्ष, लेते हैं। प्रदत्त दैर्ध्य (विचाराधीन स्थिति में – कक्षीय क्वांटम संख्या l*) के सदिश की प्रत्येक दिशा के अनुरूप z-अक्ष पर उसका एक निश्चित प्रक्षेप होगा है। श्रेडिंगेर समीकरण से स्पष्ट है कि ये दिशाएँ केवल ऐसी हो सकती हैं जिनमें z अक्ष पर सदिश का प्रक्षेपण एक पूर्ण सँख्या (धनात्मक या ऋणात्मक) या शून्य हो। इस प्रक्षेपण का मूल्य ही चुम्बकीय क्वान्टम सँख्या m है। चित्र 19 में वे स्थितियाँ दिखाई गई हैं जब $l = 2$ हो ; यहाँ $m = 2$ यदि z अक्ष की दिशा एवं l सदिश की दिशाएँ मिल जाती हैं ; $m = -2$, जब ये दिशाएँ विपरीत हों ; $m = 0$ होगा, यदि z अक्ष पर l सदिश लम्ब हो। m के ± 1 मूल्य होने के लिए l सदिश की अन्य दिशाएँ भी सम्भव हैं। इस प्रकार, चुम्बकीय क्वान्टम सँख्या के $(2l+1)$ मूल्य हो सकते हैं।



चित्र 19. चुम्बकीय क्वान्टमी संख्या के मूल्यों का सैट। तीर द्वारा गति की मात्रा के कक्षीय आघूर्ण की स्वीकृत दिशाएं दिखायी गयी हैं।

क्वान्टम सँख्या m का नाम चुम्बकीय इसलिए रखा गया कि इलेक्ट्रान द्वारा पैदा किये जाने वाले चुम्बकीय क्षेत्र एवं बाहरी चुम्बकीय क्षेत्र की परस्पर क्रिया इसके मूल्य पर निर्भर करती है। यदि बाहरी चुम्बकीय क्षेत्र न हो, तो इलेक्ट्रान परमाणु में m के मूल्य पर निर्भर नहीं करता। इस स्थिति में समान n एवं l मूल्यों तथा m के विभिन्न मूल्यों वाले इलेक्ट्रानों की ऊर्जा समान होती हैं।

लेकिन इलेक्ट्रान पर बाहरी चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव द्वारा परमाणु में इलेक्ट्रान की ऊर्जा बदल जाती है और m के मूल्य द्वारा पृथक किये जाने वाले इलेक्ट्रान की अवस्थाएँ ऊर्जा द्वारा भी पृथक की जाती हैं। इसका कारण है कि बाहरी चुम्बकीय क्षेत्र एवं इलेक्ट्रान के चुम्बकीय क्षेत्र की प्रतिक्रिया की ऊर्जा चुम्बकीय क्वान्टम सँख्या के मूल्य पर निर्भर करती है। यही कारण है कि चुम्बकीय क्षेत्र में कुछ परमाण्वीय स्पेक्ट्रमी रेखाओं का विपाटन हो जाता है: परमाणु के स्पेक्ट्रम में एक रेखा के स्थान पर अनेक रेखाएँ बन जाती हैं (तथाकथित ज़ीमन प्रभाव)।

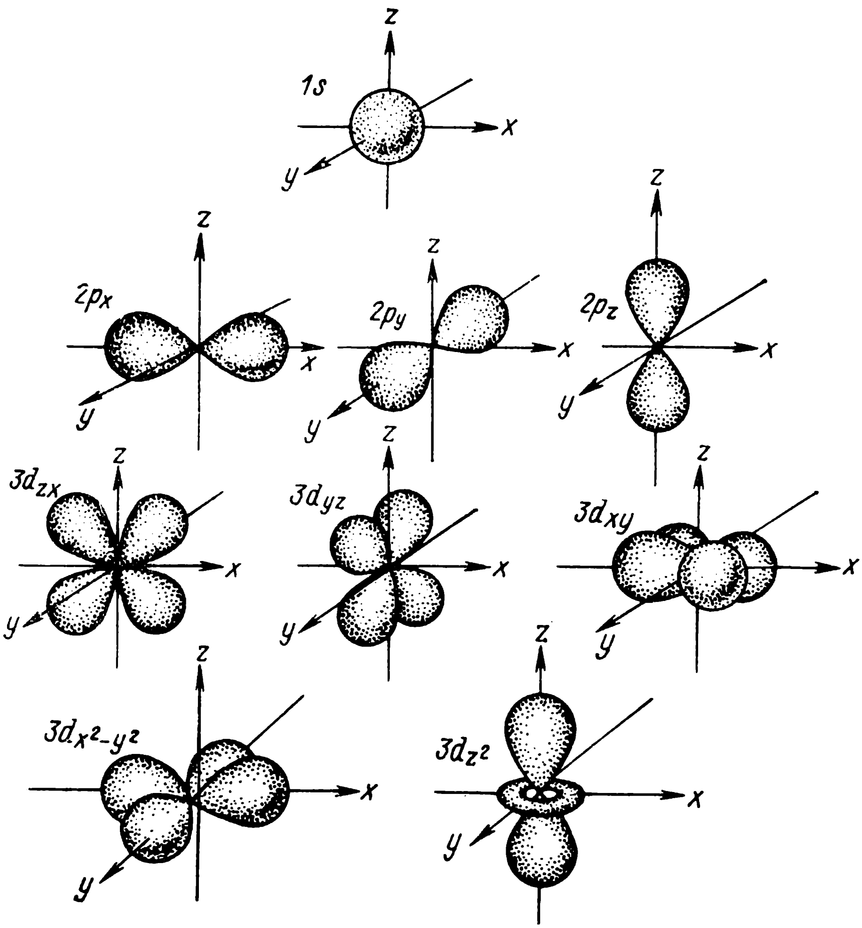
परमाणु में इलेक्ट्रान की अवस्था, जो n, l एवं m क्वान्टम सँख्याओं के निश्चित मूल्यों द्वारा व्यक्त की जाती है, अर्थात्, इलेक्ट्रान अभ्र के आकाश में निश्चित् आकार,

---

*और अधिक ध्यान इस बात पर देना चाहिए कि z अक्ष का प्रक्षेपण कक्षीय क्वान्टम सँख्या l का नहीं बल्कि इसके आधार पर ज्ञात किया गया गति की मात्रा के कक्षीय आघूर्ण $\vec{M}$ का है।

रूप व अभिविन्यास द्वारा व्यक्त की जाती है, का नाम परमाणु का इलेक्ट्रान कक्षक (atomic electron orbital) है।

चित्र 20 में 1s, 2p, 3d – कक्षकों वाले इलेक्ट्रान अभ्र के आकाश में उनके रूप व अवस्था का चित्र है।



चित्र 20. 1s, 2p-तथा 3d-इलेक्ट्रानों के इलेक्ट्रानी अभ्रों के रूप एवं आकाश में अभिविन्यास।

चूंकि s–अवस्था ($l = 0$) के लिए चुम्बकीय क्वान्टम सँख्या का केवल एक मूल्य ही है ($m = 0$) तो आकाश में s — इलेक्ट्रान अभ्र की सभी स्थितियाँ समान होंगी। p = कक्षक ($l = 1$) वाले इलेक्ट्रान अभ्र के m के तीन विभिन्न मूल्य हो सकते हैं, तो आकाश में वे तीन प्रकार से हो सकते हैं (चित्र 20)। इस बीच ये तीनों p-

इलेक्ट्रान अभ्रों का अभिविन्यास परस्पर लम्ब दिशाओं में किया गया है, जिन्हें, साधारणतया, निर्देशांकों का अक्ष (x, y तथा z) समझा जाता है; इलेक्ट्रानों की क्रमश: अवस्थाओं को p_x, p_y तथा p_z द्वारा लिखा जाता है। d-कक्षक ($l = 2$) के लिए चुम्बकीय क्वान्टम सँख्या m के पाँच मूल्य सम्भव हैं, और, आकाश में d-इलेक्ट्रान अभ्रों के पाँच विभिन्न अभिविन्यास सम्भव हैं।

परमाण्वीय स्पेक्ट्रमों के अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि n, l एवं m क्वान्टम सँख्याओं के अतिरिक्त इलेक्ट्रान की एक और वैशिष्ट्य क्वान्टम सँख्या है जो नाभिक के इर्द-गिर्द इलेक्ट्रान की गति से सम्बंधित नहीं है, बल्कि उसकी निजी अवस्था से संबन्ध रखती है। इसका नाम रखा गया – प्रचक्रण क्वान्टम सँख्या या केवल प्रचक्रण (spin)। इसे सामान्यत: "s" द्वारा लिखा जाता है। इलेक्ट्रान के प्रचक्रण के केवल दो मूल्य ही हो सकते है: $+1/2$ या $-1/2$; इस प्रकार, अन्य क्वान्टम सँख्याओं की भाँति, प्रचक्रण क्वान्टम संख्या के सम्भव मूल्य एक युनिट द्वारा पृथक् होते हैं।

l मूल्य द्वारा निश्चित किये जाने वाले गति की मात्रा के कक्षीय आघूर्णों के अतिरिक्त इलेक्ट्रान की गति की मात्रा का निजी आघूर्ण भी होता है जो साधारण रूप से देखा जाए तो इलेक्ट्रान के अपने अक्ष के चारों ओर घूमने के फलस्वरूप होता है। इलेक्ट्रान की गति की मात्रा के निजी आघूर्ण के किसी एक दिशा पर प्रक्षेपण (उदाहरणतया, z अक्ष पर) ही प्रचक्रण कहलाता है।

चार क्वान्टम सँख्याएँ – n, l, m और s – पूर्ण रूप से परमाणु में इलेक्ट्रान की अवस्था निश्चित करती हैं।

30. **बहुइलेक्ट्रानिक परमाणु.** हाइड्रोजन के परमाणु में इलेक्ट्रान बल क्षेत्र में स्थित है और यह बल क्षेत्र नाभिक द्वारा बनाया गया है। बहुइलेक्ट्रानिक परमाणुओं में प्रत्येक इलेक्ट्रान पर नाभिक ही नहीं बल्कि अन्य सभी इलेक्ट्रान भी अपना प्रभाव डालते हैं। प्रत्येक इलेक्ट्रान का इलेक्ट्रान अभ्र अन्य इलेक्ट्रानों के अभ्रों के साथ मिलकर एक बहुइलेक्ट्रान अभ्र बनाता है। ऐसी जटिल प्रणालियों के लिए श्रेडिन्गेर समीकरण को हल करने में काफी समस्याएँ आ जाती हैं तथा, नियमानुसार, यह असम्भव हो जाता है। इसलिए जटिल परमाणुओं व अणुओं में इलेक्ट्रानों की अवस्था श्रेडिन्गेर समीकरण के लगभग मूल्य द्वारा ही निश्चित की जाती है।

इस समीकरण के हल के सभी तरीकों में आम तरीका तथाकथित एकइलेक्ट्रानिक लगभग मूल्य है, यानी, यह परिकल्पना कि बहुइलेक्ट्रानिक प्रणाली का तरंग फलन अलग-अलग इलेक्ट्रानों के तरंग फलनों के योग के रूप में लिखा जा सकता है। इस प्रकार, परमाणु में स्थिति प्रत्येक इलेक्ट्रान के लिये श्रेडिन्गेर समीकरण का हल किया जा सकता है। इस इलेक्ट्रान की अवस्था n, l, m, एवं s क्वान्टम सँख्याओं के मूल्यों द्वारा निश्चित् की जाती है। लेकिन इस सब के बावजूद, श्रेडिन्गेर समीकरण बहुइलेक्ट्रानिक परमाणु एवं अणुओं के लिए काफी जटिल कार्य प्रस्तुत करता है और काफी

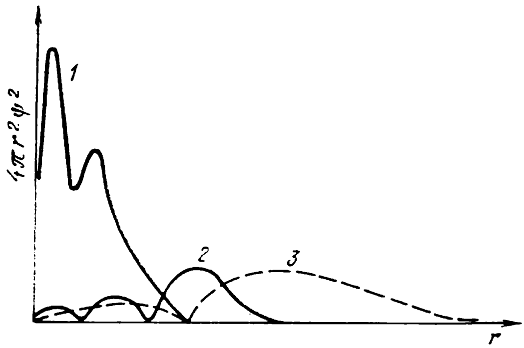
कठिन परिकलनों को करना पड़ता है। आजकल ये परिकलन कम्प्यूटरों की सहायता से किए जाते है और यही कारण है कि सभी तत्वों के परमाणुओं के लिए तथा अनेक अणुओं के लिये ये परिकलन किये जा चुके हैं।

बहुइलेक्ट्रानिक परमाणुओं के स्पेक्ट्रम के अध्ययन से यह सिद्ध हुआ कि इलेक्ट्रान की ऊर्जा अवस्था मुख्य क्वान्टम सँख्या n पर ही नहीं, बल्कि कक्षीय क्वान्टम सँख्या l पर भी निर्भर करती है। इसका कारण यह है कि परमाणु में इलेक्ट्रान न केवल नाभिक की ओर आकृष्ट होता है बल्कि नाभिक व उसके बीच स्थित अन्य इलेक्ट्रानों द्वारा प्रतिकर्षित भी होता है। आन्तरिक इलेक्ट्रान कोश एक अपने ही ढंग का आवरण बना देते हैं जो नाभिक और इलेक्ट्रान के आकर्षण को क्षीण कर देता है या, जैसा कहा जाता है, नाभिकीय आवेश से संयोजकता इलेक्ट्रान (outer shell electron) का आवरण कर देता है। इस बीच, विभिन्न कक्षीय क्वान्टम सँख्या l वाले इलेक्ट्रानों का आवरण एक समान नहीं होता।

अतएव, सोडियम के परमाणु में (क्रम सँख्या $Z = 11$) नाभिक के समीपतम K-एवं L-कोशों में दस इलेक्ट्रान हैं, ग्यारहवाँ इलेक्ट्रान M-कोशों में स्थित है ($n = 3$)। चित्र 21 में वक्र 1 सोडियम के परमाणु में दस "आन्तरिक" इलेक्ट्रानों (inner shell electron) के कुल इलेक्ट्रानिक अभ्र के लिये प्रायिकता की त्रिज्या विस्तारण दर्शाता है: नाभिक के समीपतम स्थित इलेक्ट्रानिक घनत्व का शिखर K-कोश के अनुरूप है, दूसरा शिखर $-L$-कोश के अनुरूप है। सोडियम के परमाणु के संयोजकता इलेक्ट्रान के अभ्र का अधिकाँश भाग आन्तरिक इलेक्ट्रानों द्वारा घेरे गये क्षेत्र के बाहर है और, इसलिये, उसका आवरण काफी दृढ़ होता है। लेकिन इस इलेक्ट्रानिक अभ्र का कुछ भाग उस आकाश (space) में भी प्रवेश कर जाता है, जिसमें आन्तरिक इलेक्ट्रान स्थित है और इस प्रकार उसका आवरण क्षीण होता है।

सोडियम के परमाणु में संयोजकता इलेक्ट्रान की $-3s$, $3p$ या $3d$ – सम्भव अवस्थाओं में से कौन-सी आवस्था का आवरण अधिक क्षीण होता हैं और अतः, नाभिक की ओर सर्वाधिक अकर्षण होता है तथा इलेक्ट्रान की ऊर्जा कम होती है? जैसा कि चित्र 21 से स्पष्ट है, $3s$-इलेक्ट्रानों का इलेक्ट्रान अभ्र काफी हद तक K-एवं L-कोशों के इलेक्ट्रानों द्वारा घेरे गये क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है, और इसी कारणवश् $3p$-इलेक्ट्रान के इलेक्ट्रान अभ्र की अपेक्षा उसका आवरण अधिक क्षीण होता है। अतएव, $3p$-अवस्था वाले इलेक्ट्रान की अपेक्षा $3s$ — अवस्था में स्थित इलेक्ट्रान अधिक तीव्रता से नाभिक की ओर आकृष्ट होगा एवं उसकी ऊर्जा कम होगी। $3d$-कक्षक का इलेक्ट्रान अभ्र वास्तव में पूर्णतया आन्तरिक इलेक्ट्रानों द्वारा घेरे गये क्षेत्र के बाहर है और इसका काफी हद तक आवरण होता है तथा यह नाभिक की ओर बहुत ही क्षीण आकर्षण रखता है। यही कारण है कि सोडियम के परमाणु की स्थायी अवस्था संयोजकता इलेक्ट्रान की $3s$ कक्षा में उपस्थिति के अनुकूल है।

इस प्रकार, बहुइलेक्ट्रानिक परमाणुओं में इलेक्ट्रान की ऊर्जा केवल मुख्य क्वान्टम सँख्या पर ही निर्भर नहीं करती बल्कि कक्षीय क्वान्टम सँख्या पर भी निर्भर करती है। यहाँ मुख्य क्वान्टम सँख्या केवल एक निश्चित ऊर्जा-पट्टिका (energy band) ही निर्धारित करती है, जिसके अन्तर्गत l मात्रा द्वारा इलेक्ट्रान की ऊर्जा का सही मूल्य ज्ञात किया जाता है। इसके फलस्वरूप ऊर्जा के उपस्तरों के अनुसार ऊर्जा की वृद्धि लगभग निम्न क्रम में होती है: (इसी प्रकार, दे० चित्र 22, पृ० 107) $1s < 2s < 2p < 3s < 3p < 4s < 3d < 4p < 5s < 4d < 5p < 6s < 4f \approx 5d < < 6p < 7s < 5f \approx 6d < 7p$



चित्र 21. सोडियम के परमाणु में प्रायिकता के त्रिज्या विस्तारण का आरेख।
1–K-तथा L-कोशों के दस इलेक्ट्रानों के लिये; 2–3s-इलेक्ट्रानों के लिये; 3–3p- इलेक्ट्रानों के लिये।

31. **पाउली सिद्धाँत** (Pauli principle). **परमाणुओं की इलेक्ट्रान संरचना एवं तत्वों की आवर्त प्रणाली.** बहुइलेक्ट्रानिक परमाणु में इलेक्ट्रान की अवस्था ज्ञात करने के लिए व० पाउली की निम्न धारणा (पाउली सिद्धाँत) काफी महत्व रखती है। इसके अनुसार परमाणु में ऐसे दो इलेक्ट्रान नहीं हो सकते जिनकी सभी चारों क्वान्टम सँख्याएँ एक समान हों। इससे निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक परमाण्वीय कक्षक, जिसके लिये n, l एवं m के निश्चित् मूल्य वैशिष्ट्य हैं, में दो से अधिक इलेक्ट्रान नहीं हो सकते, जिनके प्रचक्रणों के विपरीत चिन्ह हैं। ऐसे दो इलेक्ट्रान, जो एक ही कक्षक में स्थित हैं तथा जिनके प्रचक्रणों के विपरीत चिन्ह हैं, युग्मित कहलाते हैं। अन्य प्रकार हैं: एक (अयुग्मित) इलेक्ट्रान, जो किसी भी कक्षक में स्थित है।

आइये, पाउली सिद्धाँत की सहायता से यह ज्ञात करें कि परमाणु में विभिन्न ऊर्जा स्तरों एवं उपस्तरों पर इलेक्ट्रानों की अधिकतम सँख्या क्या हो सकती है।

जब $l=0$ है, ग्रर्थात s-उपस्तर पर, चुम्बकीय क्वान्टम सँख्या भी शून्य के बराबर है। ग्रतएव, s-उपस्तर पर केवल एक ही कक्षक है जो, सामान्यतः, एक कोष्ठिका के द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है ("क्वान्टम कोष्ठिका") : □। जैसा कि ऊपर बताया गया है, प्रत्येक परमाण्वीय कक्षक में दो से ग्रधिक इलेक्ट्रान नहीं हो सकते जिनके प्रचक्रण विपरीत दिशा में होते हैं। इसे निम्न प्रतीक द्वारा व्यक्त किया जा सकता है:

↑↓

इस प्रकार, s-उपस्तर पर प्रत्येक इलेक्ट्रानिक कोश में इलेक्ट्रानों की ग्रधिकतम सँख्या 2 के बराबर है। जब $l=1$ (p-उपस्तर) है तो चुम्बकीय क्वान्टम सँख्या के तीन विभिन्न मूल्य सम्भव हैं: $(-1, 0, +1)$। इस प्रकार, p-उपस्तर पर तीन कक्षक हैं; जिनमें से प्रत्येक में दो से ग्रधिक इलेक्ट्रान नहीं हो सकते। p-उपस्तर पर कुल छः इलेक्ट्रान हो सकते हैं:

↑↓	↑↓	↑↓

d-उपस्तर ($f=2$) में पाँच कक्षक हैं जो m के पाँच विभिन्न मूल्यों के ग्रनुरूप हैं। यहाँ इलेक्ट्रान की ग्रधिकतम सँख्या 10 के बराबर है:

↑↓	↑↓	↑↓	↑↓	↑↓

ग्रंत में, f-उपस्तर ($l=3$) पर 14 इलेक्ट्रान हो सकते हैं; सामान्यतः, किसी l कक्षीय क्वान्टम सँख्या वाले उपस्तर पर इलेक्ट्रानों की ग्रधिकतम सँख्या $2(2l+1)$ के बराबर होती है।

प्रथम ऊर्जा स्तर (K-कोश, $n=1$) में केवल s-उपस्तर होता है, द्वितीय ऊर्जा स्तर (L-कोश, $n=2$) s-एवं p-उपस्तरों से बनता है, इत्यादि। इसके ग्राधार पर, ग्राइये, एक तालिका बनाये जो विभिन्न इलेक्ट्रान कोशों में इलेक्ट्रानों की ग्रधिकतम सँख्या बतायें (पृ० 101 पर तालिका 2)

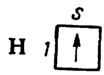
जैसा कि तालिका 2 से स्पष्ट है कि प्रत्येक ऊर्जा स्तर पर इलेक्ट्रानों की ग्रधिकतम सँख्या $2n^2$ के बराबर है, जहाँ n-मुख्य क्वान्टम सँख्या का ग्रनुरूप मूल्य है। ग्रतः, K-कोश में ग्रधिकतम दो इलेक्ट्रान $(2\cdot1^2=2)$ हो सकते है; L-कोश में–8 इलेक्ट्रान $(2\cdot2^2=8)$, M-कोश में–18 इलेक्ट्रान $(2\cdot3^2=18)$, इत्यादि। यह नोट कर लेना चाहिये कि इस प्रकार प्राप्त सँख्याएँ ग्रावर्त्त प्रणाली के ग्रावर्तकों में इलेक्ट्रानों की सँख्याग्रों से मिलती हैं।

तालिका 2

परमाण्वीय ऊर्जा स्तरों व उपस्तरों पर इलेक्ट्रानों की अधिकतम सँख्या

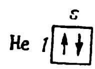
ऊर्जा स्तर	ऊर्जा उपस्तर	चुम्बकीय क्वान्टम सँख्या के सम्भव मूल्य	कक्षों की सँख्या		इलेक्ट्रानों की अधिकतम सँख्या	
			उपस्तर पर	स्तर पर	उपस्तर पर	स्तर पर
$K (n=1)$	$s (l=0)$	0	1	1	2	2
$L (n=2)$	$s (l=0)$ $p (l=1)$	0 $-1, 0, +1$	1 3	4	2 6	8
$M (n=3)$	$s (l=0)$ $p (l=1)$ $d (l=2)$	0 $-1, 0, +1$ $-2, -1, 0, +1, +2$	1 3 5	9	2 6 10	18
$N (n=4)$	$s (l=0)$ $p (l=1)$ $d (l=2)$ $f (l=3)$	0 $-1, 0, +1$ $-2, -1, 0, +1, +2$ $-3, -2, -1, 0, +1, +2, +3$	1 3 5 7	16	2 6 10 14	32

परमाणु में इलेक्ट्रान की सर्वाधिक स्थायी अवस्था इलेक्ट्रान की ऊर्जा के न्यूनतम सम्भव मूल्य के अनुरूप होती है। उस की अन्य कोई भी अवस्था उत्तेजित, अस्थायी n-अवस्था होती है: उसमें से इलेक्ट्रान सहजता से कम ऊर्जा वाली अवस्था में आ जाता है। अतः हाइड्रोजन के परमाणु में, जो उत्तेजित नहीं है, (नाभिकी आवेश $Z = 1$) एकमात्र इलेक्ट्रान ऊर्जा की सबसे कम सम्भव अवस्था में रहता है, अर्थात् $1s$ -- उपस्तर में है। हाइड्रोजन के परमाणु की इलेक्ट्रानिक संरचना को इस प्रकार दिखाया जा सकता है:



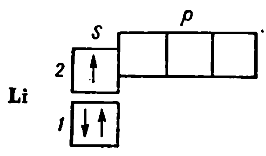
या निम्न प्रकार लिखा जा सकता है: $1s^1$ (जिसे 'एक एस एक' पढ़ा जाएगा)।

हीलियम के परमाणु में ($Z = 2$) दूसरा इलेक्ट्रान इसी प्रकार $1s$ अवस्था में है। उसकी इलेक्ट्रानिक संरचना ($1s^2$ – जो "एक एस दो" पढ़ी जाती है) निम्न रूप में व्यक्त की जाती है:



इस तत्व में नाभिक की समीपतम K-कोश की पूर्ति हो जाती है और इस प्रकार तत्त्व की प्रणाली का प्रथम आवर्तक भी पूर्ण हो जाता है।

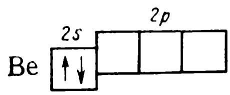
हीलियम के पश्चात अगला तत्त्व है लीथियम ($Z = 3$) जिसमें तीसरे इलेक्ट्रान के लिये K-कोश में कोई स्थान नहीं है: अन्यथा यह पाउली सिद्धाँत का विरोध होगा। इसलिये यह द्वितीय ऊर्जा स्तर (L-कोश, $n = 2$) की s – अवस्था में स्थान ग्रहण करता है। इसकी इलेक्ट्रानिक संरचना $1s^2 2s^1$ सूत्र द्वारा लिखी जाती है और निम्न आरेख के अनुरूप है:



इस आरेख में क्वान्टम कोष्ठकों की सँख्या एवं उनका स्थाननिर्धारण यह सिद्ध करता है कि: 1) लीथियम के परमाणु में इलेक्ट्रान दो ऊर्जा स्तरों में स्थित हैं, जिनमें पहला एक उपस्तर ($1s$) से बना है तथा जिसकी पूर्णतया पूर्त्ति हो गई है, 2) दूसरा – संयोजकता – बाह्य ऊर्जा स्तर (outer energy lend) अधिक ऊर्जा का अनुरूप है तथा दो उपस्तरों ($2s$ व $2p$) से बना है; 3) $2s$-उपस्तर एक कक्षक से बना हैं; जिसमें लीथियम के परमाणु का एक इलेक्ट्रान है; 4) $2p$ – उपस्तर में

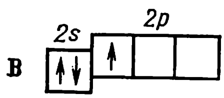
समान ऊर्जा वाले तीन कक्षक हैं, जो $2s$-कक्षकों की अपेक्षा, अधिक ऊर्जा के अनुरूप है; अनुत्तेजित अवस्था में लीथियम के अनुत्तेजित परमाणु में $2p$ – कक्षक रिक्त रहते हैं।

भविष्य में इलेक्ट्रानिक आरेखों में सरलता के लिये हम केवल उन्हीं उर्जा स्तरों को दिखाएँगे जिनकी पूर्त्ति नहीं हुई है। इस प्रकार, दूसरे आवर्तक के अगले तत्त्व बेरिलियम ($Z = 4$) की इलेक्ट्रानिक संरचना-निम्न आरेख द्वारा व्यक्त की जाती है।



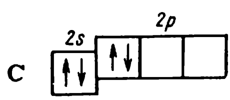
तथा $1s^2 2s^2$ सूत्र द्वारा लिखी जा सकती है। अतः, पहले आवर्तक की तरह दूसरे आवर्तक की रचना भी उन तत्त्वों से आरम्भ होती है जिनके शुरू में नये इलेक्ट्रान कोशों के इलेक्ट्रान आते हैं। संयोजकता इलेक्ट्रान कोश की संरचना में समानता के फलस्वरूप ऐसे तत्त्वों के रासायनिक गुणों में भी बहुत समानता आ जाती है। यही कारण है कि उन्हें s-इलेक्ट्रानों के आम परिवार में रखा जाता है।

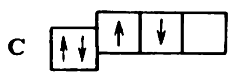
बेरिलियम के बाद आने वाला तत्त्व बोरॉन($Z = 5$) के परमाणु की इलेक्ट्रानिक संरचना निम्न आरेख द्वारा व्यक्त की जाती है:

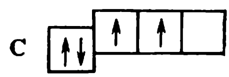


या $1s^2 2s^2 2p^1$ सूत्र द्वारा भी व्यक्त की जा सकती है।

नाभिक के आवेश को एक इकाई से और बढ़ाने पर अर्थात् कार्बन ($Z = 6$) पर पहुँचने पर $2p$-उपस्तर में इलेक्ट्रानों की सँख्या 2 हो जाती है। कार्बन के परमाणु की इलेक्ट्रानिक संरचना $1s^2 2s^2 2p^2$ सूत्र द्वारा लिखी जा सकती है। लेकिन इस सूत्र के लिये निम्न तीन आरेखों में से कोई भी आरेख अनुरूप हो सकता है:







आरेख (1) के अनुसार कार्बन के परमाणु में दोनों $2p$-इलेक्ट्रान एक ही कक्षक में स्थित हैं, यानी उनकी चुम्बकीय क्वान्टम सँख्याएँ समान हैं और प्रचक्रण की

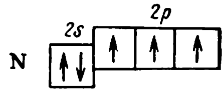
दिशाएँ विपरीत हैं। आरेख (2) से स्पष्ट है कि $2p$-इलेक्ट्रान – विभिन्न कक्षकों में स्थित हैं (अतः, उनमें m के विभिन्न मूल्य हैं) और उनके प्रचक्रणों की दिशाएँ भी विपरीत हैं; अंत में आरेख (3) से यह निष्कर्ष निकलता है कि दो $2p$-इलेक्ट्रान विभिन्न कक्षकों में है तथा इनके प्रचक्रण एक ही दिशा में हैं।

कार्बन के परमाण्वीय स्पेक्ट्रम के विश्लेषण से स्पष्ट है कि कार्बन के अनुत्तेजित परमाणु के लिये केवल अंतिम आरेख ही सही है, जो परमाणु के प्रचक्रण के योगफल के अधिकतम सम्भव मूल्य को दर्शाता है (यह परमाणु के सभी इलेक्ट्रानों के प्रचक्रणों का योगफल है; कार्बन के परमाणु के (1) एवं (2) आरेखों के लिये यह योगफल शून्य के बराबर है तथा आरेख (3) के लिये यह योगफल एक के बराबर है)।

कार्बन के परमाणु में इलेक्ट्रानों के स्थाननिर्धारण का यह क्रम उस सामान्य नियम की एक विशिष्ट स्थिति है जो हुंड नियम (Hund's rule) द्वारा व्यक्त किया जाता है: परमाणु की स्थायी अवस्था के लिये ऊर्जा उपस्तरों के अंतर्गत इलेक्ट्रानों का स्थाननिर्धारण इस प्रकार होता है कि परमाणु के प्रचक्रणों के योगफल का निरपेक्ष मान अधिकतम हो।

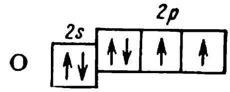
यह नोट कर लेना चाहिये कि हुंड नियम उपस्तरों के अन्तर्गत इलेक्ट्रानों का अन्य विधि द्वारा स्थान निर्धारण करने का विरोध नहीं करता। वह केवल इस बात का समर्थन करता है कि परमाणु के प्रचक्रणों के योगफल का अधिकतम मान केवल स्थायी परमाणु के लिये ही अनुरूप है, अर्थात् परमाणु की अनुत्तेजित अवस्था में ही जब परमाणु की न्यूनतम सम्भव ऊर्जा होती है। अन्य किसी भी रूप में इलेक्ट्रानों के स्थाननिर्धारण में परमाणु की ऊर्जा का मूल्य अधिक ही होगा, क्योंकि परमाणु उत्तेजित, अस्थायी अवस्था में होगा।

हुंड नियम का प्रयोग करके कार्बन से अगले तत्त्व नाइट्रोजन ($Z = 7$) के परमाणु की इलेक्ट्रानिक संरचना का आरेख बनाना कठिन नहीं है:

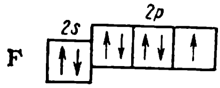


इस आरेख का सूत्र है: $1s^2 2s^2 2p^3$।

अब जबकि $2p$- कक्षकों में से प्रत्येक में एक-एक इलेक्ट्रान स्थित है, तो $2p$-कक्षकों में इलेक्ट्रानों का युग्मों में स्थाननिर्धारण आरम्भ हो जाता है। ऑक्सीजन ($Z = 8$) के परमाणु का सूत्र है: $1s^2 2s^2 2p^4$ और निम्न आरेख है:



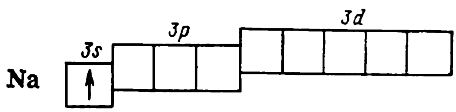
फ्लुग्रोरीन ($Z = 9$) में एक ग्रौर $2p$-इलेक्ट्रान की वृद्धि हो जाती है। उसकी इलेक्ट्रानिक संरचना का सूत्र है: $1s^2 2s^2 2p^5$ तथा निम्न ग्रारेख द्वारा व्यक्त की जाती है:

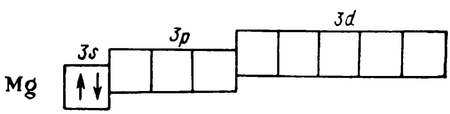


ग्रंत में, निग्रॉन ($Z = 10$) $2p$-उपस्तर की पूर्त्ति के साथ समाप्त हो जाता है ग्रौर इस प्रकार द्वितीय ऊर्जा स्तर (L-कोश) की पूर्त्ति हो जाती है एवं तत्त्वों की प्रणाली के दूसरे ग्रावर्तक की रचना भी संपूर्ण हो जाती है।

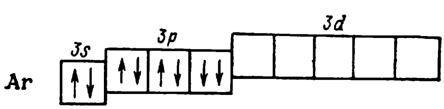
ग्रतः, बोरॉन ($Z = 5$) से ग्रारम्भ तथा निग्रॉन ($Z = 10$) पर समाप्त होकर संयोजकता इलेक्ट्रान कोश के p-उपस्तर की पूर्त्ति होती है। इस प्रकार, दूसरे ग्रावर्तक के इस भाग में स्थित तत्त्व p-तत्त्वों के परिवार के सदस्य हैं।

दूसरे ग्रावर्तक के ग्रारंभिक तत्त्वों – लिथियम एवं बेरिलियम – की भाँति सोडियम ($Z = 11$) तथा मैग्नीशियम ($Z = 12$) के परमाणुग्रों के संयोजकता कोश (outer shell) में क्रमशः एक ग्रौर दो इलेक्ट्रान हैं। उनकी इलेक्ट्रानिक संरचना के सूत्र क्रमशः इस प्रकार हैं: $1s^2 2s^2 2p^6 3s^1$ (सोडियम) तथा $1s^2 2s^2 2p^6 3s^2$ (मैग्नीशियम)। इनके ग्रारेख निम्न हैं:





ग्रागे, ऐलुमिनियम ($Z = 13$) से शुरू होकर $3p$-उपस्तर की पूर्त्ति होती है जो ग्रादर्श गैस ग्रॉर्गान ($Z = 18$) पर समाप्त होती है। इसकी इलेक्ट्रानिक संरचना का ग्रारेख है:

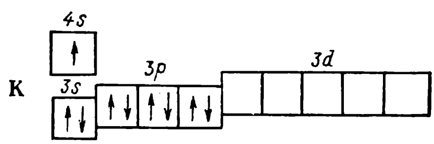


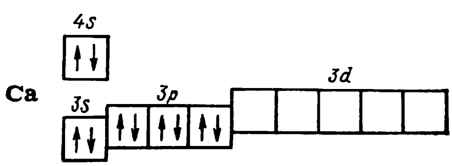
ग्रौर इसका सूत्र है: $1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3p^6$

इस प्रकार, दूसरे ग्रावर्तक की भाँति, तीसरा ग्रावर्तक दो s-तत्त्वों से ग्रारम्भ होता है जिसके बाद छः p-तत्त्व ग्राते हैं। ग्रतः, दूसरे एवं तीसरे ग्रावर्तकों के क्रमशः तत्त्वों के संयोजकता इलेक्ट्रानिक कोशों की संरचना समानरूपी होती है।

अतएव, लीथियम तथा सोडियम के परमाणुओं में संयोजकता इलेक्ट्रानिक कोशों में एक-एक s-इलेक्ट्रान है, और नाइट्रोजन व फास्फोरस के परमाणुओं में – दो s-इलेक्ट्रान तथा तीन p-इलेक्ट्रान हैं, इत्यादि। अन्य शब्दों में, नाभिक के आवेश में वृद्धि होने के साथ परमाणुओं के संयोजकता इलेक्ट्रानिक कोशों की इलेक्ट्रानिक संरचना की आवर्त रूप से पुनरावृत्ति होती है। आगे हम देखेंगे कि यह अन्य शेष आवर्तकों के तत्त्वों के लिये भी सही है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आवर्त प्रणाली में तत्त्वों का विस्तारण तत्त्वों के परमाणुओं की इलेक्ट्रानिक संरचना के अनुरूप है। लेकिन परमाणुओं की इलेक्ट्रानिक संरचना उनके नाभिक के आवेशों पर आधारित होती है और वह अपने क्रम में तत्त्वों व उनके यौगिकों के गुण निश्चित करती है। तत्त्वों के गुणों की उनके परमाणुओं के नाभिकों के आवेशों पर आवर्ती निर्भरता जो आवर्त नियम द्वारा व्यक्त की गई है, का सार इसी में विद्यमान है।

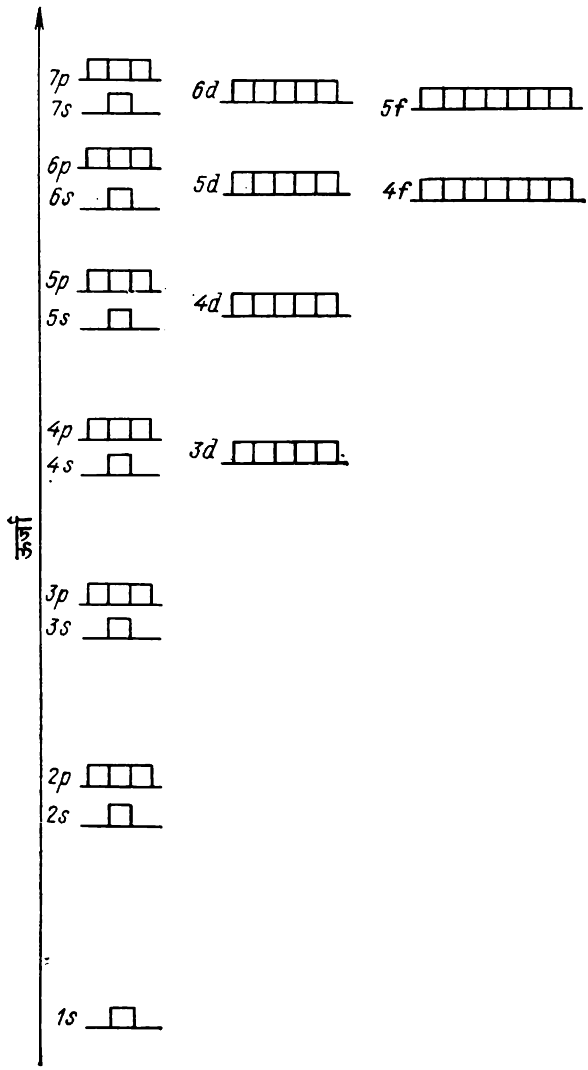
आइये, परमाणुओं की इलेक्ट्रानिक संरचना का अध्ययन जारी रखें। हम आॅर्गान के परमाणु पर रुके थे, जिसमें $3s$ तथा $3p$-उपस्तरों की पूर्णतया पूर्त्ति हो गई थी, लेकिन $3d$-उपस्तर के सभी कक्षक रिक्त रह गये थे। पर आॅर्गान के पश्चात स्थित पोटैशियम ($Z = 19$) तथा कैल्सियम ($Z = 20$) तत्त्वों में कुछ समय के लिये तृतीय इलेक्ट्रानिक कोश की पूर्त्ति होनी बंद हो जाती है तथा चतुर्थ कोश के s-उपस्तर की पूर्त्ति आरम्भ हो जाती है: पोटैशियम के परमाणु की इलेक्ट्रानिक संरचना का सूत्र है: $1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3p^6 4s^1$, एवं कैल्सियम का – $1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3p^6 4s^2$ और उनके आरेख निम्न हैं:





इलेक्ट्रानिक ऊर्जा उपस्तरों की पूर्त्ति के इस क्रम का कारण निम्न है: जैसा कि §30 में बतलाया गया था कि बहुइलेक्ट्रानिक परमाणुओं में इलेक्ट्रान ऊर्जा केवल मुख्य क्वान्टम सँख्या द्वारा ही नहीं बल्कि कक्षीय क्वान्टम सँख्या द्वारा भी निश्चित की जाती है। वहीं पर इलेक्ट्रान ऊर्जा की वृद्धि के आधार पर ऊर्जा स्तरों के स्थान-निर्धारण का क्रम भी बतलाया गया था। यही क्रम चित्र 22 (पृ० 107) पर दिया गया है।

जैसा कि चित्र 22 से स्पष्ट है कि 4*s*-उपस्तर की विशेषता 3*d*-उपस्तर की तुलना में कम ऊर्जा है, जिसका कारण है *s*-इलेक्ट्रानों की अपेक्षा *d*-इलेक्ट्रानों का अधिक स्पष्ट आवरण होना। इसी संदर्भ में पोटैशियम तथा कैल्सियम के परमाणुओं में संयोजकता इलेक्ट्रानों का 4*s*-उपस्तर पर स्थाननिर्धारण इन परमाणुओं की अधिक स्थायी अवस्था के अनुरूप है।



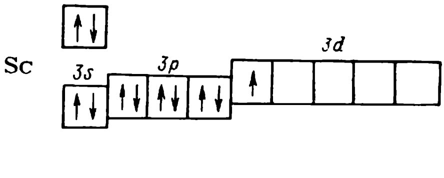
चित्र 22. परमाणु में इलेक्ट्रानी ऊर्जा उपस्तरो की पूर्ति का क्रम।

मुख्य क्वान्टम सँख्या तथा कक्षीय क्वान्टम सँख्या पर ग्राधारित परमाण्वीय इलेक्ट्रानिक कोशों की पूर्त्ति के क्रम का ग्रध्ययन सोवियत वैज्ञानिक व० म० क्लेच्कोवस्की ने किया, जिसने सिद्ध किया कि इलेक्ट्रान ऊर्जा की वृद्धि इन दो क्वान्टम सँख्याग्रों के योगफल के बढ़ने से होती है, ग्रर्थात् $(n+1)$ मात्रा से सम्बंधित है। इसके ग्राधार पर उसने निम्न धारणा प्रस्तुत की (क्लेच्कोवस्की का प्रथम नियम): परमाणु की नाभिक के ग्रावेश की पूर्त्ति का क्रम मुख्य क्वान्टम सँख्या तथा कक्षीय क्वान्टम सँख्या के योगफल $(n+1)$ के कम मान वाले कक्षकों से इस योगफल के ग्रधिक मान वाले कक्षकों की ग्रोर होता है।

पोटैशियम तथा कैल्सियम के परमाणुग्रों की इलेक्ट्रान संरचना इस नियम के ग्रनुरूप है। वस्तुतः, $3d$-कक्षकों $(n=3,\ l=2)$ के लिये यह योगफल $(n+1)$, 5 के बराबर है, ग्रौर $4s$-कक्षकों $(n=4,\ l=0)$ के लिये 4 के बराबर है। ग्रतः $4s$-उपस्तर की पूर्त्ति पहले होनी चाहिये ग्रौर $3d$-उपस्तर की पूर्त्ति बाद में। वस्तुतः, होता भी इसी क्रम में है।

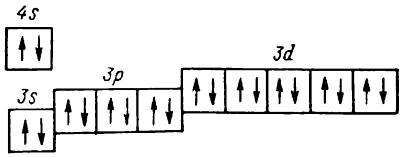
इस प्रकार, कैल्सियम के परमाणु में $4s$-उपस्तर की रचना संपूर्ण हो जाती है। किन्तु ग्रगले तत्त्व स्कैन्डियम $(Z=21)$ की स्थिति में एक प्रश्न उठता है: समान $(n+1)$ योगफलों वाले उपस्तरों $3d\,(n=3,\ l=2)$, $4p\,(n=4,\ l=1)$ या $5s$ $(n=5,\ l=0)$ में से कौन-से उपस्तर की पूर्त्ति होनी चाहिये? ज्ञात हुग्रा कि $(n+1)$ योगफल के समान मान होने पर इलेक्ट्रान ऊर्जा उतनी ही ग्रधिक होगी, जितना ग्रधिक मान मुख्य क्वान्टम सँख्या n का होगा। इसलिये ऐसी स्थितियों में ऊर्जा उपस्तरों की इलेक्ट्रानों द्वारा पूर्त्ति का क्रम क्लेच्कोवस्की के द्वितीय नियम द्वारा निश्चित किया जाता है, जिसके ग्रनुसार $(n+l)$ योगफल के समान मान होने पर कक्षकों की पूर्त्ति का क्रम मुख्य क्वान्टम सँख्या n के मान की बढ़ती दिशा में ही होता है।

इस नियम के ग्रनुसार $(n+l)=5$ स्थिति में पहले $3d\,(n=3)$ उपस्तर की पूर्त्ति होनी चाहिये, फिर $4p\,(n=4)$ उपस्तर की, ग्रौर ग्रंत में $5s\,(n=5)$ उपस्तर की पूर्त्ति होनी चाहिये। ग्रतः स्कैन्डियम के परमाणु में $3d$--कक्षक की पूर्त्ति पहले होनी चाहिये। उसकी इलेक्ट्रान संरचना का सूत्र है:
$1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3p^6 3d^1 4s^2$ * तथा निम्न ग्रारेख है:



* इलेक्ट्रानिक संरचना के सूत्रों में सर्वप्रथम क्रमानुसार n के दिए गए मान की सभी ग्रवस्थाएँ लिखी जाती हैं ग्रौर फिर n के ग्रधिक मान वाली ग्रवस्थाग्रों को

$3d$– उपस्तर की पूर्त्ति स्कैन्डियम में तथा इसके बाद आने वाले तत्वों टाइटेनियम, वैनेडियम इत्यादि में होती रहती है और इस उपस्तर की संपूर्ण पूर्त्ति जिंक ($Z = 30$) में होती है, जिस का आरेख है:

Zn 

तथा सूत्र है: $1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3p^6 3d^{10} 4s^2$

स्कैन्डियम से जिंक तक दस d- तत्त्व संक्रमण तत्त्वों (transition elements) में से हैं। गत तत्त्वों (s— तथा p— तत्वों) की तुलना में से पहले हैं हाँलाकि इनकी पूर्त्ति विपरीत दिशा में होती है। इन तत्त्वों के इलेक्ट्रानिक कोशों की विशेषता यह है कि एक d-तत्त्व से अगले d-तत्त्व पर जाते समय नया इलेक्ट्रान संयोजकता इलेक्ट्रानिक कोश ($n = 4$) की अपेक्षा बाहर से दूसरे इलेक्ट्रानिक कोश ($n = 3$) में उपस्थित हो जाता है। इसके अनुसार यह नोट करना आवश्यक है कि तत्त्वों के रासायानिक गुण सर्वप्रथम उनके परमाणुओं के संयोजकता इलेक्ट्रोनिक कोश की संरचना द्वारा निश्चित होते हैं और आन्तरिक इलेक्ट्रानिक कोशों की संरचना का असर केवल बहुत ही कम मात्रा में होता है। सभी संक्रमण तत्त्वों के परमाणुओं का संयोजकता इलेक्ट्रानिक कोश दो s-इलेक्ट्रानो से बना होता है*, जिसके कारण d-तत्त्वों के रासायनिक गुण परमाण्वीय सँख्या के बढ़ने से उतनी तेजी से नहीं बदलते, जितनी तेजी से s- तथा p-तत्त्वों के गुण बदलते हैं। सभी d-तत्त्व धातु होते हैं, जबकि संयोजकता p-उपस्तर की पूर्ति तत्त्व को धातु से विशिष्ट अधातु की ओर ले जाती है तथा अंत में आदर्श गैस पर ले आती है। $3d$-उपस्तर ($n = 3$, $l = 2$) की पूर्त्ति के बाद क्लेच्कोवस्की के द्वितीय नियम के अनुसार इलेक्ट्रान $4p$- उपस्तर ($n = 4$, $l = 1$) की पूर्त्ति आरम्भ कर देते हैं तथा इस प्रकार N-कोश की रचना पुनः शुरू हो जाती

लिखा जाता है। इसी कारणवश, सूत्रों के लिखने की क्रिया हमेशा ऊर्जा स्तरों की पूर्त्ति के क्रम से नहीं मिलती। जैसे, स्केन्डियम के परमाणु के सूत्र में $3d$- उपस्तर में इलेक्ट्रोन की पूर्त्ति - $4s$ उपस्तर से पहले लिखी है, हालांकि इन उपस्तरों की पूर्त्ति विपरीत क्रम में होती है।

* ऐसे d-तत्त्व हैं (जैसे, क्रोमियम मॉलिब्डेनम, ताम्र उपग्रुप के तत्त्व)। जिनके परमाणुओं में संयोजकता इलेक्ट्रानिक कोशों में केवल एक इलेक्ट्रान है। इलेक्ट्रानिक ऊर्जा उपस्तरों की पूर्त्ति के सामान्य क्रम से विचलन के कारण अनुच्छेद के अंत में दिये गये हैं।

है। यह क्रिया गैलियम ($Z = 31$) के परमाणु मे शुरू होती है तथा क्रिप्टॉन ($Z = 36$) पर समाप्त होती है, जिसकी इलेक्ट्रानिक संरचना का सूत्र है:

$1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3d^{10} 4s^2 4p^6$। पहले की आदर्श गैसों (निऑन, आॅर्गान) के परमाणुओं की भाँति क्रिप्टॉन के परमाणु के लिये संयोजकता इलेक्ट्रान कोश की रचना $ns^2\ np^6$ वैशिष्ट्य है, इसमें n-मुख्य क्वान्टम सँख्या है। (निऑन – $2s^2\ 2p^6$; आॅर्गान – $3s^2 3p^6$, क्रिप्टॉन –$4s^2 4p^6$)।

रूबिडियम से शुरू होकर $5s$ – उपस्तर की पुर्त्ति होती है जो क्लेच्कोवस्की नियम के अनुसार है। रूबिडियम ($Z = 37$) के परमाणु में क्षारीय धातु के लिये वैशिष्ट्य संरचना प्रस्तुत हो जाती है जिसके संयोजकता इलेक्ट्रानिक कोश में एक s-इलेक्ट्रान है। इसके साथ ही तत्त्वों की आवर्त प्रणाली के नये-पाँचवे आवर्तक के रचना आरम्भ हो जाती है। इसमें, चौथे आवर्त की तरह, संयोजकता से पहले का इलेक्ट्रानिक कोश के d-उपस्तर की पूर्त्ति नहीं होती। यह स्मरण रहे कि चौथे इलेक्ट्रानिक कोश में f-उपस्तर स्थित है लेकिन पाँचवे आवर्तक में इसकी पूर्त्ति नहीं होती।

स्ट्रॉन्शियम ($Z = 38$) के परमाणु में $5s$-उपस्तर में दो इलेक्ट्रान आते हैं, जिसके बाद $4d$ – उपस्तर की पूर्त्ति होती है और अगले दस तत्त्व (इट्रियम ($Z = 39$) से कैडमियम ($Z = 48$) तक) संक्रमण d तत्त्वों में से हैं। उसके पश्चात इंडियम से जीनॉन तक छः p-तत्त्व आते हैं जिनसे पाँचवाँ आवर्तक सम्पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार, अपनी रचना के आधार पर चौथा व पाँचवाँ आवर्तक समान हैं।

पहले आवर्तकों की भाँति छठा आवर्तक दो s-तत्त्वों (सीजियम व बेरियम) से शुरू होता है जिनसे 6 के बराबर $(n + l)$ योगफल वाले कक्षकों की पूर्त्ति भी संपूर्ण हो जाती है। अब क्लेच्कोवस्की नियमों के अनुसार $4f(n = 4,\ l = 3)$ उपस्तर जिसका $(n + l)$ योगफल 7 के बराबर है तथा मुख्य क्वान्टम सँख्या का न्यूनतम सम्भव मान है, की पूर्त्ति होनी चाहिये। वास्तव में, लैन्थेनम ($Z = 57$) जों बेरियम के एकदम बाद आता है, $4f$ की जगह $5d$-इलेक्ट्रान आ जाता है। और, इस प्रकार, उसकी इलेक्ट्रानिक संरचना का सूत्र $1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3p^6 3d^{10} 4s^2 4p^6 4d^{10} 5s^2 5p^6 5d^1 6s^2$ हैं। किन्तु लैन्थेनम के बाद का तत्त्व सीरियम ($Z = 58$) में वस्तुत: $4f$-उपस्तर की रचना शुरू हो जाती है; जिसमें अकेला $5d$-इलेक्ट्रान, जो लैन्थेनम में स्थित था, आ जाता है। इसके अनुसार सीरियम की इलेक्ट्रानिक संरचना का सूत्र यह है: $1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3p^6 3d^{10} 4s^2 4p^6 4d^{10} 4f^2 5s^2 5p^6 6s^2$। इस प्रकार, क्लेच्कोवस्की के द्वितीय नियम से विचलन, जो लैन्थेनम में देखा गया था, कुछ समय के लिये रहता है। सीरियम से शुरू होकर $4f$-उपस्तरों के सभी कक्षकों की पूर्त्ति हो जाती है। छठे आवर्तक के इस भाग में स्थित चौदह लैन्थेनाइड f-तत्त्वों में से हैं और गुणों के आधार पर लैन्थेनम से मिलते हैं। इनके परमाणुओं के इलेक्ट्रानिक कोशों की संरचना की विशेषता यह है कि एक f-तत्त्व से अगले f-तत्त्व पर

आते समय इलेक्ट्रान न तो संयोजकता ($n = 6$) और न ही उससे पहले वाले ($n = 5$) इलेक्ट्रानिक कोश में आता हैं, बल्कि और भी गहरे स्थित, बाहर से तीसरे इलेक्ट्रानिक कोश ($n = 4$) में प्रवेश करता है।

लैन्थेनाइड के परमाणुओं में संयोजकता तथा संयोजकता से एक पहले इलेक्ट्रानिक कोशों में कोई विशेष भिन्नता की अनुपस्थिति के कारणवश सभी लैन्थेनाइडों के रासायनिक गुणों में काफी समानता है।

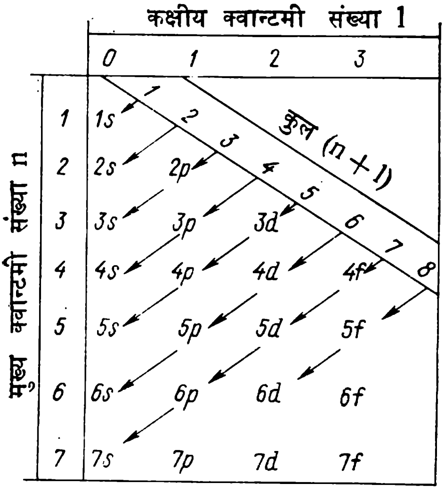
$5d$-उपस्तर की पूर्त्ति, जो लैन्थेनम से शुरू हुई थी हैफनियम ($Z = 72$) से पुनः शुरू हो जाती है तथा पारद ($Z = 80$) पर संपूर्ण हो जाती है। इसके बाद, पहले आवर्तकों की तरह, छः p-तत्त्व आते हैं। यहाँ $6p$- उपस्तर की रचना आरम्भ हो जाती है: वह थैलियम ($Z = 81$) से शुरू होती है तथा आदर्श गैस रेडॉन ($Z = 86$) पर समाप्त होती है और यहाँ छठे आवर्तक की रचना भी संपूर्ण हो जाती है।

तत्त्वों की प्रणाली का सातवाँ आवर्तक, जो अभी अपूर्ण है, छठे आवर्तक की तरह ही बना है। दो s-तत्त्वों (फ्रेंसियम तथा रेडियम) एवं एक d–तत्त्व (ऐक्टिनियम) के बाद यहाँ $14f$-तत्त्व स्थित हैं जिनके गुण ऐक्टिनियम के गुणों से मिलते हैं। ये तत्त्व, जो थोरियम ($Z = 90$) से शुरू होकर 103 न० तत्त्व पर समाप्त होते हैं, सामान्यतः ऐक्टिनाइड कहलाते हैं। इनमें मेंडेलीलियम ($Z = 101$) कृत्रिम रूप से अमेरिकी भौतिकतज्ञों द्वारा सन् 1955 में प्राप्त किया गया था और द० ई० मेन्डेलीफ के सम्मान में इसे यह नाम दिया गया। ऐक्टिनाइडों के एकदम बाद दो तत्त्व स्थित हैं: कुरचातोवियम (जिसका अमेरिकी नाम है रदरफर्डवियम) ($Z = 104$) तथा तत्व न० 105। इन दोनों तत्त्वों को कृत्रिम रूप से ग० न० फ्लेरोव व अन्य वैज्ञानिकों ने प्राप्त किया। इनकी गिनती d–तत्त्वों में होती है तथा तत्त्वों की आवर्त प्रणाली के अभी तक ज्ञात भाग को समाप्त करते हैं।

सभी ज्ञात रासायनिक तत्त्वों के परमाणुओं में ऊर्जा स्तरों (कोशों) में इलेक्ट्रानों का विस्तारण पुस्तक के आरम्भ में दी गई तत्त्वों की आवर्त प्रणाली में दिया गया है। परमाणुओं में ऊर्जा स्तरों व उपस्तरों की इलेक्ट्रानों द्वारा पूर्त्ति का आरेख चित्र 23 में दिया गया है जो क्लेच्कोवस्की नियम व्यक्त करता है। यह पूर्त्ति ($n + l$) योगफल के कम मान से अधिक मान की दिशा में होती है जिसे तीर द्वारा दिखाया गया है। स्पष्ट है कि यह क्रम परमाण्वीय कक्षकों की पूर्त्ति के चित्र 22 में दिये गये क्रम से मिलता है।

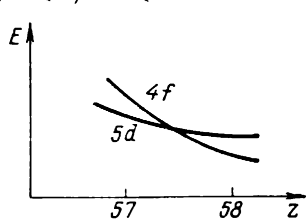
यहाँ यह नोट करना आवश्यक है कि आरेख (क्लेच्कोवस्की नियमों की तरह) कुछ तत्त्वों के परमाणुओं की इलेक्ट्रानिक संरचना की विशिष्ट स्थितियाँ व्यक्त नहीं करते। उदाहरणतया, निकैल ($Z = 28$) के परमाणु से ताम्र ($Z = 29$) के परमाणु पर जाते समय $3d$-इलेक्ट्रानों की सँख्या में एक की जगह सीधे दो की

वृद्धि हो जाती है क्योंकि 4s-इलेक्ट्रानों में से एक इलेक्ट्रान 3d – उपस्तर में "कूदान' भर कर आ जाता है। इस प्रकार, ताम्र के परमाणु की इलेक्ट्रानिक संरचना का सूत्र हुआ : $1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3p^6 3d^{10} 4s^1$। ऐसी ही एक "कुदान" भर कर इलेक्ट्रान ताम्र के समानरूपी रजत एवं स्वर्ण में संयोजकता s-उपस्तर से उसके पूर्व के उपस्तर में आ जाता है। इसका कारण इलेक्ट्रानिक संरचनाओं का बढ़ा हुआ ऊर्जा स्थायित्व है जो पूर्णतया भरे हुये ऊर्जा उपस्तरों के लिये वैशिष्ट्य है (दे० §33)। ताम्र के परमाणुमें 4s-उपस्तर से 3d-उपस्तर इलेक्ट्रान की "कुदान" (इसी प्रकार, रजत एवं स्वर्ण में भी) से d-उपस्तर की पूर्णतया पूर्त्ति हो जाती है। और इलेक्ट्रान ऊर्जात्मक रूप से उपयोगी साबित होता है।



चित्र 23. परमाणु में इलेक्ट्रानी ऊर्जा उपस्तरों की पूर्ति के क्रम का आरेख।

जैसा कि §33 में बताया जाएगा कि बढ़ा हुआ ऊर्जा स्थायित्व उन इलेक्ट्रानिक विन्यासों में भी विद्यमान होता है जिनमें ठीक आधे उपस्तर की पूर्त्ति हो चुकी हो (जैसे कि, वे संरचनाएँ जिनमे संयोजकता कोश में तीन p-इलेक्ट्रान, संयोजकता से एक पूर्व कोश में पाँच d-इलेक्ट्रान या और आन्तरिक कोश में सात f-इलेक्ट्रान हों)। यही कारण है कि क्रोमियम ($Z = 24$) के परमाणु में एक 4s-इलेक्ट्रान "कुदान" भर कर 3d-उपस्तर में आ जाता है जिसके फलस्वरूप क्रोमियम के परमाणु की इलेक्ट्रानिक संरचना स्थायी हो जाती है। ($1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3p^6 3d^5 4s^1$), जिसमें 3$d$-उपस्तर की ठीक अ ाधी पूर्त्ति हुई है, ठीक इसी प्रकार 5s-इलेक्ट्रान की 4d-उपस्तर में "कुदान" मॉलिब्डेनम ($Z = 42$) के परमाणु में देखने को मिलती है।



चित्र 24. नाभिक के आवेश पर निर्भर 4f-तथा 5d-इलेक्ट्रानों की ऊर्जा।

लैन्थेनियम (4f-इलेक्ट्रान की जगह 5d-इलेक्ट्रान की उपस्थिति) तथा सीरियम (एक साथ 4f-इलेक्ट्रान का प्रगट होना) के परमाणुओं में ऊर्जा अवस्थाओं की पूर्त्ति के (सामान्य) क्रम के ऊपरिलिखित उल्लंघन एवं सातवें आवर्तक के तत्त्वों के परमाणुओं की इलेक्ट्रानिक संरचनाओं में समान विशेषताओं का कारण निम्न है :

नाभिक के आवेश में स्थित इलेक्ट्रान की नाभिक की ओर स्थिर वैद्युत्-आकर्षण अधिक तीव्र हो जाता है तथा इलेक्ट्रान की ऊर्जा कम हो जाती है। इस बीच विभिन्न उपस्तरों पर स्थित इलेक्ट्रानों की ऊर्जा समान रूप से नहीं बदलती क्योंकि इन इलेक्ट्रानों के प्रति नाभिक के आवेशों का आवरण विभिन्न भागों में होता है। विशेष रूप से, नाभिक का आवेश बढ़ने से $5d$-इलेक्ट्रानों की ऊर्जा की तुलना में $4f$-इलेक्ट्रानों की ऊर्जा अधिक तेजी से कम होती है (दे० चित्र 24)। इसलिये, लैन्थेनम ($Z = 57$) में $4f$-इलेक्ट्रानों की ऊर्जा की तुलना में $5d$-इलेक्ट्रानों की ऊर्जा कम होती है और सीरियम ($Z = 58$) में वह अधिक होती है। इस प्रकार, लैन्थेनम में $5d$-उपस्तर में स्थित इलेक्ट्रान सीरियम में $4f$-उपस्तर में आ जाता है।

32. **परमाणुओं तथा आयनों का परिमाण.** आइये, परमाणुओं के कुछ गुणों की उनके इलेक्ट्रानिक कोशों की संरचना पर निर्भरता का अध्ययन करें। सर्वप्रथम, यह देखें कि परमाण्वीय एवं आयनिक त्रिज्याओं में होने वाले परिवर्त्तनों के क्या नियम हैं?

इलेक्ट्रानिक कोशों की स्पष्ट सीमा रेखाएँ नहीं होतीं। इसलिए परमाणु का निश्चित् परिमाण नहीं होता। लेकिन यदि हम किसी सरल पदार्थ के क्रिस्टलों के परमाणुओं को ऐसे रूप में देखें कि वे आस-पास स्थित गोले हैं, तो दो पड़ोसी गोलों के केन्द्रों के बीच की दूरी को (यानी पड़ोसी परमाणुओं के नाभिक) परमाणुओं की त्रिज्या का दुगना माना जा सकता है। इस प्रकार, ताम्र के क्रिस्टलों में अंतरानाभिकीय दूरी 0.256nm के बराबर है जिससे स्पष्ट है कि ताम्र के परमाणु की त्रिज्या इसकी आधी होगी यानी 0.128nm के बराबर।

किसी परमाणु के नाभिक के आवेश Z पर परमाण्वीय त्रिज्या की निर्भरता का आवर्त रूप होता है। एक ही आवर्तक के अन्तर्गत Z के बढ़ने से परमाणु का परिमाण कम होने लगता है, जिसे स्पष्टता से लघु आवर्तकों में देखा जा सकता है (यहाँ परमाण्वीय त्रिज्या nm में दी गई है)

Li	Be	B	C	N	O	F
0.155	0.113	0.091	0.077	0.071	0.066	0.064
Na	**Mg**	**Al**	**Si**	**P**	**S**	**Cl**
0.189	0.160	0.143	0.134	0.13	0.104	0.099

इसका कारण है कि नाभिक के आवेश के बढ़ने से संयोजकता कोशों में स्थित इलेक्ट्रानों का नाभिक की ओर आकर्षण बढ़ जाता है।

नए इलेक्ट्रानिक कोश अर्थात् नाभिक से अधिक दूरी पर स्थित इलेक्ट्रानिक कोश की रचना के शुरू होने से, यानी अगले आवर्तक पर पहुँचने से, परमाण्वीय त्रिज्याएँ बढ़ जाती हैं (उदाहरणतया, फ्लुओरीन एवं सोडियम की परमाण्वीय त्रिज्याओं की तुलना कीजिए)। इसके फलस्वरूप एक ही उपग्रुप के अन्तर्गत नाभिक के आवेश के

बढ़ने के साथ परमाणुओं का परिमाण बढ़ने लगता है। कुछ मुख्य उपग्रुपों के तत्त्वों की परमाण्वीय त्रिज्याओं के मान (nm में) उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत कर रहे हैं :

I ग्रुप	II ग्रुप	V ग्रुप
Li 0.155	Be 0.113	N 0.071
Na 0.189	Mg 0.160	P 0.13
K 0.236	Ca 0.197	As 0.148
Rb 0.248	Cr 0.215	Sb 0.161
Cs 0.268	Ba 0.221	Bi 0.182

संयोजकता कोश के इलेक्ट्रान नाभिक के साथ अधिक दृढ़ता से नहीं जुड़े होते और परमाणु से पृथक होकर अन्य परमाणु के संयोजकता कोशों में प्रवेश कर के उनके साथ जुड़ सकते हैं। उन परमाणुओं का, जिनसे एक या एक से अधिक इलेक्ट्रान पृथक हो गया है, आवेश धनात्मक हो जाता है क्योंकि परमाणु की नाभिक का आवेस बचे इलेक्ट्रानों के कुल आवेशों से अधिक है। इसके विपरीत, वे परमाणु जिनमें अतिरिक्त इलेक्ट्रान गए हैं, ऋणात्मक आवेशित बन जाते हैं। ये आवेशित कण आयन कहलाते हैं।

आयनों के लिये वही प्रतीक प्रयोग किये जाते हैं, जो परमाणुओं के लिये प्रयुक्त होते हैं, सिर्फ आयनों के लिये दायीं ओर ऊपर उनका आवेश दर्शाया जाता है : उदाहरणतया, ऐलुमिनियम का तीन धनात्मक आवेशों वाले आयन का प्रतीक है : Al^{3+} और क्लोरीन का एक ऋणात्मक आवेश वाले आयन का प्रतीक Cl^- है।

परमाणु से इलेक्ट्रानों के पृथक होने से परमाणु के प्रभावी परिमाण कम हो जाते हैं, तथा परमाणु के साथ अतिरिक्त इलेक्ट्रानों के जुड़ने से उसके प्रभावी परिमाण बढ़ जाते हैं। इसलिये उदासीन परमाणु की त्रिज्या की तुलना में धनात्मक आवेशित आयन (धनायन) की त्रिज्या हमेशा कम होती है, और ऋणात्मक आवेशित आयन (ऋणायन) की त्रिज्या हमेशा अधिक होगी। अतः, पोटैशियम के परमाणु की त्रिज्या 0.236 nm के बराबर है; क्लोरीन के परमाणु तथा Cl^- आयन की त्रिज्याएँ क्रमशः 0.099 और 0.181 nm हैं। इस प्रकार आयन व परमाणु की त्रिज्याओं में अन्तर उतना अधिक होगा, जितना अधिक आयन का आवेश होगा। उदाहरणतया, क्रोमियम के परमाणु व आयन Cr^{2+} और Cr^{3+} की त्रिज्याएँ क्रमश: 0.127; 0.083; 0.064 nm हैं। नाभिक के आवेश के बढ़ने से एक ही उपग्रुप के अन्तर्गत समान आवेश वाले आयनों की त्रिज्याएँ बढ़ जाती हैं। यह निम्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट है (आयनों की त्रिज्याएँ nm में दी गई हैं) :

I ग्रुप	II ग्रुप	VI ग्रुप	VII ग्रुप
Li^{+} 0.068	Be^{2+} 0.034	O^{2-} 0.136	F^{-} 0.133
Na^{+} 0.098	Mg^{2+} 0.074	S^{2-} 0.186	Cl^{-} 0.181
K^{+} 0.133	Ca^{2+} 0.104	Se^{2-} 0.198	Br^{-} 0.196
Rb^{+} 0.149	Sr^{2+} 0.120	Te^{2-} 0.222	I^{-} 0.220

इसका कारण इलेक्ट्रानिक कोशों की सँख्या में वृद्धि तथा नाभिक से संयोजकता इलेक्ट्रानों की बढ़ती हुई दूरी है।

33. **आयनन की ऊर्जा तथा इलेक्ट्रान के साथ बन्धुता.** धातुओं का सर्वाधिक विशिष्ट रासायनिक गुण है उनके परमाणुओं की संयोजकता इलेक्ट्रानों को पृथक करने तथा इस प्रकार धनात्मक आवेशित आयनों में परिवर्त्तित हो जाने की प्रवृत्ति। इसके विपरित, अधातुओं का विशिष्ट गुण है: इलेक्ट्रानों को जोड़कर ऋणात्मक आवेशित आयनों में परिवर्त्तित हो जाने की प्रवृत्ति। परमाणु से इलेक्ट्रानों के पृथक होने में तथा परमाणु के धनात्मक आवेशित आयन बनने में ऊर्जा खर्च होती है जो आयनन ऊर्जा कहलाती है।

विद्युत-क्षेत्र में त्वरित इलेक्ट्रानों द्वारा परमाणुओं पर बमबारी से आयनन ऊर्जा निर्धारित की जाती है। क्षेत्र की वह न्यूनतम सम्भव वोल्टता, जिसपर परमाणुओं के आयनन के लिये इलेक्ट्रानों का वेग पर्याप्त होता है इस तत्त्व के परमाणुओं का आयनन विभव (ionisation potential) कहलाती है। इसे वोल्ट (V) में व्यक्त किया जाता है।

सामान्यत: इलेक्ट्रान की ऊर्जा इलेक्ट्रान वोल्ट (eV) में व्यक्त की जाती है। 1 eV – वह ऊर्जा है जो एक V अंतर वाले विभव के त्वरक विद्युत्-क्षेत्र में इलेक्ट्रान हासिल करता है ($1\ eV = 1.6 \cdot 10^{-19}$ जू० ; एक मोल के अनुपात में यह ऊर्जा 96.5 कि० जू० मोल के बराबर है)।

इलेक्ट्रानवोल्ट में व्यक्त की गई आयनन ऊर्जा साँख्यिक रूप से वोल्ट में व्यक्त आयनन विभव के बराबर होती है।

पर्याप्त ऊर्जा खर्च करके परमाणु से दो तीन या अधिक इलेक्ट्रान पृथक किये जा सकते हैं। इसलिये ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे कि आयनन का प्रथम विभव (परमाणु से पहले इलेक्ट्रान को पृथक करने में खर्च हुई ऊर्जा), आयनन का द्वितीय विभव (परमाणु से दूसरा इलेक्ट्रान पृथक करने में खर्च हुई ऊर्जा), इत्यादि। जैसे-जैसे क्रम में परमाणु से इलेक्ट्रान पृथक होते जाते है, वैसे-वैसे इसके फलस्वरूप प्राप्त आयन का धनात्मक आवेश भी बढ़ता जाता है। इस कारणवश प्रत्येक पृथक

होने वाले इलेक्ट्रान के लिये ऊर्जा का खर्च भी अधिक हो जाता है। अन्य शब्दों में, परमाणु के आयनन विभव क्रम में बढ़ते जाते है (तालिका 3):

तालिका 3

दूसरे आवर्तक के कुछ तत्त्वों के परमाणुओं के क्रमबद्ध आयनन नविभव

तत्त्व	आयनन विभव				
	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पंचम
लीथियम	5.39	75.6	122.4	—	—
बेरीलियम	9.32	18.2	153.8	217.7	—
बोरॉन	8.30	25.1	37.9	259.3	340.1
कार्बन	11.26	24.4	47.9	64.5	392.0

तालिका 3 से स्पष्ट है कि लीथियम परमाणु से अपेक्षाकृत आसानी से एक इलेक्ट्रान अलग हो जाता है, बेरीलियम के परमाणु से दो इलेक्ट्रान अलग हो जाते हैं; बोरॉन के परमाणु से— तीन, कार्बन के परमाणु से—चार इलेक्ट्रान अलग हो जाते हैं। और अधिक इलेक्ट्रानों को पृथक करने से अधिक ऊर्जा खर्च होगी। यह ऊपर देखे गये परमाण्वीय संरचनाओं के अनुरूप है। वस्तुत: लीथियम के परमाणु में संयोजकता इलेक्ट्रानिक कोश में एक इलेक्ट्रान स्थित है, बेरिलियम के परमाणु में—2, बोरॉन में—3, कार्बन में—4, है। इन इलेक्ट्रानों में इनसे पहले के कोशों में इलेक्ट्रानों की तुलना के इन इलेक्ट्रानों की ऊर्जा अधिक है और इसलिये इनको परमाणु से पृथक होने के लिये अपेक्षाकृत कम ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। अगले इलेक्ट्रानिक कोश में आते ही आयनन ऊर्जा एकदम बढ़ जाती है।

आयनन विभव की मात्रा किसी तत्त्व की कम या अधिक "धात्विकता" को दर्शाती है: आयनन विभव जितना कम होगा, परमाणु से इलेक्ट्रान को अलग करना उतना ही आसान होगा, अर्थात् तत्त्व के धात्विक गुण उतनी ही तीव्रता से स्पष्ट होंगे।

आइये इसी दृष्टिकोण से यह देखें कि आवर्त प्रणाली के एक ही उपग्रुप के परमाणुओं की परमाण्वीय सँख्या के बढ़ने से आयनन के प्रथम विभव किस प्रकार बदलते हैं (दे० तालिका 4)। जैसा कि विदित है, तत्त्व की क्रम सँख्या के बढ़ने के साथ आयनन विभव कम हो जाते है जो धात्विक गुणों की तीव्रता तथा अधात्विक गुणों की क्षीणता का प्रमाण हैं।

इसका कारण है परमाणुओं की त्रिज्याओं में वृद्धि जिसके बारें में §33 में बताया गया था। इसके अलावा माध्यमिक इलेक्ट्रानिक कोशों, जो नाभिक व संयोजकता

तालिका 4

कुछ मुख्य उपग्रुपों के तत्त्वों के परमाणुओं के आयनन के प्रथम विभव (V में) :

I ग्रुप	II ग्रुप	VI ग्रुप	VII ग्रुप
Li 5.39	Be 9.32	O 13.61	F 17.42
Na 5.14	Mg 7.64	S 10.36	Cl 13.01
K 4.34	Ca 6.11	Se 9.75	Br 11.84
Rb 4.18	Sr 5.69	Te 9.01	I 10.45
Cs 3.89	Ba 5.21		

इलेक्ट्रानिक कोशों के मध्य हैं, की सँख्या बढ़ने के साथ नाभिक का आवरण अधिक तीव्रता से होता है, यानी उसका प्रभावी आवेश कम हो जाता है। इन दोनों वातों से (संयोजकता इलेक्ट्रानिक कोश की नाभिक से बढ़ती हुई दूरी तथा नाभिक के प्रभावी आवेश का कम होना) नाभिक और संयोजकता इलेक्ट्रानों का बंध क्षीण हो जाता है जिसके फलस्वरूप आयनन विभव कम हो जाता है।

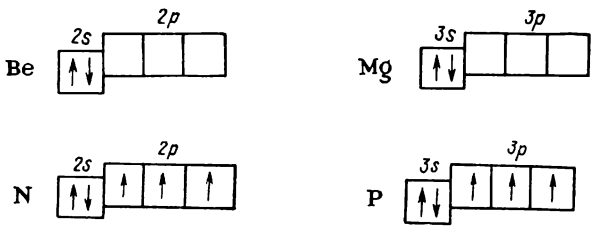
क्षारीय धातु से आदर्श गैस की ओर जाते समय एक ही आवर्तक के इलेक्ट्रानों में नाभिक का आवेश कमहो जाता है तथा परमाणु की त्रिज्या बढ़ जाती है। इसलिये आयनन विभव धीरे-धीरे बढ़ने लगता है और धात्विक गुण भी क्षीण हो जाते हैं। इसका प्रमाण हमें दूसरे तथा तीसरे आवर्तकों के तत्त्वों के आयनन के प्रथम विभव से मिलता है (तालिका 5)।

तालिका 5

दूसरे व तीसरे आवर्तकों के तत्त्वों के परमाणुओं में आयनन के प्रथम विभव (V में)

दूसरा आवर्तक	तत्त्व	Li	Be	B	C	N	O	F	Ne
	आयनन विभव, V	5.39	9.32	8.30	11.26	14.53	13.61	17.42	21.56
तीसरा आवर्तक	तत्त्व	Na	Mg	Al	Si	P	S	Cl	Ar
	आयनन विभव, V	5.14	7.64	5.98	8.15	10.48	10.36	13.01	15.75

तालिका 5 से स्पष्ट है कि कुछ स्थितियों में एक ही आवर्तक के अन्तर्गत आयनन ऊर्जा की वृद्धि की प्रवृति का उल्लंघन होता है। इस प्रकार, बेरीलियम एवं नाइट्रोजन के परमाणुओं के आयनन विभव उनके बाद आने वाले तत्त्वों बोरॉन व ऑक्सीजन के परमाणु के आयनन के विभवों की तुलना में अधिक है। ऐसा ही तीसरे आवर्तक में देखने को मिलता है जब मैग्नीशियम से ऐलुमिनियम तथा फास्फोरस से गन्धक की ओर आते हैं। इसमें आयनन विभव के बढ़े हुये मान उन स्थितियों में नजर आते है जब या तो परमाणुओं में संयोजकता ऊर्जा उपस्तर पूर्णतया से भरा होता है (बेरीलियम तथा मैग्नीशियम), या फिर जब परमाणुओं के संयोजकता ऊर्जा उपस्तरों की आधी पूर्त्ति होती है, यानी इस उपस्तर के प्रत्येक कक्षक में एक इलेक्ट्रान स्थित है (नाइट्रोजन तथा फ़ास्फोरस)



ये और ऐसे ही अन्य तथ्य प्रयोगत: §31 में पहले ही से प्रस्तुत धारणाओं की पुष्टि करते हैं, जिनके अनुसार उपस्तरों की संपूर्ण पूर्त्ति या आधी पूर्त्ति के अनुरूप बढ़ी हुई ऊर्जा स्थायित्व रखते हैं।

जैसा कि ऊपर देखा गया था कि परमाणु इलेक्ट्रान देते ही नहीं, बल्कि लेते भी हैं। स्वतंत्र परमाणु के साथ इलेक्ट्रान के जुड़ने से निष्काषित ऊर्जा इलेक्ट्रान के साथ बन्धुता कहलाती है। आयनन ऊर्जा की भाँति, इलेक्ट्रान के साथ बन्धुता भी सामान्यत: इलेक्ट्रानवोल्ट में व्यक्त की जाती है। इस प्रकार, हाइड्रोजन के परमाणु के इलेक्ट्रान के साथ बन्धुता 0.75 eV है, आक्सीजन की – 1.47 eV, फ्लुओरीन की – 3.52 eV है।

धातुओं के परमाणुओं के इलेक्ट्रान के साथ बन्धुता, नियमानुसार, शुन्य के बराबर होती है या ऋणात्मक होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अधिकाँश धातुओं के परमाणुओं के लिये इलेक्ट्रानों का जुड़ना ऊर्जा के दृष्टिकोण से उपयोगी नहीं है। अधातुओं के परमाणुओं के इलेक्ट्रानों के साथ बन्धुता हमेशा धनात्मक होती है और उतनी ही अधिक होती है जितनी कि आवर्त प्रणाली में अधातु आदर्श गैस के समीप स्थित होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि आवर्तक के अंत के जितना भी समीप तत्त्व होगा, उतने ही तीव्र उसमें अधात्विक गुण होंगे।

34. **परमाण्वीय नाभिक की संरचना. समस्थानिक.** आधुनिक धारणाओं के अनुसार

परमाण्वीय नाभिक प्रोटानों तथा न्यूट्रानों से बनी है। प्रोटॉन (ग्रीक – 'प्रोटॉस' – प्रथम) – मूल कण है जिसका द्रव्यमान 1.00728 द्र० प० मा० है तथा यह धनात्मक आवेशित है और इसका निरपेक्ष मान इलेक्ट्रान के आवेश के बराबर है। न्यूट्रान भी एक मूल कण है, लेकिन यह वैद्युत-आवेश से रहित है: न्यूट्रान का द्रव्यमान 1.00867 द्र० प० मा० है, प्रोटॉन का प्रतीक 'p' तथा न्यूट्रॉन का प्रतीक 'n' है।

परमाणु की नाभिक में 'प्रोटॉनों की सँख्या एवं न्यूट्रानों की सँख्या का योगफल परमाणु (नाभिक) की द्रव्यमान सँख्या (mass number) कहलाती है। चूंकि प्रोटॉन व न्यूट्रॉन दोनों ही द्र० प० मा० के काफी लगभग द्रव्यमान रखते हैं तो परमाणु की द्रव्यमान-सँख्या लगभग रूप से उसका परमाण्वीय द्रव्यमान व्यक्त करती है। लेकिन प्रोटॉनों की सँख्या धनात्मक आवेशों की सँख्या के बराबर है, अर्थात् तत्त्व की क्रम सँख्या के बराबर है। अतः, न्यूट्रानों की सँख्या द्रव्यमान सँख्या व तत्त्व की क्रम सँख्या के अंतर के बराबर है।

नाभिक को बनाने वाले कणों पर दो प्रकार के बल लागू होते हैं: धनात्मक आवेशित प्रोटानों के बीच परस्पर प्रतिकर्षण का स्थायी वैद्युत-बल तथा नाभिक के सभी कणों के बीच आकर्षण बल, जो नाभिकीय बल कहलाते हैं (nuclear forces)। परस्पर क्रियाशील कणों के बीच की दूरी के बढ़ने के साथ स्थायी वैद्युत् बल अधिक तेजी से क्षीण होते हैं। इसलिये कणों के कम दूरी पर स्थित होने से वे अधिक सुस्पष्ट होते हैं। लेकिन परमाण्वीय नाभिक को बनाने वाले कणों के बीच की दूरी नगण्य होने पर आकर्षण का नाभिकीय बल समानरूपी आवेशों की उपस्थिति के कारण होता है। इस प्रकार, ये बल नाभिक को स्थायी बनाए रखते हैं।

प्रोटानों व न्यूट्रानों का कोई भी संयोग आवश्यक नहीं कि स्थायी ही होगा। अधिक हल्के तत्त्वों के परमाणुओं के नाभिक स्थायी होते हैं, जब न्यूट्रानों की सँख्या लगभग प्रोटानों की सँख्या के बराबर होती है। नाभिक के आवेश के बढ़ने के साथ न्यूट्रानों की ऋणात्मक सँख्या, जो स्थायित्व के लिये आवश्यक है, बढ़ती है और आवर्त प्रणाली की अंतिम श्रेणियों में प्रोटॉनों की सँख्या से काफी अधिक हो जाती है। जैसे, बिस्मथ में (परमाण्वीय द्रव्यमान 209) 83 प्रोटॉनों के लिये 126 न्यूट्रान हैं; अधिक भारी तत्त्वों के नाभिक सामान्यतः अस्थायी होते हैं।

परमाणु के नाभिक का द्रव्यमान नाभिक को बनाने वाले प्रोटानों व न्यूट्रानों के द्रव्यमानों के योगफल के केवल लगभग ही होता है (यदि प्रोटॉनों व न्यूट्रानों का एकदम सही द्रव्यमान लिया जाये और उनका योग किया जाये तो नाभिक का द्रव्यमान इस योगफल के बराबर होना चाहिये, किन्तु प्रयोगों द्वारा ज्ञात किये गये नाभिक के द्रव्यमान में इस योगफल में अंतर देखा गया है।

उदाहरण के लिये, आइये, हीलियम के नाभिक का, जो दो प्रोटानों व दो न्यूट्रानों से बनी है, द्रव्यमान ज्ञात करें। हीलियम के नाभिक बनाने वाले प्रोटानों व न्यूट्रानों

के द्रव्यमानों का योगफल होगा :

$$2 \times 1.00728 + 2 \times 1.00867 = 4.03190$$

जबकि वास्तविक रूप में हीलियम का द्रव्यमान 4.0026 है ग्रर्थात्, लगभग 0.03 द्र० प० मा० कम है।

ग्रन्य नाभिकों के द्रव्यमानों का परिकलन करने में भी ऐसा ही परिणाम प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत हुग्रा कि नाभिक का द्रव्यमान सदैव उसे बनाने वाले कणों (यानी प्रोटानों व न्यूट्रानों) के द्रव्यमानों के योगफल से कम होता है। इस परिघटना का नाम द्रव्यमान क्षति (mass defect) रखा गया। परमाण्वीय नाभिक के बनने के समय द्रव्यमान की इस क्षति का क्या कारण हो सकता है? जैसा कि §3 में बताया गया था, ग्रापेक्षिकता सिद्धाँत से यह निष्कर्ष निकलता है कि ऊर्जा व द्रव्यमान में एक सम्बन्ध है जो ग्राइन्स्टाइन समीकरण $E = mc^2$ द्वारा व्यक्त किया जाता है। इस समीकरण से स्पष्ट है कि द्रव्यमान में होने वाले प्रत्येक परिवर्त्तन से ऊर्जा में भी परिवर्त्तन होता है। यदि परमाणु के नाभिक के बनने में द्रव्यमान कम हो जाता है तो इसका ग्रर्थ यह हुग्रा कि विशाल मात्रा में ऊर्जा का उत्सर्जन होता है।

हीलियम के परमाणु की नाभिक के बनने में द्रव्यमान क्षति 0.03 द्र० प० मा० के बराबर है, ग्रौर हीलियम के एक मोल परमाणु के बनने में – 0.03 ग्रा० $= 3 \times 10^{-5}$ कि० ग्रा०। ग्राइन्सटाइन के समीकरण के ग्रनुसार यह $3 \times 10^{-5}(3 \times 10^8)^2 = 2.7 \times 10^{12}$ जू० ऊर्जा के बराबर है। इस ऊर्जा की इस विशाल मात्रा का सही ग्रनुमान करने के लिये इतना कहना पर्याप्त होगा कि यह ऊर्जा लगभग उस ऊर्जा के बराबर है जो द्नीप्रोगेस बिजलीघर की क्षमता वाला बिजलीघर एक घंटे में पैदा करता है।

प्रोटानों व न्यूट्रानों से एक नियत नाभिक के बनने में उत्सर्जित ऊर्जा की मात्रा नाभिकीय बन्धन ऊर्जा (nuclear binding energy) कहलाती है। यह ऊर्जा नाभिक के स्थायित्व के लिये वैशिष्ट्य है: उत्सर्जित ऊर्जा की मात्रा जितनी ग्रधिक होगी, उतनी ही स्थायी नाभिक होगी।

किसी तत्त्व के सभी नाभिकों का ग्रावेश एकसमान होता है यानी उनमें प्रोटानों की सँख्या एक समान होती है। लेकिन इन नाभिकों में न्यूट्रानों की सँख्या विभिन्न हो सकती है। वे परमाणु जिनमें नाभिकीय ग्रावेश तो एक समान होता है (ग्रर्थात् एक जैसे रासायनिक गुण होते हैं), लेकिन न्यूट्रानों की सँख्या भिन्न होती है (यानी, भिन्न द्रव्यमान सँख्या), समस्थानिक (isotope)* कहलाते हैं। इस प्रकार, प्राकृतिक क्लोरीन के दो समस्थानिक हैं जिनकी क्रमश: द्रव्यमान सँख्याएँ 35 ग्रौर 37 हैं। मैग्नीशियम के 24, 25 ग्रौर 26 द्रव्यमान सँख्या वाले तीन समस्थानिक हैं।

---

* ग्रीक "ग्राइसो" – समान, ग्रौर "टोपोस" – स्थान।

समस्थानिकों के लिये तत्त्वों के दो प्रतीक प्रयोग किये जाते हैं, लेकिन उनकी बायीं ग्रोर ऊपर उनकी द्रव्यमान सँख्या लिख दी जाती है। ग्रतः, क्लोरीन के समस्थानिकों को इस प्रकार लिखा जाएगा: ^{35}Cl तथा ^{37}Cl; मैग्नीशियम के – ^{24}Mg, ^{25}Mg तथा ^{26}Mg इत्यादि। ग्रावश्यकतानुसार, बायीं ग्रोर नीचे क्रम सँख्या (नाभिकीय ग्रावेश) भी लिखा जाता है, जैसे $^{35}_{17}Cl$, $^{24}_{12}Mg$ इत्यादि।

प्राकृतिक तत्त्वों के सभी समस्थानिकों की संरचना का ग्रब ग्रध्ययन किया जा चुका है। इससे यह सिद्ध हुग्रा कि, नियमानुसार, प्रत्येक तत्त्व ग्रनेक समस्थानिकों का समुदाय होता है। कई तत्त्वों की द्रव्यमान सँख्याग्रों एवं उनकी सम्पूर्ण मात्राग्रों में ग्रंतर का यही कारण है। इस प्रकार, प्राकृतिक क्लोरीन का 75.53% भाग ^{35}Cl समस्थानिक से बना है, ग्रौर 24.47% भाग ^{37}Cl; समस्थानिक से बना है, जिसके फलस्वरूप क्लोरीन का ग्रौसत परमाण्वीय द्रव्यमान 35.453 के बराबर है।

ऊपर यह बताया गया था कि समस्थानिकों के रासायनिक गुण समान होते हैं। इसका ग्रर्थ यह हुग्रा कि यदि रासायनिक गुणों के ग्राधार पर उनमें कोई ग्रंतर विद्य-मान है तो वह इतना कम होता है कि लगभग ज्ञात ही नहीं होगा। यहाँ हाइड्रोजन के समस्थानिक ^{1}H ग्रौर ^{2}H ग्रपवाद हैं। उनके परमाण्वीय द्रव्यमानों में बहुत ग्रधिक ग्रानुपातिक ग्रंतर होने के कारण (एक समस्थानिक का परमाण्वीय द्रव्यमान दूसरे समस्थानिक के परमाण्वीय द्रव्यमान से दुगुना है), इन समस्थानिकों के रासायनिक गुणों में प्रत्यक्ष ग्रंतर है। दो द्रव्यमान सँख्या वाले हाइड्रोजन के समस्थानिक को ड्यूटीरियम कहते हैं तथा इसका प्रतीक है: D। सामान्य हाइड्रोजन में ड्यूटीरियम की मात्रा 0.017% होती है। इसी प्रकार हाइड्रोजन का एक रेडियोऐक्टिव समस्थानिक ^{3}H भी ज्ञात है – ट्राइटियम जिसका प्रतीक "T" है। इसे केवल कृत्रिमता से ही प्राप्त किया जा सकता है (ग्रर्ध-ग्रायु 12 वर्ष)।

समस्थानिकों की खोज ने रासायनिक तत्त्व की परिभाषा का एक बार फिर ग्रध्ययन करने पर विवश कर दिया। इस लिये सन् 1923 में परमाण्वीय भारों की ग्रंतर्राष्ट्रीय समिति ने यह निर्णय किया कि रासायनिक तत्त्व परमाण्वीय क्रम सँख्या द्वारा निश्चित किया जाता हैं ग्रौर वह समान द्रव्यमान वाले परमाणुग्रों के साथ-साथ विभिन्न द्रव्य-मान वाले परमाणुग्रों से भी बना हो सकता है।

इस प्रकार, रासायनिक तत्त्व – परमाणु का वह रूप है, जिसमें नाभिक का धना-त्मक ग्रावेश निश्चित् मात्रा में होता है।

समास्थानिक ग्रनुज्ञापक (isotope indicators). रासायनिक ग्रौर जीव विज्ञानी ग्रभिक्रियाग्रों की क्रिया-विधि को समझने के लिये तथाकथित समस्थानिक ग्रनुज्ञापकों या "चिन्हित परमाणुग्रों" का प्रयोग काफी प्रचलित है। इनका प्रयोग इस बात पर ग्राधारित है कि रासायनिक रूपांतरण के समय किसी भी तत्त्व के

परिवर्त्तन होने की क्रिया का निरीक्षण अभिक्रिया के लिये प्रयुक्त पदार्थ में इस तत्त्व के समस्थानिक की सांद्रता को माप कर किया जा सकता है। क्योंकि रासायनिक अभिक्रियाओं में एक ही तत्त्व के सभी समस्थानिक लगभग एक समान ही व्यवहार करते हैं, तो अभिक्रिया के किसी भी उत्पाद में दिये गये तत्त्व के समस्थानिक की संरचना में हुये परिवर्त्तन के आधार पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि वह कहाँ हुआ था। इस प्रकार, पौधों द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड के पाचन करने की क्रिया का अध्ययन करते समय ऑक्सीजन के भारी समस्थानिक ^{18}O के प्रयोग (प्रयोगों में ^{18}O से समृद्ध कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल का उपयोग किया गया था) से यह ज्ञात हुआ कि यह क्रिया निम्न आरेखों के अनुसार होती है, यहाँ ^{18}O समस्थानिक तारक द्वारा अंकित है:—

$$6CO_2 + 12H_2\overset{*}{O} \rightarrow C_6H_{12}H_6 + 6H_2O + 6\overset{*}{O}_2$$

$$6C\overset{*}{O}_2 + 12H_2O \rightarrow C_6H_{12}\overset{*}{O}_6 + 6H_2\overset{*}{O} + 6O_2$$

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि पौधों द्वारा वायुमंडल को लौटा दी जाने वाली आक्सीजन कार्बन डाइऑक्साइड की जगह पूर्णतया जल से प्राप्त की जाती है।

35. **विघटनाभिक तत्त्व तथा उनका क्षय** (radioactive elements and their decay) विघटनाभिकता का थोड़ा-सा अध्ययन §19 में किया गया था। समस्थानिकों की परिभाषा के आधार पर इस परिघटना को और भी सही तरह समझा जा सकता है: विघटनाभिकता वह परिघटना है जिसमें एक रासायनिक तत्त्व का अस्थायी समस्थानिक स्वेच्छापूर्वक दूसरे तत्त्व के किसी समस्थानिक में बदल जाता है और इस क्रिया के समय मूल कणों या नाभिकों (जैसे, α-कण) का उत्सर्जन होता है। तत्त्वों के प्राकृतिक समस्थानिकों की विघटनाभिकता प्राकृतिक रेडियोऐक्टिवता (natural radioactivity) कहलाती है।

विभिन्न समस्थानिकों में विघटनाभिकता रूपांतरणों की क्रिया की गति भी विभिन्न होती है। इस गति के लिये वैशिष्ट्य है: रेडियोऐक्टिव स्थिरांक (radioactive constant) जो यह बताता है कि विघटनाभिक समस्थानिक के परमाणुओं की कुल सँख्या के कौन-से भाग का एक सेकेन्ड में क्षय हुआ। रेडियोऐक्टिव स्थिरांक जितना अधिक होगा, उतना ही तीव्र समस्थानिक का क्षय होगा।

विघटनाभिक क्षय के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि समय की नियत इकाई में विघटनाभिक समस्थानिक के क्षय होने वाले परमाणुओं की कुल सँख्या के समानुपातिक होती है। अन्य शब्दों में, हमेशा परमाणुओं की कुल सँख्या के एक ही भाग का क्षय होता है। इस प्रकार, यदि विघटनाभिक समस्थानिक के परमाणु की कुल सँख्या के आधे का क्षय एक नियत समय में हो गया है, तो अगले उतने ही समय में शेष

सँख्या के आधे का क्षय हो जाएगा अर्थात पहले का आधा, और उससे अगले में इसका आधा, इत्यादि।

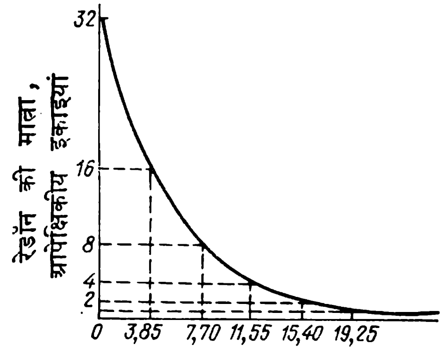
उदाहरण के लिये रेडॉन की मात्रा के परिवर्त्तन का अध्ययन करते समय यह सिद्ध हुआ कि 3.85 दिनरात में आरंभिक सँख्या का आधा रह गया है, और अगले 3.85 दिनरात में केवल 1/4 भाग, उसके बाद 1/8 भाग, इत्यादि।

रेडॉन की क्षय न होने वाली मात्रा की समय पर निर्भरता चित्र 25 में दिखाई गई है।

विघटनाभिक तत्त्व की आरंभिक सँख्या के आधे का जिस अवधि में क्षय होता है वह अर्ध-आयु कहलाती है। यह मात्रा तत्त्व की जीवन आयु दर्शाती है।

विभिन्न विघटनाभिक तत्त्वों के लिये वह सेकेन्ड के अंशों से अरबों वर्षों तक होती है। इस प्रकार, रेडॉन की अर्ध-आयु 3.85 दिनरात है इंडियम की 1620 वर्ष तथा यूरेनियम की 4.5 अरब वर्ष।

विघटनाभिक क्षय के मुख्य रूपों में α – क्षय, β – क्षय, इलेक्ट्रान परिग्रहण (electron capture) तथा स्वत: विखंडन (spontaneons fission) की गिनती होती है। विघटनाभिक क्षय के इन रूपों के साथ सामान्यत: γ – किरणों का विकिरण भी होता है, अर्थात् तीव्र (लघु तरंग दैर्ध्य के साथ) वैद्युत्-चुम्बकीय विकिरण होता है।



चित्र 25. रेडान की क्षय न होने वाली मात्रा की समय पर निर्भरता।

α-क्षय के समय परमाणु की नाभिक दो प्रोटॉनों तथा दो न्यूट्रानों को उत्सर्जन करती है जो हीलियम ^4_2He के परमाणु की नाभिक से सम्बंधित है; इसके कारणवश आरंभिक विघटनाभिक नाभिक का आवेश 2 से कम हो जाता है और उसकी द्रव्यमान सँख्या 4 से कम हो हो जाती है। इस प्रकार, α-क्षय के फलस्वरूप उस तत्त्व का परमाणु बनता है, जिसका स्थान विघटनाभिक तत्त्व के आरंभिक स्थान से आवर्त प्रणाली के शुरू की दिशा में दो स्थानों से सरक जाता है।

β-क्षय की सम्भावना आधुनिक विचारों से सम्बंधित है जिनके अनुसार प्रोटॉन व न्यूट्रान एक ही मूल कण – न्यूक्लिऑन (लेटिन न्यूक्लिअस" – नाभिक) की दो अवस्थाएँ हैं। सामान्य अवस्थाओं में (उदाहरणतया, नाभिक में अतिरिक्त न्यूट्रॉन उसको अस्थायी बना देते हैं)। न्यूट्रान, प्रोटॉन में परिवर्त्तित हो सकता है और उस

समय वह इलेक्ट्रॉन को जन्म देता है। इस क्रिया को निम्न आरेख द्वारा दिखाया जा सकता है:

न्यूट्रान ⟶ प्रोटॉन + इलेक्ट्रान*

या

$$n \rightarrow p + e^-$$

इस प्रकार β-क्षय में नाभिक का एक न्यूट्रान प्रोटान में परिवर्त्तित हो जाता है, और इसके फलस्वरूप बनने वाला इलेक्ट्रान नाभिक से निकल जाता है तथा नाभिक का धनात्मक आवेश एक इकाई से बढ़ जाता है।

इसी प्रकार, प्रोटान भी न्यूट्रान में परिवर्त्तित हो सकता है जिसका आरेख इस प्रकार होगा:

प्रोटान ⟶ न्यूट्रान + पाजिट्रान

या

$$p \rightarrow n + e^+$$

पाजिट्रान, जिसका प्रतीक e^+ है, इलेक्ट्रान के द्रव्यमान के बराबर का मूल कण है लेकिन इसका वैद्युत आवेश धनात्मक है; इलेक्ट्रान व पाजिट्रान आवेशों के निरपेक्ष मान बराबर होते हैं। पॉजिट्रान को बनाते हुये प्रोटान के न्यूट्रॉन में परिवर्त्तन की क्रिया केवल उन्हीं स्थितियों में हो सकती है जब नाभिक में स्थित प्रोटानों के कारण नाभिक अस्थायी हो जाता है।

पाजिट्रान को बनाते हुये प्रोटान के न्यूट्रान में बदल जाने की क्रिया केवल उन्हीं स्थितियों में हो सकती है जब नाभिक में स्थित प्रोटानों के कारण नाभिक अस्थायी हो जाता है। इस समय नाभिक का एक प्रोटान न्यूट्रान में परिवर्त्तित हो जाता है और इस प्रकार बनने वाला पाजिट्रान नाभिक से बाहर निकल जाता है तथा नाभिक का आवेश एक से कम हो जाता है। विघटनाभिक क्षय का यह रूप पाजिट्रान β-क्षय (या β^+-क्षय) कहलाता है, जबकि इससे पूर्व देखा गया क्षय इलेक्ट्रॉन β-क्षय (β^--क्षय) कहलाता है। विघटनाभिक रूपांतरण का यह रूप कुछ कृत्रिमता से प्राप्त किये गये विघटनाभिक समस्थानिकों में देखने को मिलता है।

---

*प्रोटॉन और न्यूट्रान के परस्पर परिवर्त्तन के समय इसी प्रकार, अन्य मूलकण भी बनते हैं (न्यूट्रिनों तथा प्रतिन्यूट्रिनों, neutrino and antineutrino)। क्योंकि इन कणों का विराम द्रव्यमान (rest mass) व वैद्युत् आवेश शून्य के बराबर है तो विघट-नाभिक रूपांतरणों में उनका भाग इन आरेखों में नहीं है।

β-क्षय के समय नाभिक के आवेश में परिवर्त्तन के कारण यह देखने में आता है कि β-क्षय के फलस्वरूप उस तत्त्व का परमाणु प्राप्त होता है, जिसका स्थान विघट-नाभिक तत्व के प्रारम्भिक स्थान से आवर्त प्रणाली के अंत की ओर (β^--क्षय की स्थिति में) एक स्थान से सरक जाता है, या आवर्त-प्रणाली के आरम्भ की ओर (β^+-क्षय की स्थिति में) एक स्थान से सरक जाता है।

परमाणु की द्रव्यमान सँख्या में कोई परिवर्त्तन हुये बग़ैर ही नाभिक के आवेश का एक से कम हो जाना केवल β^+-क्षय के कारण ही नहीं होता, बल्कि इलेक्ट्रॉन परि-ग्रहण के कारण भी हो सकता है, जिसमें परमाण्वीय इलेक्ट्रॉनिक कोश के एक इले-क्ट्रॉन का नाभिक द्वारा परिग्रहण हो जाता है; और नाभिक में स्थित किसी एक प्रोटॉन के साथ इस इलेक्ट्रॉन की परस्पर क्रिया न्यूट्रॉन को जन्म देती है:

$$e^- + p \longrightarrow n$$

इलेक्ट्रॉन का परिग्रहण नाभिक के समीपतम K-कोश द्वारा तो प्राय: ही होता है, किन्तु L-तथा M-कोशों द्वारा कदाचित ही होता है।

भारी तत्त्वों के नाभिकों का आवर्त प्रणाली के मध्य में स्थित तत्त्वों के दो (या कभी-कभी तीन या चार) नाभिकों में क्षय स्वत: विखंडन (spontaneous capture) कहलाता है। इस प्रकार के विखंडन के रूप तो बहुत ही विविध है। अत: आवर्त प्रणाली में स्थानांतर के कोई सामान्य नियम नहीं हैं; प्रारम्भिक नाभिक का क्षय बहुधा भारी एवं हल्के कणों में होता है, जो प्रारम्भिक नाभिक के आवेश तथा द्रव्यमान का क्रमश: 60% और 40% के लगभग भाग रखते हैं। आवर्त प्रणाली के मध्य भाग के समस्थानिकों के नाभिकों की तुलना में भारी तत्त्वों के समस्थानिकों के नाभिकों में न्यूट्रॉनों की आनुपातिक सँख्या अधिक होती है। इसलिये स्वत: विखंडन के समय क्षय होने वाला नाभिक दो-चार न्यूट्रॉन उत्सर्जित करता है; और बनने वाले नाभिकों में पहले ही से अतिरिक्त न्यूट्रॉन विद्यमान होते हैं और इस प्रकार वे अस्थायी हो जाते है एवं उनके β^--क्षय की क्रमाणुगत श्रेणी शुरू हो जाती है।

आवर्त प्रणाली के अंत में स्थित (बिस्मथ के बाद) तत्त्वों के स्थायी समस्थानिक नहीं होते। विघटनाभिक क्षय का शिकार होकर वे दूसरे तत्त्वों में परिवर्त्तित हो जाते हैं। यदि इस प्रकार बना तत्त्व विघटनाभिक तत्त्व होता है तो उसका पुन: क्षय हो जाता है तथा वह तीसरे तत्त्व में परिवर्तित हो जाता है, और यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक कि स्थायी समस्थानिकों के परमाणु प्राप्त नहीं होते। इस प्रकार प्राप्त हुये तत्त्वों की श्रेणी विघटनाभिक श्रेणी (radioactive series) कहलाती है। उदाहरण के लिये, प्रस्तुत है यूरेनियम की श्रेणी—प्राकृतिक यूरेनियम की अधिकांश मात्रा वाला समस्थानिक ^{238}U का तत्त्वों में क्रमबद्ध परिवर्तन; प्रत्येक परिवर्त्तन के समय विघटनाभिक क्षय का रूप तीर के ऊपर लिखा गया है तथा अर्ध-

आयु तीर के नीचे लिखी गई है :

$$ {}^{238}_{92}\text{U} \xrightarrow[4.5 \times 10^{9}\ \text{वर्ष}]{\alpha} {}^{234}_{90}\text{Th} \xrightarrow[24\ \text{दिनरात}]{\beta^-} {}^{234}_{91}\text{Pa} \xrightarrow[1.2\ \text{मि॰}]{\beta^-} $$

$$ {}^{234}_{92}\text{U} \xrightarrow[2.5 \times 10^{5}\ \text{वर्ष}]{\alpha} {}^{230}_{90}\text{Th} \xrightarrow[8 \times 10^{4}\ \text{वर्ष}]{\alpha} {}^{226}_{88}\text{Ra} \xrightarrow[1620\ \text{वर्ष}]{\alpha} $$

$$ {}^{222}_{86}\text{Rn} \xrightarrow[3.85\ \text{दिनरात}]{\alpha} {}^{218}_{84}\text{Po} \xrightarrow[3.05\ \text{मि॰}]{\alpha} {}^{214}_{82}\text{Pb} \xrightarrow[27\ \text{मि॰}]{\beta^-} $$

$$ {}^{214}_{83}\text{Bi} \xrightarrow[20\ \text{मि॰}]{\beta^-} {}^{214}_{84}\text{Po} \xrightarrow[1.6 \times 10^{-4}\text{c}]{\alpha} {}^{210}_{82}\text{Pb} \xrightarrow[19\ \text{वर्ष}]{\beta^-} $$

$$ {}^{210}_{83}\text{Bi} \xrightarrow[5\ \text{दिनरात}]{\beta^-} {}^{210}_{84}\text{Po} \xrightarrow[138\ \text{दिनरात}]{\alpha} {}^{206}_{82}\text{Pb}\ (\text{स्थायी}) $$

इस प्रकार, क्षय का अंतिम उत्पाद सीसे का स्थायी समस्थानिक है।

समस्थानिक की द्रव्यमान सँख्या β-क्षय के समय तो परिवर्तित नहीं होती, किन्तु α-क्षय के समय चार से कम हो जाती है। इसलिये चार प्रकार की विघटनाभिक श्रेणियाँ हो सकती हैं। इनमें से एक श्रेणी में समस्थानिकों की द्रव्यमान सँख्या का सामान्य सूत्र है: $4n$ (जहां n—पूर्ण सँख्या), दूसरी श्रेणी के लिये द्रव्यमान सँख्या का सामान्य सूत्र है: $4n+1$, तीसरी श्रेणी का $4n+2$ (यह ही यूरेनियम की श्रेणी है), और चौथी श्रेणी का $4n+3$ वस्तुत: यूरेनियम की श्रेणी के अतिरिक्त, दो अन्य प्राकृतिक विघटनाभिक श्रेणियाँ भी ज्ञात है: थोरियम श्रेणी, जो ^{232}Th समस्थानिक से शुरू होती है, जिसके लिये द्रव्यमान सँख्या का सामान्य सूत्र है: $4n$ तथा ऐक्टिनियम श्रेणी ^{235}U समस्थानिक से शुरू होती है ("ऐक्टिनो यूरेनियम") और इसकी द्रव्यमान सँख्या का सामान्य सूत्र $4n+3$ है। इन श्रेणियों में परिवर्त्तनों के स्थायी उत्पाद भी सीसे के समस्थानिक है: (^{206}Pb और ^{207}Pb) चौथी विघटनाभिक श्रेणी 'नेप्टूनियम श्रेणी, जिसकी द्रव्यमान सँख्या का सामान्य सूत्र $4n+1$ है, का आरम्भ नेप्टूनियम तत्त्व का कृत्रिमता से प्राप्त किया गया समस्थानिक ${}^{237}_{93}$Np है; यहाँ क्षय का अंतिम उत्पाद है बिस्मथ का स्थायी समस्थानिक ^{209}Bi।

खनिजों में विद्यमान विघटनाभिक तत्त्वों के क्षय के फलस्वरूप सीसे के संचय से तदनुरूपी खनिजों की आयु निर्धारित की जा सकती है। यदि ^{238}U, ^{232}Th और ^{235}U के क्षय की गति, उनकी मात्रा, और खनिज में सीसे की मात्रा तथा समस्थानिक संरचना ज्ञात हो, तो इस खनिज की आयु मालूम की जा सकती है, यानी उसके निर्माण से अब तक का समय ज्ञात किया जा सकता है। यह आयु ज्ञात करने की सीसा यूरेनियम विधि कहलाती है। सघन क्रिस्टलीय संकुलन (dense

crystalline packing) वाले खनिजों के लिये, जिनके क्रिस्टलों में गैसें इकट्ठी हैं, विघटनाभिक खनिज, की आयु हीलियम की मात्रा, जो उसमें विघटनाभिक रूपांतरणों के फलस्वरूप इकट्ठी हो गई है, के आधार पर निश्चित् की जाती है (हीलियम विधि)। अपेक्षाकृत नए पदार्थों की आयु प्राप्त करने के लिए (70 000 वर्ष तक) रेडियोकार्बन कालनिर्धारण (radiocarbon dating) विधि का प्रयोग किया जाता है, जो कार्बन समस्थानिक ^{14}C के विघटनाभिक क्षय पर आधारित है (अर्ध-आयु 5600 वर्ष के लगभग) यह समस्थानिक वायुमंडल में अंतरिक्ष किरणों के प्रभाव द्वारा बनता है और जीवों द्वारा परिग्रहण कर लिया जाता है, जिनकी मृत्यु के पश्चात् उसकी मात्रा विघटनाभिक क्षय के नियमों के अनुसार क्षीण होनी शुरू हो जाती है। जैव अवशेषों (खोदे गये (excavated) जीव, पीट, कार्बोनेटी शेल) की आयु उनमें विद्यमान कार्बन की विघटनाभिकता की वायुमंडलीय कार्बन की विघटनाभिकता के साथ तुलना द्वारा निश्चित की जा सकती है।

36. **कृत्रिम विघटनाभिकता** (artificial radioactivity) **नाभिकीय अभिक्रिया** (nuclear reaction) सन् 1933 में इरेन क्यूरी तथा फ्रेडरीक जोलियो-क्यूरी ने ज्ञात किया कि कुछ हल्के तत्त्व जैसे, बोरॉन, मैगनीशियम, ऐलुमिनियम, α-कणों द्वारा बमबारी किये जाने पर पाजिट्रान उत्सर्जित करते हैं। इन्होंने ही यह सिद्ध किया कि यदि α-कणों के स्रोत को हटा लिया जाये तो पाजिट्रानों का उत्सर्जन तुरंत बंद नहीं होता, बल्कि कुछ समय तक जारी रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि α-कणों द्वारा बमबारी के समय कुछ ऐसे विघटनाभिक परमाणु बनते हैं जिनका कुछ नियत जीवन-काल होता है, और ये परमाणु α-कण तथा इलेक्ट्रानों के स्थान पर पाजिट्रानों का उत्सर्जन करते हैं। इस प्रकार, कृत्रिम विघटनाभिकता की खोज हुई।

इरेन क्यूरी एवं फ्रेड्रीक जोलियो ने इन परिघटनाओं को इस प्रकार समझाया: α-कणों द्वारा बमबारी के कारण सर्वप्रथम नए अस्थायी नाभिक बनते हैं जिनका बाद में पाजिट्रानों के उत्सर्जन के साथ क्षय हो जाता है। उदाहरणतया, ऐलुमिनियम की स्थिति में यह क्रिया दो भागों में होती है:

$$^{27}_{13}\mathrm{Al} + ^{4}_{2}\mathrm{He} \rightarrow ^{30}_{15}\mathrm{P} + n$$

जहाँ, $^{30}_{15}P$– फास्फोरस का कृत्रिमता से प्राप्त समस्थानिक है– रेडियोफ़ास्फोरस इस अस्थायी नाभिक (अर्ध-आयु 3 मि० 15 से०) का क्षय होता है तथा स्थायी नाभिक बनता है:

$$^{30}_{15}\mathrm{P} \rightarrow ^{30}_{14}\mathrm{Si} + e^{+}$$

ऐसी ही क्रियाएँ α-कणों द्वारा बोरॉन व मैगनीशियम पर बमबारी के समय देखने को मिलती है, जब पहली स्थिति में रेडियोनाइट्रोजन $^{13}_{7}N$, जिसकी अर्ध-आयु

14 मि० है, प्राप्त होती है। दूसरी स्थिति में रेडियोसिलीकॉन $^{27}_{14}Si$ जिसकी अर्ध-आयु 3 मि० 30 से० है।

इरेन क्यूरी तथा फ्रेडरीक जोलियो-क्यूरी द्वारा प्राप्त परिणामों ने शोध-कार्यों के एक विशाल क्षेत्र का उद्घाटन किया।

अब तक रासायनिक तत्त्वों के सैकड़ों विघटनाभिक समस्थानक कृत्रिमता से प्राप्त किये जा चुके हैं। रसायन का वह भाग जो विघटनाभिक तत्वों व उनकी प्रकृति का अध्ययन करता है विघटनाभिक-रसायन* (radio-chemistry) कहलाता है।

ऐलुमिनियम के परमाणु पर α-कणों द्वारा बमबारी के फलस्वरूप प्राप्त $^{30}_{15}P$ समस्थानिक नाभिकीय अभिक्रियाओं का उदाहरण है, जिनका अर्थ है नाभिकों की मूलकणों (न्यूट्रानों n, प्रोटॉनों p α-फोटानों) या अन्य नाभिकों जैसे, α-कणों या ड्यूट्रियम $^{2}_{1}H$ के साथ परस्पर अभिक्रिया का होना। पहली कृत्रिम नाभिकीय अभिक्रिया सन् 1919 में रदरफोर्ड ने की थी। नाइट्रोजन के परमाणुओं पर α-कणों द्वारा बमबारी करके उन्होंने निम्न अभिक्रिया पूर्ण की:

$$^{14}_{7}N + ^{4}_{2}He \rightarrow ^{17}_{9}O + p$$

इसी के साथ सर्वप्रथम प्रयोगत: यह भी सिद्ध हो गया कि तत्त्वों का कृत्रिम परस्पर परिवर्त्तन सम्भव है।

लक्ष्य-नाभिक (target-nucleus) तक पहुँचने के लिये तथा नाभिकीय अभिक्रिया के पूर्ण होने के लिये यह आवश्यक है कि बमबारी करने वाले कण की ऊर्जा बहुत ही अधिक हो। ऐसे कई प्रकार के उपकरणों का निर्माण किया गया (साइक्लोट्रान, प्रोटान सिंक्रोट्रान तथा अन्य त्वरित्र (accelerator)) जिनकी मदद से आवेशित कणों को बहुत अधिक ऊर्जा दी जा सकती है। नाभिकीय अभिक्रिया के लिये न्यूट्रानों की धारा, जो नाभिकीय रिएक्टरों में बनती है, प्रयोग की जाती है। इन शक्तिशाली साधनों के परमाणुओं पर प्रभाव से बड़ी संख्या में नाभिकीय रूपांतरणों का होना संभव हो सका।

इस प्रकार सन् 1937 में उस समय अज्ञात 43 क्रम सँख्या वाला तत्त्व कृत्रिमता से प्राप्त हो सका। इसने आवर्त्त प्रणाली में अपना स्थान ग्रहण किया और इसका नाम रखा गया टैक्नीशियम (Tc)। इसे प्राप्त करने के लिये मालिब्डेनम पर ड्यूट्रियम द्वारा बमबारी की गई।

$$^{98}_{42}Mo + ^{2}_{1}H \rightarrow ^{99}_{43}Tc + n$$

आवर्त्त प्रणाली में यूरेनियम के बाद स्थित परायूरेनियम तत्त्वों के संश्लेषण ने विशेष दिलचस्पी पैदा की। इनमें से सर्वप्रथम सन् 1940 में ^{238}U यूरेनियम समस्था-

---

*यहाँ विघटनाभिक-रसायन और विकिरण रसायन (radiation chemistry) में अंतर को समझना आवश्यक है। विकिरण रसायन आयनकारी विकिरण के प्रभाव में होने वाली रासायनिक अभिक्रियाओं का अध्ययन करता है।

निक पर न्यूट्रानों की बमबारी के फलस्वरूप प्राप्त किया गया था। इस समस्थानिक के नाभिक द्वारा न्यूट्रानों के अवशोषण से ^{239}U β–विघटनाभिक समस्थानिक प्राप्त हुआ जिसकी अर्ध-आयु 23 मि० है। β-कणों का उत्सर्जन करके ^{239}U एक नए तत्त्व में परिवर्त्तित हो जाता है जिसकी क्रम सँख्या 93 है। सौर परिवार में वारुण के बाद स्थित नेप्ट्यून के नाम पर इस तत्त्व का नाम नेप्टूनियम रखा गया।

नेप्टूनियम के बनने की क्रिया को इस प्रकार लिखा जा सकता है:

$$^{238}_{92}U + n \rightarrow {}^{239}_{92}U$$

$$^{239}_{92}U \rightarrow {}^{239}_{93}Np + e^-$$

ज्ञात हुआ कि ^{239}Np भी विघटनभिक है। β-क्षय के फलस्वरूप वह 94 क्रम संख्या वाले तत्त्व में परिवर्त्तित हो जाता है, जिसका नाम रखा गया प्लूटोनियम Pu:

$$^{239}_{93}Np \rightarrow {}^{239}_{94}Pu + e^-$$

इस प्रकार, यूरेनियम पर न्यूट्रानों की बमबारी से दो परायूरेनियम तत्त्व–नेप्टूनियम तथा प्लूटोनियम प्राप्त हुये।

आगे आने वाले समय में मुख्य रूप से अमेरिकी वैज्ञानिक ग० सीबोरग की देख-रेख में कार्य कर रहे वैज्ञानिकों के एक ग्रुप ने परायूरेनियम तत्त्वों के क्रम-सँख्या 95 से 103 तक के समस्थानिक प्राप्त किये। विशेष रूप से मेन्डेलीवियम 101 (Md) क्रम संख्या वाला तत्त्व सन् 1955 में आइन्सटाइनियम (Es) पर α-कणों द्वारा बमबारी करके प्राप्त किया:

$$^{253}_{99}Es + {}^{4}_{2}He \rightarrow {}^{256}_{101}Md + n$$

सन् 1964 में अकादमीशियम फ्लेरोव के साथ वैज्ञानिकों के एक ग्रुप ने प्लूटोनियम $^{242}_{94}Pu$ पर निऑन $^{22}_{10}Ne$ के नाभिकों द्वारा बमबारी करके 104 क्रम सँख्या का समस्थानिक प्राप्त किया। इसका नाम कुरचातोवियम (Ku)* रखा गया।

$$^{242}_{94}Pu + {}^{22}_{10}Ne \rightarrow {}^{260}_{104}Ku + 4n$$

---

*104 क्रम सँख्या वाले तत्त्व का नाम अद्वितीय सोवियत भौतिकतज्ञ, अकादमीशियन ईगोर वसीलेविच कुरचातोव (1903-1960) के सम्मान में कुरचातोवियम रखा गया। कुरचातोव के सबसे पहले महत्वपूर्ण कार्य नाभिक द्वारा न्यूट्रानों के अवशोषण तथा भारी नाभिकों के विभाजन से सम्बन्धित हैं। परमाण्वीय नाभिक पर शोध-कार्य के क्षेत्र में वे महान कार्य-कर्त्ता थे तथा सोवियत संघ में इस कार्य का तकनीकी आधार निर्मित करने में इनका बहुत योग है।

अमेरिका के अनुसार उस तत्त्व का नाम रदरफोर्डवियम रखने का प्रस्ताव पारित किया गया था, लेकिन रूसी अकादमी के अनुसार इस तत्त्व की खोज रूसी वैज्ञानिक ने की थी, इसलिये रूस में यह तत्त्व कुरचातोवियम कहलाता है।

सन् 1970 में फ्लेरोव की प्रयोगशाला में 105 क्रम सँख्या वाला तत्व प्राप्त किया गया। इनसे भी अधिक जटिल तत्वों के संश्लेषण पर कार्य जारी है।

नाभिकीय अभिक्रियाओं के अध्ययन से अंतरानाभिकीय ऊर्जा के प्रयोग करने का रास्ता खुल गया। यह ज्ञात हुआ कि नाभिक में अधिकतम न्यूक्लिआन आबंध ऊर्जा (एक न्यूक्लिआन के प्रति) आवर्त प्रणाली के मध्य में स्थित तत्वों में विद्यमान है। इसका अर्थ यह हुआ कि भारी तत्वों के नाभिकों के हल्के तत्वों में क्षय के समय विखंडन अभिक्रिया (fission reaction) और इसी प्रकार हल्के तत्वों के नाभिकों का अधिक भारी तत्वों के नाभिकों में युग्मन (तापनाभिकीय अभिक्रिया) के समय ऊर्जा का बड़ी मात्रा में उत्सर्जन होना चाहिये।

ऊर्जा प्राप्त करने के लिये की गई प्रथम नाभिकीय अभिक्रिया विखंडन अभिक्रिया थी जब ^{235}U पर न्यूट्रान द्वारा प्रभाव डाला गया था, जो उसकी नाभिक तक पहुँच गया था। इसके फलस्वरूप लगभग समान द्रव्यमान वाले दो नए नाभिक-अवशेष प्राप्त होते हैं तथा कई न्यूट्रान बनते हैं (तथाकथित द्वितीयक न्यूट्रान) और बहुत अधिक ऊर्जा उत्सर्जित होती है: एक ग्रा० ^{235}U के विघटन से 7.5×10^7 कि० जू० ऊर्जा निकलती है, यानी 2 टन कोयला जलाने से बनने वाली ऊर्जा की दुगुनी ऊर्जा प्राप्त होती है)। द्वितीयक न्यूट्रॉनों का ^{235}U के अन्य नाभिकों द्वारा परिग्रहण हो जाता है और फिर उनका भी विघटन हो जाता है। इस प्रकार पृथक रूप से होने वाले विघटनों की सँख्या बढ़ती ही जाती है और यूरेनियम की नाभिकीय शृंखला अभिक्रिया आरम्भ हो जाती है।

इस शृंखला अभिक्रिया में सभी द्वितीयक न्यूट्रान भाग नहीं लेते: इनमें कुछ यूरेनियम के टुकड़े से काफी दूर चले जाते हैं तथा इस प्रकार विभाजित हो सकने वाले समस्थानिक की नाभिक पर टकराने से बच जाते हैं। यही कारण है कि यूरेनियम के छोटे टुकड़े में यदि शृंखला अभिक्रिया आरम्भ हो जाये तो वह अपूर्ण भी रह सकती है: उसके लगातार चालू रहने के लिये यूरेनियम के टुकड़े का द्रव्यमान काफी अधिक होना चाहिये और तथाकथित "चरम द्रव्यमान" (critical mass) से कम नहीं होना चाहिये। यूरेनियम के विभाजन के समय शृंखला क्रिया विस्फोट का रूप धारण कर सकती है। परमाणु बम के विस्फोट के समय ऐसा ही होता है। विभाजन की नियंत्रणीय क्रिया के लिये अभिक्रिया की गति नियंत्रित की जाती है जिसके लिये अभिक्रिया को जारी रखने वाले न्यूट्रानों की सँख्या बदल दी जाती है। यह सँख्या बदलने के लिये रिएक्टर में ऐसे तत्वों के नियंत्रण दंड डाले जाते हैं, जिनके नाभिक बहुत ही तेजी से न्यूट्रानों को ग्रहण कर लेते हैं। (उदाहरण के लिये ऐसे तत्वों में कैडमियम आता है)।

नाभिकीय ऊर्जा प्राप्त करने के लिये ^{235}U के अलावा ^{239}Pu भी प्रयोग किया जाता है, जो ^{238}U (दे० पृ० 129) तथा ^{232}Th के प्राकृतिक समस्थानिक से

प्राप्त ^{233}U समस्थानिक के संश्लेषण द्वारा बनता है :–

$$^{232}_{90}Th + n \rightarrow {}^{233}_{90}Th \xrightarrow{\beta^-} {}^{233}_{91}Pa \xrightarrow{\beta^-} {}^{233}_{92}U$$

^{235}U की भाँति ^{239}Pu तथा ^{233}U समस्थानिक भी न्यूट्रानों का परिग्रहण करते हुये विभाजित हो जाते हैं।

नाभिकीय संश्लेषण की अभिक्रिया भी ऊर्जा का स्रोत बन सकती है। इस प्रकार, $^{2}_{1}H + {}^{3}_{1}H \rightarrow {}^{4}_{2}He + n$ ड्यूट्रियम एवं ट्राइटियम के नाभिकों में से हीलियम के नाभिक के बनने में अभिक्रिया वाले मिश्रण के प्रति ग्राम से 35×10^7 कि० जू० ऊर्जा निकलती है अर्थात 1 ग्रा० ^{235}U के क्षय से बनने वाली ऊर्जा से पाँच गुना अधिक। पृथ्वी में ड्यूट्रियम के भँडारों (लगभग 4×10^{13} टन) के हीलियम में परिवर्तन के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली ऊर्जा वास्तव में मानव-जाति के लिये ऊर्जा का असमाप्य स्रोत है। लेकिन इस प्रकार की नाभिकीय संश्लेषण अभिक्रिया (तापनाभिकीय अभिक्रिया) के लिये बहुत ही उच्च तापमान आवश्यक है (दस लाख डिग्री से भी अधिक)। अभी तक केवल बहुत ही शक्तिशाली विस्फोट वाली अनियंत्रणीय तापनाभिकीय अभिक्रिया करने में ही सफलता प्राप्त हुई है, और हाइड्रोजन बम भी इसी क्रिया पर आधारित है। इस समय अनेक देशों में नियंत्रणीय तापनाभिकीय संश्लेषण अभिक्रिया पर पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिये गहन शोध-कार्य जारी है।

अध्याय IV

रासायनिक आबन्ध तथा आण्विक संरचना

परमाणुओं की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप रासायनिक आबन्ध बन सकता है जो स्थायी बहुपरमाण्वीय विन्यासों अणु, आण्विक आयन, क्रिस्टल, का रूप धारण कर लेता है। रासायनिक आबन्ध जितना दृढ़ होगा, उतनी ही अधिक ऊर्जा उसे पृथक करने में खर्च होगी: इसलिये आबन्ध की दृढ़ता "आबन्ध विपाटन ऊर्जा" (bond splitting energy) द्वारा मापी जाती है। आबन्ध विपाटन ऊर्जा धनात्मक होती है, अन्यथा विपरीत स्थिति में रासायनिक आबन्ध का ऊर्जा के उत्सर्जन सहित स्वत: विपाटन हो जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि रासायनिक आबन्ध के बनने में ऊर्जा का उत्सर्जन सदैव परस्पर क्रियाशील इलेक्ट्रानों और नाभिकों के विन्यास की स्थितिज ऊर्जा के खर्च होने से होता है।*

इसीलिये बनने वाले कण (अणु, क्रिस्टल) की स्थितिज ऊर्जा प्राथमिक स्वतंत्र परमाणुओं की कुल स्थितिज ऊर्जा से सदैव कम होती है। अत:, रासायनिक आबन्ध के बनने के लिये यह आवश्यक है कि परस्पर क्रियाशील परमाणुओं के विन्यास की स्थितिज ऊर्जा खर्च हो।

अणु या क्रिस्टल के परमाणुओं के इलेक्ट्रानों तथा नाभिकों द्वारा बने वैद्युत् क्षेत्रों की परस्पर क्रिया रासायनिक आबन्ध बनाती है। इस परस्पर क्रिया की प्रकृति को परमाण्वीय संरचना तथा इलेक्ट्रान के कणिका-तरंगी गुणों संबंधी विचारों की सहायता से समझा जा सका।

रासायनिक आबन्ध की वैद्युत्-प्रकृति का विचार सर्वप्रथम सन् 1807 में अद्वितीय इंग्लिश भौतिकतज्ञ ग० डेवी ने व्यक्त किया, जिन्होंने कहा कि अणु का जन्म भिन्न आवेशों वाले परमाणुओं के स्थिर वैद्युत आकर्षण के कारण होता है। स्वीडन के प्रसिद्ध रसायनज्ञ ई० या० बेरत्सेलुईस ने इस विचार का विकास किया तथा सन् 1812-

*यहाँ और आगे विन्यास का अर्थ है परस्पर क्रियाशी लकणों (परमाणु, परमाण्विक नाभिक, इलेक्ट्रान) का समुदाय।

1818 में रासायनिक आबन्ध का विद्युत-रासायनिक सिद्धाँत प्रस्तुत किया। इस सिद्धाँत के अनुसार सभी परमाणुओं में धन ध्रुव तथा ऋण ध्रुव विद्यमान होते हैं। केवल कुछ परमाणुओं में धन ध्रुव अधिक होते हैं (धन विद्युत परमाणु) तथा कुछ परमाणुओं में ऋण ध्रुव अधिक होते हैं (ऋण विद्युत परमाणु)। परस्पर विपरीत ध्रुवों वाले परमाणु एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं: उदाहरणतया, कैल्सियम के धन विद्युत परमाणु आक्सीजन के ऋण विद्युत परमाणु की ओर आकर्षित होते हैं तथा कैल्सियम आक्साइड का अणु बनाते हैं: CaO, CaO अणु में परमाणुओं के वैद्युत आवेश पूर्णतया प्रतिकारित नहीं होते हैं; इस अणु में अतिरिक्त धन आवेश होता है और जब वह अन्य ऋण आवेश वाले अणु के साथ (जैसे, CO_2 अणु) परस्पर क्रिया करता है तो उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है, जिसके फलस्वरूप अधिक जटिल अणु $CaO \cdot CO_2$ प्राप्त होता है (अर्थात्, $CaCO_3$)। हालाँकि, वैद्युत-रासायनिक सिद्धाँत ने अनेक रासायनिक परिघटनाओं को समझाया, लेकिन कई तथ्यों के प्रति वह अपना विरोध स्वयं करता है। उदाहरण के लिये हम इस सिद्धाँत की सहायता से यह समझने में असमर्थ रहे कि बेरत्सेलुईस के अनुसार समान आवेशों वाले एक जैसे परमाणुओं (H_2, O_2, Cl_2 इत्यादि) से बने हुये अणु क्यों कर हैं? रसायन के विकास के साथ एेसे अन्तर्विरोधों की सँख्या और भी बढ़ती गई, और इसीलिये बेरत्सेलुईस का सिद्धाँत अपनी मान्यता शीघ्र ही खो बैठा।

डेवी–बेरत्सेलुईस के इस सिद्धाँत की अपरिपक्वता के बावजूद भी इस सिद्धाँत में एक महत्वपूर्ण युक्तिमूलक विचार था कि रासायनिक आबन्ध के बनने में वैद्युत बल का योग होता है।

आण्विक संरचना के विकास में महत्वपूर्ण कदम रासायनिक संरचना सिद्धाँत है, जिसे सन् 1861 में प्रसिद्ध रूसी रसायनज्ञ अ० म० बूतलेरोव ने प्रस्तुत किया।

37. **रासायनिक संरचना सिद्धाँत**. बूतलेरोव के इस सिद्धाँत की मुख्य रूप-रेखा निम्न है:

1. अणुओं में परमाणु एक दूसरे के साथ एक निश्चित् क्रम में जुड़े होते हैं। इस क्रम में होने वाले परिवर्त्तन के फलस्वरूप नए गुणों वाला नया पदार्थ बनता है।

2. परमाणु का परस्पर युग्मन उनकी संयोजकता पर आधारित होता है।

3. पदार्थों के गुण उनके संयोजन पर ही नहीं अपितु उनकी "रासायनिक संरचना" पर भी आधारित होते हैं, अर्थात अणुओं में परमाणुओं के युग्मन का क्रम तथा उनका पारस्परिक प्रभाव। एक दूसरे पर सबसे अधिक प्रभाव वे परमाणु डालते हैं, जो परस्पर प्रत्यक्ष रूप से जुड़े होते हैं।

अलेक्सान्द्र मिखाईलोविच बूतलेरोव का जन्म 25 अगस्त 1828 में कजान प्रान्त के चीस्तापोल शहर में हुआ। उन्होंने सन् 1849 में कज़ान विश्वविद्यालय में अपना

अध्ययन समाप्त किया। इस विश्वविद्यालय में श्रेष्ठ रूसी रसायनज्ञ क० क० क्लाउस तथा न० न० जीनीन उनके अध्यापक थे।

अध्ययन की समाप्ति के पश्चात बूतलेरोव को उसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद की तैयारी के लिये रखा गया। सन् 1851 में बूतलेरोब ने "कार्बनिक यौगिकों का आक्सीकरण" विषय पर प्रबन्ध प्रस्तुत किया, जिस पर उन्हें एम० एस० सी० की उपाधि दी गई। सन् 1854 में "वाष्पशील तेल" विषय पर थीसीस लिखी और उन्होंने "डाक्टर" की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद वे कजान विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद पर निर्वाचित किये गये।



अलेक्सान्द्र मिखाईलोविच बूतलेरोव
(1828 — 1886)

सन् 1868 में मेन्डेलीफ के प्रस्ताव पर पीटर्सबुर्ग विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी समिति में उन्हें कार्बनिक रसायन विभाग में साधारण प्रोफेसर के पद के लिये चुन लिया। इस समय से उनका सारा शोध-कार्य तथा अध्यापन पीटर्सबुर्ग में गुज़रा।

अपने शोध-कार्य के पहले चरणों में ही बूतलेरोव एक होनहार प्रयोगकर्त्ता के रूप में आये तथा अनेक महत्वपूर्ण संश्लेषण प्रस्तुत किये। उनकी प्रयोग-प्रवीणता विस्तृत सैद्धांतिक व्यापकीकरणों और वैज्ञानिक दूरदर्शिता के साथ सुन्दर सामंजस्य रखती थी। बूतलेरोव को दृढ़ विश्वास था कि रासायनिक यौगिकों के अणुओं की संरचना को सूत्रों में व्यक्त किया जा सकता है तथा यह रासायनिक रूपांतरणों के अध्ययन द्वारा किया जा सकता है।

सन 1861 में जर्मन वैज्ञानिकों एवं डाक्टरों की बैठक में बूतलेरोव ने "पदार्थों की रासायनिक संरचना" विषय पर लेख पढ़ा। इस प्रबन्ध ने रसायन के क्षेत्र में एक नये युग का आरम्भ किया। कज़ान वापिस आकर बूतलेरोव ने इस नये सिद्धाँत का विकास किया।

सन् 1862 — 1863 में उन्होंने "कार्बनिक रसायन के संपूर्ण अध्ययन की भूमिका" लिखी, जिसमें उन्होंने रासायनिक संरचना सिद्धांत प्रदत्त ठोस वैज्ञानिक वर्गीकरण को आधार बना कर कार्बनिक रसायन के सारे तथ्यों को संकलित किया। इस पुस्तक में वर्णित कार्बनिक यौगिकों का वर्गीकरण अपने मुख्य रूप में आज भी प्रयुक्त होता है।

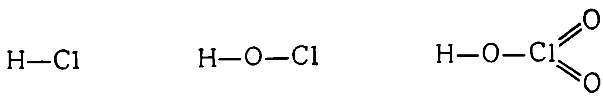
बूतलेरोव के अनेक होनहार शिष्य थे, जिन्होंने उनके विचारों का विकास किया। उनके श्रेष्ठ छात्रों में व० व० मारकोवनीकोव, अ० ई० फावोरस्की आदि जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक आते हैं

इस प्रकार बूतलेरोव सिद्धाँत के अनुसार पदार्थों के गुण, जैसा कि पहले सोचा जाता था, उनके गुणात्मक एवं सँख्यात्मक अवयवानुपात पर ही नहीं निर्भर करते, बल्कि अणु की आंतरिक संरचना, अणु बनाने वाले परमाणुओं के निश्चित युग्मन क्रम, पर भी निर्भर करते हैं इस आंतरिक संरचना का नाम बूतलेरोव ने " रासायनिक संरचना " रखा।

बूतलेरोव के और भी अधिक महत्वपूर्ण विचार के अनुसार परमाणु अपनी संयोजकता के आधार पर आपस में एक निश्चित क्रम में जुड़ते हैं तथा एक दूसरे पर इस प्रकार प्रभाव डालते है कि उनकी स्वयं की प्रकृति में, उनके " रासायनिक सार " में, आंशिक परिवर्त्तन आ जाता है। इस प्रकार हाइड्रोजन के परमाणु के गुणों में बहुत-से परिवर्त्तन, उदाहरणार्थ, इस बात पर निर्भर करते हैं कि वह किस तत्त्व के परमाणु से जुड़ा है — क्लोरीन के परमाणु से (HCl अणु में), आक्सीजन के परमाणु से (H_2O अणु में) या नाइट्रोजन के परमाणु से (NH_3 अणु में)। प्रथम स्थिति में जलीय घोलों में हाइड्रोजन का परमाणु HCl के अणु से अपेक्षाकृत सरलतापूर्वक H^+ आयन के रूप में पृथक हो जाता है, जिसके कारण हाइड्रोजन क्लोराइड में अम्लीय गुण आ जाते हैं। पर जल के अणु से हाइड्रोजन का आयन काफ़ी मुश्किल से पृथक होता है तथा जल में अम्लीय गुण अत्यंत क्षीण होते हैं। अंत में अमोनिया के अणु से वह और भी अधिक मुश्किल से पृथक होता है — अमोनिया में क्षारक गुण हैं। परमाणु के परस्पर प्रभाव के अनेक रूप कार्बनिक यौगिकों में देखने को मिलते हैं।

बूतलेरोव सिद्धाँत की सहायता से पदार्थों की बहुरूपता को समझना संभव हुआ तथा रासायनिक गुणों के आधार पर पदार्थों के अणुओं की आंतरिक संरचना निश्चित की जा सकी, अणुओं की संरचना से पदाथ के गुणों का पूर्वज्ञान संभव हुआ एवं विभिन्न यौगिकों के संश्लेषण की विधियाँ निश्चित की जा सकीं।

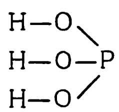
बूतलेरोव के सिद्धाँत ने अणुओं की संरचना को संरचनात्मक सूत्रों द्वारा व्यक्त करना भी संभव बनाया, जिनमें आपस में जुड़े हुये परमाणुओं का क्रम भी देखा जा सकता है। इनमें परमाणुओं को मिलाने वाली लकीरें उनकी संयोजकता की इकाइयों को व्यक्त करती हैं। जैसे, हाइड्रोजन क्लोराइड HCl हाइपोक्लोरस (HClO) तथा क्लोरिक ($HClO_3$) अम्लों के अणुओं की संरचना निम्न संरचनात्मक सूत्रों द्वारा व्यक्त की जाती है :

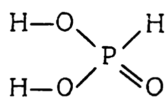


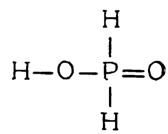
हाइड्रोजन क्लोराइड   हाइपोक्लोरस अम्ल   क्लोरिक अम्ल

इन सूत्रों से स्पष्ट है कि केवल हाइड्रोजन क्लोराइड मे हाइड्रोजन का परमाणु क्लोरीन के परमाणु के साथ प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हैं, जबकि हाइपोक्लोरस तथा क्लोरिक अम्लों में वह क्लोरीन के साथ नहीं बल्कि आक्सीजन के परमाणु के साथ जुड़ा है इसके अलावा, क्लोरिक अम्ल के संरचनात्मक सूत्र से पता चलता है कि आक्सीजन के परमाणुओं में असमानता है; उसके अणु में आक्सीजन के दो में से प्रत्येक परमाणु क्लोरीन के परमाणु के साथ दो संयोजकता आबन्धों द्वारा जुड़ा है तथा तीसरा परमाणु एक ही समय क्लोरीन एवं हाइड्रोजन के परमाणुओं के साथ जुड़ा है।

आर्थोफॉस्फोरिक अम्ल (H_3PO_4) फॉस्फोरस अम्ल (H_3PO_3) तथा हाइपोफॉस्फोरस अम्ल (H_3PO_2) के कुछ गुणों में अंतर को भी (उदाहरण के लिये) संरचना सूत्रों की मदद से समझा जा सकता है। इन अम्लों में से प्रत्येक में हाइड्रोजन के तीन परमा हैं। आइये, इनके संरचना-सूत्रों को देखें:


आर्थोफॉसफोरिक अम्ल


फॉसफोरस अम्ल


हाइपोफॉसफोरस अम्ल

जैसा कि स्पष्ट है, आर्थोफॉस्फोरिक अम्ल के अणु में हाइड्रोजन का प्रत्येक परमाणु आक्सीजन के परमाणु के साथ जुड़ा है। हाइड्रोजन के ये सभी परमाणु धातुओं के परमाणुओं द्वारा प्रतिस्थापित किये जा सकते है, जिसके कारणवश ही H_3PO_4 त्रिक्षारकी है। फास्फोरस अम्ल के अणु में हाइड्रोजन के केवल दो परमाणु ही आक्सीजन के परमाणुओं से सीधे जुड़े हैं और धातुओं के परमाणुओं द्वारा प्रतिस्थापित किये जा सकते हैं: यह अम्ल द्विक्षारकी है। हाइपोफास्फोरस अम्ल के अणु में हाइड्रोजन का केवल एक परमाणु आक्सीजन के केवल एक परमाणु के साथ जुड़ा है, जिसके कारण वह एकक्षारकी है।

कार्बनिक पदार्थों के अध्ययन की समय अणुओं की रासायनिक संरचना को संरचना-सूत्रों द्वारा व्यक्त करना काफ़ी महत्व रखता है।

संरचना-सूत्र परमाणुओं के परस्पर युग्मन का केवल क्रम व्यक्त करते हैं, व्योम में उनकी पारस्परिक स्थितियों को नहीं व्यक्त करते। इसके साथ ही, संरचना-सूत्रों द्वारा केवल उन्हीं पदार्थों की रासायनिक संरचना व्यक्त की जा सकती है, जो अणुओं से बने हैं। अनेक पदार्थ अणुओं से नहीं बने होते, बल्कि परमाणुओं से बने होते हैं (जैसे, सिलिकॉन कार्बाइड SiO), या फिर उनकी आयनिक संरचना होती है (जैसे सोडियम क्लोराइड NaCl) ऐसे पदार्थों की संरचना उनके क्रिस्टल जालक (crystal lattice) द्वारा निश्चित की जाती है। इसका अध्ययन अध्याय-V में किया जाएगा।

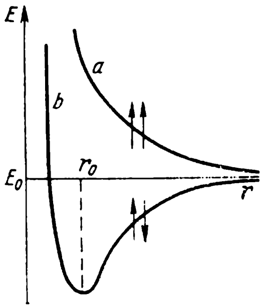
रासायनिक संरचना के सिद्धांत ने समांशता (isomerism) को भी समझाया, जिसका अर्थ है ऐसे यौगिकों का अस्तित्व, जो समान संख्यात्मक एवं गुणात्मक अवयवानुपात रखते हैं, पर जिनके गुण विभिन्न होते हैं। ऐसे यौगिकों को समांशी कहते हैं।

समांशता का अध्ययन कार्बनिक यौगिकों के अध्ययन के समय किया जाएगा, जिनमें ये बहुधा पाये जाते हैं। यहाँ यह भी नोट करना आवश्यक है कि समांशता अकार्बनिक यौगिकों में भी होती है। उदाहरणतया, सन् 1824 में लीबीग ने यह सिद्ध किया कि फलिमिनिक अम्ल तथा सायनिक अम्ल के रजत लवणों, क्रमशः AgONC तथा AgNCO, का अवयवानुपात हालाँकि समान है, इनके गुणों में बहुत बड़ा अंतर है। सम्मिश्र यौगिकों का अध्ययन करते समय भी हम समांशियो के उदाहरणों को देखेंगे।

रासायनिक संरचना का विकास करते समय बूतलेरोव ने रासायनिक आबंध की प्रकृति को समझना अपना ध्येय नहीं बनाया। उन्होंने सही सोचा था कि इस समय का रसायनशास्त्र इन प्रश्नों को हल करने में समर्थ नहीं है। वस्तुतः रासायनिक आबन्ध के विकास के लिये परमाणु की संरचना को समझना आवश्यक था। जब इलेक्ट्रानिक संरचना की मुख्य रूप-रेखा समझ ली गई थी, तभी इस सिद्धाँत का विकास संभव हुआ। सन् 1916 में अमेरिकी भौतिकविद और रसायनज्ञ ज० लुईस ने यह विचार प्रस्तुत किया कि रासायनिक आबन्ध इलेक्ट्रान युगल से बनता है, जो एक ही साथ दो परमाणुओं में विद्यमान होता है। यह विचार सहसंयोजी आबन्ध के आधुनिक सिद्धाँत का आधार बना। सन् 1916 में ही जर्मनी वैज्ञानिक व० कोस्सल ने यह विचार व्यक्त किया कि जब दो परमाणु परस्पर क्रिया करते हैं, तो एक परमाणु इलेक्ट्रान देता है तथा दूसरा लेता है। इसके फलस्वरूप, पहला परमाणु धनावेशित आयन हो जाता है तथा दूसरा–ऋणावेशित आयन में परिवर्त्तित हो जाता है। इन उत्पन्न आयनों का परस्पर स्थिर वैद्युत आकर्षण ही स्थायी यौगिक बनने का कारण होता है। कोस्सल के इस विचार का विकास आयनी आबंध के आधुनिक सिद्धाँत का आधार बना।

38. **सहसंयोजी आबन्ध. संयोजी आबन्धों की विधि.** जैसा हमें ज्ञात है, स्थायी अणु केवल उसी स्थिति में बनता है, जब परस्पर क्रियाशील परमाणुओं के विन्यास की स्थितिज ऊर्जा कम हो जाती है। अणु में इलेक्ट्रानों की अवस्था ज्ञात करने के लिये परमाण्वीय नाभिको एवं इलेक्ट्रानों के तदनुरूपी विन्यासों के लिये श्रेडिन्गेर समीकरण प्रयोग करना चाहिये और विन्यास की न्यूनतम ऊर्जा के लिये उसका हल निकालना चाहिये। लेकिन, जैसा §30 में कहा गया था, बहुइलेक्ट्रानिक विन्यासों के लिये श्रेडिन्गेर समीकरण एकदम सही नहीं है। इसलिये अणु की संरचना का क्वान्टमी-यांत्रिकीय चित्रण, बहुइलेक्ट्रानिक परमाणुओं की तरह, श्रेडिन्गेर के लगभग मूल्यों के आधार पर ही निश्चित किया जाता है।

सबसे पहले इस प्रकार के लगभग मूल्यों का परिकलन सन् 1927 में व० हेइटलेर तथा फ० लन्डन ने हाइड्रोजन के अणु के लिये किया। इन्होंने पहले काफी दूरी पर स्थित हाइड्रोजन के दो परमाणुओं के विन्यासों का अध्ययन किया। यहाँ प्रत्येक इलेक्ट्रान की केवल नाभिक के साथ ही क्रिया का अध्ययन किया जा सकता है तथा शेष सभी क्रियाएं जैसे नाभिकों का परस्पर प्रतिकर्षित होना, इलेक्ट्रानों का दूसरी नाभिक की ओर आकर्षित होना, इलेक्ट्रानों की परस्पर क्रिया, आदि को छोड़ा जा सकता है। इस प्रकार, विचाराधीन विन्यास के तरंग फलन व निर्देशांक का संबन्ध और इसके साथ ही व्योम में किसी भी बिन्दु पर सामान्य इलेक्ट्रानिक अभ्र का घनत्व निश्चित किया जा सकता है। यहाँ, यह याद दिलायें कि इलेक्ट्रानिक अभ्र का घनत्व तरंग फलन के वर्ग का समानुपातिक होता है (§ 25)।



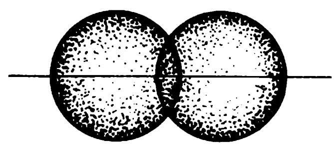
चित्र 26. हाइड्रोजन के दो परमाणुओं के विन्यास की ऊर्जा। a– इलेक्ट्रानों के प्रचक्रणों की दिशाएं विपरीत होने पर ; E_0 – हाइड्रोजन के परस्पर उदासीन परमाणुओं के विन्यास की ऊर्जा ; r_0 – हाइड्रोजन के अणु में अन्तरानाभिक दूरी।

इसके बाद हेइटलेर व लन्डन ने यह विचार प्रस्तुत किया कि इस प्रकार निश्चित किया गया तरंग फलन व निर्देशांक का संबन्ध हाइड्रोजन के परमाणुओं के समीप आ जाने पर भी सही रहता है। लेकिन यहाँ उन परस्पर क्रियाओं (नाभिकों के बीच, इलेक्ट्रानों के बीच, इत्यादि) को भी ध्यान में रखना अतिआवश्यक है, जिन्हें परमाणुओं के बीच की दूरी जरा-सी भी बढ़ जाने से छोड़ा जा सकता है: इन अतिरिक्त परस्पर क्रियाओं को हाइड्रोजन के स्वतंत्र परमाणुओं में इलेक्ट्रानों की प्रारम्भिक स्थिति में कुछ संशुद्धियों ("विक्षोभ") के रूप में देखना चाहिये।

इस प्रकार हेइटलेर व लन्डन ने ऐसा समीकरण प्राप्त किया, जिसके द्वारा हाइड्रोजन के दो परमाणुओं वाले विन्यास की स्थितिज ऊर्जा E और इन परमाणुओं की नाभिकों के बीच की दूरी "r" का संबन्ध निश्चित किया जा सकता है। इस बीच यह भी ज्ञात हुआ कि प्राप्त किया जाने वाला परिणाम इस बात पर भी निर्भर करता है कि परस्पर क्रियाशील इलेक्ट्रानों के प्रचक्रणों के चिन्ह समान हैं या विपरीत। समान दिशा वाले प्रचक्रणों (चित्र 26 त्रिज्या a) में परमाणुओं के एक-दूसरे की ओर आने से विन्यास की ऊर्जा लगातार बढ़ने लगती है। इस स्थिति में परमाणुओं के एक दूसरे की ओर आने में ऊर्जा खर्च होती है। अतः यह क्रिया ऊर्जा की दृष्टि से लाभदायक नहीं है और परमाणुओं के बीच रासायनिक आबन्ध नहीं बनता। प्रचक्रणों की दिशाएँ विपरीत होने पर (चित्र 26, त्रिज्या b) परमाणुओं के एक

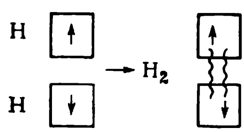
दूसरे की ओर आने में निश्चित दूरी r° तक विन्यास की ऊर्जा कम होती है। $r = r^{\circ}$ स्थिति में विन्यास की स्थितिज ऊर्जा न्यूनतम होती है, यानी वह सर्वाधिक स्थायी अवस्था में होता है, और यदि परमाणु और अधिक एक दूसरे के समीप आते हैं तो ऊर्जा बढ़ने लगती है। इसी का अर्थ यह हुआ कि परमाण्वीय इलेक्ट्रानों के विपरीत दिशा वाले प्रचक्रणों द्वारा H_2 का अणु—हाइड्रोजन के दो परमाणुओं, जो एक दूसरे से एक निश्चित दूरी पर स्थित है, का स्थायी विन्यास—बनता है।

हाइड्रोजन के परमाणुओं के बीच रासायनिक आबन्ध के बनने का कारण है परस्पर क्रियाशील परमाणुओं के एक दूसरे के समीप आते समय इलेक्ट्रानिक अभ्रों का परस्पर अंतर्वेधन (interpenetration) या "अतिव्यापन" (overlapping) (चित्र 27)। ऐसे अंतर्वेधन के फलस्वरूप अन्तरानाभिकीय आकाश में ऋणात्मक वैद्युत आवेश का घनत्व बढ़ जाता है। परमाणुओं के धनात्मक आवेशित नाभिक इलेक्ट्रानिक अभ्रों के अतिव्यापन क्षेत्र की ओर आकृष्ट हो जाते हैं। यह आकर्षण समान आवेशों वाले इलेक्ट्रानों के परस्पर प्रतिकर्षण से अधिक होता है, जिसके फलस्वरूप स्थायी अणु बनता है।



चित्र 27 हाइड्रोजन के अणु में परमाण्वीय इलेक्ट्रानी अभ्रों के अतिव्यापन का आरेख।

हाइड्रोजन के अणु में अंतरानाभिकीय दूरी तथा आबन्ध-ऊर्जा के हेइटलेर एवं लन्डन द्वारा प्राप्त किये गये परिकलित मूल्य (जिनका समर्थन अन्य वैज्ञानिकों ने भी किया) प्रायोगिक रूप से प्राप्त किये गये मूल्यों के बहुत ही करीब निकले। इसका अर्थ यह हुआ कि श्रेडिन्गेर समीकरण को हल करते समय हेइटलेर तथा लन्डन द्वारा प्रयोग किये गये लगभग मूल्यों से परिकलन में महत्वपूर्ण त्रुटियाँ नहीं होती, यानी श्रेडिन्गेर समीकरण सही है। अतः हेइटलेर व लन्डन के शोध-कार्यों की मदद से इस निष्कर्ष पर पहुँचना संभव हो गया कि हाइड्रोजन के अणु में रासायनिक आबन्ध दोनों परमाणुओं में विपरीत दिशा के प्रचक्रणों वाले इलेक्ट्रानों के युगलों से बनता है। हाइड्रोजन के अणु के बनने में "युगलीकरण" को निम्न आरेख द्वारा व्यक्त किया जा सकता है:



आरेख में तरंगी रेखाओं का अर्थ यह है कि हाइड्रोजन के अणु में प्रत्येक इलेक्ट्रान दोनों परमाणुओं के क्वान्टमी कोशों में स्थान ग्रहण करता है, अर्थात् दो बल केन्द्रों—हाइड्रोजन परमाणुओं के नाभिकों द्वारा बने बल क्षेत्र में घूमता है।

ऐसा द्विइलेक्ट्रानिक द्विकेन्द्रिय आबन्ध सहसंयोजी आबन्ध कहलाता है।

हाइड्रोजन के अणु के आधार पर हेइटलेर तथा लन्डन द्वारा रासायनिक आबन्ध के बारे में विकसित किये गये विचार बाद में अधिक जटिल अणुओं पर लागू किये गये। इस पर आधारित रासायनिक आबन्ध का सिद्धाँत अपने विकसित रूप में संयोजी आबंध विधि कहलाया। इस विधि की सहायता से सहसंयोजी आबन्ध के महत्वपूर्ण गुणों की सैद्धाँतिक व्याख्याएँ दी जा सकी तथा अनेक अणुओं की संरचना को समझा जा सका। हालाँकि, जैसा हम आगे देखेंगे (§ 45), यह विधि सर्वव्यापक नहीं थी और कई स्थितियों में अणुओं की संरचना एवं गुणों को सही प्रकार समझाने में असमर्थ रही–, लेकिन रासायनिक आबन्ध के क्वान्टमी यांत्रिकीय सिद्धाँत के विकास में काफ़ी बड़ा रोल अदा किया है तथा इसका महत्व आज भी उतना ही है।

इस विधि के आधार में निम्न मुख्य बातें हैं:

1. सहसंयोजी रासायनिक आबन्ध विपरीत दिशा वाले प्रचक्रणों के दो इलेक्ट्रानों से बनता है तथा दोनों इलेक्ट्रानों का युगल दो परमाणुओं में होता है।

अणु की इलेक्ट्रानिक संरचना दर्शाने वाले ऐसे द्विइलेक्ट्रानिक द्विकेन्द्रीय आबन्धों के समुच्चयों को संयोजी आरेखों का नाम दिया गया।

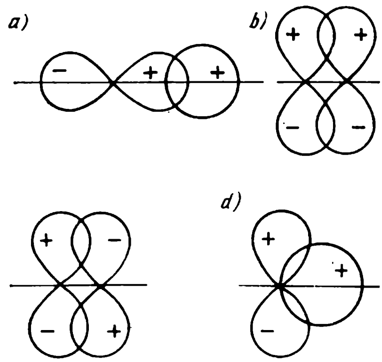
2. सहसंयोजी आबन्ध उतना ही दृढ़ होगा, जितना अधिक परस्पर क्रियाशील इलेक्ट्रानिक अभ्रों का अतिव्यापन होगा।

[इलेक्ट्रानिक अभ्रों के अतिव्यापन को निश्चित करते समय इलेक्ट्रानों के तरंग फलन के चिन्ह नोट करने चाहिये। चूंकि इलेक्ट्रानों में तरंगी गुण विद्यमान हैं, दो इलेक्ट्रानों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप सामान्य "इलेक्ट्रानिक तरंग" उत्पन्न होती है। जब प्रारम्भिक तरंगों के आयाम के चिन्ह समान होते हैं, उनके मिलने पर एक अंतिम तरंग बनती है, जिसके आयाम का निरपेक्ष मान प्रारम्भिक आयामों से अधिक होता है। इसके विपरीत, जब प्रारम्भिक तरंगों के विभिन्न चिन्ह होते हैं, उनके मिलने पर अंतिम तरंग बनती है, जिसके आयाम का निरपेक्ष मान कम होता है–ये तरंगे एक दूसरे को "बुझा" देती हैं। पहले बताया ही गया था कि इलेक्ट्रानिक तरंग के आयाम का रोल तरंग फलन φ अदा करता है § 25। इसलिये व्योम के उन क्षेत्रों में, जहाँ परस्पर क्रियाशील इलेक्ट्रानों के तरंग फलनों के चिन्ह समान हैं, बनने वाले सामान्य इलेक्ट्रानिक अभ्र के तरंग फलन का निरपेक्ष मान पृथक् परमाणुओं के तरंग फलन के मान से अधिक होगा, और इसके साथ ही φ^2 का मान भी बढ़ने लगेगा अर्थात् इलेक्ट्रानिक अभ्र का घनत्व भी बढ़ने लगेगा। यहाँ इलेक्ट्रानिक अभ्रों का धनात्मक अतिव्यापन होता है, जिसके कारण नाभिक परस्पर आकर्षित होते हैं। आकाश के उन्हीं क्षेत्रों में, जहाँ परस्पर क्रियाशील इलेक्ट्रानों के तरंग फलनों के चिन्ह विपरीत हैं, अन्तिम तरंग फलन का निरपेक्ष मान पृथक परमाणुओं के तरंग फलन के मान से कम होगा एवं φ^2 भी

कम हो जाएगा, यानी इलेक्ट्रानिक अभ्र का घनत्व कम हो जाएगा। यहाँ इलेक्ट्रानिक अभ्रों का ऋणात्मक अतिव्यापन होता है, जिसके कारण नाभिक परस्पर प्रतिकर्षित होते हैं।]

इलेक्ट्रानिक अभ्रों के अतिव्यापन के कुछ संभव रूप उनके तदनुरूपी तरंग फलनों के चिन्हों के साथ चित्र 28 में दिखाये गये हैं।

संयोजी आरेखों को प्रदर्शित करने के लिये निम्न विधि का प्रयोग किया जाता है। संयोजकता इलेक्ट्रानिक कोश में स्थित इलेक्ट्रानों को बिन्दुओं द्वारा निर्दिष्ट किया जाता हैं, जिन्हें उस परमाणु के रासायनिक प्रतीक के चारों ओर लिखा जा सकता है। दो परमाणुओं के लिये सामान्य इलेक्ट्रानों को उनके रासायनिक प्रतीकों के मध्य बिन्दुओं द्वारा निर्दिष्ट किया जाता हैं। द्वि- या त्रि-आबन्धों को क्रमश: दो या तीन सामान्य बिन्दुओं द्वारा निर्दिष्ट किया जाता हैं। इस प्रकार, हाइड्रोजन के अणु को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है:



चित्र 28. इलेक्ट्रानी अभ्रों के अतिव्यापन के विभिन्न रूपों का आरेख। *a,b*– धनात्मक अतिव्यापन ; *c*– ऋणात्मक अतिव्यापन ; *d*– आन्तिम अतिव्यापन, शून्य के बराबर।

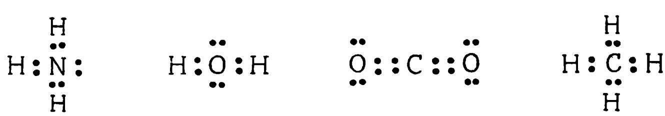
$$H\cdot + \cdot H \rightarrow H:H$$

ऐसे ही आरेखों द्वारा नाइट्रोजन के अणु के बनने की क्रिया दिखाई जा सकती है:

$$:\dot{\underset{\cdot}{N}}\cdot + \cdot\dot{\underset{\cdot}{N}}: \;\longrightarrow\; :N:::N:$$

नाइट्रोजन के दो परमाणुओं के एक अणु में परिवर्त्तित होने के फलस्वरूप इलेक्ट्रानों के तीन जोड़े सामूहिक हो जाते हैं (त्रि आबन्ध) ; जिसके कारण प्रत्येक परमाणु के संयोजकता इलेक्ट्रान कोश (outer electron shell) की आपूर्त्ति तब तक होती रहती है, जब तक निऑन के परमाणु का अष्ट इलेक्ट्रान-विन्यास (Eight-electron configuration) प्राप्त नहीं होता।

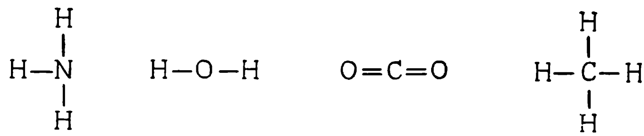
कुछ जटिल पदार्थों–अमोनिया, जल, कार्बन डाइआक्साइड और मेथेन,–के अणुओं की संरचना को निम्न आरेखों द्वारा दिखाया जा सकता है:



अमोनिया जल कार्बन डाइआक्साइड मेथेन

अमोनिया के अणु में हाइड्रोजन के तीनों परमाणुओं में से प्रत्येक परमाणु सामूहिक इलेक्ट्रान युगल (एक इलेक्ट्रान हाइड्रोजन के परमाणु से, दूसरा–नाइट्रोजन के परमाणु से) द्वारा नाइट्रोजन के परमाणु के साथ जुड़ा है। इस प्रकार, नाइट्रोजन के संयोजकता कोश में आठ इलेक्ट्रान हैं और हाइड्रोजन के प्रत्येक परमाणु का नाभिक दो इलेक्ट्रानों से घिरा है, जो स्थायी "हीलियम" कोश बनाते हैं। जल तथा मेथेन के अणुओं में हाइड्रोजन के परमाणुओं के भी ऐसे ही कोश होते हैं। कार्बन डाइ-आक्साइड के अणु में, जहाँ कार्बन का परमाणु इलेक्ट्रानों के दो जोड़ों (द्वि-आबन्ध) के द्वारा आक्सीजन के प्रत्येक परमाणु के साथ जुड़ा है, तीनों परमाणुओं के संयोजकता कोश अष्ट-इलेक्ट्रानी हैं।

ऊपर दिये गये आरेखों से स्पष्ट है कि दो परमाणुओं को जोड़ने वाला इलेक्ट्रानों का प्रत्येक जोड़ा एक डैश (–) द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है जिससे संरचना सूत्रों में संयोजकता आबन्ध सूचित किया जाता है:



अमोनिया जल कार्बन डाइआक्साइड मेथेन

किसी निश्चित तत्व के परमाणु को दूसरे परमाणुओं के साथ जोड़ने वाले ऐसे सामूहिक इलेक्ट्रानों के जोड़ों की सँख्या, या अन्य शब्दों में, परमाणु द्वारा बनने वाली सहसंयोजी आबन्धों की सँख्या नियत यौगिक में उस तत्व की सहसंयोजकता कहलाती है। अतः, N_2 तथा NH_3 अणुओं में नाइट्रोजन की सहसंयोजकता तीन है, H_2O एवं CO_2 अणुओं में आक्सीजन की सहसंयोजकता चार के बराबर है, और CH_4 और CO_2 अणुओं में कार्बन की सहसंयोजकता चार है।

39. **अध्रुवी एवं ध्रुवी सहसंयोजी आबन्ध.** यदि द्वि-परमाणुक अणु में परमाणु एक ही तत्त्व के हों, जैसे H_2 N_2 Cl_2 इत्यादि अणु, तो इलेक्ट्रानों के सामूहिक जोड़े द्वारा बनने वाला एवं सहसंयोजी आबन्ध बनाने वाला प्रत्येक इलेक्ट्रानी अभ्र का आकाश में दोनों परमाणुओं के नाभिकों के प्रति सममित स्थान है। इस स्थिति में सहसंयोजी आबन्ध अध्रुवीय कहलाता है। यदि द्वि-परमाणुक अणु में परमाणु विभिन्न तत्त्वों के हैं, तो सामूहिक इलेक्ट्रानी अभ्र किसी एक परमाणु की ओर सरक जाता है, जिसके कारण आवेश के विस्तारण में असममिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थि-तियों में सहसंयोजी आबन्ध ध्रुवीय कहलाता है।

किसी नियत तत्त्व के परमाणु की सामूहिक इलेक्ट्रानी जोड़े को अपनी ओर आकृष्ट करने की शक्ति को मापने के लिये आनुपातिक विद्युत ऋणात्मकता (relative

electronegativity) का मापक्रम प्रयोग किया जाता है। परमाणु की विद्युत् ऋणात्मकता जितनी अधिक होगी, उतनी ही अधिक तीव्रता से परमाणु सामूहिक इलेक्ट्रानी जोड़े को आकृष्ट करेगा। अन्य शब्दों में, भिन्न तत्वों के दो परमाणुओं के बीच सहसंयोजी आबन्ध के बनने में इलेक्ट्रानी अभ्र अधिक ऋणविद्युत परमाणु की ओर सरक जाता है, और वह उतना अधिक सरक जाएगा, जितनी अधिक परस्पर क्रियाशील परमाणुओं की विद्युत ऋणात्मकता भिन्न होगी। फ्लुओरीन की विद्युत् ऋणात्मकता, जो 4 के बराबर मानी गई है, के अनुपात में कुछ तत्वों के परमाणुओं की विद्युत् ऋणात्मकता के मान तालिका 6* में दिये गये हैं:

तालिका 6

H 2,1						
Li 0.98	Be 1.5	B 2.0	C 2.5	N 3.07	O 3.50	F 4.0
Na 0.93	Mg 1.2	Al 1.6	Si 1.8	P 2.2	S 2.6	Cl 3.0
K 0.91	Ca 1.04	Ga 1.8	Ge 1.8	As 2.1	Se 2.5	Br 2.8
Rb 0.89	Sr 0.99	In 1.5	Sn 1.8	Sb 1.8	Te 2.1	I 2.6

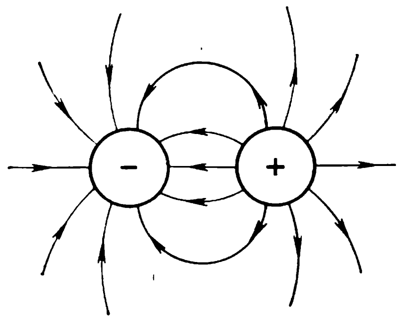
जैसा कि तालिका 6 से स्पष्ट है, वैद्युत् ऋणात्मकता आवर्त सारणी में तत्व के स्थान के आधार पर नियमानुसार बदलती है। प्रत्येक आवर्तक के आरम्भ में न्यूनतम विद्युत् ऋणात्मकता वाले तत्त्व-विशिष्ट धातु हैं तथा आवर्तक के अन्त में (आदर्श गैसों से पूर्व) – अधिकतम विद्युत् ऋणात्मकता वाले तत्त्व, अर्थात विशिष्ट अधातु हैं। एक ही उपग्रुप के तत्त्वों में नाभिक के आवेश के बढ़ने के साथ विद्युत ऋणात्मकता की प्रवृत्ति घटने की ओर होती है। अतएव, कोई तत्त्व जितना अधिक विशिष्ट धातु होगा, उतनी ही कम उसकी विद्युत् ऋणात्मकता होगी; और जितना अधिक वह विशिष्ट अधातु होगा, उतनी अधिक उसकी विद्युत् ऋणात्मकता होगी।

---

*परमाणु की आनुपातिक विद्युत् ऋणात्मकता स्थायी माप नहीं है: यह नियम यौगिक में परमाणु की संयोजकता पर तो निर्भर करता ही है, साथ ही इस बात पर भी निर्भर करता है कि वह परमाणु कौन-से अन्य तत्त्वों के परमाणुओं के साथ जुड़ा है। इसलिये, तालिका 6 में दी गई सँख्याएँ अणुओं के बनने में केवल इलेक्ट्रानों के विस्थापन की दिशा निश्चित करने के लिये ही प्रयोग की जाती है।

ध्रुवीय सहसंयोजी ग्राबन्ध के बनने में सामूहिक इलेक्ट्रानी अभ्र के विस्थापन के फलस्वरूप ऋणात्मक विद्युत ग्रावेश का ग्रौसत घनत्व अधिक विद्युत् ऋणात्मकता वाले परमाणु के समीप कम होता है। इसके कारणवश पहला परमाणु अतिरिक्त ऋणात्मक ग्रावेश प्राप्त करता है एवं दूसरा परमणु अतिरिक्त धनात्मक ग्रावेश प्राप्त करता है। अणु में ये ग्रावेश परमाणुग्रों के प्रभावी परमाणु ग्रावेश (effective atomic charge) कहलाते हैं।

इस प्रकार; हाइड्रोजन क्लोराइड के अणु में सामूहिक इलेक्ट्रानी जोड़ा क्लोरीन के अधिक विद्युत ऋणात्मकता वाले परमाणु की दिशा में विस्थापित है, जिसके कारण क्लोरीन के परमाणु में 0.17 इलेक्ट्रान ग्रावेश के बराबर प्रभावी ऋणात्मक ग्रावेश उत्पन्न हो जाता है, ग्रौर हाइड्रोजन के परमाणु में इसी के बराबर निरपेक्ष मान का प्रभावी धनात्मक ग्रावेश उत्पन्न हो जाता है। अतएव, HCl का अणु ध्रुवीय अणु है। यह एक परस्पर निश्चित दूरी पर स्थित समान निरपेक्ष मान एवं विपरीत चिन्हों वाले दो ग्रावेशों का विन्यास है। ऐसे विन्यास वैद्युत् द्विध्रुव कहलाते हैं। हालांकि, द्विध्रुव का कुल ग्रावेश शून्य के बराबर होता है, लेकिन उसके चारों ग्रोर ग्राकाश में विद्युत-क्षेत्र बन जाता है, जैसा कि चित्र 29 में दिखाया गया है।



चित्र 29. द्वि-ध्रुव का विद्युत-क्षेत्र। बल रेखाग्रों की दिशाएँ तीर के चिन्हों द्वारा सूचित की गई हैं।

इस क्षेत्र की तीव्रता (intensity) अणु के द्वि-ध्रुव ग्राघूर्ण (dipole moment) μ के ग्रानुपातिक है। अणु का द्विध्रुव ग्राघूर्ण μ इलेक्ट्रान के ग्रावेश के निरपेक्ष मान q ग्रौर अणु में धनात्मक एवं ऋणात्मक ग्रावेशों के केन्द्रों के बीच की दूरी l का गुणनफल है :

$$\mu = ql$$

अणु का द्विध्रुव-ग्राघूर्ण उसकी ध्रुवता का सँख्यात्मक माप है। सामान्यतः, अणु के द्विध्रुव-ग्राघूर्ण डेबाई (D)* में मापा जाता है : $1D = 3.33 \times 10^{-30}$ कू० · मी० के बराबर हैं।

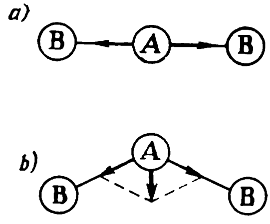
अणु जितना अधिक ध्रुवीय होगा, उतना ही अधिक सामूहिक इलेक्ट्रानी जोड़ा किसी एक परमाणु की ग्रोर विस्थापित होगा अर्थात् परमाणु के प्रभावी ग्रावेश उतने ही अधिक होंगे एवं द्विध्रुव-दैर्ध्य l उतना ही अधिक होगा।

---

*इस इकाई का नाम हालैंड के भौतिकतज्ञ प० डेबाई के सम्मान में रखा गया है। घन अवस्था भोतिकी, एकस-किरण विश्लेषण, ध्रुवीय द्रवों का सिद्धाँत- क्षेत्रों में उनके शोध-कार्य सुप्रसिद्ध हैं।

इसलिये अनेक समान रूप से बने अणुओं में उनके परमाणुओं की विद्युत् ऋणात्मकताओं में अन्तर के बढ़ने के साथ द्विध्रुव-आघूर्ण बढ़ जाता है। उदाहरणतया HCl, HBr तथा HI के द्विध्रुव-आघूर्ण क्रमशः 1.04; 0.79 तथा 0.38 D के बराबर हैं जिसका सम्बन्ध HCl से HBr तथा HI में परिवर्त्तन के समय परमाणुओं की विद्युत् ऋणात्मकता के अन्तर के कम होने के साथ है (दे० तालिका 6)।

इसी प्रकार बहुपरमाणुक अणु भी अध्रुवी हो सकते हैं यदि आवेशों का विस्तारण सममित हो, तथा ध्रुवी हो सकते हैं यदि आवेशों का विस्तारण असममित हो। अन्तिम स्थिति में अणु का द्वि-ध्रुवआघूर्ण शून्य से अलग होगा। बहुपरमाणुक अणु में प्रत्येक आबन्ध के लिये एक निश्चित् द्वि-ध्रुवआघूर्ण, जो उसके ध्रुवण के लिये वैशि- ष्ट्य है, नियत किया जा सकता है; और यह नियत करते समय न केवल द्वि-ध्रुव-आघूर्ण की मात्रा, बल्कि उसकी दिशा भी ध्यान में रखनी चाहिये, अर्थात् प्रत्येक आबन्ध के द्वि-ध्रुव-आघूर्ण को सदिश के रूप में मानना चाहिये। अतएव अणु के कुल सामूहिक द्वि-ध्रुव-आघूर्ण को पृथक-पृथक आबन्धों के द्वि-ध्रुव-आघूर्णों के सदिश योग के बराबर माना जा सकता है। सामान्यतः, द्वि-ध्रुव-आघूर्ण की दिशा द्वि-ध्रुव के धनात्मक छोर से ऋणात्मक छोर की ओर मानी गई है।



चित्र 30. विभिन्न संरचना वाले AB_2 कोटि के अणु में पृथक्-पृथक् आबन्धों के द्वि-ध्रुव आघूर्ण। a– रेखिक संरचना; b– कोणीय संरचना; बीच में स्थित मोटे तीर द्वारा अणु का सामूहिक द्वि-ध्रुव आघूर्ण का सदिश निर्दिष्ट किया गया है।

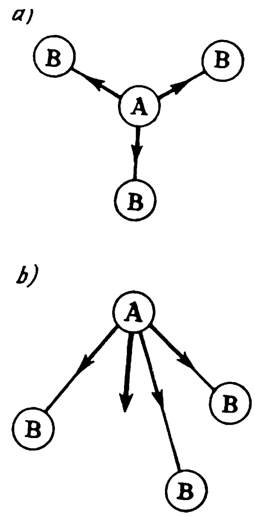
अणुओं के द्वि-ध्रुव-आघूर्णों के प्रायोगिक रूप से तदनुरूप पदार्थ के कुछ सूक्ष्मदर्शीय गुणों को निश्चित् करके ज्ञात किया जा सकता है,– उदाहरणतया, उसकी परावैद्युत् वेधिता* (dielectric penetrability) ज्ञात की जा सकती है। इस प्रकार प्राप्त किये गये द्वि-ध्रुव-आघूर्णों के मानों में अणुओं की ज्यामितीय संरचना का महत्वपूर्ण ज्ञान विद्यमान होता है।

अतः चित्र 30 में AB_2 कोटि के अणु की सम्भव संरचनाओं के आरेख दिये गये हैं। A—B के पृथक-पृथक आबन्धों के द्वि-ध्रुव-आघूर्णों के सदिश तीर द्वारा सूचित किये गये हैं, जिनकी दिशा A से B की ओर है। A—B दो आबन्धों के समान मात्रा वाले द्वि-ध्रुव-आघूर्णों (चित्र 30, a) की विपरीत दिशाएँ हैं। अतः, ऐसे अणु

---

*परावैद्युत वेधिता (परावैद्युतांक, डाइलेक्ट्रिक स्थिरांक) किसी पदार्थ की वह संख्या है, जो यह बताता है कि निर्वात की अपेक्षा नियत पदार्थ के माध्यम में आवेशों की पारस्परिक क्रिया कितनी क्षीण है।

का द्वि-ध्रुव-आघूर्ण शून्य के बराबर होगा। कोणीय संरचना की स्थिति में (चित्र 30, b) A — B दो आबन्धों के द्वि-ध्रुव-आघूर्णों का कुल सदिश शून्य नहीं है। ऐसे अणु का द्वि-ध्रुव-आघूर्ण होता है तथा वह ध्रुवी होता है। इसलिये AB_2 कोटि के अणु में द्वि-ध्रुव-आघूर्ण की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति के आधार पर उसके ज्यामितीय संरचना के प्रति निष्कर्ष निकाला जा सकता है। उदाहरणतया, इस बात का प्रमाण कि CO_2 का अणु अध्रुवी है तथा SO_2 के अणु में द्वि-ध्रुवी-आघूर्ण ($\mu = 1.61$ D) है, हमें पहले अणु की रेखिक संरचना से तथा दूसरे अणु की कोणीय संरचना से मिलता है।



चित्र 31. AB_3 कोटि के अणुओं में पृथक् आबन्धों के द्वि-ध्रुव आघूर्ण। *a*– समतल त्रिकोण ; *b*– पिरामिड ; मोटे तीर द्वारा अणु के कुल द्वि-ध्रुव आघूर्ण का सदिश निर्दिष्ट किया गया है।

चित्र 31 में AB_3 कोटि के अणु की संभव संरचनाओं के आरेख दिये गये हैं। यदि अणु की बनावट समतल त्रिकोण के रुप में है, तो (चित्र 31, a) पृथक आबन्धों के द्वि-ध्रुव-आघूर्णों का कुल सदिश शून्य के बराबर है अर्थात् अणु अध्रुवी है। यदि अणु की बनावट पिरामिड सी है (चित्र 31, b), तो उसका कुल द्वि-ध्रुव-आघूर्ण शून्य नहीं है – अणु ध्रुवी है। इस प्रकार, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि BF_3 अणु, जिसका द्वि-ध्रुव-आघूर्ण शून्य के बराबर है, की बनावट समतल है, तथा ध्रुवी अणु NH_3 ($\mu = 1.46$ D) की पिरामिडी संरचना है।*

अणुओं की ध्रुवता का उनके द्वारा बने पदार्थों के गुणों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। ध्रुवी अणुओं की पारस्परिक स्थितियाँ उनके विपरीत आवेशित छोरों के प्रभाव से निर्धारित होती हैं। इस द्विध्रुव-द्विध्रुव पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप ध्रुवी अणु एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट होते हैं तथा उनके मध्य अबन्ध और भी दृढ़ हो जाते हैं। यही कारण है कि अध्रुवी अणुओं से बने पदार्थों की आपेक्षा ध्रुवी अणुओं से बने पदार्थों का गलनांक एवं क्वथनांक नियमतः अधिक ऊँचा होता है।

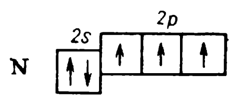
---

*यहाँ इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि अणु की द्वि-ध्रुव-आघूर्ण की मात्रा पर केवल पृथक आबन्धों की ध्रुवण तथा अणु की ज्यामितीय संरचना ही नहीं, बल्कि संकरित कक्षकों (hybridised orbitales) में अविभाजित इलेक्ट्रानी युगलों की उपस्थिति भी प्रभाव डालती है। (दे० पृ० 156)

ध्रुवी अणुओं से बने या आयनिक संरचना वाले पदार्थ को ऐसे द्रव में घोलने पर, जो स्वयं भी ध्रुवी अणुओं से बना हो, द्रव के आण्विक द्विध्रुवों तथा घोले जा रहे पदार्थ के अणुओं या क्रिस्टलों के मध्य द्वि-ध्रुव-द्विध्रुवी या आयन-द्विध्रुवी पारस्परिक क्रिया वाला स्थिर वैद्युत् बल उत्पन्न हो जाता है, जिसके कारण घुलने वाले पदार्थ का आयनों में विघटन हो जाता है। (दे० § 83)। इसलिये ध्रुवी अणुओं से बने द्रव आयनित द्रवों के गुण व्यक्त करते हैं, अर्थात् उनमें विलीन पदार्थों का विद्युत्-अपघटनी वियोजन (electrolytic dissociation) हो जाता है। इस प्रकार, हाइ-ड्रोजन क्लोराइड जल में भी घुलनशील है तथा बेन्जीन में भी घुल जाती है। लेकिन उसके जलीय घोल में विद्युत धारा अच्छी प्रकार प्रवाहित हो जाती है, जो इस बात का प्रमाण है कि HCl के अणुओं का आयनों में लगभग संपूर्ण वियोजन हो गया है; जबकि HCl और बेन्जीन के घोलों में विद्युत चालकता प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान नहीं है।

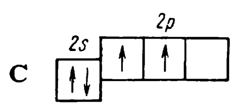
40. **सहसंयोजी आबन्धों के बनने की विधि.** जैसा कि ऊपर बताया गया है, सह-संयोजी आबन्ध बनाने वाला सामान्य इलेक्ट्रानी युगल परस्पर क्रियाशील अनुत्तेजित परमाणुओं में स्थित अयुग्मित इलेक्ट्रानों द्वारा भी बन सकता है। उदाहरणतया, यह H_2, HCl, Cl_2 इत्यादि अणुओं की निर्माण-क्रिया में देखा जा सकता है। इस स्थिति में प्रत्येक परमाणु में एक अयुग्मित इलेक्ट्रान होता है। ऐसे दो परमाणुओं की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप एक सामान्य इलेक्ट्रानी युगल बन जाता है और सहसंयोजी आबन्ध प्राप्त होता है।

नाइट्रोजन के अनुत्तेजित परमाणु में तीन अयुग्मित इलेक्ट्रान है:

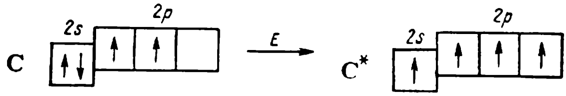


अतः, अयुग्मित इलेक्ट्रानों के कारण नाइट्रोजन का परमाणु तीन सहसंयोजी आबन्धों को बनाने में भाग ले सकता है। उदाहरणार्थ, N_2 एवं NH_3 के अणुओं में ऐसा ही होता है। उनमे नाइट्रोजन की सहसंयोजकता तीन के बराबर है।

लेकिन सहसंयोजी आबन्धों की सँख्या अनुत्तेजित परमाणु में अयुग्मित इलेक्ट्रानों की सँख्या से अधिक भी हो सकती है। इस प्रकार, सामान्य अवस्था में कार्बन के परमाणु के संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश की संरचना निम्न होती है, जिसे आरेख द्वारा दिखाया गया है:

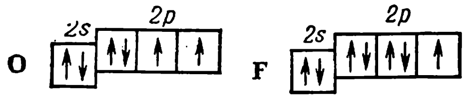


कार्बन का परमाणु ग्रयुग्मित इलेक्ट्रानों के ग्राधार पर दो सहसंयोजी ग्राबन्ध बना सकता है। जबकि, कार्बन के लिये ऐसे यौगिक लाक्षणिक हैं, जिनमें उसका परमाणु ग्रपने पड़ोसी परमाणुग्रों के साथ चार सहसंयोजी ग्राबन्धों द्वारा जुड़ा होता है (उदाहरणार्थ, CO_2, CH_4 ग्रादि)। इसका कारण यह है कि एक निश्चित ऊर्जा खर्च करके परमाणु के 2*s*-इलेक्ट्रानों को 2*p*-उपस्तर में लाया जा सकता है; जिसके फलस्वरूप परमाणु उत्तेजित ग्रवस्था में ग्रा जाता है ग्रौर ग्रयुग्मित इलेक्ट्रानों की सँख्या में वृद्धि हो जाती है। उत्तेजित करने की यह क्रिया, जो इलेक्ट्रानों के "जोड़ों को पृथक कर देती है", निम्न ग्रारेख द्वारा दिखाई जा सकती है, जिसमें उत्तेजित ग्रवस्था को तत्त्व के प्रतीक पर सितारे के चिन्ह द्वारा निर्दिष्ट किया गया है:



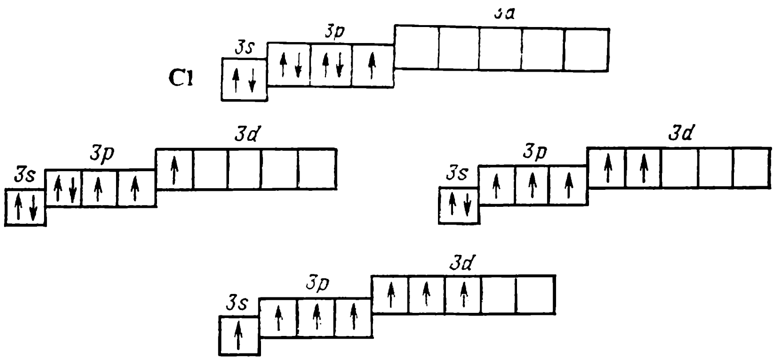
ग्रब कार्बन के परमाणु के संयोजकता कोश में चार ग्रयुग्मित इलेक्ट्रान हैं: ग्रतः कार्बन का उत्तेजित परमाणु चार सहसंयोजी ग्राबन्धों के बनने की क्रिया में भाग ले सकता है। ग्रौर इस समय बनने वाले सहसंयोजी ग्राबन्धों की सँख्या में वृद्धि होने के कारण बहुत ग्रधिक मात्रा में ऊर्जा का उत्सर्जन होता है ग्रौर यह मात्रा परमाणु को उत्तेजित करने में खर्च हुई ऊर्जा की मात्रा से कहीं ग्रधिक है।

यदि परमाणु के उत्तेजित होने में, जिसके साथ ग्रयुग्मित इलेक्ट्रानों की सँख्या में भी वृद्धि होती है, खर्च होने वाली ऊर्जा की मात्रा बहुत ही ग्रधिक हो तो नए ग्राबन्धों के बनने के फलस्वरूप प्राप्त हुई ऊर्जा से उसकी क्षतिपूर्त्ति नहीं होती। इस स्थिति में यह क्रिया कुल मिलाकर ऊर्जा की दृष्टि से लाभदायक नहीं है। ग्रतः ग्रॉक्सीजन तथा फ्लुग्रोरीन के परमाणुग्रों के संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश में रिक्त कक्षक नहीं होते:



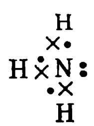
यहाँ ग्रयुग्मित इलेक्ट्रानों की सँख्या बढ़ाने के लिये केवल एक ही उपाय है एक इलेक्ट्रान को ग्रगले ऊर्जा स्तर ग्रर्थात 3*s* ग्रवस्था में लाया जाये। लेकिन ऐसा करने में ऊर्जा की बहुत ग्रधिक मात्रा व्यय होगी, जिसकी क्षतिपूर्त्ति नए ग्राबन्ध बनने के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली ऊर्जा द्वारा नहीं की जा सकती है। इसलिये ग्रयुग्मित इलेक्ट्रानों के ग्राधार पर ग्राक्सीजन का परमाणु दो से ग्रधिक सहसंयोजी ग्राबन्ध नहीं बना सकता है, एवं फ्लुग्रोरीन का परमाणु केवल एक ही सहसंयोजी ग्राबन्ध बना सकता है। वस्तुतः, इन तत्त्वों के लिये लाक्षणिक है स्थिर सहसंयोजकता, जो ग्राक्सीजन के लिये दो के बराबर है तथा फ्लुग्रोरीन के लिये एक के बराबर है।

तीसरे और उसके बाद के आवर्तकों के तत्वों के परमाणुओं के संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश में d- उपस्तर है, जिसमें संयोजकता कोश के s-तथा p-इलेक्ट्रान, उत्तेजित अवस्था में प्रवेश कर सकते हैं। इसलिये यहाँ अयुग्मित इलेक्ट्रानों की सँख्या के बढ़ने की अतिरिक्त सम्भावनाएँ उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार, क्लोरीन के परमाणु को जिसमें अनुत्तेजित अवस्था में एक अयुग्मित इलेक्ट्रान है, निश्चित ऊर्जा व्यय करने पर उत्तेजित अवस्था में लाया जा सकता है (Cl^*) जो तीन, पाँच या सात अयुग्मित इलेक्ट्रानों के लिये लाक्षणिक है।



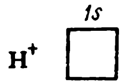
इसलिये फ्लुओरीन की अपेक्षा क्लोरीन का परमाणु एक ही नहीं, बल्कि तीन, पाँच तथा सात तक भी सहसंयोजी आबन्ध के बनाने में भाग ले सकता है। अतएव, $HClO_2$ क्लोरस अम्ल में क्लोरीन की सहसंयोजकता तीन के बराबर है, क्लोरिक अम्ल $HClO_3$ में पाँच; तथा परक्लोरिक अम्ल $HClO_4$ में सात के बराबर है। इसी प्रकार गन्धक का परमाणु (इसका भी $3d$-उपस्तर रिक्त है) चार और छः अयुग्मित इलेक्ट्रानों के साथ उत्तेजित अवस्था में आ सकता है और, इसलिये, न केवल दो, जैसे कि आक्सीजन का परमाणु, बल्कि चार या छः सहसंयोजी आबन्ध बनाने में भाग ले सकता है। ऐसे यौगिकों की विद्यमानता जिनमें गन्धक की सहसंयोजकता चार (SO_2, SCl_4) या छः (SF_6) के बराबर होती है, इसी से स्पष्ट होती है।

अनेक स्थितियों में सहसंयोजी आबन्ध युग्मित इलेक्ट्रानों के आधार पर भी होते हैं, जो परमाणु के संयोजकता कोश में स्थित होते हैं। उदाहरणार्थ, अमोनिया के अणु की इलेक्ट्रानी संरचना देखें:

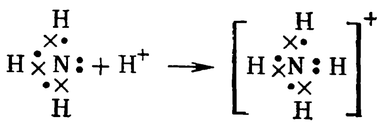


यहाँ बिन्दुओं द्वारा उन इलेक्ट्रानों को निर्दिष्ट किया गया है जो प्रारम्भ में नाइट्रोजन के अणु में थे, और क्रास द्वारा उन इलेक्ट्रानों को दिखाया गया है जो हाइ-

ड्रोजन के परमाणु में आ गये। नाइट्रोजन के परमाणु के आठ संयोजकता इलेक्ट्रानों में से छः इलेक्ट्रान तीन सहसंयोजी आबन्ध बनाते हैं और वे नाइट्रोजन एवं हाइड्रोजन के परमाणुओं के लिये सामूहिक हैं। लेकिन दो इलेक्ट्रान केवल नाइट्रोजन के साथ ही सम्बंधित हैं और अविभाजित इलेक्ट्रानी युगल बनाते हैं। इलेक्ट्रानों का ऐसा युगल भी सहसंयोजी आबन्ध बना सकता है यदि परमाणु के संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश में रिक्त कक्षक है। उदाहरणतया, हाइड्रोजन H^+ के आयन में, जो सामान्यतः इलेक्ट्रान-रहित है, 1*s*-कक्षक रिक्त है:



यही कारण है कि NH_3 व हाइड्रोजन के आयन की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप उनके मध्य सहसंयोजी आबन्ध बन जाता है: नाइट्रोजन के इलेक्ट्रानों का अविभाजित युगल दो परमाणुओं के लिये सामूहिक बन जाता है, जिसके फलस्वरूप अमोनिया का आयन NH_4^+ बन जाता है:



यहाँ सहसंयोजी आबन्ध इलेक्ट्रानों के युगल के आधार पर बना है, जो प्रारम्भ में एक परमाणु (इलेक्ट्रानी युगल के दाता) से और दूसरे परमाणु (इलेक्ट्रानी युगल के ग्राही) के रिक्त कक्षक से सम्बंधित था। सहसंयोजी आबन्ध बनने की इस विधि को दाता-ग्राही विधि कहते है। ऊपर देखी गई स्थिति में दाता के रूप में नाइट्रोजन का परमाणु है तथा ग्राही के रूप में हाइड्रोजन का परमाणु है। यह प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा चुका है कि अमोनिया के आयन में N—H के चार आबन्ध सभी प्रकार से समान हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दाता-ग्राही विधि से बना आबन्ध सहसंयोजी आबन्ध से, जो परस्पर-क्रियाशील परमाणुओं में अयुग्मित इलेक्ट्रानों द्वारा बना है, अपने गुणों के आधार पर भिन्न नहीं है।*

दाता-ग्राही विधि द्वारा बने आबन्ध वाले अणु का एक और उदाहरण हमें N_2O (I) के अणु से मिलता है।

---

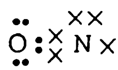
*दाता-ग्राही विधि द्वारा बना सहसंयोजी आबन्ध कभी-कभी "दाता-ग्राही आबन्ध" छोटे नाम से भी जाना जाता है। लेकिन इस नाम का अर्थ आबन्ध का कोई विशेष रूप नहीं समझना चाहिये, बल्कि सहसंयोजी आबन्ध के बनने की एक नियत विधि ही मानना चाहिये।

पहले इस यौगिक का संरचना सूत्र निम्न प्रकार लिखा जाता था :

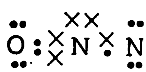
$$O=N\equiv N$$

इस सूत्र के अनुसार नाइट्रोजन का केन्द्रीय परमाणु दो पड़ोसी परमाणुओं के साथ (पाँच) सहसंयोजी आबन्धों द्वारा जुड़ा है। अतः, उसके संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश में दस इलेक्ट्रान (पाँच इलेक्ट्रानी युग्म) हैं। लेकिन ऐसा रूप नाइट्रोजन के परमाणु की इलेक्ट्रानी संरचना का अन्तर्विरोध करता है क्योंकि उसके संयोजकता L-कोश में केवल चार कक्षक एक s-कक्षक तथा तीन p-कक्षक हैं और इनमें आठ इलेक्ट्रानों से अधिक इलेक्ट्रान नहीं आ सकते। इसलिये ऊपर दिया गया संरचना सूत्र सही नहीं है।

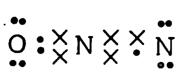
आइये, नाइट्रिक (I) ऑक्साइड की इलेक्ट्रानी संरचना को देखें। इसमें हम अलग-अलग परमाणुओं के इलेक्ट्रानों को बारी-बारी से बिन्दु तथा क्रास द्वारा व्यक्त करेंगे। आक्सीजन का परमाणु, जिसमें दो अयुग्मित इलेक्ट्रान हैं, नाइट्रोजन के केन्द्रीय परमाणु के साथ दो सहसंयोजी आबन्ध बनाता है :



नाइट्रोजन का केन्द्रीय परमाणु, जिसमें एक अयुग्मित इलेक्ट्रान रह गया है, नाइट्रोजन के दूसरे परमाणु के साथ सहसंयोजी आबन्ध बनाता है :



इस प्रकार, आक्सीजन एवं नाइट्रोजन के संयोजकता इलेक्ट्रानी कोशों की पूर्त्ति हो जाती है : यहाँ स्थायी अष्ट-इलेक्ट्रानी विन्यास बन जाता है। लेकिन नाइट्रोजन के अन्तिम परमाणु के संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश में केवल 6 इलेक्ट्रान हैं, यह परमाणु, इस प्रकार, एक और इलेक्ट्रानी युगल के लिये ग्राही बन सकता है। उसके पड़ोस में स्थित नाइट्रोजन के केन्द्रीय परमाणु में अविभाजित इलेक्ट्रानी युगल है और वह दाता के रूप में भाग ले सकता है। इस प्रकार दाता-ग्राही विधि द्वारा नाइट्रोजन के परमाणुओं में एक और सहसंयोजी आबन्ध बन जाता है :



अब N_2O के अणु को बनाने वाले तीनों परमाणुओं में से प्रत्येक संयोजकता कोश में स्थायी अष्ट-इलेक्ट्रानी संरचना रखता है। यदि, जैसा लिखा जाता है, सहसंयोजी आबन्ध को तीर द्वारा सूचित करें, जिसकी दिशा दाता-परमाणु से ग्राही-परमाणु

की ओर है, तो नाइट्रिक आक्साइड (I) का संरचना सूत्र निम्न प्रकार लिखा जा सकता है :

$$O = N \rightrightarrows N$$

इस प्रकार, नाइट्रिक आक्साइड (I) नाइट्रोजन के केन्द्रीय परमाणु की संयोजकता चार के बरावर है तथा अन्तिम परमाणु की दो के बराबर है।

ऊपर देखे गये उदाहरणों से स्पष्ट है कि सहसंयोजी आबन्धों को बनाने के लिये परमाणुओं के पास अनेक प्रकार की सम्भावनाएँ होती हैं। ये आबन्ध अनुत्तेजित परमाणु में अयुग्मित इलेक्ट्रानों के आधार पर भी बन सकते है, उत्तेजित परमाणु में (इलेक्ट्रानी युगलों के टूटने से) प्राप्त होने वाले अयुग्मित इलेक्ट्रानों द्वारा भी बन सकते हैं तथा, अंत में दाता-ग्राही विधि द्वारा भी बन सकते हैं। लेकिन नियत परमाणु द्वारा बनाए गए सहसंयोजी आबन्धों की सँख्या सीमित होती है। यह सँख्या संयोजकता कक्षकों की सामान्य सँख्या पर आधारित होती है, अर्थात उन कक्षकों पर आधारित होती है, जो सहसंयोजी आबन्ध के बनने में ऊर्जा की दृष्टि से लाभ-दायक हो। क्वान्टमी-यांत्रिकी परिकलनों ने सिद्ध कर दिया है कि ऐसे कक्षको में संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश के *s*- व *p*-कक्षक तथा उसके पहले के कोश का *d*-कक्षक आते हैं; कुछ स्थितियों में, जैसा कि हमने क्लोरीन व गन्धक के परमाणुओं के उदाहरणों में देखा, संयोजकता कक्षकों के रूप में संयोजकता कोश का *d*-कक्षक भी भाग ले सकता है।

दूसरे आवर्तक के सभी तत्त्वों के परमाणुओं में संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश में चार कक्षक होते हैं और उससे पहले के कोश में *d*-कक्षक नहीं होता। अतएव, इन परमाणुओं के संयोजकता कक्षकों में आठ से अधिक इलेक्ट्रान नहीं आ सकते। इसका अर्थ यह हुआ कि दूसरे आवर्तक के तत्त्वों की अधिकतम सयोजकता चार के बरावर है।

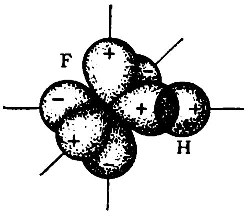
तीसरे व बाद के आवर्तकों के तत्त्वों के परमाणु संहसंयोजी आबन्ध को बनाने के लिये *s*- तथा *p*-कक्षकों के साथ *d*-कक्षक को भी प्रयोग में ला सकते हैं, *d*-तत्त्वों के ऐसे यौगिक ज्ञात हैं, जिनमें सहसंयोजी आबन्ध बनाने के लिये संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश के *s*-तथा *p*-कक्षक एवं उसके पहले के कोश के सभी 5 *d*-कक्षक भाग लेते हैं। ऐसी स्थितियों में नियत तत्त्व की संयोजकता 9 के बरावर हो जाती है।

सीमित सँख्या में सहसंयोजी आबन्ध बनाने की क्रिया में परमाणुओं के भाग लेने की योग्यता सहसंयोजी आबन्ध की संतृप्ति (saturation) कहलाती है।

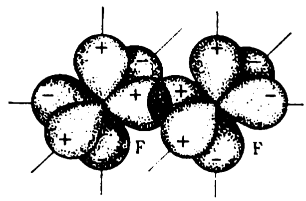
41. **सहसंयोजी आबन्ध की दिशा.** अणु के गुण, अन्य अणुओं के साथ रासायनिक परस्पर-क्रिया में भाग लेने की योग्यता (अभिक्रिया योग्यता) न केवल अणु में रासायनिक आबन्धों की दृढ़ता पर, वलिक काफ़ी हद तक उसकी व्योम संरचना पर भी निर्भर करते हैं।

रासायन का वह भाग, जो अणु की ज्यामितीय संरचना तथा उनकी व्योम संरचना का अध्ययन करता है; त्रिविम रसायन (stereochemistry) कहलाता है।

ऊपर (§ 38) में यह बताया गया था कि सहसंयोजी आबन्ध परस्पर क्रियाशील परमाणुओं के संयोजकता इलेक्ट्रानी अभ्रों के अतिव्यापन के फलस्वरूप बनते हैं। लेकिन यह अतिव्यापन केवल इलेक्ट्रानी अभ्रों के निश्चित परस्पर स्थिति-निर्धारण के आधार



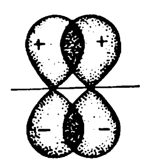
चित्र 32. फ्लुओरीन के परमाणु के 2*p*-इलेक्ट्रानी अभ्र तथा हाइड्रोजन के परमाणु के 1*s*-इलेक्ट्रानी अभ्र का HF अणु में σ-आबन्ध बनने में अतिव्यापन का आरेख : + तथा — तरंग फलन हैं।



चित्र 33. F_2 अणु σ-आबन्ध के बनने में फ्लुओरीन के परमाणुओं के 2*p*-इलेक्ट्रानी अभ्रों के अतिव्यापन का आरेख।

पर ही होता है; और अतिव्यापन का क्षेत्र परस्पर क्रियाशील परमाणुओं से एक निश्चित् दिशा में होता है। अन्य शब्दों में सहसंयोजी आबन्ध की एक दिशा होती है।

अतः, हाइड्रोजन के अणु में (चित्र 27, पृ० 139) परमाणुओं के *s*-इलेक्ट्रानी अभ्रों का अतिव्यापन परस्पर क्रियाशील परमाणुओं की नाभिकों को जोड़ने वाली सरल रेखा के साथ-साथ होता है (अर्थात्, आबन्ध के अक्ष के साथ-साथ होता है)। इस प्रकार बना सहसंयोजी आबन्ध σ-आबन्ध (सिग्मा आबन्ध) कहलाता है।



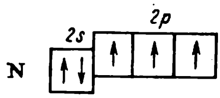
चित्र 34. π-आबन्ध के बनने में *p*-इलेक्ट्रानी अभ्रों के अतिव्यापन का आरेख।

आबन्ध के अक्ष के साथ स्थित *p*-इलेक्ट्रानी अभ्र भी σ-आबन्ध के बनने में भाग ले सकते हैं। इस प्रकार, HF अणु में (चित्र 32) सहसंयोजी σ-आबन्ध हाइड्रोजन के परमाणु के 1*s*-इलेक्ट्रानी अभ्र तथा फ्लुओरीन के परमाणु के 2*p*-इलेक्ट्रानी अभ्र के अतिव्यापन के फलस्वरूप बनता है। F_2 अणु में (चित्र 33) भी रासायनिक आबन्ध, σ-आबंध है: वह फ्लुओरीन के दो परमाणुओं के 2*p*- इलेक्ट्रानी अभ्रों के अतिव्यापन के फलस्वरूप बना है।

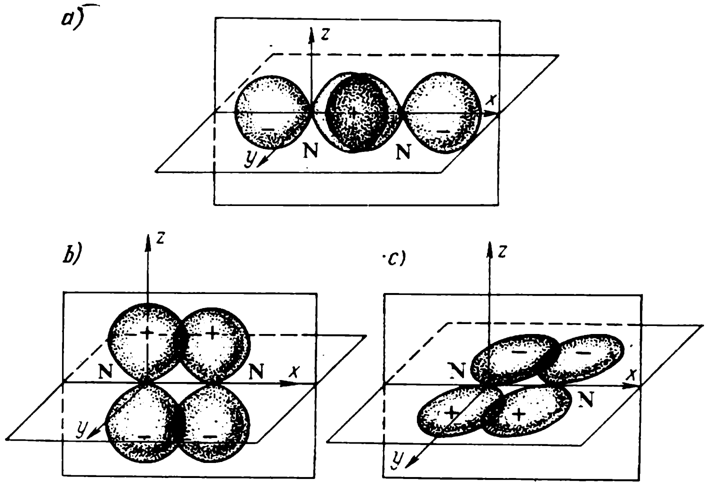
आबन्ध के अक्ष पर लम्ब बनाते हुये स्थित *p*-इलेक्ट्रानी अभ्रों के परस्पर क्रिया के फलस्वरूप एक के स्थान पर दो अतिव्यापन क्षेत्र बनते हैं, जो इस अक्ष

के दोनों ओर होते हैं। ऐसा सहसंयोजी आबन्ध π-आबन्ध (पाइ-आबन्ध) कहलाता है।

आइये, नाइट्रोजन N_2 के अणु को देखते है। नाइट्रोजन के प्रत्येक परमाणु के तीन अयुग्मित p-इलेक्ट्रान हैं, जिनके इलेक्ट्रानी अभ्रों की दिशाएँ परस्पर लम्ब बनाती हैं।



चित्र 35 में N_2 के अणु में p-इलेक्ट्रानी अभ्रों का अतिव्यापन दिखाया गया है (आसानी के लिये p_x-, p_y- तथा p_z-अभ्रों के अतिव्यापन के आरेखों को अलग-अलग दिखाया गया है)। जैसा कि चित्र 35 से स्पष्ट है, N_2 के अणु में



चित्र 35. N_2 के अणु में $2p$-इलेक्ट्रानी अभ्रों के अतिव्यापन का आरेख : a–σ-आबन्ध ; b एवं c– π-आबन्ध।

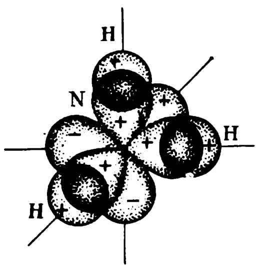
नाइट्रोजन के परमाणु तीन सहसंयोजी आबन्धों द्वारा जुड़े हैं। लेकिन ये आबन्ध समान नहीं हैं:–इनमें से एक तो σ-आबन्ध है, और दो अन्य π-आबन्ध हैं। नाइट्रोजन के अणु में असमानता का प्रभाव हमें इस बात से भी मिल जाता है कि उनके वियोजन की ऊर्जा भी अलग-अलग है।

सहसंयोजी आबन्धों की दिशा से हमें यह ज्ञात होता है कि बहुपरमाणुक अणु में परमाणुओं की स्थिति क्या है। इस प्रकार, जल के अणु के बनने में आक्सीजन के परमाणु के दो अयुग्मित $2p$-इलेक्ट्रानों के इलेक्ट्रानी अभ्रों एवं हाइड्रोजन के दो परमाणुओं के $1s$-इलेक्ट्रानी अभ्रों का अतिव्यापन होता है; इस अतिव्यापन का आरेख चित्र 36 में दिया गया है। क्योंकि आक्सीजन के परमाणु के p-इलेक्ट्रानी

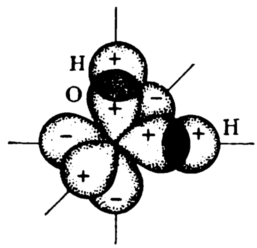
अभ्रों की दिशाएँ परस्पर लम्ब बनाती हैं; H_2O अणु की, चित्र 36 के अनुसार, कोणीय संरचना है और O—H आबन्धों के कोण, आशा की जा सकती है, 90° के बराबर होंगे।

नाइट्रोजन के परमाणु के तीन *p*-इलेक्ट्रानों तथा हाइड्रोजन के तीन परमाणुओं के *s*-इलेक्ट्रानों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप बनने वाले NH_3 के अणु की पिरामिडी संरचना है, जिसके शिखर पर नाइट्रोजन का परमाणु है और आधारों के शिखर पर हाइड्रोजन के परमाणु हैं। और इस स्थिति में भी कहा जा सकता है कि N—H आबन्धों के कोण 90° के बराबर होंगे।

NH_3 तथा H_2O अणुओं में परमाणुओं की परस्पर स्थिति के प्रति ये निष्कर्ष वास्तविकता के अनुसार ठीक बैठते हैं। जल ($\mu = 1.84$ D) तथा अमोनिया ($\mu = 1.48$ D) के



चित्र 36. जल के अणु में रासायनिक आबन्धों का आरेख।



चित्र 37. अमेनिया के अणु में रासायनिक आबन्धों के बनने का आरेख।

अणुओं के काफी अधिक ध्रुवण एवं उनके संरचनात्मक विश्लेषणों के तथ्यों से यह प्रमाणित हो जाता है कि H_2O अणु की कोणीय संरचना है तथा NH_3 के अणु की पिरामिडी संरचना है। लेकिन आबन्धों के कोण (संयोजकता कोण) 90° के बराबर नहीं हैं। जल के अणु में HOH का कोण 104.3° है, तथा अमोनिया HNH का कोण 107.8° के बराबर है।

यह समझने के लिये कि H_2O तथा NH_3 के अणुओं में संयोजकता कोण 90° से भिन्न क्यों होते हैं, निम्न बात पर ध्यान देना आवश्यक है। अणुओं में परमाणुओं के जुड़ने पर इन परमाणुओं के इलेक्ट्रानी अभ्रों की आकृतियाँ तथा पारस्परिक विस्तारण इस प्रकार परिवर्तित होता है कि बनने वाले अणु में न्यूनतम सम्भव विभव ऊर्जा हो। रासायनिक आबन्ध वाले परमाणुओं के इलेक्ट्रानी अभ्रों का अध्यारोपण जितना अधिक संपूर्ण होगा, उतना ही दृढ़ यह आबन्ध होगा तथा उसके बनने में उतनी ही अधिक ऊर्जा विसर्जित होगी। अतएव, आबन्ध के दृढ़ होने के कारण अणु की विभव ऊर्जा कम हो जाती है। दूसरी ओर, परमाणुओं के संयोजकता इलेक्ट्रानी अभ्र एक दूसरे से जितने अधिक दूर होंगे, उनका पारस्परिक

प्रतिकर्षण उतना ही क्षीण होगा, और, अतएव, उस अणु की विभव ऊर्जा उतनी ही कम होगी जिसमें यह परमाणु स्थित है। लेकिन संयोजकता कोश के इलेक्ट्रानों की पारस्परिक दूरी अधिकतम होने से हमेशा सर्वाधिक दृढ़ आवन्ध नहीं वनता है। इसीलिये अणु की संरचना, जिसके कारण उसकी विभव ऊर्जा न्यूनतम होती है, इकट्ठे प्रभावों का परिणाम है: सम्भवत: अधिक दृढ़ आबन्धों को बनाने की प्रवृति और परमाणु के संयोजकता कोश के इलेक्ट्रानी युगलों की दूरी को अधिकतम करने की प्रवृति।

संयोजकता आबन्ध विधि के अन्तर्गत इन दोनों प्रवृतियों का अध्ययन करने वाले मॉडल को नहीं बनाया जा सका है। लेकिन अनेक स्थितियों में अणु की ज्यामिती को सन्तोषजनक रूप से समझाया जा सकता है, तथा इसके बारे में आसानी से यह पूर्वकथन भी किया जा सकता है यदि उपर्युक्त कारणों में से एक का भी ध्यान रखा जाये) या तो बनने वाले आबन्ध का दृढ़ होना; या संयोजकता कोश के इलेक्ट्रानी युगलों के बीच पारस्परिक प्रतिकर्षण का क्षीण होना)। इसके अनुसार, अणु की आकाशीय संरचना को समझने के लिये दो विधियाँ प्रयोग की जाती है। इनमें से एक इस परिकल्पना पर आधारित है कि अणु की ज्यामिती बढ़े हुये इलेक्ट्रानी घनत्व के क्षेत्र (यानी, इलेक्ट्रानी अभ्रों के अध्यारोपण के क्षेत्र) की ओर परमाण्वीय नाभिकों के अधिकतम आकर्षण पर आधारित है। इसीलिये रासायनिक आबन्ध की दिशा पारस्परिक क्रिया करने वाले इलेक्ट्रानी अभ्रों के अधिकतम अध्यारोपण के अनुरूप होनी चाहिये। इन विचारों पर आधारित सिद्धाँत, जिसका आधार ल० पाउलिंग* ने बनाया था, परमाण्वीय इलेक्ट्रानी स्तरों का संकरण कहलाता है।

दूसरी विधि, जिसे अमेरिकी वैज्ञानिकों र० स० नाइहोंम और र० ज० गिल्लेस्पी ने प्रस्तुत किया, इस परिकल्पना पर आधारित है कि अणु की स्थायी अवस्था का कारण प्रत्येक परमाणु के संयोजकता कोश के इलेक्ट्रानी अभ्रों का ऐसा आकाशीय विस्तारण होता है जिसमें उनका पारस्परिक प्रतिकर्षण न्यूनतम हो; इस विधि का नाम संयोजकता कोश के इलेक्ट्रानी युगलों के प्रतिकर्षण की विधि रखा गया।

42. **परमाण्वीय इलेक्ट्रानी कक्षकों का संकरण.** परमाण्वीय कक्षकों का संकरण इस धारणा पर आधारित है कि अणु के बनने में प्राथमिक *s*-, *p*-तथा *d*-इलेक्ट्रानी अभ्रों के स्थान पर ऐसे समान "मिश्रित" या संकरित इलेक्ट्रानी अभ्र बनते हैं; जिनकी दिशा पड़ोसी परमाणुओं की ओर होती है। इसके फलस्वरूप, इन परमाणुओं के इलेक्ट्रानी अभ्रों के साथ उनका अतिव्यापन अधिक पूर्ण होता है। इलेक्ट्रानी

---

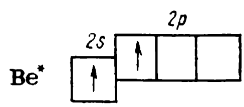
*लेनॅस पाउलिंग (ज० 1901) – प्रसिद्ध अमेरिकी भौतिकतज्ञ तथा रसायनज्ञ, लेनिन शाँति पुरस्कार तथा नोबेल पुरस्कार विजेता, रासायनिक आबन्धों तथा जटिल अणुओं की संरचना के अध्ययन पर अनेक कार्यों का लेखक। सन् 1958 से मो. स. विज्ञान अकादमी का विदेशी सदस्य।

अभ्रों की इस विकृति के कारण ऊर्जा व्यय होती है। लेकिन संयोजकता इलेक्ट्रानी अभ्रों का अधिक संपूर्ण अतिव्यापन रासायनिक आवन्धों को अधिक दृढ़ बना देता है। इस प्रकार, अतिरिक्त ऊर्जा की प्राप्ति होती है। और यदि यह अतिरिक्त ऊर्जा प्राथमिक परमाण्वीय इलेक्ट्रानी अभ्रों की विकृति में व्यय हुई ऊर्जा की क्षतिपूर्ति करने के लिये पर्याप्त है तो ऐसा संकरण, अंत में, अणु की स्थितिज ऊर्जा को कम कर देता है और उसे अधिक स्थायी बना देता है।

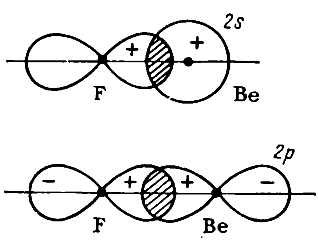
आइये, संकरण के उदाहरण के रूप में बेरिलियम फ्लुओराइड BeF_2 के अणु को देखें। इस अणु में फ्लुओरीन का प्रत्येक परमाणु एक अयुग्मित इलेक्ट्रान रखता है, जो सहसंयोजी आवन्ध के बनने में भाग लेता है। अनुत्तेजित अवस्था में ($1s^2\,2s^2$) बेरिलियम के परमाणु के अयुग्मित इलेक्ट्रान नहीं हैं :



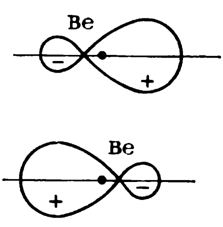
इसलिये रासायनिक आबन्ध बनाने में बेरिलियम के परमाणु का उत्तेजित अवस्था में आना आवश्यक है ($1s^2\,2s^1\,2p^1$) :



इस प्रकार बनने वाले उत्तेजित परमाणु Be* में दो अयुग्मित इलेक्ट्रान हैं : इनमें से एक का इलेक्ट्रानी अभ्र 2*s*-अवस्था के अनुरूप है, और दूसरे का – 2*p* के अनुरूप है। इन इलेक्ट्रानी अभ्रों का फ्लुओरीन के दो परमाणुओं के *p*-इलेक्ट्रानी अभ्रों के साथ अतिव्यापन के फलस्वरूप सहसंयोजी आबन्ध बन सकते हैं (चित्र 38)।



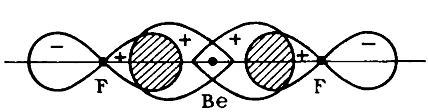
चित्र 38. फ्लुओरीन के परमाणुओं के 2*s*-इलेक्ट्रानी अभ्रों तथा बेरिलियम के परमाणु के 2*s*-, तथा 2*p*-इलेक्ट्रानी अभ्रों के अतिव्यापन का आरेख (प्रत्येक आबन्ध के लिये आरेख अलग से बनाया गया है)। इलेक्ट्रानी अभ्रों के अतिव्यापन का क्षेत्र रेखाओं द्वारा सूचित किया गया है।



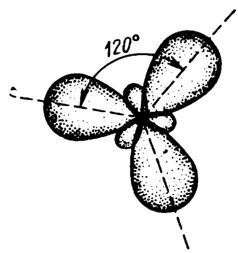
चित्र 39. बेरिलियम के परमाणु के संकरित *sp*-इलेक्ट्रानी अभ्रों के रूप व परस्पर स्थिति (आरेख)। (प्रत्येक संकरित कक्षक अलग से दिखाया गया है।)

लेकिन, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है एक निश्चित ऊर्जा व्यय करके बेरिलियम के परमाणु के प्राथमिक *s*-तथा *p*-इलेक्ट्रानी कक्षकों के स्थान पर दो समान संकरित कक्षक (*sp*-कक्षक) बन सकते हैं। इन कक्षकों का रूप व परस्पर स्थिति चित्र 39 में दिखाए गये हैं। स्पष्ट है कि संकरित *sp*-कक्षक विपरीत दिशाओं में खिँचे हुये हैं।

बेरिलियम के परमाणु के संकरित *sp*-इलेक्ट्रानी अभ्रों व फ्लुओरीन के परमाणुओं के *p*-इलेक्ट्रानी अभ्रों का अतिव्यापन चित्र 40 में दिखाया गया है। संकरित कक्षकों के खिँचे हुये रूप के कारण परस्पर क्रियाशील इलेक्ट्रानी अभ्रों का अतिव्यापन अधिक पूर्ण होता है, अर्थात् अधिक दृढ़ रासायनिक आबन्ध बनते हैं। इन आबन्धों



चित्र 40. BeF_2 अणु में रासायनिक आबन्धों के बनने का आरेख। आरेख को सरल करने के लिए बेरिलियम के परमाणु के संकरित *sp*-इलेक्ट्रानी अभ्र पूर्णतया नहीं दिखाये गये हैं।



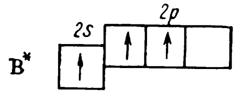
चित्र 41. संकरित sp^2-इलेक्ट्रानी अभ्रों की परस्पर स्थिति।

के बनने में उत्सर्जित ऊर्जा बेरिलियम के परमाणु को उत्तेजित करने में तथा उसके परमाण्वीय कक्षकों के संकरण में खर्च हुई कुल ऊर्जा से अधिक है। इसलिये BeF_2 के अणु के बनने की क्रिया ऊर्जा की दृष्टि से लाभजनक है।

दो *sp*-कक्षक बनाने वाले एक *s*-और एक *p*-कक्षक के संकरण की देखी गई स्थिति *sp*-संकरण कहलाती है। चित्र 39 से स्पष्ट है कि *sp*-कक्षक विपरीत दिशाओं में स्थित हैं, जिसके कारण अणु की रेखिक संरचना होती है। वस्तुतः, BeF_2 का अणु रेखिक है और Be — F के दोनों आबन्ध इस अणु में सभी प्रकार से समान हैं।

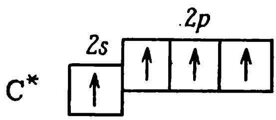
परमाण्वीय कक्षकों के संकरण की अन्य स्थितियां भी सम्भव है, लेकिन बनने वाले संकरित कक्षकों की सँख्या हमेशा संकरण में भाग लेने वाले प्रारम्भिक परमाण्वीय कक्षकों की कुल सँख्या से अधिक है। इस प्रकार, एक *s*-और दो *p*-कक्षकों (sp^2-संकरण "एस-पी-दो" पढ़ा जाता है) के संकरण के फलस्वरूप तीन समान sp^2-कक्षक बनते हैं। इस स्थिति में संकरित इलेक्ट्रानी अभ्रों की दिशाएँ एक ही समतल पर होती हैं और परस्पर 120° का कोण बनाती हैं। (चित्र 41)। विदित है कि संकरण के इस रूप के अणु की समतल त्रिकोणीय संरचना वैशिष्ट्य है।

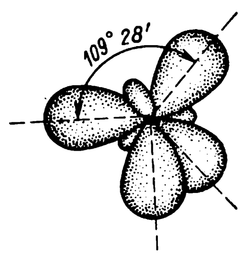
sp-संकरण के अणु का उदाहरण बोरान फ्लुओराइड BF_3 से मिलता है। यहाँ बोरान के उत्तेजित परमाणु के 1*s*-तथा 2*p*-कक्षकों के स्थान पर तीन समान sp^2-



कक्षक बनते हैं। इसलिये BF_3 के अणु की संरचना ठीक त्रिकोणीय है जिसके केन्द्र में बोरान का परमाणु है, तथा शिखरों पर फ्लुओरीन के परमाणु है। सभी तीनों आबन्ध B—F अणु BF_3 में समान हैं।

यदि संकरण में एक *s*-और तीन *p*-कक्षक भाग लें (sp^3-संकरण), तो इसके फलस्वरूप चार संकरित sp^3-कक्षक प्राप्त होते हैं, जो चतुष्फलक के शिखरों की दिशा में खिँचे होते हैं, अर्थात् परस्पर 109° 28′ के कोण पर स्थित होते हैं (चित्र 42)। मेथेन CH_4 के अणु के बनने में कार्बन के उत्तेजित परमाणु में, उदाहर-णार्थ, ऐसा संकरण देखने को मिलता है।

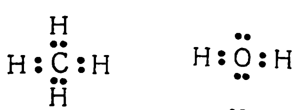




चित्र 42 संकरित sp^3-इलेक्ट्रानी अभ्रों की परस्पर स्थिति।

इसलिये मेथेन के अणु का चतुष्फलक जैसा रूप होता है और उसके C—H के सभी आबन्ध समान होते हैं।

आइये जल के अणु पर पुनः लौट आयें। उसके बनने में आक्सीजन के परमाण्वीय कक्षकों का sp^3-संकरण होता है। यही कारण है कि जल के अणु H_2O में संयोजकता कोण HOH (104.3°) 90° के लगभग न होकर चतुष्फलक कोण (109.5°) के लगभग हैं। 109.5° से थोड़े-से अन्तर का कारण भी स्पष्ट हो जाता यदि जल के अणु में ऑक्सीजन के परमाणु के चारों ओर स्थित इलेक्ट्रानी अभ्रों की असमान अवस्था को ध्यान में रखा जाता। वस्तुत:, मेथेन (I) के अणु में सभी आठ इलेक्ट्रान, जो कार्बन के परमाणु में संकरित sp^3-कक्षकों में स्थित हैं, C—H सहसंयोजी आबन्ध में भाग लेते हैं।



I II

इसके कारण ही कार्बन के परमाणु के नाभिक के प्रति इलेक्ट्रानी अभ्रों का सममित विस्तारण होता है। तथापि, जल के अणु में (II) आक्सीजन के परमाणु के संकरित sp^3-कक्षकों में स्थित आठ इलेक्ट्रानों में से केवल चार इलेक्ट्रान O—H आबन्ध

बनाते हैं, और दो इलेक्ट्रान युगल अविभाजित रह जाते हैं, अर्थात् केवल ऑक्सीजन के परमाणु में ही रह जाते हैं। इसी कारणवश आक्सीजन के परमाणु के चारों ओर इलेक्ट्रानी अभ्रों के विस्तारण में असममिती रह जाती है, जिसके परिणामस्वरूप O — H आबन्धों के बीच कोण में 109.5° से थोड़ा अन्तर पैदा हो जाता है।

अमोनिया के अणु के बनने में भी इसी प्रकार केन्द्रीय परमाणु (नाइट्रोजन) के परमाण्वीय कक्षकों का sp^3-संकरण हो जाता है। यही कारण है कि HNH संयोजकता कोण (107.8°) चतुष्फलक कोण के लगभग है। इस कोण का 109.5° से थोड़ा-सा अन्तर, जल के अणु की भाँति, नाइट्रोजन के परमाणु के नाभिक के चारों ओर इलेक्ट्रानी अभ्रों के विस्तारण में असममिति के कारण होता है : चार इलेक्ट्रानी युगलों में से तीन N — H आबन्ध के बनने में भाग लेते हैं, और एक अविभाजित रह जाता है।

जैसा कि चित्र 39, 41 व 42 से विदित है, संकरित इलेक्ट्रानी अभ्र परमाणु नाभिक के सापेक्ष स्थानांतरित हैं। इसलिये अविभाजित इलेक्ट्रानी युगल का, जो संकरित कक्षक में स्थित है, वैद्युत आवेश का केन्द्र परमाण्वीय नाभिक की स्थिति से नहीं मिलता है, अर्थात परमाणु में धनात्मक आवेश वाले केन्द्र के साथ नहीं मिलता है। अविभाजित इलेक्ट्रानी युगल में ऐसा मिश्रण द्विध्रुव आघूर्ण उत्पन्न कर देता है, जिसका अणु के सामूहिक द्विध्रुव आघूर्ण में बहुत बड़ा योग होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अणु की ध्रुवणता न केवल अलग-अलग आबन्धों के ध्रुवण और उनकी परस्पर स्थितियों पर (दे० § 39), बल्कि संकरित कक्षकों में अविभाजित इलेक्ट्रानी युगलों की उपस्थिति एवं इन कक्षकों के आकाश में स्थान पर भी निर्भर करती है।

तीसरे एवं बाद के आवर्तकों के तत्वों में संकरित इलेक्ट्रानी अभ्रों के बनने में d-कक्षक भी भाग ले सकते हैं। sp^3d^2-संकरण की स्थिति का विशेष महत्त्व है, जिस में संकरित कक्षकों के बनने में एक s-, तीन p-एवं दो d-कक्षक भाग लेते हैं। इस स्थिति में छः समान संकरित कक्षक बनते हैं, जो अष्टभुजी के शिखरों की दिशा में स्थित होते हैं। SF_6, आयनों $[SiF_6]^{2-}$, $[Fe(CN_6)]^{3-}$ तथा अन्य अणुओं की अष्टभुजी संरचना का कारण केन्द्रीय परमाणु के परमाण्वीय कक्षकों का sp^3d^2-संकरण है।

43. **संयोजकता कोश के इलेक्ट्रानी युगलों के प्रतिकर्षण की विधि.** जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि इस विधि के अनुसार अणु की स्थायी अवस्था परमाणु के संयोजकता कोश के इलेक्ट्रानी युगलों के ऐसे आकाशीय विस्तारण के फलस्वरूप बनती है जिसमें उनका पारस्परिक प्रतिकर्षण न्यूनतम हो। यह प्रतिबन्ध उस स्थिति में पूरा होता है जब संयोजकता कोश के इलेक्ट्रानी अभ्र एक दूसरे से अधिकतम दूरी पर स्थित हैं अर्थात उन दिशाओं में स्थित हैं जो परस्पर अधिकतम सम्भव कोण बनाती

हैं। इस बीच परमाणु के उस संयोजकता कोश के सभी इलेक्ट्रानी युगल, जो अणु की संरचना में आते हैं, समान माने जाते हैं, तथा यह इस बात पर आधारित नहीं होता है कि स्वतंत्र परमाणु में तदनुरूपी इलेक्ट्रानों की मूल अवस्था क्या थी (*s*-, *p*- या *d*-) तथा विचाराधीन इलेक्ट्रान कौन-से पारस्परिक परमाणुओं के साथ थे।

अतः, यदि परमाणु के संयोजकता कोश में केवल दो इलेक्ट्रानी युगल हैं तो उनके इलेक्ट्रानी अभ्र विपरीत दिशाओं में स्थित होंगे जो एक दूसरे पर 180° का कोण बनाती होंगी; परमाणु के संयोजकता कोश में तीन इलेक्ट्रानी युगल विद्यमान होने पर उनके इलेक्ट्रानी अभ्रों की दिशाएँ 120° का कोण बनाते हुए एक ही समतल पर होंगी, इत्यादि। स्वाभाविक है कि इन्हीं दिशाओं में सहसंयोजी रासायनिक आबन्ध बनते हैं। संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश में स्थित इलेक्ट्रानी युगलों की विभिन्न सँख्या p के लिये परमाणु के संयोजकता इलेक्ट्रानी अभ्रों की स्थिति की दिशाएँ (अर्थात्, उनके द्वारा बनने वाले आबन्धों की दिशाएँ) तालिका 7 में दिखाई गई हैं। तीर द्वारा बिंदुरेखा द्वारा बनने वाले अणु का ज्यामिती मॉडल उन स्थितियों के लिये दिखाया गया है, जब परमाणु के संयोजकता कोश का प्रत्येक इलेक्ट्रानी युगल साधारण आबन्ध बनाने में भाग लेता है।

उपर्युक्त दृष्टिकोण की मदद से अनेक यौगिकों के अणुओं की आकाशीय संरचना को समझा जा सकता है। अतः, BeH_2 के अणु की संरचना में विद्यमान बेरिलियम के परमाणु के संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश में दो इलेक्ट्रानी युगल हैं ($q = 2$):

$$\mathrm{H:Be:H}$$

अतएव, दो आबन्धों Be — H के बीच कोण (यानी HBeH संयोजकता कोण) 180° के बराबर होना चाहिये; प्रायोगिक रूप से प्रमाणित BeH_2 के अणु की रेखिल संरचना इसके अनुरूप बैठती है।

BCl_3 के अणु में बोरॉन के परमाणु के संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश में तीन इलेक्ट्रानी युगल ($q = 3$) हैं, जिनमें से प्रत्येक B — Cl आबन्ध के बनने में भाग लेता है:

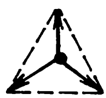
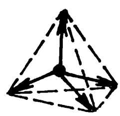
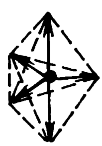
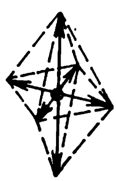
$$\begin{array}{ccc} :\ddot{\underset{\cdot\cdot}{\mathrm{Cl}}}: & \mathrm{B}: & \ddot{\underset{\cdot\cdot}{\mathrm{Cl}}}: \\ & :\ddot{\underset{\cdot\cdot}{\mathrm{Cl}}}: & \end{array}$$

तालिका 7 के अनुसार B — Cl आबन्धों के बीच कोण 120° के बराबर हैं; BCl_3 के अणु की आकृति समकोण त्रिभुज की भाँति है जिसके केन्द्र में बोरॉन का परमाणु है, तथा शिखरों पर क्लोरीन के परमाणु स्थित हैं।

समान विचारों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि CH_4 अणु ($q = 4$) की आकृति चतुष्फलक जैसी होनी चाहिए, तथा PF_5 अणु ($q = 5$) की आकृति – त्रिकोणी

तालिका 7

परमाणु के संयोजकता इलेक्ट्रानी अभ्रों का पारस्परिक अभिविन्यास जो उसके संयोजकता कोश में इलेक्ट्रानी युगलों की संख्या (*q*) पर निर्भर करता है।

q	इलेक्ट्रानी अभ्रों का अभिविन्यास	अणुओं की आकृति रेखिल	उदाहरण
1		रेखिल	BeH_2
2		समकोण त्रिभुज	BF_3
3		चतुष्फलक	CH_4
4		त्रिभुजी द्विपिरामिड	PF_5
5		अष्टफलक	SF_6

द्विपिरामिड जैसी होनी चाहिए, और अणु SF_6 ($q = 6$) की आकृति अष्टफलक जैसी होनी चाहिए। इन सभी निष्कर्षों का प्रमाण क्रमशः पदार्थों के अणुओं की आकाशीय संरचना के प्रायोगिक तथ्यों से मिलता है।

अणु की संरचना में विद्यमान परमाणु के संयोजकता कोश में न केवल सहसंयोजी आबन्ध बनाने वाले इलैक्ट्रानी युगल (इलेक्ट्रानों के आबन्धी युगल), बल्कि अविभाजित इलेक्ट्रानी युगल जो आबन्ध के बनने में भाग नहीं लेते हैं, भी स्थित हो सकते हैं। अमोनिया के अणु में नाइट्रोजन का परमाणु इसका उदाहरण है। इस परमाणु

के संयोजकता कोश में चार इलेक्ट्रानी युगल स्थित है ($(q=4)$:

$$\begin{array}{c} H:\overset{\cdot\cdot}{\underset{\cdot\cdot}{N}}:H \\ H \end{array}$$

इनमें से तीन आबन्धी हैं तथा एक अविभाजित है। चूंकि यहाँ $q=4$, तो इलेक्ट्रानी अभ्र चतुष्फलक के शिखरों की दिशा में स्थित होने चाहियें (तालिका 7)। लेकिन इन शिखरों में केवल तीन ही हाइड्रोजन के परमाणुओं द्वारा भरे हुये हैं। इसीलिये NH_3 अणु की आकृति त्रिकोणी पिरामिड जैसी होनी चाहिये जिसके शिखर पर नाइट्रोजन का परमाणु है।

जल के अणु में विद्यमान आक्सीजन के परमाणु में, इसी प्रकार $q=4$ यहाँ संयो-

$$H:O:H$$

जकता कोश के दो इलेक्ट्रानी युगल – आबन्धी हैं, तथा दो – अविभाजित। इसके परिणामस्वरूप H_2O अणु की कोणीय संरचना होती है (BeH_2 के अणु के साथ तुलना कीजिए)।

आइये, B_3 तथा N_3 अणुओं की आकृतियों की तुलना करें। B_3 में बोरान के परमाणु में $p=3$ तथा N_3 में नाइट्रोजन के परमाणु में $q=4$ (एक इलेक्ट्रानी युगल अविभाजित है)। इसीलिये इन पदार्थों के सूत्रों में समानता होने के बावजूद इन के अणुओं की संरचना विभिन्न हैं। B_3 के अणु की आकृति समकोण त्रिभुज की होनी चाहिये, N_3 के अणु की त्रिकोणी पिरामिड इसी प्रकार P_5 (फास्फोरस में $q=5$ का अणु त्रिकोणी द्वि-पिरामिड की भाँति होना चाहिए, जबकि Br_5 का अणु (Br $q=6$) वर्ग पिरामिड अष्टफलक है जिसके एक शिखर पर अविभाजित इलैक्ट्रानी युगल है)।

यदि आबन्धों और अविभाजित इलेक्ट्रानी युगलों के गुणों में विभेद को ध्यान में रखा जाये, तो संयोजकता कोश के इलेक्ट्रानी युगलों की प्रतिकर्षण विधि (स० को० इ० यु० प्र० विधि) के आधार पर विकसित अणुओं की ज्यामितीय संरचना के बारे में विचारों को और अधिक स्पष्ट बनाया जा सकता है। एक परमाण्वीय नाभिक के बल क्षेत्र में स्थित इलेक्ट्रानों के अविभाजित युगल के विपरीत सहसंयोजी आबन्ध का इलेक्ट्रानी अभ्र एक ही समय में दो परमाण्वीय नाभिकों द्वारा आकृष्ट होता है। इसके कारण आबन्धी युगल का इलेक्ट्रानी अभ्र और अधिक संकुचित हो जाता है, तथा वह पड़ोसी इलेक्ट्रानी अभ्रों से कुछ अलग हो जाता है और, परिणामस्वरूप, उनसे प्रतिकर्षण क्षीण हो जाता है। इसीलिए आशा की जा सकती है कि अविभाजित और आबन्धी युगलों के बीच प्रतिकर्षण की तुलना में अविभाजित इलेक्ट्रानी युगलों के बीच पारस्परिक प्रतिकर्षण अधिक प्रबल होगा, तथा समान अवस्थाओं में दो आबन्धी युगलों के बीच पारस्परिक प्रतिकर्षण अत्याधिक क्षीण होगा।

इस निष्कर्ष के ग्राधार पर इस बात का पूर्व ग्राभास किया जा सकता है कि उन ग्रणुग्रों की श्रेणी में संयोजकता कोण किस दिशा में परिवर्तित होंगे, जो q के एक ही मान रहने पर केन्द्रीय परमाणु के संयोजकता कोश में ग्रविभाजित इलैक्ट्रानी युगलों की सँख्या द्वारा भिन्न होते हैं। ग्रतः, CH_4, NH_3 व H_2O के ग्रणुग्रों में केन्द्रीय परमाणु ग्रपने संयोजकता कोश में चार-चार इलेक्ट्रानी युगल रखते हैं ($q = 4$)। मेथेन के ग्रणु में ये सभी ग्राबन्धी है तथा इनके इलेक्ट्रानी ग्रभ्र चतुष्फलक के शिखरों की ग्रोर स्थित हैं, ग्रतएव, HCN संयोजकता कोण 100.5° के बराबर हैं। ग्रमोनिया के ग्रणु में नाइट्रोजन के परमाणु के संयोजकता कोश में एक इलेक्ट्रानी युगल ग्रविभाजित है। इससे ग्रधिक तीव्र प्रतिकर्षण के कारण इलेक्ट्रानों के ग्राबन्धी युगल कुछ समीप ग्रा जाते हैं, एकदम चतुष्फलकीय जैसी ग्राकृति विगड़ जाती है, ग्रौर HNH संयोजकता कोण 107.8° तक कम हो जाता है। ग्रंत में, जल के ग्रणु में ग्रॉक्सीजन के परमाणु के संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश में इलेक्ट्रानों के दो ग्रविभाजित युगल होते हैं। इसके कारण HOH ग्राबन्धों के इलेक्ट्रानी युगल ग्रौर भी निकट ग्रा जाते हैं, जिसके फलस्वरूप HOH संयोजकता कोण 104.3° तक कम हो जाता है।

स० को० इ० यु० प्र० विधि के द्वारा X तत्त्व के परमाणुग्रों की वैद्युतऋणात्मकता पर AX_n कोटि के ग्रणु की ज्यामिति की निर्भरता n को ज्ञात किया जा सकता है। इस तत्त्व की वैद्युतऋणात्मकता जितनी ग्रधिक होगी, ग्राबन्धी युगल के इलेक्ट्रान X के परमाणु की दिशा में उतने ही ग्रधिक विस्थापित होंगे, जिसके फलस्वरूप, केन्द्रीय परमाणु के समीप इलेक्ट्रानी ग्रभ्र का घनत्व कम हो जाता है। इसके कारण विचाराधीन इलेक्ट्रानी युगल का संयोजकता कोश के पड़ोसी इलेक्ट्रानी ग्रभ्रों से प्रतिकर्षण क्षीण हो जाता है, तथा, ग्रतएव, क्रमशः संयोजकता कोण भी कम हो जाते हैं।

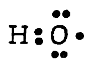
यही निष्कर्ष प्रायोगिक रूप से भी प्रमाणित होता है। उदाहरणतया, ग्राइये ग्रमोनिया ग्रौर नाइट्रोजन ट्राइफ्लुग्रोराइड के ग्रणुग्रों में N_3 संयोजकता कोणों के मानों की तुलना करें। N_3 में संयोजकता कोण N 102° के बरावर है तथा NH_3 ग्रणु में संयोजकता कोण HNH 107.8° के बराबर है। इस विभेद का कारण यह है कि फ्लुग्रोरीन की सापेक्षिक वैद्युतऋणात्मकता (4.0) हाइड्रोजन की वैद्युतऋणात्मकता (2.1) से ग्रधिक है।

देखे गए उदाहरणों से स्पष्ट है कि ग्रनेक स्थितियों में स० को० इ० यु० प्र० विधि की मदद से न केवल ग्रणु की साधारण ग्राकृति, बल्कि उनकी संरचना के कुछ उत्कृष्ट विवरण समझे भी जा सकते हैं एवं सही प्रकार पूर्व ज्ञात भी किये जा सकते हैं। लेकिन, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि संकरण विधि तथा स० को० इ० यु० प्र० विधि एक जैसी विधियाँ ही हैं। इसीलिए ये दोनों ही सदैव ग्रणुग्रों की ज्यामिति को सही रूप से व्यक्त नहीं करते हैं, परन्तु ग्रधिकतर स्थितियों में समान निष्कर्षों पर पहुँचाती हैं; जो प्रायोगिक ग्राधार पर निश्चित की गई ग्रणु की संरचना से

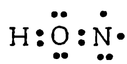
मिलते हैं। अतः इन विधियों के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष विशेषतः विश्वास-जनक बन जाते हैं।

44. **बहुकेन्द्रीय आबन्ध.** संयोजकता आबन्ध के विकास के साथ यह भी स्पष्ट हो गया कि कुछ स्थितियों में नियत अणु के लिये सम्भव संयोजकता आरेखों में से कोई भी आरेख प्रायोगिक रूप से ज्ञात किये गये इस अणु के गुणों के साथ मेल नहीं खाता है: अणु के वास्तविक गुण अलग-अलग आरेखों के आधार पर निश्चित् किये गये गुणों के बीच में होते हैं। ऐसी स्थितियों में अणु की संरचना को कई संयोजकता आरेखों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। अणु को व्यक्त करने की ऐसी विधि को संयोजकता आरेखों की विधि कहते हैं।

उदाहरणार्थ, आइये HNO_3 – नाइट्रिक अम्ल के अणु की संरचना को देखें। इस अणु में हाइड्रोजन का परमाणु आक्सीजन के परमाणु के साथ सहसंयोजी आबन्ध द्वारा जुड़ा हुआ है:



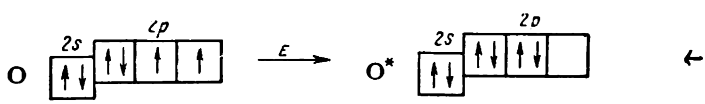
आक्सीजन का परमाणु उसमें शेष रह गये अयुग्मित इलेक्ट्रान के आधार पर नाइ-ट्रोजन के परमाणु के साथ सहसंयोजी आबन्ध बनाता है:



अपने क्रम में, नाइट्रोजन के दो अयुग्मित इलेक्ट्रान आक्सीजन के दूसरे परमाणु के साथ मिलकर दो सहसंयोजी आबन्ध बनाते हैं:



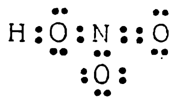
विदित है कि नाइट्रोजन के परमाणु में इलेक्ट्रानों का अविभाजित युगल बच गया है, अर्थात् यहाँ नाइट्रोजन, इलेक्ट्रानी युगल के दाता के रूप में, दाता-ग्राही विधि द्वारा एक और सहसंयोजी आबन्ध बना सकती है। HNO_3 के अणु में नाइट्रोजन के परमाणु के इलेक्ट्रानी युगल के ग्राही के रूप में आक्सीजन का तीसरा परमाणु है, जो उत्तेजित अवस्था में आ गया है तथा जिसमें वह एक रिक्त $2p$-कक्षक रखता है:*



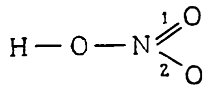
---

*इस स्थिति में परमाणु का उत्तेजित होना इलेक्ट्रानों के जोड़ों के वियोजन में व्यक्त नहीं होता, जैसा कि ऊपर देखी गई स्थितियों में होता था (दे० § 40), बल्कि

इस प्रकार, नाइट्रिक अम्ल के अणु का निम्न संयोजकता आरेख प्राप्त होता है :

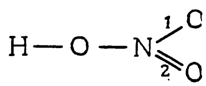


या



(I)

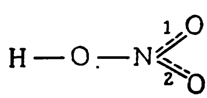
अन्तिम आरेख के अनुसार (जिसमें नाइट्रोजन-ऑक्सीजन आबन्धों को सँख्याओं द्वारा सूचित किया गया है) HNO_3 के अणु में आबन्ध 1 और 2 असमान है : आबन्ध 1 – दुगुना है और आबन्ध 2 – सरल है। वस्तुतः ये आबन्ध सभी प्रकार से (आबन्ध ऊर्जा, अन्तरानाभिकीय दूरी N — O आदि) समान हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि HNO_3 के अणु की संरचना को इसी आधार पर तदनुरूपी संयोजकता आरेख द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है :



(II)

(I) और (II) संयोजकता आरेखों में से प्रत्येक आरेख नाइट्रिक अम्ल के अणु की संरचना एवं गुण सही प्रकार नहीं व्यक्त करता है : इस अणु की सही संरचना (I) और (II) आरेखों के बीच में है और इन संयोजकता आरेखों के मिश्रण या अतिव्यापन के परिणाम के रूप में देखी जा सकती है। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि नाइट्रिक अम्ल वस्तुतः दो पृथक रूपों (I) और (II) में स्थित है : HNO_3 के अणु को संयोजकता आरेखों द्वारा व्यक्त किये जाने का अर्थ केवल यह है कि इनमें से प्रत्येक आरेख पृथक रूप में अणु की यथार्थ इलेक्ट्रानी संरचना से नहीं मिलता है।

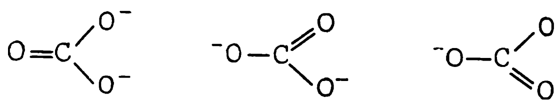
नाइट्रिक अम्ल के अणु में इलेक्ट्रानों के विस्तारण का अधिक सही प्रकार निम्न आरेख द्वारा दिखाया जा सकता है।



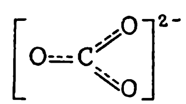
अयुग्मित इलेक्ट्रान का अन्य युग्मित इलेक्ट्रान द्वारा घेरे गये कक्षक में प्रवेश हो जाने से होता है। इस स्थानांतरण में ऊर्जा व्यय होती है। यह स्मरण रहे कि हुंड नियम (दे० 31) ऐसी उत्तेजित अवस्थाओं का विरोध नहीं करता है, वह केवल परमाणु की मुख्य (अनुत्तेजित) अवस्था की तुलना में उनके कम स्थायित्व को इंगित करता है।

यहाँ बिन्दु-रेखा का अर्थ यह है कि सामूहिक इलेक्ट्रानी|युगलों में एक युगल पूर्ण रूप से न तो 1 आबन्ध (आरेख I) और न ही 2 आबन्ध (आरेख II) में भाग लेता है; बल्कि इन आबन्धों में वह समान रूप से स्थित है। अन्य शब्दों में, यह इलेक्ट्रानी युगल दो परमाणुओं में नहीं, बल्कि तीन परमाणुओं में है—नाइट्रोजन के एक परमाणु तथा आक्सीजन के दो परमाणुओं में है। अतः, इसके द्वारा बनने वाला आबन्ध द्विकेन्द्रीय नहीं होता, अपितु त्रिकेन्द्रीय होता है।

CO_3^{2-} आयन का इलेक्ट्रानी सूत्र तीन संयोजकता आरेखों द्वारा लिखा जा सकता है:



इनमें से प्रत्येक आरेख कार्बन आक्सीजन के आबन्धों में असमानता को निर्दिष्ट करता है। किन्तु यह वास्तविकता के अनुरूप नहीं है: CO_3^{2-} आयन में C—O के भी तीनों आबन्ध समान हैं। ऊपर दिये गये सभी तीनों संयोजकता आरेखों के अध्यारोपण को इस आयन की यथार्थ संरचना के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, अर्थात उसे निम्न सूत्र द्वारा लिखा जा सकता है:



पहिले की भाँति, यहाँ पर भी बिन्दु रेखा का अर्थ है कि सामूहिक इलेक्ट्रानी युगलों में से एक युगल C—O के सभी तीनों आबन्धों में समान रूप में स्थित है। यह इलेक्ट्रानी युगल CO_3^{2-} आयन के सभी चारों परमाणुओं से सम्बंधित है और उसके द्वारा बनने वाला सहसंयोजी आबन्ध चतुष्केन्द्रीय है।

बेन्जीन तथा डाइबोरेन के अणु बहुकेन्द्रीय आबन्धों के अणु के अन्य उदाहरण हैं।

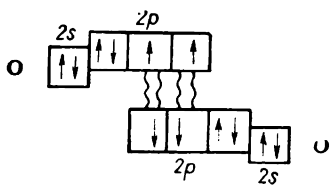
जैसा कि § 38 में बताया गया था कि संयोजकता आबन्ध विधि की एक धारणा यह है कि सभी रासायनिक आबन्ध द्विकेन्द्रीय होते हैं। हालाँकि, जैसा कि ऊपर दिये उदाहरणों से स्पष्ट है, वस्तुतः कई स्थितियों में यह कहना अधिक सही होगा कि द्विइलेक्ट्रानी आबन्ध बहुकेन्द्रीय हैं।

45. **आण्विक कक्षकों की विधि**. जैसा कि पिछले अनुच्छेदों में बतलाया गया है कि संयोजकता आबन्ध की विधि द्वारा परमाणुओं की सहसंयोजकता आबन्धों को नियत सँख्या में बनाने की विशेषता तथा सहसंयोजकता आबन्धों की प्रवृत्ति को समझाया जा सकता है एवं अनेक अणुओं के गुण और संरचना का वर्णन किया जा सकता है। लेकिन कई स्थितियों में संयोजकता आबन्ध की विधि रासायनिक आबन्धों

की प्रकृति नहीं समझा सकती या फिर अणुओं के गुणों के प्रति त्रुटिपूर्ण निष्कर्षों पर ले आती है।

इस प्रकार, संयोजकता आबन्धों की विधि के अनुसार सभी सहसंयोजी आबन्ध इलेक्ट्रानों के सामूहिक युगल द्वारा बनते हैं। हालाँकि, गत शताब्दी के अंत में हाइड्रोजन का एक बहुत ही स्थायी आण्विक आयन H_2^+ ज्ञात था, जिसमें आबन्ध विपाटन की ऊर्जा 256 कि० जूल/मोल है। लेकिन यहाँ कोई भी इलेक्ट्रानिक युगल नहीं बन सकता है, क्योंकि H_2^+ आयन में केवल एक ही इलेक्ट्रान उपस्थित है। अतः, संयोजकता आबन्ध की विधि H_2^+ आयन के बारे में सन्तोषजनक प्रमाण नहीं देती है।

इसके अतिरिक्त, संयोजकता आबन्ध की विधि के अनुसार O_2 आक्सीजन का अणु दो सामूहिक इलेक्ट्रानिक युगलों के परिणामस्वरूप बनता है:



इस प्रकार के वर्णन के अनुसार O_2 के अणु में अयुग्मित इलेक्ट्रान नहीं हैं। लेकिन आक्सीजन के चुम्बकीय गुणों के अनुसार O_2 के अणु में दो अयुग्मित इलेक्ट्रान हैं।

प्रत्येक इलेक्ट्रान प्रचक्रण के कारण अपना निजी चुम्बकीय क्षेत्र बनता है। इस क्षेत्र की दिशा प्रचक्रण की दिशा के द्वारा निर्धारित होती है। अतः, दो युग्मित इलेक्ट्रानों द्वारा बनने वाले चुम्बकीय क्षेत्र परस्पर एक दूसरे का प्रतिकरण कर देते हैं। इसलिये वे अणु जिनमें केवल युग्मित इलेक्ट्रान ही होते हैं, अपना निजी चुम्बकीय क्षेत्र नहीं बनाते हैं। ऐसे अणुओं से बने हुये पदार्थ प्रतिचुम्बकीय पदार्थ (diamagnetic substance) कहलाते हैं और वे चुम्बकीय क्षेत्र में से बाहर धकेल दिये जाते हैं। इसके विपरीत, उन पदार्थों का, जिनमें अयुग्मित इलेक्ट्रान होते हैं, अपना निजी चुम्बकीय क्षेत्र होता है और वे अनुचुम्बकीय (paramagnetic) होते हैं। ऐसे पदार्थ चुम्बकीय क्षेत्र की ओर खिँचे आते हैं।

आक्सीजन एक अनुचुम्बकीय पदार्थ है जो उसमें अयुग्मित इलेक्ट्रानों की उपस्थिति का प्रमाण है।

संयोजकता आबन्ध की विधि के आधार पर यह समझाना कठिन होगा कि कुछ अणुओं से इलेक्ट्रानों के पृथक होने के कारण रासायनिक आबन्ध अधिक दृढ़ हो जाता है। अतः, F_2 के अणु में आबन्ध की विपाटन ऊर्जा 155 कि० जूल/मोल है, एवं आण्विक आयन F_2^+ में यह 320 कि० जूल/मोल है। इसी प्रकार O_2 के अणु तथा आण्विक आयन O_2^+ के लिये यह सँख्या क्रमशः 494 तथा 642 कि० जूल/मोल है।

यहाँ दिये गये तथा अन्य तथ्यों का अधिक सन्तोषजनक प्रमाण आण्विक कक्षकों की विधि (MO विधि) द्वारा मिलता है।

हमें यह ज्ञात ही है कि परमाणु में इलेक्ट्रानों की स्थिति कुल परमाण्वीय इलेक्ट्रानी कक्षकों (परमाण्वीय इलेक्ट्रानिक कोश) के रूप में क्वान्टमी यांत्रिकी द्वारा निश्चित की जाती है। ऐसे प्रत्येक कक्षक के लिये परमाण्वीय क्वान्टमी सँख्याओं का एक नियत सेट (समूह) वैशिष्टय होता है। MO विधि इस धारणा पर आधारित है कि अणु में इलेक्ट्रानों की स्थिति आण्विक इलेक्ट्रानी कक्षकों (आण्विक इलेक्ट्रानिक कोशों) के रूप में भी व्यक्त की जा सकती है। यहाँ प्रत्येक आण्विक कक्षक (MO) के लिये आण्विक क्वान्टमी सँख्याओं का निश्चित समूह होता है। किसी भी अन्य बहुइलेक्ट्रानिक विन्यास की भाँति, अणु के लिये भी पाऊली सिद्धाँत सही बैठता है (§ 31)। अतः, प्रत्येक MO में दो से अधिक इलेक्ट्रान नहीं आ सकते हैं और इनके प्रचक्रणों की दिशाएँ विपरीत होनी आवश्यक हैं।

अणु की सँरचना में भाग लेने वाले परमाण्वीय नाभिकों में से किसी भी एक नाभिक के समीप आण्विक इलेक्ट्रानिक अभ्र संकेन्द्रीत हो सकता है। ऐसा इलेक्ट्रान केवल एक ही परमाणु के साथ सम्बंधित होता है तथा रासायनिक आबन्धों के बनने की क्रिया में भाग नहीं लेता है। अन्य स्थितियों में इलेक्ट्रानिक अभ्र का अधिक भाग दो परमाण्वीय नाभिकों के समीप आकाश में होता है, अतः, यह द्विकेन्द्रीय रासायनिक आबन्ध बनाता है। लेकिन अधिकतर सामान्य रूप से इलेक्ट्रानिक अभ्र अनेक परमाण्वीय नाभिकों से सम्बंधित होता है तथा बहुकेन्द्रीय रासायनिक आबन्धों के बनने की क्रिया में भाग लेता है। इस प्रकार, MO विधि के दृष्टिकोण से द्विकेन्द्रीय आबन्ध बहुकेन्द्रीय रासायनिक आबन्ध की केवल एक विशिष्ट स्थिति है।

MO विधि की मुख्य समस्या है–तरंग फलनों को ज्ञात करना, जो आण्विक कक्षकों में इलेक्ट्रानों की स्थिति व्यक्त करते हैं। इस विधि के अधिक प्रचलित रूप, जिसका लघु नाम है MO LCAO (परमाण्वीय कक्षकों का रेखिक संयोग, linear combination of atomic orbitals) के अनुसार इस समस्या का हल निम्न प्रकार होगा।

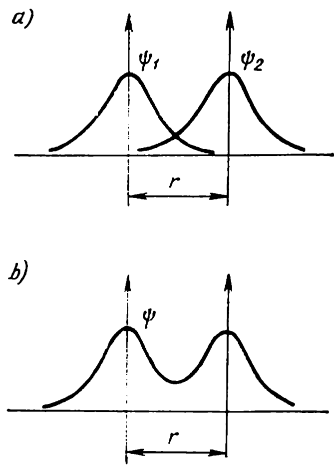
मान लो कि परस्पर क्रियाशील परमाणुओं के इलेक्ट्रानिक कक्षकों के लिये ψ_1, ψ_2, ψ_3.... इत्यादि तरंग फलन वैशिष्ट्य हैं। अब यह अनुमान करें कि तरंग फलन ψ_1 जो किसी आण्विक कक्षक का है, निम्न योग के रूप में लिखा जा सकता है :

$$\psi = C_1\psi_1 + C_2\psi_2 + C_3\psi_3 + \dots$$

यहाँ C_1, C_2, C_3...–कुछ साँख्यिक गुणाँक हैं।

इस विधि का भौतिक अर्थ स्पष्ट करने के लिये याद करें कि तरंग फलन ψ इलेक्ट्रान की स्थिति के लिये वैशिष्ट्य तरंग क्रिया के आयाम के बराबर है (दे०

§ 25)। जैसा कि ज्ञात है, उदाहरणतया, ध्वनि तरंग या विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के परस्पर क्रिया करने के फलस्वरूप उनके श्रायामों का योग हो जाता है। विदित है कि ऊपर दिया गया समीकरण धारणा और आण्विक "इलेक्ट्रानिक तरंग" के आयाम (अर्थात्, आण्विक तरंग फलन) के समान है और परस्पर क्रियाशील परमाण्वीय "इलेक्ट्रानिक तरंगों" के आयामों के योग द्वारा भी प्राप्त होता है (अर्थात्, परमाण्वीय तरंग फलनों के योग द्वारा प्राप्त होता है।) लेकिन यहाँ समीप में स्थित परमाणुओं के नाभिकों एवं इलेक्ट्रानों के बल क्षेत्रों के प्रभाव से प्रत्येक परमाण्वीय इलेक्ट्रान का तरंग फलन पृथक परमाणु की स्थिति में उसके प्रारम्भिक तरंग फलन की तुलना में परिवर्तित हो जाता है। MO LCAO विधि में इन परिवर्तनों को निर्धारित करने के लिये C_1, C_2. इत्यादि गुणांकों का प्रयोग किया जाता है। और इस प्रकार आण्विक तरंग फलनों को ज्ञात करने के लिये प्रारम्भिक आयामों के स्थान पर परिवर्तित आयामों – $C_1\psi_1$, $C_2\psi_2$, इत्यादि का योग किया जाता है।



चित्र 43 परमाण्वीय 1s कक्षकों से आबन्ध MO के बनने का आरेख।

आइये, देखें कि दो समान परमाणुओं के 1s-कक्षकों के तरंग फलनों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप आण्विक तरंग फलन ψ का क्या रूप होगा। इसके लिये $(C_1\psi_1+C_2\psi_2)$ का मान ज्ञात करें। दी गई स्थिति में दोनों परमाणु समान हैं। इसलिये C_1 तथा C_2 गुणाँकों का मान भी बराबर होगा $(C_1=C_2=C)$। अत: अब $C\ (\psi_1+\psi_2)$ ज्ञात करना है। चूंकि C स्थिर गुणाँक इष्ट आण्विक तरंग फलन पर प्रभाव नहीं डालता, वह केवल उसका निरपेक्ष मान ही परिवर्तित करता है, तो हम केवल $(\psi_1+\psi_2)$ का मान ज्ञात करेंगे।

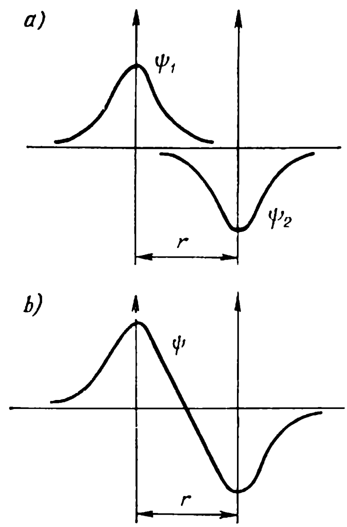
इसके लिये, आइये, परस्पर क्रियाशील परमाणुओं की नाभिकां को उस दूरी (r) पर रखते हैं जिस दूरी पर वे अणु में स्थित हैं और 1s-कक्षकों के तरंग फलनों का आरेख बनाएं (चित्र 43, a)। इसमें से प्रत्येक फलन का रूप चित्र 9, a (पृ० 90) में दिये गये आरेख से मिलता है। आण्विक तरंग फलन ψ ज्ञात करने के लिये आइये ψ_1 तथा ψ_2 के मान को जोड़ दें, जिसके फलस्वरूप एक वक्र प्राप्त होगा जो चित्र 43, "b" में दिखाया गया है। विदित है कि नाभिकों के बीच आकाश में आण्विक तरंग फलन ψ के मान प्रारंभिक परमाण्वीय तरंग फलन के मान से अधिक हैं। लेकिन तरंग फलन का वर्ग आकाश में नियत क्षेत्र में इलेक्ट्रान के मिलने की प्रायिकता

का वैशिष्ट्य होता है अर्थात् इलेक्ट्रानिक अभ्र का घनत्व बतलाता है (दे० § 25) । इसका अर्थ यह हुआ कि ψ_1 तथा ψ_2 की तुलना में ψ के मान का बढ़ना MO के बनने में अन्तरानाभिकीय आकाश में इलेक्ट्रानिक अभ्र के घनत्व के बढ़ने का प्रमाण देता है। इसके फलस्वरूप इस क्षेत्र की ओर धनात्मक आवेशित परमाण्वीय आवेशों का आकर्षण बल उत्पन्न हो जाता है और रासायनिक आबन्ध बनता है। इसलिये इस प्रकार का MO आबन्धी कहलाता है।

दी गई स्थिति में बढ़े हुये इलेक्ट्रानिक घनत्व का क्षेत्र आबन्ध के अक्ष के समीप होता है ; इसलिये प्राप्त होने वाला MO, σ-कोटि का होता है। इस प्रकार, दो परमाण्वीय 1*s*-कक्षकों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप बनने वाला आबन्धी MO, σआब 1*s* द्वारा लिखा जाता है।

आबन्धी MO पर स्थित इलेक्ट्रान आबन्धी इलेक्ट्रान कहलाते हैं।

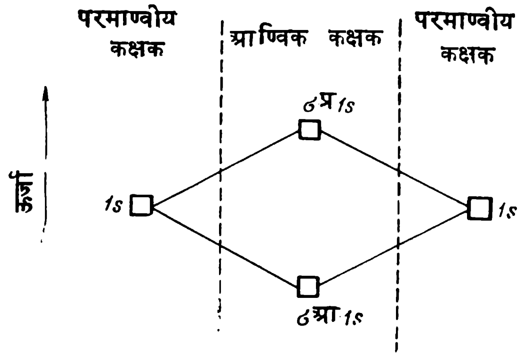
जैसा कि पृ० 90 पर बताया गया था कि 1*s*-कक्षक के फलन का स्थिर चिन्ह होता है। एक पृथक परमाणु के इस चिन्ह का चयन स्वेच्छा से किया जाता है। अब तक हम इसे धनात्मक मानते रहे हैं। लेकिन दो परमाणुओं की परस्पर क्रिया के समय उनके 1*s*-कक्षकों के तरंग फलनों के चिन्ह विभिन्न भी हो सकते हैं। अर्थात् चित्र 43, a में दी गई स्थिति के अलावा, जहाँ दोनों तरंग फलनों के चिन्ह समान हैं, ऐसी भी स्थिति हो सकती है, जब परस्पर क्रियाशील 1*s*-कक्षकों के तरंग फलनों के चिन्ह विभिन्न हों। ऐसी स्थिति चित्र 44, 'a' में दिखाई गई है। यहाँ एक परमाणु के 1*s*-कक्षक का तरंग फलन धनात्मक है और दूसरे परमाणु का – ऋणात्मक है। इन तरंग फलनों के योग के फलस्वरूप प्राप्त होने वाला वक्र चित्र 44, "b" में दिखाया गया है। समान रूप से परस्पर क्रिया के फलस्वरूप बनने वाले आण्विक कक्षक के लिये अन्तरानाभिकीय आकाश में तरंग फलन के निरपेक्ष मान का प्रारम्भिक परमाणुओं में उसके मान की तुलना में कम हो जाना वैशिष्ट्य है। आबन्ध के अक्ष पर वह बिन्दु प्राप्त होता है जहाँ तरंग फलन एवं उसके वर्ग का मान शून्य के बराबर होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि परमाणुओं के बीच के आकाश में इलेक्ट्रानिक अभ्र का घनत्व भी कम हो जाएगा। इसके फलस्वरूप, प्रत्येक परमाण्वीय नाभिक



चित्र 44. परमाण्वीय 1*s*-कक्षकों के प्रतिआबन्धन MO के बनने का आरेख।

का आकाश के अन्तरानाभिकीय क्षेत्र की दिशा की ओर आकर्षण विपरीत दिशा की अपेक्षा अधिक कम प्रतीत होगा, अर्थात् ऐसे बल उत्पन्न होंगे जो नाभिकों को परस्पर प्रतिकर्षित करेंगे, इस प्रकार, यहाँ रासायनिक आबन्ध प्राप्त नहीं होगा। और प्राप्त होने वाला MO प्रतिआबन्धन ($\sigma^{\text{प्रतिआब०}}$ 1s) कहलाता है तथा उस पर स्थित इलेक्ट्रान प्रतिआबन्धन इलेक्ट्रान कहलाते हैं।

परमाण्वीय 1s कक्षकों से आबन्धी MO पर इलेक्ट्रानों के स्थानांतरण, जिसके फलस्वरूप रासायनिक आबन्ध बनता है, के समय ऊर्जा का मोचन होता है। इसके विपरीत, परमाण्वीय 1s-कक्षकों से प्रतिआबन्धन MO पर इलेक्ट्रानों के स्थानान्तरण के समय ऊर्जा व्यय होती है। अतएव, परमाण्वीय 1s-कक्षकों की तुलना में इले-



चित्र 45. दो समान परमाणुओं के 1s-कक्षकों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप बनने वाले MO का ऊर्जा आरेख।

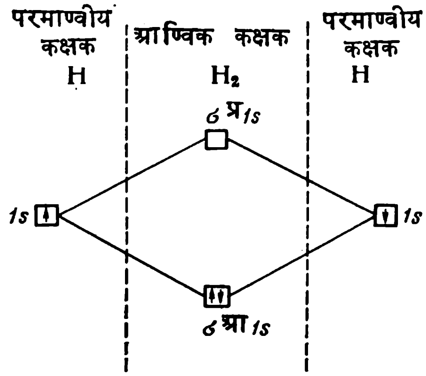
क्ट्रानों की ऊर्जा $\sigma^{\text{आब०}}$ 1s-कक्षकों पर कम होती है तथा $\sigma^{\text{प्रतिआब०}}$ 1s-कक्षकों पर अधिक होती है। ऊर्जा का यह परस्पर सम्बन्ध चित्र 45, में दिखाया गया है, जहाँ हाइड्रोजन के दो परमाणुओं के प्रारम्भिक 1s-कक्षकों के साथ-साथ $\sigma^{\text{आब०}}$ 1s तथा $\sigma^{\text{प्रतिआब०}}$ आण्विक कक्षक भी दिखाए गये हैं। लगभग यह कहा जा सकता है कि 1s-इलेक्ट्रान को आबन्धी MO पर लाने के लिये ऊर्जा की उतनी मात्रा का मोचन होता है जितनी मात्रा में ऊर्जा का व्यय इलेक्ट्रान को प्रतिआबन्धन MO पर लाने में होगा।

हमें मालूम ही है कि परमाणु की सर्वाधिक स्थिर (अनुत्तेजित) अवस्था में इलेक्ट्रान उन परमाण्वीय कक्षकों में होते हैं जो न्यूनतम सम्भव ऊर्जा के लिये वैशिष्ट्य होते हैं। ठीक इसी प्रकार अणु की सर्वाधिक स्थिर अवस्था उस स्थिति में प्राप्त होती है जब इलेक्ट्रान न्यूनतम ऊर्जा वाले MO में स्थित होते हैं। इसलिये हाइड्रोजन के अणु के बनने के समय दोनों इलेक्ट्रान 1s-कक्षकों से $\sigma^{\text{आब०}}$ 1s आबन्धी आण्विक

कक्षक (चित्र 46) में आ जाएँगे ; पाऊली सिद्धाँत के अनुसार एक MO पर स्थित इलेक्ट्रानों के प्रचक्रणों की दिशा विपरीत होनी आवश्यक है। उन प्रतीकों का प्रयोग करते हुये, जो परमाण्वीय एवं आण्विक कक्षकों पर इलेक्ट्रानों की स्थिति को व्यक्त करते हैं, हाइड्रोजन के अणु के बनने की क्रिया निम्न प्रकार लिखी जा सकती है:

$$2H\left[1s^1\right] \rightarrow H_2\left[\left(\sigma^{\text{आब०}}\ 1s\right)^2\right] + 435 \text{ कि० जूल०}$$

संयोजकता आबन्ध विधि में आबन्ध की बहुलता सामूहिक इलेक्ट्रानिक युगलों की सँख्या द्वारा निश्चित होती है: एक सामूहिक इलेक्ट्रानिक युगल द्वारा बना आबन्ध साधारण आबन्ध कहलाएगा, दो सामूहिक इलेक्ट्रानिक युगलों द्वारा बना आबन्ध द्विआबन्ध कहलाएगा, इत्यादि। इसी आधार पर, MO विधि में भी आबन्ध की बहुलता उसमें भाग लेने वाले आबन्धी इलेक्ट्रानों की सँख्या द्वारा निश्चित होती है: साधारण आबन्ध में दो आबन्धी इलेक्ट्रान होते हैं, और चार आबन्धी इलेक्ट्रान द्वि-आबन्ध बनाते हैं; आदि। इस बीच प्रतिआबन्धन इलेक्ट्रान आबन्धी इलेक्ट्रानों की क्रमश: सँख्या के प्रभाव का प्रतिकरण कर देते हैं। अतः, यदि अणु में 6 आबन्धी और 2 प्रतिआबन्धन इलेक्ट्रान स्थित हैं, तो आबन्धी इलेक्ट्रानों की सँख्या प्रतिआबन्धन इलेक्ट्रानों की सँख्या से चार अधिक हुई, जिसके कारण द्विआबन्ध बनता है। अतएव, MO विधि के दृष्टिकोण से हाइड्रोजन के अणु में दो आबन्धी इलेक्ट्रानों द्वारा बनने वाला रासायनिक आबन्ध एक साधारण आबन्ध के रूप में देखा जाना चाहिए।



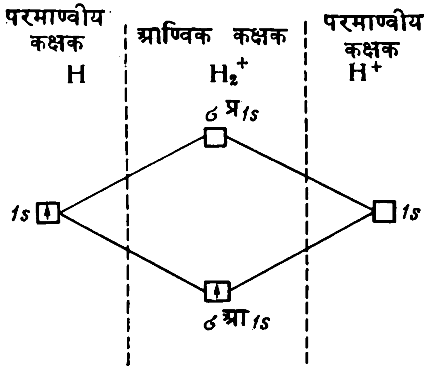
चित्र 46. हाइड्रोजन के अणुओं के बनने का ऊर्जा आरेख।

अब H_2^+ स्थिर आण्विक आयन की सम्भावना का कारण स्पष्ट हो जाता है। इसके बनने में परमाण्वीय कक्षक 1s से एकमात्र इलेक्ट्रान $\sigma^{\text{आब०}}$ आबन्धी कक्षक में आ जाता है, जिसके फलस्वरूप ऊर्जा का मोचन होता है (चित्र 47), तथा निम्न आरेख द्वारा व्यक्त किया जा सकता है:

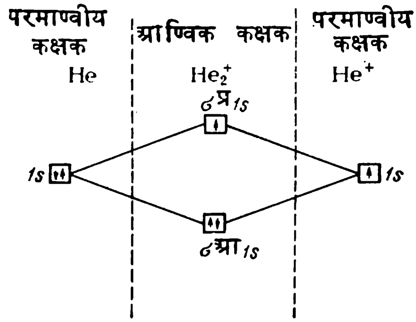
$$H\left[1s^1\right] + H^+ \rightarrow H_2^+\left[\left(\sigma^{\text{आब०}}\ 1s\right)^1\right] + 259 \text{ कि० जूल०}$$

आण्विक आयन He_2^+ (चित्र 48) में कुल तीन इलेक्ट्रान हैं। लेकिन पाऊली सिद्धाँत के अनुसार $\sigma^{\text{आब०}}$ 1s आबन्धी आण्विक कक्षक पर केवल दो इलेक्ट्रान हो

सकते हैं। इसलिये तीसरा इलेक्ट्रान $\sigma^{\text{प्रतिआब०}}$ 1s प्रतिआबन्धन कक्षक पर स्थित हो जाता है। इस प्रकार, यहाँ आबन्धी इलेक्ट्रानों की सँख्या प्रतिआबन्धन इलेक्ट्रानों की सँख्या से अधिक है। अतएव, He_2^+ आयन ऊर्जा की दृष्टि से स्थिर होना चा-



चित्र 47. H_2^+ हाइड्रोजन के आण्विक आयन के बनने का ऊर्जा आरेख।

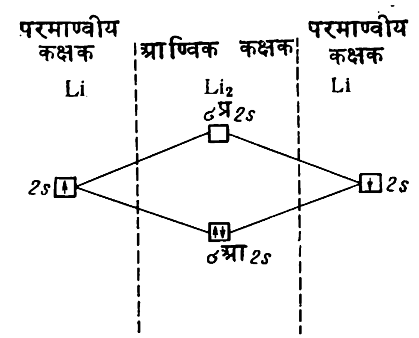


चित्र 48. हीलियम के आण्विक आयन He_2^+ के बनने का ऊर्जा आरेख।

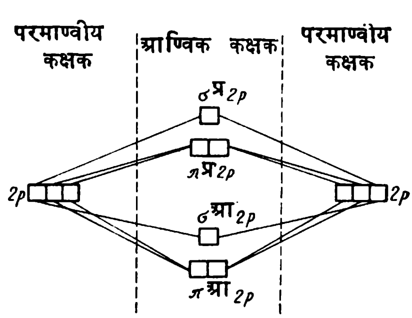
हिये। वस्तुत: He_2^+ आयन की उपस्थिति प्रायोगिक रूप से सिद्ध की जा चुकी है तथा यह भी निर्धारित हो चुका है कि इसके बनने में ऊर्जा का मोचन होता है।

$$He\left[1s^2\right] + He^+\left[1s^1\right] \rightarrow He_2^+\left[\left(\sigma^{\text{आब}}\,1s\right)^2\left(\sigma^{\text{प्रतिआब}}\,1s\right)^1\right] + 293 \text{ कि० जूल०}$$

इसके विपरीत, अनुमानित He_2 अणु ऊर्जा की दृष्टि से अस्थिर होना चाहिये, क्योंकि यहाँ MO पर स्थित होने वाले चार इलेक्ट्रानों में से दो इलेक्ट्रान आबन्धी MO



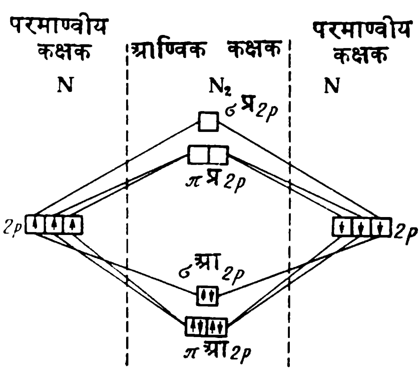
चित्र 49. लीथियम Li_2 के अणु के बनने का ऊर्जा आरेख।



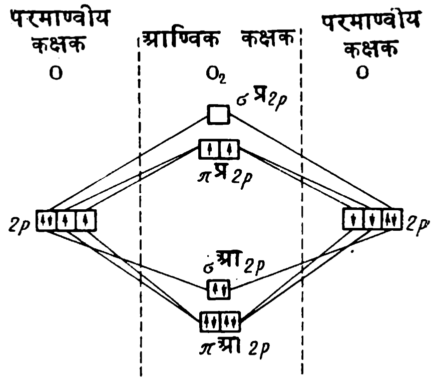
चित्र 50. दो समान परमाणुओं के 2p-कक्षकों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप MO के बनने का ऊर्जा आरेख।

पर और दो इलेक्ट्रान प्रतिआबन्धन MO पर स्थित होंगे। अतएव, He_2 अणु के बनने में ऊर्जा का मोचन नहीं होगा। वस्तुत:, He_2 अणु को प्रयोगों द्वारा ज्ञात नहीं किया जा सका है।

दूसरे आवर्तक के तत्वों के अणुओं में MO परमाण्वीय 2*s*-तथा 1*p*-कक्षकों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप बनते हैं। रासायनिक आबन्धों के बनने में आन्तरिक 1*s*-इलेक्ट्रानों का भाग अपेक्षाकृत कम है। अत:, चित्र 49 में Li_2 अणु के बनने का ऊर्जा आरेख दिया गया है। यहाँ दो आबन्धी इलेक्ट्रान हैं जो साधारण आबन्ध



चित्र 51. नाइट्रोजन N_2 के अणु के बनने का ऊर्जा आरेख।



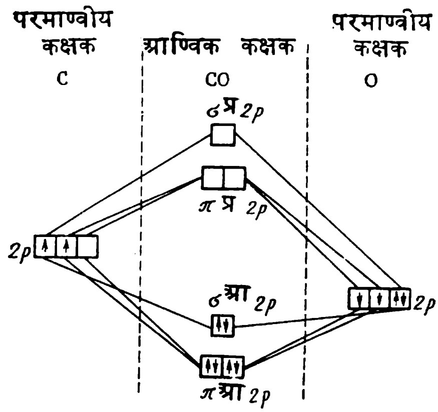
चित्र 52. आक्सीजन O_2 के अणु के बनने का ऊर्जा आरेख।

बनाते हैं। Be_2 अणु में आबन्धी तथा प्रतिआबन्धी इलेक्ट्रानों की सँख्या समान है; अतएव, यह अणु He_2 अणु की भाँति ऊर्जा की दृष्टि से अस्थिर है। वस्तुत:, Be_2 अणु प्रायोगिक रूप से ज्ञात नहीं किया जा सका है।

परमाण्वीय 2*p*-कक्षकों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप MO के बनने का आरेख चित्र 50 में दिया गया है। जैसा कि विदित है कि छ: प्रारम्भिक 2*p*-कक्षकों से छ: MO बनते हैं: तीन आबन्धी तथा तीन प्रतिआबन्धन कक्षक। इस बीच एक आबन्धी ($\sigma^{\text{आब०}}$ 1*p*) तथा एक प्रतिआबन्धन ($\sigma^{\text{प्रतिआब०}}$ 1*p*) कक्षक σ-कोटि के हैं: ये परस्पर क्रियाशील परमाण्वीय 2*p*-कक्षकों से बने हैं जो आबन्ध अक्ष के साथ-साथ स्थित हैं। दो आबन्धी ($\pi^{\text{आब०}}$ 2*p*) और दो प्रतिआबन्धन ($\pi^{\text{प्रतिआब०}}$ 2*p*) कक्षक 2*p*-कक्षकों की परस्पर क्रिया के फलस्वरूप बने हैं, जो आबन्ध के अक्ष पर लम्ब पर स्थित हैं। ये कक्षक π-कोटि के हैं। चित्र 51 में नाइट्रोजन N_2 के अणु MO की पूर्त्ति का आरेख दिया गया है। यहाँ नाइट्रोजन के दोनों परमाणुओं के 2*p*-इलेक्ट्रान MO पर स्थित होने चाहिये। वे तीन आबन्धी MO की पूर्त्ति

कर देते हैं तथा सभी प्रतिआबन्धन MO अपूर्ण रह जाते हैं। नाइट्रोजन N_2 के अणु में आबन्धी इलेक्ट्रानों की कुल सँख्या छः है, जिसके कारण त्रि-आबन्ध बनता है।

आक्सीजन O_2 के अणु में (चित्र 52) रासायनिक आबन्धों के बनने में प्रत्येक परमाणु के चार-चार 2p-इलेक्ट्रान भाग लेते हैं। अतः, MO पर कुल आठ इलेक्ट्रान आने चाहिये। इनमें से छः तीन आबन्धी MO पर स्थित होते हैं, और दो प्रतिआबन्धन आण्विक कक्षकों $\pi^{\text{प्रतिआब}}$ 2p पर स्थित होते हैं। यहाँ प्रतिआबन्धन इलेक्ट्रानों की सँख्या की तुलना आबन्धी इलेक्ट्रानों की सँख्या चार से अधिक है एवं आबन्ध की बहुलता – दो है। $\pi^{\text{प्रतिआब०}}$ 2p दो कक्षक ऊर्जा की दृष्टि से समान हैं, और यहाँ इलेक्ट्रान हुंड नियम के आधार पर स्थित होंगे (पृ० 104'), जो अणुओं के लिये भी सही है। इसलिये $\pi^{\text{प्रतिआब०}}$ 2p में से प्रत्येक कक्षक में एक इलेक्ट्रान है और वह भी इस प्रकार स्थित है कि दोनों इलेक्ट्रानों के प्रचक्रणों की दिशाएँ समान हैं। चित्र 52 से विदित है कि O_2 अणु में दो अयुग्मित इलेक्ट्रान हैं, जिसके कारण यह अणु अनुचुम्बकीय होना चाहिये। जैसा कि ऊपर बताया गया है (पृ 168) यह प्रायोगिक रूप से सिद्ध किया जा चुका है। इस प्रकार MO विधि आण्विक आक्सीजन के चुम्बकीय गुणों की व्याख्या करती है।



चित्र 53. कार्बन ऑक्साइड CO के अणु के बनने का ऊर्जा आरेख।

O_2 के अणु से O_2^+ आयन के बनने में अधिकतम ऊर्जा वाला इलेक्ट्रान पृथक हो जाता है, अर्थात वह इलेक्ट्रान जो प्रतिआबन्धन आण्विक कक्षक $\pi^{\text{प्रतिआब०}}$ 2p में स्थित था। प्रतिआबन्धन इलेक्ट्रानों की सँख्या कम होने के कारण आबन्ध की बहुलता बढ़ जाती है (आबन्ध इलेक्ट्रानों की सँख्या प्रतिआबन्धन इलेक्ट्रानों की सँख्या से अब चार के स्थान पर पाँच से अधिक हो जाती है)। अतएव, अधिक स्थिर अणु बनता है। यह कारण है कि O_2^+ आण्विक आयन की विपाटन ऊर्जा O_2 के अणु की विपाटन ऊर्जा से अधिक है (दे० पृ० 168)

इसी प्रकार MO विधि के दृष्टिकोण से विभिन्न परमाणुओं द्वारा बने अणुओं के बनने की क्रिया का अध्ययन किया जाता है। अतः, चित्र 53 में कार्बन मोनो ऑक्साइड CO के अणु के बनने का ऊर्जा आरेख दिखाया गया है। यहाँ आक्सीजन के परमाणु

के चार $2p$-इलेक्ट्रान तथा कार्बन के परमाणु के दो $2p$-इलेक्ट्रान MO पर ग्रा जाते हैं। युग्मित होने वाले परमाणुग्रों के $2p$-इलेक्ट्रानों की ऊर्जा समान नहीं होती। ग्राक्सीजन के परमाणु की नाभिक का ग्रावेश कार्बन के परमाणु की नाभिक के ग्रावेश से ग्रधिक है, इसलिये ग्राक्सीजन के परमाणु में $2p$-इलेक्ट्रान नाभिक की ग्रोर ग्रधिक तीव्रता से ग्राकृष्ट होते हैं। इसीलिये चित्र 53 में कार्बन के परमाणु के $2p$-कक्षकों की तुलना में ग्रॉक्सीजन के परमाणु के $2p$-कक्षकों की स्थिति कम ऊर्जा के तदनुरूप है। ग्रारेख से स्पष्ट है कि ग्राबन्ध के बनने में भाग लेने वाले सभी छः इलेक्ट्रान तीन ग्राबन्धी MO पर स्थित हैं।

नाइट्रोजन के ग्रणु की भाँति (चित्र 51) CO के ग्रणु में छः ग्राबन्धी इलेक्ट्रानों की उपस्थिति तथा प्रतिग्राबन्धन इलेक्ट्रानों की ग्रनुपस्थिति त्रिग्राबन्ध बनाती है। स्वतंत्र नाइट्रोजन तथा कार्बन ग्राक्साइड के गुणों में काफ़ी समानता इससे स्पष्ट हो जाती है, उदाहरणतया, ग्रणुग्रों की विपाटन ऊर्जा ($N_2 = 945$, CO — 1076 कि० जू० मोल) ग्रणुग्रों में ग्रन्तरानाभिकी दूरी (क्रमशः 0.110 तथा 0.113 nm), गलनांक (63 तथा 68 K) एवं क्वथनांक (77 व 82 K)।

इन उदाहरणों से विदित है कि MO विधि द्वारा सफलतापूर्वक उन ग्रणुग्रों की संरचना व गुण समझाए जा सकते हैं, जिनको संयोजकता विधि द्वारा सरलता से समझा नहीं जा सकता।

46. **ग्रायनी ग्राबन्ध.** इस प्रकार का ग्राबन्ध विपरीत ग्रावेशों वाले ग्रायनों के परस्पर स्थिर वैद्युत ग्राकर्षण के फलस्वरूप बनता है। ग्रायन सरल भी हो सकते हैं, ग्रर्थात् एक परमाणु से बने हुये (जैसे, धनायन Na^+, K^+ ऋणायन F^-, Cl^- या फिर संकर ग्रायन भी हो सकते हैं, ग्रर्थात् दो या दो से ग्रधिक परमाणुग्रों द्वारा बने हुये (जैसे, धनायन NH_4^+ ऋणायन OH^-, NO_3^- SO_4^{2-})। धनात्मक ग्रावेश वाले सरल ग्रायन सबसे ग्रधिक ग्रासानी से उन तत्त्वों के परमाणुग्रों से बनते हैं जिनका ग्रायनन विभव कम होता है: ऐसे तत्त्वों में I तथा II ग्रुप के मुख्य उपग्रुपों के धातु ग्राते हैं (दे० तालिका 4 व 5 पृ० 117)। इसके विपरीत, ऋणात्मक ग्रावेश वाले सरल ग्रायनों का बनना सामान्य ग्रधातुग्रों के परमाणुग्रों के लिये वैशिष्ट्य है; जो इलेक्ट्रान के साथ काफी समानता रखते हैं। इसलिये ग्रायनी ग्राबन्ध वाले सामान्य यौगिकों में क्षारीय धातुग्रों के हैलॉइड ग्राते हैं, जैसे, NaCl, CsF, इत्यादि।

सहसंयोजी ग्राबन्ध की ग्रपेक्षा ग्रायनी ग्राबन्ध की दिशा नहीं होती। इसका कारण यह है कि ग्रायन के वैद्युत क्षेत्र की गोलतः सममिति होती है ग्रर्थात्, एक ही नियम के ग्राधार पर वह किसी भी दिशा में दूरी कम कर देती है। इसलिये ग्रायनों में परस्पर क्रिया दिशा से स्वतंत्र एक समान होती है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि (दे० चित्र 29, पृ० 144) एक ही मान वाले लेकिन विपरीत चिन्हों वाले दो ग्रावेशों का विन्यास ग्रास-पास के ग्राकाश में वैद्युत क्षेत्र उत्पन्न कर देता है।

इसका अर्थ हुआ कि एक दूसरे की ओर आकृष्ट, दो समान आयन, अन्य आयनों के साथ स्थिर वैद्युत् परस्पर क्रिया करने की क्षमता बनाए रखते हैं। यहाँ आयनी तथा सहसंयोजी आबन्धों में एक और विभेद देखने में आता है: आयनी आबन्ध में संतृप्ति नहीं होती। इसलिये किसी नियत आयन के साथ विपरीत चिन्हों वाले आयन विभिन्न सँख्या में जुड़ सकते हैं। यह सँख्या परस्पर क्रियाशील आयनों के सापेक्षिक आकार द्वारा निर्धारित की जाती है तथा इसके साथ-साथ इस बात से भी निश्चित की जाती है कि भिन्न आवेशों वाले आयनों का आकर्षण बल समान चिन्हों वाले आयनों के बीच प्रतिकर्षण बल से अधिक होना चाहिये।

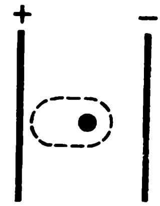
आयनी आबन्ध में दिशा एवं संतृप्ति के न होने के कारण आयनी अणुओं में युग्मन अर्थात् परस्पर जुड़ने की प्रकृति उत्पन्न हो जाती है। ऊँचे तापमान पर अणुओं की गतिज ऊर्जा उनके परस्पर आकर्षण की ऊर्जा से अधिक हो जाती है। इसलिये गैसीय अवस्था में आयनी यौगिक मुख्यत: अयुग्मित अणुओं के रूप में होते हैं। लेकिन कम तापमान पर, तरल या ठोस अवस्था में परिवर्तित होते समय आयनों की जुड़ने की प्रकृति काफ़ी तीव्र होती है। ठोस अवस्था में सभी आयनी यौगिक आण्विक के स्थान पर आयनी क्रिस्टलीय जाली वाले होते है जिसमें प्रत्येक आयन विपरीत चिन्हों वाले अनेक आयनों के साथ जुड़ा होता है (दे० अध्याय V)। और इस बीच इस नियत आयन के अन्य आयनों के साथ आबन्ध समान होते है। अत:, समस्त क्रिस्टल को एक विशाल "अणु" के रूप में देखा जा सकता है।

जैसा कि § 33 में बताया गया था कि अधातुओं के परमाणुओं के लिये इलेक्ट्रानों के साथ समानता के धनात्मक गुण वैशिष्ट्य है। इस प्रकार के परमाणु के साथ इलेक्ट्रान के जुड़ने से ऊर्जा का मोचन होता है। लेकिन दूसरे इलेक्ट्रान के किसी भी अन्य अधातु के परमाणु के साथ जुड़ने में ऊर्जा का व्यय होता है, अत: सरल बहु-आवेशित ऋणायनों (जैसे, O^{2-}, N^{3-}) के बनने में ऊर्जा की दृष्टि से लाभ नहीं होता है। इसलिये ऐसे यौगिकों में जैसे आक्साइड (BaO, Al_2O_3 आदि) या सल्फाइड (जैसे, ZnS, CuS) "स्पष्ट" आपेक्षी आबन्ध नहीं बनता है। यहाँ रासायनिक आबन्ध में कुछ सहसंयोजी आबन्ध के अंश मिलते हैं। इसके साथ बहुआवेशित संकट ऋणायन (SO_4^{2-}, CO_3^{2-}, PO_4^{3-}, इत्यादि) ऊर्जा की दृष्टि से स्थिर ही हैं। इसका कारण है कि अतिरिक्त इलेक्ट्रान अनेक परमाणुओं में इस प्रकार विस्तृत हैं कि प्रत्येक परमाणु का प्रभावी आवेश इलेक्ट्रान के आवेश से अधिक नहीं बढ़ता।

लेकिन सामान्य आयनी यौगिकों में भी, जैसे, क्षारीय धातुओं के हैलाइडों में ऋणात्मक तथा धनात्मक आवेशों का पूर्ण पृथक्करण नहीं होता, अर्थात् एक परमाणु से दूसरे परमाणु में इलेक्ट्रान पूर्णतया स्थानांतरित नहीं होता है। उदाहरणतया, $NaCl$ क्रिस्टल में क्लोरीन के परमाणु का प्रभावी ऋणात्मक आवेश इलेक्ट्रान के आवेश के

केवल 0.94 के बराबर है। इसी के बराबर का निरपेक्ष मान वाला धनात्मक आवेश सोडियम के परमाणु में है।

आयनी यौगिकों में आवेशों का अपूर्ण पृथक्करण आयनों की परस्पर ध्रुवीयता द्वारा समझा जा सकता है, अर्थात् एक-दूसरे का परस्पर प्रभाव जिसके कारण आयनों के इलेक्ट्रानिक कोशों में संरचनात्मक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। ध्रुवीयता का कारण हमेशा वैद्युत क्षेत्र होता है (दे०, उदाहरणतया, चित्र 54 वैद्युत क्षेत्र में आयन के इलेक्ट्रानिक कोश की संरचना त्रुटि को बिन्दु रेखा द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। यहाँ परमाणुओं के नाभिक तथा इलेक्ट्रान विपरीत दिशाओं में अपने स्थान से हटे हुये हैं। प्रत्येक आयन, जिस में वैद्युत् आवेश है, वैद्युत क्षेत्र का स्रोत हैं। इसलिये परस्पर क्रिया करते हुये विपरीत आवेशों वाले आयन एक दूसरे का ध्रुव बनाते हैं।



चित्र 54. वैद्युत क्षेत्र में आयन का ध्रुवण।

ध्रुवण में संयोजकता कोश के इलेक्ट्रानों का सबसे अधिक विस्थापन होता है। पहले सन्निकट कथन के अनुसार कहा जा सकता है कि केवल संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश का ही विरूपण होता है। लेकिन एक ही वैद्युत क्षेत्र के प्रभाव में विभिन्न आयनों का विरूपण विभिन्न मात्रा में होता है। अन्य शब्दों में, विभिन्न आयनों की ध्रुवणीयता असमान होती है: नाभिक के साथ संयोजकता इलेक्ट्रानों का आबन्ध जितना क्षीण होगा, आयन का ध्रुवण उतनी ही आसानी से होगा, और वैद्युत क्षेत्र में उसका विरूपण उतना ही अधिक होगा। संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश की सदृश संरचना वाले समान रूप से आवेशित आयनों में ध्रुवणीयता आयन के आकार में वृद्धि होने से बढ़ती है, क्योंकि संयोजकता इलेक्ट्रान नाभिक से दूर ही दूर होते जाते हैं, इलेक्ट्रानी कोशों का अधिकाधिक सँख्या में आवरण होता है, तथा, इसके फलस्वरूप, क्षीण इलेक्ट्रान नाभिक द्वारा ही रोक लिये जाते हैं। इस प्रकार, क्षार धातुओं के आयनों में ध्रुवणीयता की वृद्धि निम्न श्रेणी में होती है:

$$Li^+ < Na^+ < K^+ < Rb^+ < Cs^+$$

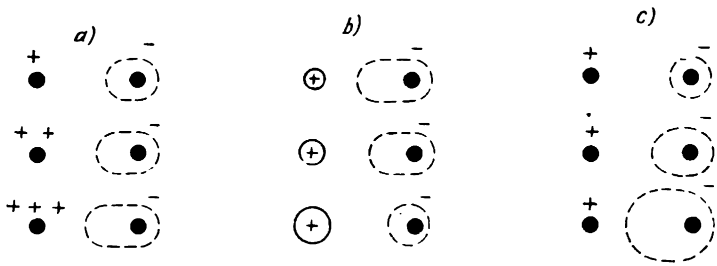
बिल्कुल इसी प्रकार हैलोजेन के आयनों की ध्रुवणीयता का परिवर्तन निम्न क्रम में होता है:

$$F^- < Cl^- < Br^- < I^-$$

परमाणु के धनात्मक आवेशित आयन में रूपांतरित होने के फलस्वरूप उसका आकार सदैव कम हो जाता है (दे० पृ० 114)। इसके अलावा ऋणायन का अतिरिक्त धनात्मक आवेश उसके संयोजकता इलेक्ट्रानी कोशों के विरूपण में कठिनाई उत्पन्न कर देता है। इसके विपरीत, उदासीन परमाणुओं की अपेक्षा ऋणात्मक

आवेशित आयनों का आकार हमेशा बड़ा होता है, और अतिरिक्त ऋणात्मक आवेश यहाँ इलेक्ट्रानों को प्रतिकर्षित करता है, तथा इसीलिये, नाभिक के साथ उनके आबन्धों को क्षीण करता है। इन कारणों से धनायनों की ध्रुवणीयता, सिद्धाँततः, ऋणायनों की ध्रुवणीयता से काफ़ी उच्च होती है।

आयनों की ध्रुवग विशेषता, यानी अन्य आयनों पर विरूपण प्रभाव डालने की समर्थता आयन के आवेश एवं आकार पर निर्भर हैं। आयन का आवेश जितना अधिक होगा, उसके द्वारा बना वैद्युत क्षेत्र उतना ही तीव्र होगा। अतः, बहुआवेशित आयनों में ध्रुवण क्षमता अत्यधिक होती है। एक ही आवेश होने पर आयन के समीप के वैद्युत क्षेत्र की वोल्टता जितनी अधिक होगी, उसका आकार भी उतना ही कम होगा। इसीलिए आयनी अर्धव्यास की वृद्धि होने से समान आवेश तथा सदृश इले-



चित्र 55. ध्रुवण पर ऋणात्मक आयनों के प्रभाव का आरेख। *a*–धनात्मक आयन का आवेश; *b*–धनात्मक आयन का आकार; *c*–ऋणात्मक आयन का आकार

क्ट्रानी संरचना वाले आयनों की ध्रुवण-क्षमता कम हो जाती है। इस प्रकार, क्षार धातुओं के ऋणायनों की श्रेणी में ध्रुवण क्षमता का परिवर्तन ध्रुवणीयता के परिवर्तन के क्रम के विपरीत होता है:

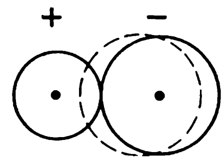
$$Li^{+} > Na^{-} > K^{+} > Rb^{+} > Cs^{+}$$

ऊपर बताया ही गया था कि धनायनों के आकार, सामान्यतः, ऋणायनों के आकारों से बड़े होते हैं। इसके फलस्वरूप, धनायनों में, सिद्धाँततः, ऋणायनों की अपेक्षा, ध्रुवण क्षमता कम होती है।

इस प्रकार, ऋणायनों की तुलना में धनायनों के लिये तीव्र ध्रुवणीयता तथा कम ध्रुवण क्षमता विशिष्ट होती हैं। इसलिये विभिन्न आवेशों वाले आयनों की परस्पर अभिक्रिया के समय मुख्यतः ऋणात्मक आयन का ध्रुवण होता है; अधिकतर स्थितियों में धनात्मक आयन की उपेक्षा की जा सकती है।

चित्र 55 में दिखाये गए आरेख द्वारा धनायन के ध्रुवण पर उसके आकारों तथा ऋणायन के आवेशों के भी आकारों का प्रभाव स्पष्ट किया गया है।

ऋणायन के ध्रुवण प्रभाव के फलस्वरूप धनायन का संयोजकता इलेक्ट्रानी अभ्र विस्थापित हो जाता है (चित्र 55)। इलेक्ट्रानी आवेश के एक भाग का धनायन मे ऋणायन की ओर व्युत्क्रम स्थानांतरण-सा हो जाता है। इसी कारणवश ही आयनी यौगिक परमाणुओं के प्रभावी आवेश इलेक्ट्रान के संपूर्ण आवेश से कम होते हैं। चित्र 56 से यह भी स्पष्ट है कि ध्रुवण के फलस्वरूप ऋणायन और धनायन के इलेक्ट्रानी अभ्रों का पूर्णतया विच्छेदन नहीं हुआ है और वे अंशतः अध्यारोपित हैं; अतः परमाणुओं के बीच शुद्ध आयनी आबन्ध तीव्र ध्रुवणी सहसंयोजी आबन्ध में रूपांतरित हो जाता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि आयनी आबन्ध को आबन्ध का विशेष रूप नहीं मानना चाहिये, अपितु ध्रुवणी सहसंयोजी आबन्ध की चरम अवस्था माननी चाहिये।

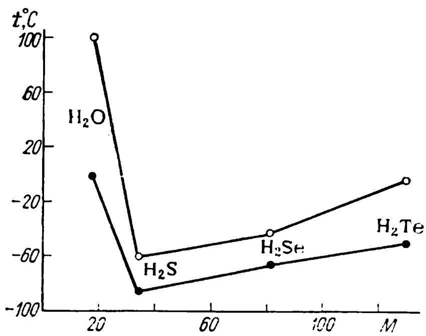


चित्र 56. ध्रुवण के फलस्वरूप ऋणायन के इलेक्ट्रानी अभ्र का विस्थापन। विकृत इलेक्ट्रानी अभ्र की स्थिति बिंदु-रेखा द्वारा दिखाई गई है।

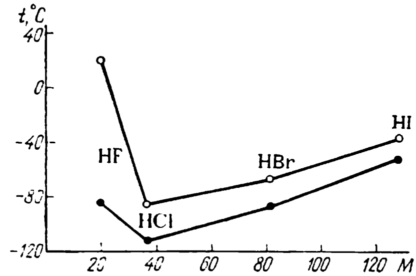
आयनों का ध्रुवण उसके द्वारा बनने वाले यौगिकों पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। चूंकि ध्रुवण की तीव्रता के साथ-साथ सहसंयोजी आबन्ध की डिग्री भी बढ़ती है, तो इस कारणवश् जल विलयनों में लवणों का विघटन हो जाता है। अतएव, बेरियम क्लोराइड $BaCl_2$ तीव्र विद्युत-अपघट्य है (दे० § 84) तथा जल विलयनों में इसका आयनों में व्यावहारिक रूप से संपूर्ण विघटन हो जाता है, जबकि मरक्यूरिक क्लोराइड $HgCl_2$ आयनों में लगभग विघटित नहीं होती है। इसका कारण है Hg^{2+} आयन का तीव्र ध्रुवणी प्रभाव, जिसका अर्धव्यास (0.112 nm) Ba^{2+} आयन के अर्धव्यास (0.138 nm) से प्रत्यक्ष रूप से कम है।

विशेषतः उच्च ध्रुवण प्रभाव हाइड्रोजन के आयन H^+ में होता है जो अन्य सभी आयनों से अत्यधिक कम आकारों एवं इलेक्ट्रानों की संपूर्ण अनुपस्थिति के कारण भिन्न होता है। इसीलिये हाइड्रोजन के आयन का धनायन से प्रतिकर्षन नहीं होता है तथा वह उसके समीप काफ़ी कम दूरी तक जा सकता है और इस प्रकार उसके इलेक्ट्रानी कोश में प्रवेश करके उसे काफी विकृत कर सकता है। अतएव, Cl^- आयन का अर्धव्यास 0.181 nm के बराबर है, परन्तु HCl अणु में क्लोरीन और हाइड्रोजन के परमाणुओं की नाभिकों के बीच की दूरी केवल 0.121 nm है। आगे चलकर हम देखेंगे कि कई अम्लों के अनेक गुण (स्थायित्व, जल विलयनों में आयनों में विघटित होने की क्षमता, आक्सीकरण क्षमता) उनके द्वारा बनने वाले लवणों के गुणों से बहुत ही अधिक भिन्न होते हैं। ऐसी भिन्नताओं का एक कारण हाइड्रोजन के आयन का तीव्र ध्रुवण प्रभाव ही है।

47. **हाइड्रोजन आबन्ध.** उन्नीसवीं शताब्दी में ही ज्ञात कर लिया गया था कि ऐसे यौगिकों, जिनमें हाइड्रोजन का परमाणु फ्लुओरीन, आक्सीजन तथा नाइट्रोजन के परमाणुओं के साथ प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हो, में अनेक असंगत गुण विद्यमान होते हैं। उदाहरणतया, यह सदृश यौगिकों के गलनांकों एवं क्वथनांकों के मानों में प्रकट होता है। सामान्यतः, दिये गये उपग्रुप के तत्त्वों के अनेक समान यौगिकों में तत्त्व के परमाण्वीय द्रव्यमान के बढ़ने से गलनांक तथा क्वथनांक बढ़ जाते हैं। इसका कारण अणुओं का तीव्रता से परस्पर आकर्षित होना है जो परमाणुओं के आकारों में वृद्धि होने तथा उनके बीच विसर्जन की पारस्परिक क्रिया में वृद्धि होने के साथ



चित्र 57. VI ग्रुप के मुख्य उपग्रुप के तत्त्वों के हाइड्रोजन यौगिकों के गलनांक (●) और क्वथनांक (○) की आण्विक द्रव्यमान पर निर्भरता।



चित्र 58. हेलोजेन के हाइड्रोजन यौगिकों के गलनांक (●) और क्वथनांक (○) की आण्विक द्रव्यमान पर निर्भरता।

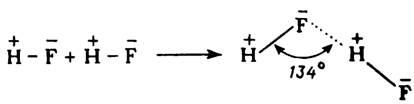
सम्बंधित है। (दे० § 48)। अतः, HCl — HBr — HI क्रम में गलनांक, क्रमशः, -114.2, -86.9 और -50.8° से० के बराबर हैं। अनुरूप निर्भरता $H_2S - H_2Se - H_2Te$ क्रम में भी स्पष्ट है। लेकिन, जैसा चित्र 57 एवं 58 से विदित है, हाइड्रोजन फ्लुओराइड और जल के गलनांक तथा क्वथनांक असंगत रूप से उच्च हैं।

वर्तमान समय में यह सिद्ध हो चुका है कि उपर्युक्त यौगिकों की इन तथा कुछ अन्य विशेषताओं का कारण अति वैद्युत्-ऋणात्मक तत्त्व के परमाणु के साथ युग्मित हाइड्रोजन के परमाणु की एक अन्य समान परमाणु के साथ एक और रासायनिक आबन्ध बनाने की विशेषता है। यह हाइड्रोजन आबन्ध कहलाता है।

हाइड्रोजन आबन्ध के प्रकट होने का पहला सन्निकट कारण स्थिर वैद्युत बलों का प्रभाव माना जा सकता है। अतः, हाइड्रोजन के परमाणु और फ्लुओरीन के परमाणु, जिसके लिये उच्च वैद्युत-ऋणात्मकता विशिष्ट है, के बीच ध्रुवण सहसंयोजी आबन्ध बनने के समय इलेक्ट्रानी अभ्र जो आरम्भ में हाइड्रोजन के परमाणु का होता है,

फ्लुग्रोरीन के परमाणु की ग्रोर बहुत ग्रधिक विस्थापित हो जाता है। इसके फलस्वरूप, फ्लुग्रोरीन का परमाणु काफ़ी प्रभावी ऋणात्मक ग्रावेश प्राप्त कर लेता है, ग्रौर हाइड्रोजन के परमाणु का नाभिक (प्रोटोन) फ्लुग्रोरीन परमाणु की "बाहरी" ग्रोर से इलेक्ट्रानी ग्रभ्र को लगभग खो देता जाता है। पड़ोसी ग्रणु HF के फ्लुग्रोरीन के ऋणात्मक ग्रावेशित परमाणु ग्रौर हाइड्रोजन के परमाणु की नाभिक के बीच स्थिर-वैद्युत ग्राकर्षण पैदा हो जाता है जिसके फलस्वरूप हाइड्रोजन ग्राबन्ध बनता है। इसके होने का कारण यह है कि नगण्य रूप से कम ग्राकार होते हुये, ग्रौर ग्रन्य ऋणायनों के विपरीत, ग्रान्तरिक इलेक्ट्रानी कोशों की ग्रनुपस्थिति में, जो ऋणात्मक ग्रावेशित परमाणुग्रों द्वारा प्रतिकर्षित होते हैं, हाइड्रोजन का ग्रायन (प्रोटोन) ग्रन्य परमाणुग्रों के इलेक्ट्रानी कोशों में प्रवेश कर सकता है।

दो HF ग्रणुग्रों के बीच पारस्परिक ग्रभिक्रिया के समय हाइड्रोजन ग्राबन्ध के बनने की क्रिया को निम्न ग्रारेख द्वारा व्यक्त किया जा सकता है:



यहाँ बिन्दु-रेखा हाइड्रोजन ग्राबंध को सूचित करती है, तथा "+" ग्रौर "−" चिन्ह परमाणुग्रों के प्रभावी ग्रावेशों को दर्शाते हैं।

इस बात से स्पष्ट है कि ग्रणु में हाइड्रोजन के परमाणु के साथ प्रत्यक्ष रूप से जुड़े परमाणु की उच्च वैद्युत ऋणात्मकता हाइड्रोजन ग्राबन्ध के बनने का कारण है। केवल इसी कारणवश हाइड्रोजन के परमाणु का इलेक्ट्रानी ग्रभ्र साथी-परमाणु की ग्रोर काफी ग्रधिक विस्थापित हो जाता है, ग्रौर वह, यानी साथी-परमाणु, उच्च प्रभावी ऋणात्मक ग्रावेश ग्रहण कर लेता है। इसीलिए ही सर्वाधिक वैद्युत-ऋणात्मक तत्वों के यौगिकों के लिए हाइड्रोजन ग्राबन्ध विशिष्ट है: फ्लुग्रोरीन ग्रौर ग्राक्सीजन के यौगिकों में वह सबसे तीव्र होता है; नाइट्रोजन के यौगिकों में क्षीण होता है एवं क्लोरीन व गन्धक के यौगिकों में ग्रौर भी क्षीण होता है।

हाइड्रोजन ग्राबन्ध की ऊर्जा साधारण सहसंयोजी ग्राबन्ध की ऊर्जा (150—400 कि० जू०/मोल०) से काफ़ी कम होती है। नाइट्रोजन के यौगिकों के लिए वह लगभग 8 कि० जू० मोल० के बराबर होती है, ग्रौर फ्लुग्रोरीन के यौगिकों के लिये लगभग 40 कि० जू०/मोल० के बराबर होती है। लेकिन ग्रणुग्रों के संयोजन के लिए यह ऊर्जा पर्याप्त है, यानी ग्रणुग्रों के द्विलक (दुगुने हुए ग्रणु) या बहुलकों के लिए काफ़ी है, जो ग्रनेक स्थितियों में न केवल पदार्थ की तरल ग्रवस्था में बल्कि उसके वाष्प में स्थानांतरण होने पर भी विद्यमान रहते हैं। एक-दूसरे से पृथक्करण क्रिया में कठिनाई पैदा करने वाला ग्रणुग्रों का संयोजन ही ऐसे पदार्थों, जैसे, हाइड्रोजन

फ्लुग्रोराइड, जल, ग्रमोनिया, में ग्रसंगत रूप से उच्च गलनांकों एवं क्वथनांको का कारण है। हाइड्रोजन ग्राबंध तथा ग्रणुग्रों के संयोजन के कारणवश इन पदार्थों के ग्रन्य गुणों का ग्रध्ययन ग्रागे किया जाएगा जब पृथक यौगिकों को देखा जाएगा।

हाइड्रोजन ग्राबन्ध जल के, वह पदार्थ जो जैव तथा निर्जीव प्रकृति की क्रिया में महान भूमिका निभाता है, ग्रनेक महत्वपूर्ण गुणों का कारण है। वह काफ़ी हद तक प्रोटीन ग्रौर न्यूक्लिग्रॉरीन ग्रम्ल जैसे महत्त्वपूर्ण जीवविज्ञानी पदार्थों के गुणों को निश्चित करता है।

अध्याय V

ठोस पदार्थ तथा द्रव की संरचना

48. **अन्तराआण्विक पारस्परिक अभिक्रिया**. जब पदार्थ गैसीय अवस्था में होता है, तब उसे बनाने वाले अंग – अणु एवं परमाणु – अव्यवस्थित रूप से गतिरत रहते हैं, तथा इस बीच अधिकांश समय तक एक दूसरे से काफ़ी दूरी पर रहते हैं (उनके आकारों की तुलना करते हुए) ।

जब पदार्थ संघनित अवस्था, अर्थात् द्रव या ठोस में, होता है तो बात अलग हो जाती है। यहाँ पदार्थ के कणों के बीच की दूरी कम है और उनके बीच पारस्परिक अभिक्रिया के बल काफ़ी अधिक हैं। ये बल द्रव या ठोस पदार्थ के कणों को एक-दूसरे के समीप रखते हैं। इसीलिए, गैसो के विपरीत, संघनित अवस्था में पदार्थ का नियत ताप पर स्थिर आयतन रहता है।

द्रव या ठोस पदार्थ के एक दूसरे के समीप रखने वाले कणों की वैद्युत प्रकृति भी होती है। लेकिन इस बात पर निर्भर होते हुए कि ये कण क्या हैं – ये धात्विक या अधात्विक तत्त्व के परमाणु हैं, आयन हैं या अणु –, ये बल काफ़ी भिन्न होते हैं। यदि पदार्थ परमाणुओं से बना है परन्तु धातु नहीं है, तो सामान्यत: उसके परमाणु परस्पर सहसंयोजी आबन्ध के द्वारा जुड़े हैं, यदि पदार्थ धातु है, तो उसके परमाणुओं के इलेक्ट्रानों का एक भाग सभी परमाणुओं के लिये आम बन जाता है ; ये इलेक्ट्रान परमाणुओं को जोड़ते हुए उनके बीच स्वतंत्रता से घूमते हैं। यदि पदार्थ की संरचना आयनी है, तो उसके बनने वाले आयन स्थिर-वैद्युत आकर्षण बलों द्वारा एक-दूसरे के समीप खड़े रहते हैं। सहसंयोजी तथा आयनी आबन्धों के बारे में IV अध्याय में ही बताया जा चुका है। धातुओं में कणों के बीच आबन्ध के बारे में चर्चा पुस्तक के भाग २ के VI अध्याय में की गई है। आण्विक संरचना वाले पदार्थों में अन्तराआण्विक पारस्परिक अभि क्रिया होती है।

अन्तराआण्विक पारस्परिक अभिक्रिया बल, जिन्हें वान-डेर-वाल्स बल भी कहते हैं ; सहसंयोजी बलों से क्षीण होते हैं, लेकिन बड़ी दूरियों पर प्रकट होते हैं। उनका

आधार द्विध्रुवों की स्थिर-वैद्युत पारस्परिक अभिक्रिया है, लेकिन विभिन्न पदार्थों में द्विध्रुवों के उत्पन्न होने की विधियाँ विभिन्न होती हैं।

यदि पदार्थ ध्रुवीय अणुओं से बना है, जैसे, H_2O या HCl के अणु, तो सघंनित अवस्था में पड़ोसी आण्विक द्विध्रुव एक दूसरे के प्रति विपरीत आवेशित ध्रुवों की ओर अभिमुख होते हैं जिसके फलस्वरूप उनका पारस्परिक आकर्षण दिखाई देता है। अन्तराआण्विक पारस्परिक अभिक्रिया का यह रूप अभिमुखी पारस्परिक अभिक्रिया कहलाता है। अणुओं की तापीय गति अणुओं के पारस्परिक अभिमुखीकरण के मार्ग में रूकावट डालती है। इसीलिये तापमान के बढ़ने से अभिमुखीकरण प्रभाव क्षीण हो जाता है।

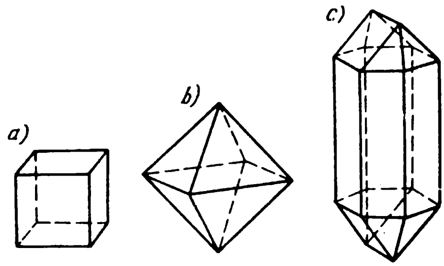
ध्रुवणीकरण की क्षमता रखने वाले अध्रुवीय अणुओं से बने पदार्थों की स्थिति में, जैसे कि CO_2, उत्प्रेरित द्विध्रुवों का बनना देखा गया है। प्रायः इनके उत्पन्न होने का कारण यह होता है कि प्रत्येक परमाणु अपने इर्द-गिर्द वैद्युत क्षेत्र बनाता है, जो पड़ोसी अणु के समीपतम परमाणु पर ध्रुवण प्रभाव डालता है। अणु ध्रुवित हो जाता है तथा बनने वाला उत्प्रेरित द्विध्रुव अपने क्रम में पड़ोसी अणुओं का ध्रुवण कर देता है। इसके फलस्वरूप अणुओं का एक दूसरे की ओर पारस्परिक आकर्षण हो जाता है। यह उत्प्रेरक पारस्परिक अभिक्रिया ध्रुवीय अणुओं से बने पदार्थों में भी देखी गई है, लेकिन इस स्थिति में वह सामान्यतः अभिमुखी से काफ़ी क्षीण होती है।

अंत में, परमाणुओं में इलेक्ट्रानों का गतिरत होना, इसी प्रकार नाभिकों का कम्पित होना तथा इससे सम्बंधित इलेक्ट्रानों व नाभिकों की अवस्थाओं का निर्विघ्न पारस्परिक परिवर्तन क्षण-द्विध्रुवों को बनाते हैं। जैसा क्वांटमी यांत्रिकी सिद्ध करती है कि क्षण-द्विध्रुव ठोस पदार्थों व द्रवों में संगत रूप से उत्पन्न होते हैं, तथा पड़ोसी अणुओं के एक दूसरे के समीपतम भाग विद्युत के विपरीत चिन्हों द्वारा आवेशित होते हैं, जिनके कारण उनमें आकर्षण पैदा होता है। यह परिघटना, जिसे विक्षेपण पारस्परिक अभिक्रिया कहते हैं, संघनित अवस्था में स्थित सभी पदार्थों में होती है। विशेष रूप से, यह तरल अवस्था में कम तापमानों पर स्थित आदर्श गैसों में होने वाले संक्रमण का कारण है।

अन्तराआण्विक बलों के ऊपर देखे गये रूपों की आपेक्षिक मात्रा पदार्थ के अणुओं के ध्रुवण तथा ध्रुवणीयता पर निर्भर करती है। अणु का ध्रुवण जितना अधिक होगा, अभिमुखीकरण बल भी उतने ही अधिक होंगे। विरूपणीयता जितनी अधिक होगी, परमाणुओं के संयोजकता इलेक्ट्रानों के आबन्ध भी उतने ही क्षीण होंगे, अर्थात्, परमाण जितने बड़े होंगे, विक्षेपण बल भी उतने ही अधिक होंगे। इस प्रकार, समान पदार्थों की श्रेणी में इन पदार्थों के अणुओं को बनाने वाले परमाणुओं के आकारों में वृद्धि होने के साथ-साथ विक्षेपण पारस्परिक अभिक्रिया भी बढ़ जाती है उदाहरणतया, HCl की स्थिति में संपूर्ण अन्तराआण्विक पारस्परिक अभिक्रिया का 81% भाग विक्षेपण

बल बनाता है; HBr के लिये मात्रा 95% है, और HI के लिये 99.5% है। प्रेरण बल लगभग हमेशा कम ही होते हैं।

48. **पदार्थ की क्रिस्टलीय अवस्था.** ठोस अवस्था मे अधिकांश पदार्थो की क्रिस्टलीय संरचना होती है। इसे आसानी से सिद्ध किया जा सकता है। आप पदार्थ के एक टुकड़े को तोड़ कर उसके भ्रंश को देख सकते हैं; सामान्यतः भ्रंश पर (जैसे, शर्करा, गन्धक, धातु आदि के) विभिन्न कोणों पर स्थित क्रिस्टल की महीन फलिकाएँ अच्छी प्रकार दिखाई देती हैं, जो उन के द्वारा किये जाने वाले प्रकाश के विभिन्न परावर्तनों के फलस्वरूप जगमगाती हैं। क्रिस्टलों का आकार बहुत छोटा होने पर पदार्थ की क्रिस्टलीय संरचना को सूक्ष्मदर्शी की सहायता से निर्धारित किया जा सकता है।



चित्र 59. क्रिस्टलों के स्वरूप: *a*–सोडियम क्लोराइड; *b*–ऐलम; *c*–सोडियम नाइट्रेट।

सामान्यतः, प्रत्येक पदार्थ एकदम निश्चित आकृति के क्रिस्टल बनाता है। उदाहरणतया, सोडियम क्लोराइड के क्रिस्टल घन की आकृति रखते हैं (चित्र 59, "a"), ऐलम के क्रिस्टल अष्टफलकीय होते हैं (चित्र 59, "b"), और सोडियम नाइट्रेट के क्रिस्टल प्रिज़म की आकृति के होते हैं (चित्र 59, "c"), इत्यादि। क्रिस्टलीय आकृति पदार्थ का एक विशिष्ट गुण है।

क्रिस्टलीय आकृति का वर्गीकरण क्रिस्टलों की सममिति पर आधारित है। क्रिस्टलीय बहुफलकों की सममिति की विभिन्न अवस्थाओं का सविस्तार अध्ययन क्रिस्टेलोग्राफी में किया जाता है। यहाँ हम केवल इतना ही बताएँगे कि क्रिस्टलीय आकृतियों की सभी अवस्थाओं को सात ग्रुपों या क्रिस्टलीय विन्यासों मे बाँटा जा सकता है जो अपने क्रम में श्रेणियों में बँट जाते हैं।

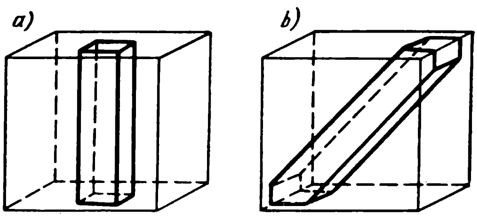
अनेक पदार्थों, विशेषतः लोह, ताम्र, हीरा, सोडियम क्लोराइड आदि का घन विन्यास में क्रिस्टलीयकरण होता है। घन अष्टफलक व चतुष्फलक इस विन्यास के सरलतम स्वरूप हैं। मैग्नीशियम, जिंक, बर्फ, क्वार्ट्स, आदि का षट्फलकीय विन्यास में क्रिस्टलीयकरण होता है। इस विन्यास के मुख्य स्वरूप षट्फलकीय प्रिज़्म और द्विपिरैमिडी है।

प्राकृतिक एवं संश्लिष्ट क्रिस्टल सैद्धांतिक स्वरूपों के परिशुद्ध अनुरूप कदाचित् ही होते हैं। सामान्यतः पिघले हुए पदार्थ की ठोस हो जाने की क्रिया के समय क्रिस्टलों का इकठ्ठा वर्धन होता है और इसलिए उनमें से प्रत्येक का स्वरूप पूर्णतया सही नहीं होता है। विलयन में से पदार्थ को तेज़ी से पृथक करते समय भी क्रिस्टल

बनते हैं, जिनका स्वरूप क्रिस्टलीयकरण की स्थिति में असमान वर्धन के फलस्वरूप विकृत हो जाता है।

लेकिन क्रिस्टल का वर्धन कितना ही असमान क्यों न हो, उसकी आकृति भी कितनी ही विकृत क्यों न हो, किसी नियत पदार्थ के क्रिस्टल के फलकों के कोण वही रहेंगे। यह क्रिस्टेलोग्राफ़ी के मुख्य नियमों में से एक है और इसे फलकीय कोणों की स्थिरता का नियम कहते हैं। इसीलिये क्रिस्टल में द्विफलकीय कोणों के मान के आधार पर यह बात निर्धारित की जा सकती है कि नियत क्रिस्टल कौन-से क्रिस्टलीय विन्यास और कौनसी श्रेणी का है।

क्रिस्टलीय पदार्थों के गुण क्रिस्टलों की आकृति द्वारा ही सीमित नहीं हैं। हालांकि क्रिस्टल में पदार्थ पूर्णतया संगत होता है, लेकिन उसके अनेक भौतिक गुण, जैसे दृढ़ता, ऊष्माचालकता प्रकाश के प्रति उसकी प्रकृति आदि क्रिस्टल के अन्दर विभिन्न दिशाओं में हमेशा समान नहीं होते हैं। क्रिस्टलीय पदार्थों का यह महत्वपूर्ण गुण विषमदैशिकता कहलाता है।



चित्र 60. साधारण लवण के क्रिस्टलों में से काटी गई छड़े। *a*– घन के फलक पर बने लम्ब की दिशा में; *b*– घन के एक फलक के विकर्ण की दिशा में।

उदाहरणतया, खनिज नमक के घन क्रिस्टल में से विभिन्न दिशाओं में समान मोटाई वाली दो सिल्लियाँ काट लीजिए (चित्र 60)। आइये, अब तन्यता के प्रति इन सिल्लियों का प्रतिरोध ज्ञात करें। आप देखेंगे कि दूसरी सिल्ली को तोड़ने के लिए आवश्यक बल पहली सिल्ली को तोड़ने के लिये आवश्यक बल से 2.5 गुना अधिक है। स्पष्ट है कि दृढ़ता के क्रिस्टलों की तन्यता विकर्ण की दिशा की अपेक्षा घन के फलकों पर बनने वाले लम्ब की दिशा में 2.5 गुना कम है।

अनेक क्रिस्टलों में विभिन्न दिशाओं में तन्यताओं का अन्तर इतना अधिक होता है कि चोट मारने या तोड़ने पर वे इन समतलों पर टूटते हैं जिनके लम्ब पर तन्यता न्यूनतम होती है। क्रिस्टलों के इस गुण को विदलन कहते हैं। विदलन का उदाहरण अभ्रक के क्रिस्टल हैं, जो आपको ज्ञात ही होगा, महीनतम प्लेटों में टूट जाते हैं।

50. **क्रिस्टलों की आंतरिक संरचना**. बहुत समय तक यह अनुमान किया जाता था कि क्रिस्टल की बाहरी आकृति उसकी आन्तरिक संरचना का दर्पण है तथा वह क्रिस्टल को बनाने वाले कणों–अणु, परमाणु या आयन–के सही स्थिति निर्धारण

पर आधारित होती है। इस स्थितिनिर्धारण को क्रिस्टलीय जाली के रूप में देखा जा सकता है, यानी आकाशीय ढाँचे के रूप में, जो सरल रेखाओं के परस्पर काटने से बनता है। जिन बिन्दुओं पर रेखाएँ एक दूसरे को काटती हैं, अर्थात जाली की गाँठों पर, कणों के केन्द्र होते हैं।

क्रिस्टलों की आन्तरिक संरचना को ज्ञात कर सकना 20 वीं शताब्दी में उस समय के बाद सम्भव हो सका, जब सन् 1912 में एक्स-किरण विवर्तन की खोज हुई, जिस पर एक्स-किरण संरचनात्मक विश्लेषण आधारित है।

क्रिस्टलीय फलक पर एकवर्णी (अर्थात् समान तरंग-दैर्ध्यों वाले) एक्स-किरण पुंज के गिरने पर किरण-पुंज का अधिकांश भाग क्रिस्टल को पार कर जाता है, लेकिन उसके कुछ भाग का परावर्तन हो जाता है। यह परावर्तन उन सतहों द्वारा होता है, जो नियत पदार्थ की क्रिस्टलीय जाली का निर्माण करने वाले कण बनाते हैं। ऐसी सतहें विवर्तन जाली की रेखाओं की भूमिका निभाती हैं: उनके बीच की दूरी एक्स-किरणों के तरंग-दैर्ध्यों के लगभग होती हैं। इसीलिये एक्स-किरणे समानांतर सतहों द्वारा परावर्तित हो कर एक दूसरे के साथ व्यतिकरण करती हैं। क्रिस्टल के फलक पर निश्चित कोणों पर किरण-पुंज के गिरने से परावर्तित किरण की तीव्रता दिखाई देती है जो फोटो-प्लेट पर उतार ली जाती है, और इस प्रकार दिये गये क्रिस्टल का एक्स-किरण चित्र बन जाता है। प्रयोग किये गये विकिरण के ज्ञात तरंग-दैर्ध्य के अनुसार पहले इसका अर्थ स्पष्ट कर लिया जाता है और फिर इसके आधार पर पड़ोसी सतहों के बीच की दूरी ज्ञात कर ली जाती है, या अन्य शब्दों में, दिए गए पदार्थ के क्रिस्टल में पड़ोसी परमाणुओं (आयनों) के बीच की दूरी निश्चित कर ली जाती है।

ठोस पदार्थों की संरचना का अध्ययन करने की मुख्य विधि एक्स-किरण संरचनात्मक विश्लेषण है। कुछ स्थितियों में इलेक्ट्रानों के विवर्तन का प्रयोग किया जाता है (इले-क्ट्रानोग्राफी विश्लेषण), तथा, इसी प्रकार, न्यूट्रानों को भी प्रयुक्त किया जाता है। वर्तमान समय में एक्स-किरण संरचनात्मक विश्लेषण विधि की मदद से व्यावहा-रिक और वैज्ञानिक महत्व रखने वाले लाखों अकार्बनिक एवं कार्बनिक पदार्थों की संरचना का अध्ययन किया जा चुका है। जीव-विज्ञान के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण पदार्थों (जैसे, हेमोग्लोबिन) की संरचना को समझने में बहुत बड़ी सफलताएँ प्राप्त की जा चुकी हैं। एक्स-किरण संरचनात्मक विश्लेषण विधियों की सहायता से सप्राण जीवों के आनुवंशिक पदार्थों की आण्विक संरचना को ज्ञात किया जा रहा है।

आण्विक परमाण्विक, आयनी और धात्विक जालियों में विभेद क्रिस्टलीय जाली की गाँठों पर स्थित कणों की प्रकृति एवं इस बात पर निर्भर करता है कि दिये गए क्रिस्टल में उनके बीच कौन-से पारस्परिक अभिक्रिया बल अधिक सँख्या में है।

आण्विक जालियों की गाँठों पर अणु स्थित होते हैं। वे परस्पर एक दूसरे के साथ अन्तराआण्विक बलों द्वारा जुड़े होते हैं। परमाण्विक जालियों की गाँठों पर परमाणु होते हैं; वे एक दूसरे के साथ सहसंयोजी आबन्ध द्वारा जुड़े होते हैं। आयनी जालियों का गाँठों पर बारी-बारी से धनात्मक तथा ऋणात्मक आवेशित आयन स्थित होते हैं। वे एक दूसरे के साथ स्थिर-वैद्युत आकर्षण बलों द्वारा जुड़े होते हैं। अंत में धात्विक जालियों की गाँठों पर धातु के परमाणु स्थित होते हैं, जिनके बीच इन परमाणुओं के लिये उभयनिष्ठ इलेक्ट्रान स्वतंत्र रूप से घूमते रहते हैं। धात्विक जालियों का वर्णन पुस्तक के भाग २ के VI अध्याय में किया गया है।

आण्विक तथा परमाण्विक जालियाँ सहसंयोजी आबन्ध वाले पदार्थों के लिए स्वाभाविक होती हैं, आयनी जालियाँ आयनी यौगिकों के लिए, और धात्विक धातुओं एवं उनके ऐलॉयों के लिये।

परमाण्विक जालियों वाले पदार्थ अपेक्षाकृत कम होते हैं। ऐसे पदार्थों में हीरा, सिलीकन व कुछ अकार्बनिक यौगिक आते हैं। इन पदार्थों के गुण है: उच्च कठोरता, अगलनीयता, तथा ये किसी भी विलयन में अविलेय होते हैं। इनके इन गुणों का कारण सहसंयोजी आबन्ध की दृढ़ता है।

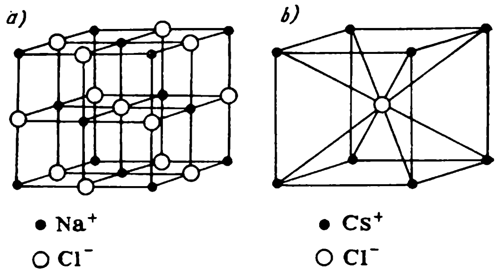
आण्विक जालियों वाले पदार्थों की सँख्या बहुत बड़ी है। ये है: कार्बन और सिलिकन के अपवाद के साथ अधातु, आयनी आबन्धरहित सभी कार्बनिक यौगिक तथा अनेक अकार्बनिक पदार्थ। सहसंयोजी आबन्ध बलों की अपेक्षा अन्तराआण्विक पारस्परिक अभिक्रिया बल काफ़ी क्षीण होते हैं, इसीलिए आण्विक क्रिस्टल कम कठोर, कम गलनीय तथा वाष्पशील होते हैं।

आयनी जाली बनाने वाले आयनी आबन्ध के यौगिकों में अधिकाँश लवण और कुछ ऑक्साइड आते हैं। ये परमाण्विक जालियों से कम दृढ़ होते हैं लेकिन आण्विक जालियों से अधिक दृढ़ होते हैं। आयनी यौगिकों का गलनांक अपेक्षाकृत अधिक होता है; लेकिन अधिकतर स्थितियों में इनकी वाष्पशीलता अधिक नहीं होती।

ऐसे पदार्थ होते हैं, जिनके क्रिस्टलों में कणों के बीच दो प्रकार की पारस्परिक अभिक्रिया होती है। अतः, ग्रेफाइट में कार्बन के परमाणु एक दिशा में एक दूसरे के साथ सहसंयोजी आबन्ध द्वारा जुड़े होते है, तथा अन्यों में–धात्विक द्वारा। इसीलिए ग्रेफाइट की जाली को परमाण्विक भी कहा जा सकता है तथा धात्विक भी। अनेक अकार्बनिक यौगिकों में, जैसे BeO, ZnS, CuCl में जाली की गाँठों पर स्थित कणों के बीच आबन्ध अंशतः आयनी, तो अंशतः सहसंयोजी होता है; ऐसे यौगिकों की जालियों को आयनी तथा परमाण्विक के बीच मध्यवर्ती मानना चाहिये।

विभिन्न पदार्थों की जालियों का परस्पर विभेदीकरण केवल उन्हें बनाने वाले कणों की प्रकृति के अनुसार ही नहीं करना चाहिये, बल्कि आकाश में कणों के पार-

स्परिक स्थाननिर्धारण – उसकी स्वयं की संरचना – के अनुसार भी करना चाहिए। प्रत्येक जाली के लिये उसका "मूल कोश" विशिष्ट होता है, जिसमें नियत जाली की संरचना के सभी गुण विद्यमान होते हैं (दे० चित्र 61)। जैसा विदित है, NaCl के क्रिस्टल में प्रत्येक आयन विपरीत चिन्ह वाले छः समीपतम आयनों से घिरा है; लेकिन CsCl के क्रिस्टल में – आठ से। क्रिस्टल में किसी भी कण के लिये समीपतमकणों की यह सँख्या उसकी निर्देशांक सँख्या कहलाती है। इस प्रकार, NaCl के क्रिस्टल Na^+ तथा Cl^- आयनों की निर्देशाँक सँख्या 6 है, तथा CsCl के क्रिस्टल में Cs^+ तथा Cl^- आयनों की निर्देशाँक सँख्या 8 है। इन दोनों लवणों के क्रिस्टलों में, तथा इसी प्रकार अन्य आयनी यौगिकों के क्रिस्टलों में भी, प्रत्येक आयन और विपरीत चिन्ह वाले समीपतम आयनों के बीच, सभी आबन्ध समान होंगे। यहाँ से निष्कर्ष निकलता है कि आयनी आबन्ध वाले क्रिस्टलीय पदार्थों पर अणु की धारणा लागू नहीं होती। इसी प्रकार यह धारणा परमाण्विक या मिश्रित परमाण्विक-आयनी संरचना वाले क्रिस्टलों पर लागू नहीं होती। ऐसे पदार्थों में, जैसे हीरा, कार्बोरंडम SiC, जिनमें परमाण्विक जाली है, या जैसे, ZaS, Al_2O_3, जिनकी मध्यवर्ती परमाण्विक-आयनी संरचना है, प्रत्येक परमाणु के समीपतम पड़ोसी परमाणुओं के साथ सभी आबन्ध समान होते हैं।



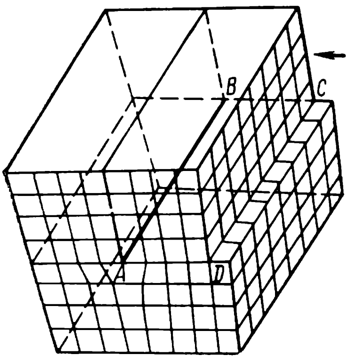
चित्र 61. *a*– सोडियम क्लोराइड और *b*– सीज़ियम क्लोराइड की क्रिस्टलीय जालियाँ।

51. **वास्तविक क्रिस्टल.** § 50 में वर्णित क्रिस्टल की आन्तरिक संरचना, जिसके लिये यथाशुद्ध आकाशीय आवर्त्तिता विशिष्ट है, में कुछ आदर्शवादिता है। वास्तविक क्रिस्टलों की संरचना के अध्ययन ने सिद्ध किया कि प्रत्येक क्रिस्टल में यह आवर्त्तिता कुछ हद तक नष्ट होती है। वास्तविक क्रिस्टलों में संरचना की त्रुटियाँ नज़र आती हैं। इन त्रुटियों की सँख्या एवं उनकी किस्में क्रिस्टलीय पदार्थ के कुछ गुणों पर प्रभाव डालती हैं। अनेक स्थितियों में यह प्रभाव काफ़ी अधिक होता है, तथा ऐसे कुछ संरचना-संवेदनशील गुण बहुत ही महत्वपूर्ण होते हैं।

वास्तविक क्रिस्टलों की संरचना की त्रुटियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। सर्वप्रथम, बिन्दु, रेखिल तथा सतही त्रुटियों में विभेद किया जाता है। सरलतम एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दुत्रुटियाँ जाली की रिक्त गाँठे होती हैं या रिक्तिका और परमाणु होते हैं, जो गाँठों के बीच स्थित होते हैं। इन त्रुटियों का कारण पृथक परमाण्विक या आयनी जालियों में उस ऊर्जा की विद्यमानता है जो नियत ताप पर

उसकी औसत ऊर्जा से अधिक होती है। ऐसे परमाणु अन्य परमाणुओं की अपेक्षा अधिक कम्पन करते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित हो सकते हैं, जैसे जाली की गाँठ में से गाँठों के बीच के स्थान पर आ सकते हैं। गाँठ में से निकलने वाला परमाणु विस्थापित कहलाता है, तथा रिक्त स्थान, जहाँ वह पहले स्थित था, अन्तराल (रिक्तिका) कहलाता है। किसी भी क्षण अन्तराल के समीप स्थित परमाणु नए अन्तराल को बनाते हुए उस पर आ सकता है। इस प्रकार अन्तराल एक स्थान से दूसरे पर स्थानांतरित होता है। बिंदु त्रुटियाँ अर्ध-चालक पदार्थों के गुणों पर बहुत अधिक प्रभाव डालती हैं।

संरचना की रेखिल त्रुटियाँ विस्थापन कहलाती हैं। विस्थापन का सरलतम रूप अति विस्थापन कहलाता है। यह किसी भी परमाण्वीय सतह का किनारा होता है जो क्रिस्टल के अन्दर टूट जाता है। विस्थापन क्रिस्टलों के वर्धन के समय ही नहीं बल्कि क्रिस्टल पर स्थानीय यांत्रिकीय, तापीय या अन्य प्रभावों के कारणवश बनते हैं (दे०, उदाहरणतया, चित्र 38, अ, ब, भाग २)। चित्र 62 में अश्रि- विस्थापन (रेखा AB) दिखाया गया है जो ABCD समतल पर तीर द्वारा इंगित दिशा में क्रिस्टल के एक भाग के सरक जाने के कारणवश बना।



चित्र 62. अश्रि विस्थापन का आरेख।

बिंदु त्रुटियों की भाँति, विस्थापन भी गतिशील होते हैं। धात्विक क्रिस्टलों में इनकी गतिशीलता विशेष रूप से अधिक होती हैं। विस्थापन के घनत्व (यानी, आयतन की इकाई में उनकी सँख्या) और क्रिस्टल पर स्थानांतरण करने की क्षमता पर धातु के यांत्रिकीय गुण बहुत अधिक निर्भर करते हैं।

सतही त्रुटियाँ, जो क्रिस्टलीय पदार्थ की सतह पर या क्रिस्टलों की पारस्परिक सीमा पर दिखाई देती हैं, विभिन्न प्रकार की बिंदु और रेखिल त्रुटियों का मिश्रित रूप होती हैं।

52. **पदार्थ की अक्रिस्टलीय अवस्था.** ऐसे भी ठोस पदार्थ होते हैं जिन्हें तोड़ने पर क्रिस्टल का कोई भी चिन्ह नहीं मिलता है। उदाहरणतया, यदि साधारण काँच के टुकड़े को तोड़ा जाये, तो टूटा हुआ भाग एकसार प्राप्त होगा, और क्रिस्टल के टुकड़ों के विपरीत उसकी सीमा सीधी सतहें नहीं बनाएंगी, बल्कि अंडाकार सतहें बनाएँगी। रेसिन, कले तथा कुछ अन्य पदार्थों के टुकड़ों को तोड़ने पर भी यही चित्र प्राप्त होगा। पदार्थ की इस अवस्था को अक्रिस्टलीय कहते हैं।

क्रिस्टलीय तथा अक्रिस्टलीय पदार्थों के बीच अन्तर विशेष रूप से अधिक स्पष्ट उस समय होता है जब उन्हें गर्म किया जाता है। हालाँकि प्रत्येक पदार्थ के क्रिस्टल एकदम निश्चित ताप पर पिघलने लगते हैं और इसी ताप पर द्रव अवस्था में से ठोस अवस्था में पदार्थ का रूपांतरण होता है, लेकिन अक्रिस्टलीय पदार्थों का कोई निश्चित गलनांक नहीं होता। अक्रिस्टलीय पदार्थ गर्म किये जाने पर धीरे-धीरे मृदु बन जाता है, इधर-उधर फैलने लगता है, और, अंत में, एकदम द्रव बन जाता है। ठंडा करने पर वह उसी प्रकार कठोर हो जाता है।

निश्चित गलनांक न होने के कारण अक्रिस्टलीय पदार्थों में एक अन्य विशेषता होती है: इनमें से अनेक पदार्थ, द्रवों की भाँति, श्यान होते हैं, अर्थात अपेक्षाकृत कम बलों के प्रभाव में लम्बे समय तक रहने से धीरे-धीरे अपनी आकृति बदलने लगते हैं। उदाहरणतया, रेसिन का टुकड़ा, जो एक समतल कर रखा हुआ है, गर्म कमरे में कुछ ही सप्ताहों के बाद निखर जाएगा और उसकी आकृति डिस्क जैसी हो जाएगी।

क्रिस्टलीय तथा अक्रिस्टलीय पदार्थों की आन्तरिक संरचना के बीच अन्तर निम्न है: मूल कोश द्वारा परावर्तित क्रिस्टल में कणों का व्यवस्थित रूप से स्थान-निर्धारण क्रिस्टल के बड़े भागों पर बना रहता है, और अच्छी प्रकार बने हुए क्रिस्टलों में–उनके संपूर्ण आयतन पर बना रहता है। अक्रिस्टलीय पदार्थों में कणों के विस्तारण की सुव्यवस्था केवल छोटे भागों पर ही होती है। इसके अतिरिक्त, अनेक अक्रिस्टलीय पदार्थों में यह स्थानीय सुव्यवस्था भी केवल लगभग मान ही रखती है। इस अन्तर को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है: क्रिस्टलों की संरचना के लिये सुदूर क्रम विशिष्ट है, तथा अक्रिस्टलीय पदार्थों के लिये–समीप क्रम।

उदाहरणतया, सिलिकेट काँच के लिये अक्रिस्टलीय अवस्था लाक्षणिक है। कुछ पदार्थ क्रिस्टलीय अवस्था में भी हो सकते हैं तथा अक्रिस्टलीय अवस्था में भी हो सकते है। उदाहरणतया, सिलिकन डाइऑक्साइड (SiO_2) प्रकृति में क्वार्ट्स के अच्छी प्रकार बने हुए क्रिस्टलों के रूप में पायी जाती है, तथा वह अक्रिस्टलीय अवस्था में भी होती है (सिलिकन खनिज)। लेकिन क्रिस्टलीय अवस्था हमेशा अधिक दृढ़ होगी। इसीलिये अक्रिस्टलीय अवस्था में से क्रिस्टलीय अवस्था में स्वेच्छा से रूपांतरण सम्भव है और कभी-कभी देखने में भी आता है। इस रूपांतरण का उदाहरण विकाचन है–उच्च ताप पर काँच का स्वेच्छा से क्रिस्टलीयकरण तथा उसी समय ही उसका नष्ट हो जाना।

53. **द्रव.** पदार्थ की द्रव अवस्था उसकी गैसीय तथा क्रिस्टलीय अवस्थाओं के बीच मध्यवर्ती अवस्था है। किन्हीं गुणों में वे गैसीय अवस्था के समीप होती हैं, तो किन्हीं गुणों में–ठोस पदार्थों के समीप। सर्वप्रथम, द्रवों को गैसों के समीप उनकी समस्थानिकता तथा तरलता लाती हैं; –तरलता के कारण द्रवों में अपनी बाहरी आकृति को आसानी

से बदलने की विशेषता ग्रा जाती है। लेकिन द्रवों का उच्च घनत्व तथा कम संपीड्यता उन्हें ठोस पदार्थों के समीप ला देते हैं।

ग्रपनी ग्राकृति बदलने की द्रवों की विशेषता उनमें ग्रन्तराग्राण्विक पारस्परिक ग्रभि-क्रिया के तीक्ष्ण बलों की ग्रनुपस्थिति की सूचक है। लेकिन इसी समय द्रवों की कम संपीड्यता जिसके कारण निश्चित् ताप पर द्रव ग्रपना ग्रायतन स्थिर रखते हैं, इस बात का सूचक है कि कणों के बीच पारस्परिक ग्रभिक्रिया के बल ग्रनुपस्थित हैं, हालाँकि ये बल तीक्ष्ण नहीं हैं, लेकिन फिर भी काफ़ी बड़े हैं।

प्रत्येक पुंज ग्रवस्था के लिये पदार्थ के कणों की विभव ग्रौर गतिज ऊर्जाग्रों के बीच ग्रपना ग्रनुपात विशिष्ट होता है। ठोस पदार्थों में कणों की ग्रौसत विभव ऊर्जा उनकी ग्रौसत गतिज ऊर्जा से ग्रधिक होती है। इसीलिए ठोस पदार्थों में कण एक दूसरे के प्रति निश्चित स्थान ग्रहण कर लेते हैं ग्रौर केवल इसी स्थान के इर्द-गिर्द ही कम्पन करते हैं। गैसों के लिये ऊर्जा का ग्रनुपात व्युत्क्रमी है, जिसके फलस्वरूप गैस के ग्रणु हमेशा ग्रव्यवस्थित गति की ग्रवस्था में रहते हैं तथा ग्रणुग्रों के बीच युग्मन बल व्यावहारिक रूप से ग्रनुपस्थित ही होते हैं। ग्रतः गैस हमेशा उसे दिये गए संपूर्ण, ग्रायतन को घेर लेती है। द्रवों की स्थिति में गतिज तथा विभव ऊर्जाएँ लगभग समान ही होती हैं, यानी कण एक दूसरे के साथ जुड़े तो होते हैं, लेकिन दृढ़ता से नहीं। इसीलिये द्रव तरल होते हैं लेकिन नियत ताप पर स्थिर ग्रायतन रखते हैं।

द्रवों पर संरचनात्मक विश्लेषण विधि प्रयोग करने के फलस्वरूप ज्ञात हुग्रा कि संरचना के ग्रनुसार द्रव ग्रक्रिस्टलीय पदार्थों के समान हैं। ग्रधिकतर द्रवों मे समान क्रम देखा गया है–प्रत्येक ग्रणु के समीपतम पड़ोसियों की सँख्या ग्रौर उनका पारस्परिक स्थान नियत द्रव के संपूर्ण ग्रायतन पर लगभग समान हैं।

विभिन्न द्रवों में कणों की सुव्यवस्था की कोटि विभिन्न होती है। इसके ग्रलावा, वह ताप के बदल जाने से बदल जाती है। कम ताप पर, नियत पदार्थ के गलनांक से थोड़ा-सा ग्रधिक हो जाने पर, नियत पदार्थ के कणों के स्थाननिर्धारण की व्यवस्था की कोटि बढ़ जाती है। ताप के बढ़ने से वह कम होती है, ग्रौर गर्म होने के साथ-साथ द्रवों के गुण गैसों के गुणों के ग्रधिक समीप होते जाते हैं। क्रांतिक ताप पहुँचने पर (§ 71) द्रव ग्रौर गैस के बीच ग्रन्तर समाप्त हो जाता है।

द्रवों तथा ग्रक्रिस्टलीय पदार्थों की ग्रांतरिक संरचना मे समानता के फलस्वरूप ग्रक्रिस्टलीय पदार्थों को प्राय: बहुत उच्च श्यानता वाले द्रव माना जाता है, तथा ठोस पदार्थों में केवल उन पदार्थों की गिनती होती हैं जो क्रिस्टलीय ग्रवस्था मे होते हैं। ग्रक्रिस्टलीय पदार्थों को द्रवों क समान करते हुए, ग्रापको यह बात याद रखनी चाहिए कि साधारण द्रवों के विपरीत, ग्रक्रिस्टलीय पदार्थों मे कण थोड़े-से गतिशील होते हैं–ठीक उसी प्रकार, जैसे क्रिस्टलों में।

अध्याय VI

रासायनिक अभिक्रियाओं के मुख्य नियम

· रासायनिक अभिक्रियाओं में ऊर्जा का रूपांतरण. रासायनिक अभिक्रिया के समय ऊर्जा का विसर्जन या अवशोषण होता है। सामान्यत: यह ऊर्जा ऊष्मा के रूप में विसर्जित या अवशोषित होती है। अतएव, जलने की क्रिया, गन्धक या क्लोरीन के साथ धातुओं को जोड़ना, क्षारों द्वारा अम्लों को उदासीन करना – इन सभी क्रियाओं में ऊष्मा काफ़ी मात्रा में विसर्जित होती है। इसके विपरीत ऐसी अभिक्रियाओं, जैसे कैलशियम कार्बोनेट का वियोजन, नाइट्रोजन व ऑक्सीजन से नाइट्रोजन ऑक्साइड (II) का बनना, को बाहर से निर्विघ्न रूप से ऊष्मा प्राप्ति की आवश्यकता है, और ये गर्म करने की क्रिया के बंद होने के एकदम बाद ही रूक जाएँगी। स्पष्ट है कि ये अभिक्रिया ऊष्मा के अवशोषण से होती हैं।

विभिन्न पदार्थों की पारस्परिक अभिक्रिया के समय ऊष्मा का विसर्जन इस बात का सूचक है कि अभिक्रिया से पहले ही इन पदार्थों मे गुप्त रूप से निश्चित ऊर्जा विद्यमान थी। ऊर्जा का यह रूप, जो पदार्थों में गुप्त होता है तथा रासायनिक एवं कुछ भौतिक क्रियाओं (जैसे, वाष्प का द्रव मे संघनन या द्रव का क्रिस्टलीयकरण) के समय बाहर आता है, पदार्थ की आन्तरिक ऊर्जा कहलाता है (दे० § 66)।

रासायनिक रूपांतरणों के समय पदार्थों की ऊर्जा का कुछ भाग स्वतंत्र हो जाता है। अभिक्रिया के समय विसर्जित ऊष्मा की मात्रा को माप कर (इसे अभिक्रिया का तापीय प्रभाव कहते हैं) हम इस ऊर्जा-भंडार मे होने वाले परिवर्तन का पता लगा सकते हैं।

कुछ अभिक्रियाओं के समय किरणी ऊर्जा का विसर्जन या अवशोषण होता है। प्राय: उन स्थितियों में जब अभिक्रिया के समय प्रकाश विसर्जित होता है, आन्तरिक ऊर्जा विकिरण मे प्रत्यक्ष रूप से रूपांतरित न होकर ऊष्मा के रूप में बाहर निकलती है। उदाहरणतया, कोयले के जलने से प्रकाश का प्रकट होना, इस बात का परिणाम है कि अभिक्रिया के फलस्वरूप विसर्जित ऊष्मा से कोयला तप कर लाल हो जाता है

ग्रौर चमकना ग्रारम्भ कर देता है। लेकिन ऐसी भी क्रियाएं ज्ञात हैं जिनके दौरान ग्रान्तरिक ऊर्जा किरणी ऊर्जा में प्रत्यक्ष रूप से रूपांतरित हो जाती है। ये क्रियाएँ संदीप्ति कहलाती हैं। ग्रान्तरिक ग्रौर वैद्युत ऊर्जाग्रों के पारस्परिक रूपांतरणों की क्रियाएं बहुत महत्त्व रखती हैं (दे० §98)। विस्फोट करने वाली ग्रभिक्रियाग्रों में ग्रान्तरिक ऊर्जा का कुछ भाग प्रत्यक्ष रूप से तथा कुछ भाग पहले ऊष्मा में बदल कर यांत्रिकीय ऊर्जा में रूपांतरित हो जाता है।

ग्रतः, रासायनिक ग्रभिक्रियाग्रों के समय पदार्थों की एक ग्रोर से ग्रान्तरिक ऊर्जा का तथा दूसरी ग्रोर से तापीय, किरणी, वैद्युत ग्रौर यांत्रिकीय ऊर्जाग्रों का पारस्परिक रूपांतरण होता है। ऊर्जा का विसर्जन करने वाली ग्रभिक्रियाएं ऊष्माक्षेपी कहलाती हैं, तथा ऊर्जा का ग्रवशोषण करने वाली ग्रभिक्रियाएं उष्माशोषी कहलाती हैं।

55. **तापीय-रासायनिकी**. रासायनिक ग्रभिक्रियाग्रों के समय होने वाले ऊर्जा के परिवर्तनों का बहुत महत्त्व है। कभी-कभी तो ये नियत ग्रभिक्रिया के समय बनने वाले नए पदार्थों से भी ग्रधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। (ईंधन के जलने की ग्रभिक्रिया को उदाहरण के रूप में याद रखना ही पर्याप्त होगा।) इसीलिये ग्रभिक्रियाग्रों के तापीय प्रभावों का काफ़ी पहले से ध्यानपूर्वक ग्रध्ययन जारी है। रसायन का वह भाग, जिसमें ग्रभिक्रियाग्रों के तापीय प्रभावों का सँख्यात्मक ग्रध्ययन किया जाता है, तापीय-रासायनिकी कहलाता है।

18 वीं शताब्दी के ग्रंत में यह सिद्ध किया गया था कि यदि किसी भी यौगिक के बनने में ऊष्मा की किसी भी मात्रा का विसर्जन (या ग्रवशोषण) होता है, तो उन्हीं ग्रवस्थाग्रों में इस यौगिक के वियोजन के समय ऊष्मा की उसी मात्रा का ग्रवशोषण (या विसर्जन) होगा। यह धारणा ऊर्जा संरक्षण नियम पर ग्राधारित है, जिसके ग्रनुसार किसी भी यौगिक के बनने में ऊष्मा का विसर्जन जितना ग्रधिक होगा, उस यौगिक का वियोजन करने में उतनी ही ग्रधिक ऊर्जा की ग्रावश्यकता होगी। इसीलिए वे पदार्थ, जिनके बनने में ऊष्मा का विसर्जन ग्रधिक मात्रा में होता है, बहुत दृढ़ होते हैं तथा कठिनाई से वियोजित होते हैं।

तापीय-रासायनिकी के मापों के परिणाम—ग्रभिक्रिया के तापीय प्रभाव—को बने पदार्थ के एक मोल के साथ सम्बंधित किया जाता है। सरल पदार्थों से एक मोल यौगिक के बनने में विसर्जित ऊष्मा की मात्रा इस यौगिक की संभवन ऊष्मा कहलाती है। उदाहरणतया, जल के बनने की ऊष्मा 285.8 कि० जू०/मोल के बराबर है—का ग्रर्थ होगा कि 2 ग्रा० हाइड्रोजन ग्रौर 16 ग्रा० ग्रॉक्सीजन में से 18 ग्रा० द्रव जल के बनने में 285.8 कि० जूल ऊष्मा विसर्जित होती है।

यदि तत्त्व ग्रनेक सरल पदार्थों के रूप में विद्यमान है, तो संभवन ऊष्मा के परिकलन के समय इस तत्त्व को उस सरल पदार्थ के रूप में लिया जाता है, जो नियत ग्रवस्थाग्रों में ग्रत्यधिक स्थिर होता है। नियत ग्रवस्थाग्रों में ग्रत्यधिक स्थिर सरल पदार्थों की

संभवन ऊष्मा शून्य के बराबर मानी गई हैं। कम स्थिर सरल पदार्थों की संभवन ऊष्मा स्थिर सरल पदार्थों में से उनके बनने की संभवन ऊष्मा के बराबर होगी। उदाहरणतया, सामान्य अवस्थाओं में ऑक्सीजन का अधिकतम स्थिर रूप O_2 है, जिसकी संभवन ऊष्मा शून्य के बराबर है। O_3 ओज़ोन की संभवन ऊष्मा – 142 कि० जू०/मोल मानी गई है, चूँकि आण्विक ऑक्सीजन में से एक मोल ओज़ोन के बनने में 142 कि० जू० ऊष्मा का अवशोषण होता है।

तापीय प्रभावों को अभिक्रिया समीकरणों में प्रविष्ट किया जा सकता है। रासायनिक समीकरण, जिनमें विसर्जित या अवशोषित ऊष्मा की मात्रा दी गई है, तापीय-रासायनिक समीकरण कहलाती हैं। सामान्यतः तापीय प्रभाव की मात्रा समीकरण के दायें पक्ष में ऊष्माक्षेपी अभिक्रिया की स्थिति में धन चिन्ह के साथ, और ऊष्माशोषी अभिक्रिया की स्थिति में ऋण चिन्ह के साथ लिखी जाती है। उदाहरणतया, द्रव जल के बनने की अभिक्रिया का तापीय-रासायनिक समीकरण निम्न प्रकार लिखा जाता है

$$2H_2 + O_2 = 2H_2O + 571.6 \text{ कि० जू०}$$

$$H_2 + \frac{1}{2}O_2 = H_2O + 285.8 \text{ कि० जू०}$$

नाइट्रोजन ऑक्साइड (II) के बनने की ऊष्मा ऋणात्मक है और 90.25 कि० जू०/मोल के बराबर है। तदनुरूपी तापीय-रासायनिक समीकरण का निम्न रूप होगा :

$$N_2 + O_2 = 2NO - 180.5 \text{ कि० जू०}$$

$$\frac{1}{2}N_2 + \frac{1}{2}O_2 = NO - 90.25 \text{ कि० जू०}$$

ईंधन के रूप में प्रयोग किये जाने वाले पदार्थों की महत्त्वपूर्ण विशिष्टता उनके जलने की ऊष्मा है। इस मात्रा को भी एक मोल पदार्थ के साथ सम्बंधित किया जाता है। अतएव, "ऐसिटिलीन के जलने की ऊष्मा 1300 कि० जू०/मोल है" का निम्न तापीय-रासायनिक समीकरण होगा :

$$C_2H_2 + 2\frac{1}{2}O_2 = H_2O + 2CO_2 + 1300 \text{ कि० जू०}$$

तापीय प्रभाव की मात्रा मूल पदार्थों व अभिक्रिया के उत्पादों की प्रकृति, उनकी कुल अवस्था और ताप पर निर्भर करती है। तापीय प्रभावों की मात्रा के आधार पर विभिन्न अभिक्रियाओं की तुलना को सरल करने के लिए तापीय प्रभावों की मात्रा उस स्थिति में दी जाती है जब मूल पदार्थों एवं अभिक्रिया के उत्पादों का ताप 25° से०* के बराबर होता है। यहां यह भी स्मरण रखना है कि अभिक्रिया में भाग लेने

---

*पुस्तक में दिए गए सभी तापीय प्रभाव तथा पदार्थों की संभवन ऊष्मा 25° से० से सम्बंधित हैं।

वाले पदार्थ समुच्चय अवस्था में होते हैं जो इस मानक ताप पर स्थिर होती है। लेकिन, यदि किसी अन्य समुच्चय अवस्था, जिसमें स्थिरता 25° से० पर हो, में स्थित पदार्थ की ताप संभवन ऊष्मा रूचिकर प्रतीत होती है, तो यह अवस्था अभिक्रिया के समीकरण में निर्दिष्ट की जाती है। यहाँ पदार्थ के सूत्र के साथ क्रिस्टलीय अवस्था के लिये (क्रि०) लिखा जाता है, द्रव के लिये – (द्र०), तथा गैसीय के लिये – (गै०)। अतः, जल वाष्प की संभवन ऊष्मा 241.8 कि० जू०/मोल के बराबर होती है; इसके तदनुरूपी तापीय-रासायनिकी समीकरण का स्वरूप निम्न होगा :

$$H_2 + \frac{1}{2} O_2 = H_2O\,(\text{गै०}) + 241.8 \text{ कि० जू०}$$

स्पष्ट है कि द्रव जल (285.8 कि० जू०/मील) तथा जल वाष्प (241.8 कि० जू०/मोल) की संभवन ऊष्मा में अन्तर 25° से० पर जल के वाष्पण की ऊष्मा है, जो एक मोल (18 ग्रा०) से सम्बंधित है।

56. **तापीय-रासायनिक परिकलन.** सभी तापीय-रासायनिक परिकलनों के आधार में स्थित मुख्य नियम रूसी रसायनज्ञ अकादमीशियन ग० ई० हैस्स ने सन् 1840 में निर्धारित किया था। यह नियम, जो हैस्स नियम के नाम से जाना जाता है और ऊर्जा संरक्षा नियम का भाग है, निम्न प्रकार है :

अभिक्रिया का तापीय प्रभाव पदार्थ की केवल प्रारम्भिक तथा अन्तिम अवस्थाओं पर आधारित होता है, और क्रिया की मध्यवर्ती स्थितियों पर बिल्कुल भी आधारित नहीं होता।

आइये हैस्स नियम को समझने के लिए एक उदाहरण देखें। सल्फ्यूरिक अम्ल और सोडियम हाइड्रोक्साइड के घोलों से सोडियम सल्फेट का घोल दो विधियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है :

1. NaOH के दो मोल वाले घोल को H_2SO_4 के एक मोल वाले घोल में मिलाकर ;

2. NaOH के एक मोल के घोल में H_2SO_4 के एक मोल वाले घोल को मिलाकर प्राप्त हुये अम्लीय लवण ($NaSO_4$) के घोल में NaOH का एक मोल वाला और घोल मिलाकर।

आइये, इन अभिक्रियाओं के तापीय-रासायनिक समीकरणों को लिखें : प्रथम विधि :

$$2NaOH(\text{जलीय}) + H_2SO_4\,(\text{जलीय}) = Na_2SO_4\,(\text{जलीय}) + \\ + 2H_2O + 131.4 \text{ कि० जू०}$$

द्वितीय विधि :

$$NaOH\,(\text{जलीय}) + H_2SO_4\,(\text{जलीय}) = NaHSO_4\,(\text{जलीय}) + H_2O + 61.7 \text{ कि० जू०}$$

$$NaHSO_4\,(\text{जलीय}) + NaOH\,(\text{जलीय}) = Na_2SO_4\,(\text{जलीय}) + H_2O + 69.7 \text{ कि० जू०}$$

" (जलीय) " प्रतीक का अर्थ है कि पदार्थ जल के घोल के रूप में लिया गया है।

हैस्स नियम के अनुसार, दोनों स्थितियों में तापीय प्रभाव समान होगा। वस्तुतः, तापीय प्रभावों को बना कर, जो द्वितीय विधि की दो स्थितियों के क्रमशः हैं, वही कुल तापीय प्रभाव प्राप्त होगा, जो क्रिया की प्रथम विधि में प्राप्त हुआ था: $61.7 + 69.7 = 131.4$ कि० जू०

इस प्रकार, रासायनिक अभिक्रियाओं के साधारण समीकरणों की भाँति तापीय-रासायनिक समीकरणों का योग किया जा सकता है।

हैस्स नियम द्वारा अभिक्रिया के तापीय प्रभावों का परिकलन करना उस स्थिति में सम्भव होता है जब उन्हें प्रत्यक्ष रूप से मापना असम्भव हो। आइये, इस प्रकार के परिकलन के रूप में ग्रेफाइट और ऑक्सीजन से कार्बन ऑक्साइड (II) की संभवन ऊष्मा के परिकलन को देखें।

$$C\,(\text{ग्रेफाइट}) + \frac{1}{2}O_2 = CO$$

अभिक्रिया का तापीय प्रभाव मापना बहुत कठिन है, क्योंकि ऑक्सीजन की सीमित मात्रा में ग्रेफाइट के जलने से कार्बन मोनो ऑक्साइड (II) के स्थान पर कार्बन डाइऑक्साइड के साथ उसका मिश्रण प्राप्त होता है। लेकिन CO के बनने की ऊष्मा को ज्ञात किया जा सकता है यदि आपको उसकी दहन ऊष्मा (283.0 कि० जू०/मोल) और कार्बन डाइऑक्साइड की संभवन ऊष्मा (393.5 कि० जू०/मोल) मालूम हैं।

ग्रेफाइट का जलना निम्न तापीय-रासायनिक समीकरण द्वारा लिखा जाता है:

$$C\,(\text{ग्रेफाइट}) + O_2 = CO_2 + 393.5 \text{ कि० जू०}$$

CO की संभवन ऊष्मा का परिकलन करने के लिये, आइये, इस समीकरण को दो अवस्थाओं में लिखें:

$$C\,(\text{ग्रेफाइट}) + \frac{1}{2}O_2 = CO + x \text{ कि० जू०}$$

$$CO + \frac{1}{2}O_2 = CO_2 + 283.0 \text{ कि० जू०}$$

अब इन अवस्थाओं के तापीय-रासायनिक समीकरणों को जोड़ दीजिए। निम्न समीकरण प्राप्त होगा:

$$C\,(\text{ग्रेफाइट}) + O_2 = CO_2 + (x + 283.0) \text{ कि० जू०}$$

हैस्स नियम के अनुसार इस कुल अभिक्रिया का तापीय प्रभाव ग्रेफाइट के प्रत्यक्ष रूप से जलने की अभिक्रिया के तापीय प्रभाव के बराबर होगा, अर्थात् $x + 283.0 =$ $= 393.5$ अतः, $x = 110.5$ कि० जू० या

$$C\,(\text{ग्रेफाइट}) + \frac{1}{2}O_2 = CO_2 + 110.5 \text{ कि० जू०}$$

हैस्स नियम के प्रयोग किये जाने का आइये एक और उदाहरण देखें। CH_4 – मेथेन के जलने की अभिक्रिया का तापीय प्रभाव ज्ञात करें। मेथेन, और उसके दहन के उत्पादों – कार्बन डाइऑक्साइड और जल की संभवन ऊष्मा क्रमश: 74.9 कि० जू०/मोल, 393.5 कि० जू०/मोल तथा 285.8 कि० जू०/मोल हैं। परिकलन करने के मेथेन के जलने की अभिक्रिया को पहले प्रत्यक्ष रूप से लिखेंगे और फिर अवस्थाओं में तोड़ कर। तदनुरूपी तापीय-रासायनिक समीकरणों का निम्न रूप होगा :

$$CH_2 + 2O_2 = CO_2 + 2H_2O + x \text{ कि० जू०}$$

$$CH_4 = C\,(\text{ग्रेफाइट}) + 2H_2 - 74.9 \text{ कि० जू०}$$

$$C\,(\text{ग्रेफाइट}) + O_2 = CO_2 + 393.5 \text{ कि० जू०}$$

$$2H_2 + O_2 = 2H_2O + 2 \times 285.8 \text{ कि० जू०}$$

अन्तिम तीन तापीय-रासायनिक समीकरणों को जोड़ने पर, जो अभिक्रिया की अवस्थाओं के क्रमानुगत हैं, हमें मेथेन के जलने का ल समीकरण प्राप्त होगा :

$$CH_4 + 2O_2 = CO_2{}^{+}\, 2H_2O + (-74.9 + 393.5 + 571.6) \text{ कि० जू०}$$

हैस्स नियम के अनुसार, $-74.9 + 393.5 + 571.6 = x$, अत: मेथेन के जलने की ऊष्मा $x = 890.2$ कि० जू०।

उपरोक्त उदाहरण हेस्स नियम के व्यावहारिक रूप से महत्वपूर्ण निष्कर्ष को दर्शाता है: रासायनिक अभिक्रिया का तापीय प्रभाव उत्पाद पदार्थों के कुल संभवन ऊष्मा में से मूल पदार्थों की कुल संभवन ऊष्मा को निकाल कर प्राप्त होने वाली सँख्या के बराबर होता है। ये दोनों योग अभिक्रिया के समीकरण के आधार पर अभिक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों के मोलों की सँख्या को ध्यान में रखते हुये किये जाते हैं।

57. **रासायनिक अभिक्रिया की चाल.** रासायनिक अभिक्रियाओं की विभिन्न चालें होती हैं। इनमें से कुछ तो सेकेण्ड के चन्द अंशों में ही पूर्ण हो जाती हैं, तथा कई अभिक्रियाओं को पूर्ण होने के लिए मिनट, घंटे, दिन लगते हैं। ऐसी अभिक्रियाएं भी होती हैं जो कई वर्षों, दशकों तथा उससे भी अधिक समय में पूर्ण होती हैं। इसके अलावा, एक ही अभिक्रिया एक अवस्था में, जैसे उच्च ताप पर तीव्रता से होती है, लेकिन दूसरी अवस्था में, जैसे शीतलन के समय, – धीमी चाल से होती है; इस बीच एक ही अभिक्रिया की चालों में यह अन्तर काफ़ी बड़ा हो सकता है।

रासायनिक अभिक्रियाओं का ज्ञान होना काफ़ी अधिक वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक महत्त्व रखता है। उदाहरणतया, रासायनिक उद्योग में किसी पदार्थ को बनाते समय उपकरणों के आकार और कार्य-क्षमता, तथा उत्पाद-पदार्थ की सँख्या अभिक्रिया की चाल पर निर्भर करती है।

अभिक्रिया की चाल का अध्ययन करते समय यह विभेद करना आवश्यक है कि अभिक्रिया सजातीय विन्यास (सजातीय अभिक्रिया) में हो रही है, या वह विजातीय विन्यास (विजातीय अभिक्रिया) में हो रही है।

रसायन में विन्यास से अभिप्राय है विचाराधीन पदार्थ या पदार्थों का समूह। यहाँ विन्यास के विपरीत बाहरी माध्यम है यानी वे पदार्थ जो विन्यास के चारों ओर होते हैं। सामान्यतः विन्यास को माध्यम से भौतिक रूप से पृथक कर दिया जाता है।

सजातीय तथा विजातीय विन्यासों में भी विभेद किया जाता है। एक ही कला से बना हुआ विन्यास सजातीय कहलाता है और कई कलाओं से बना हुआ विन्यास विजातीय कहलाता है। कला विन्यास का वह भाग है जो उसके अन्य भागों से विभाग की सतह द्वारा पृथक होता है जिसे पार करने पर गुण एकदम बदल जाते हैं।

सजातीय विन्यास का उदाहरण कोई भी गैसीय मिश्रण हो सकता है, जैसे नाइट्रोजन और ऑक्सीजन का मिश्रण (अधिक उच्च दाबों को छोड़कर शेष दाबों पर सभी गैसें असीमित रूप से एक दूसरे में मिश्रित हो जाती हैं)। सजातीय विन्यास का अन्य उदाहरण विलयन में कई पदार्थों का घोल हो सकता है, जैसे सोडियम क्लोराइड, मैग्नीशियम सल्फेट, नाइट्रोजन व ऑक्सीजन के जल में घोल। इन दोनों ही स्थितियों में विन्यास केवल एक ही कला से बना है: पहले उदाहरण में गैसीय कला से, और दूसरे उदाहरण में जल के घोल से।

विजातीय विन्यासों के उदाहरणों के रूप में निम्न विन्यास आते है: बर्फ और जल, अवक्षेप का संतृप्त घोल, वायुमंडल में कार्बन और गन्धक, इत्यादि। अन्तिम स्थिति में विन्यास तीन कलाओं से मिलकर बना है: दो ठोस तथा एक गैसीय।

यदि अभिक्रिया सजातीय विन्यास में होती है तो वह इस विन्यास के संपूर्ण आयतन पर छा जाती है। उदाहरणतया, सल्फ्यूरिक अम्ल तथा सोडियम थायोसल्फेट के घोलों को मिलाने (व हिलाने) से धुँधलापन संपूर्ण घोल में हो जाएगा (गन्धक की प्रकटता से)

$$H_2SO_4 + Na_2S_2O_3 = Na_2SO_4 + H_2O + SO_2\uparrow + S\downarrow$$

यदि विजातीय विन्यास के पदार्थों के बीच अभिक्रिया होती है, तो वह विन्यास को बनाने वाली कलाओं को पृथक करने वाली सतह पर ही होगी। उदाहरणतया, धातु को अम्ल में घोलने पर अभिक्रिया केवल धातु की सतह पर होगी, क्योंकि केवल

$$Fe + 2HCl = FeCl_2 + H_2\uparrow$$

यहीं पर दोनों क्रियाशील पदार्थ एक दूसरे के संपर्क में आते हैं। इसी कारणवश सजातीय व विजातीय अभिक्रियाओं की चालों को विभिन्न प्रकार से ज्ञात किया जाता है।

सजातीय अभिक्रिया की चाल पदार्थ की वह मात्रा है जो विन्यास के इकाई आयतन तथा समय की इकाई में अभिक्रिया में भाग लेती है या अभिक्रिया के फलस्वरूप बनती है।

विजातीय अभिक्रिया की चाल पदार्थ की वह मात्रा है जो कला की इकाई सतह के क्षेत्रकल पर* समय की इकाई में अभिक्रिया में बनती है या अभिक्रिया के फलस्वरूप बनती है।

ये दोनों परिभाषाएँ गणितीय रूप में भी लिखी जा सकती है। आइये, इनके प्रतीक बनाये: $v_{\text{स}_0}$ — सजातीय विन्यास में अभिक्रिया की चाल; $v_{\text{वि}_0}$ — विजातीय विन्यास में अभिक्रिया की चाल; n — अभिक्रिया के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले किसी भी पदार्थ के मोलों की सँख्या; V — विन्यास का आयतन; t — समय; S — कला की सतह का क्षेत्रफल जिस पर अभिक्रिया होती है; Δ — वृद्धि का चिन्ह ($\Delta n = n_2 - n_1$; $\Delta t = t_2 - t_1$) अब

$$v_{\text{स}} = \frac{\Delta n}{V\Delta t}$$

$$v_{\text{वि}} = \frac{\Delta n}{S\Delta t}$$

इनमें से प्रथम समीकरण को और सरल किया जा सकता है। पदार्थ के मोलों की सँख्या (n) और विन्यास के आयतन (V) का अनुपात दिये गए पदार्थ का मोल-आयतन सान्द्रता (C) बनाते है:

$$\frac{n}{V} = C$$

अत:

$$\frac{\Delta n}{V} = \Delta C$$

और अन्त में

$$v_{\text{स}} = \frac{\Delta C}{\Delta t}$$

अन्तिम समीकरण सजातीय विन्यास की अभिक्रिया की चाल की दूसरी परिभाषा का गणितीय रूप है: सजातीय विन्यास में अभिक्रिया की चाल अभिक्रिया में भाग लेने वाले या उसके फलस्वरूप बनने वाले पदार्थों के सान्द्रों का समय की इकाई में होने वाला परिवर्तन है।

जैसा ऊपर बताया जा चुका है, रासायनिक अभिक्रियाओं को व्यावहारिक रूप से प्रयोग करते समय यह जानना अतिआवश्यक है कि किन्हीं भी अवस्थाओं में नियत

*ठोस की सतह मापना सदैव आसान नहीं होता। यही कारण है कि विजातीय अभिक्रिया की चाल प्राय: इकाई क्षेत्रफल से सम्बंधित नहीं होती है बल्कि ठोस कला की इकाई द्रव्य-मात्रा या उसके इकाई आयतन से।

अभिक्रिया किस चाल में होगी, तथा इन अवस्थाओं को किस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता है ताकि अभिक्रिया इच्छित चाल से हो। रसायन का वह भाग, जो रासायनिक अभिक्रिया की चाल का अध्ययन करता है, रासायनिक गतिकी कहलाता है।

अभिक्रिया की चाल को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारण निम्न हैं: क्रियाशील पदार्थों की प्रकृति, उनकी सान्द्रता, ताप, विन्यास में उत्प्रेरक की विद्यमानता आदि। कुछ विजातीय अभिक्रियाओं की चाल उस सतह के समीप द्रव या गैस की गति की तीव्रता पर भी निर्भर करती है, जिस पर अभिक्रिया स्थान लेती है।

58. **अभिकारक पदार्थों के संघनन पर अभिक्रिया की चाल की निर्भरता.** मूल पदार्थों के कणों (अणुओं, आयनों) के बीच पारस्परिक रासायनिक अभिक्रिया होने के लिये आवश्यक शर्त यह है कि उनका एक दूसरे के साथ टकराव अवश्य होना चाहिए। यदि और सही कहा जाये, तो कण एक दूसरे के इतने समीप आ जाने चाहियें कि उनमें से किसी एक कण के परमाणुओं पर दूसरे कण के परमाणुओं द्वारा बने वैद्युत क्षेत्र का प्रभाव पड़े। केवल इसी स्थिति में इलेक्ट्रानों के वे संक्रमण तथा परमाणुओं के पुनर्गठन सम्भव होंगे जिनके फलस्वरूप नए पदार्थों – अभिक्रिया के उत्पादों – के अणु बनते हैं। इसीलिए अभिक्रिया की चाल उन टक्करों की सँख्या के आनुपातिक होती है जो अभिकारक पदार्थों के अणुओं के बीच होती हैं।

टक्करों की सँख्या उतनी ही अधिक होगी, जितना अधिक प्रत्येक मूल पदार्थ का संघनन होगा, या अन्य शब्दों में, जितना अधिक अभिकारी पदार्थों के संघननों का गुणनफल होगा। अतएव, अभिक्रिया की चाल $A+B=C$ पदार्थ A के संघनन तथा पदार्थ B के संघनन के गुणनफल के समानुपातिक है। A तथा B पदार्थों के संघननों को [A] और [B] द्वारा व्यक्त करने पर

$$v = k[A][B],$$

यहाँ k – समानुपातिक गुणाँक है, जो नियत अभिक्रिया की चाल का स्थिरांक कहलाता है।

प्राप्त अनुपात दो कणों की टक्कर के फलस्वरूप घटने वाली रासायनिक अभिक्रिया के लिए द्रव्यमान के प्रभाव के नियम को व्यक्त करता है: स्थिर ताप पर रासायनिक अभिक्रिया की चाल अभिकारक पदार्थों की सान्द्रता के गुणन फल के (directly) आनुपातिक है। इस नियम की खोज 1867 में क० गुल्डबेर्ग व प० वागे (नार्वे) के प्रयोगों द्वारा हुई।

एक ही समय में तीन अभिकारी कणों की टक्कर के फलस्वरूप अभिक्रिया प्राय काफ़ी कम होती है। उदाहरणतया, $2A+B=A_2B$ जैसी अभिक्रिया तीन प्रकार की टक्कर के फल फलस्वरूप हो सकती है:

$$A+A+B=A_2B$$

तब द्रव्यमान के प्रभाव के नियम के अनुसार

$$v = k[A][A][B]$$

यानी

$$v = k[A]^2[B]$$

जैसा कि विदित है प्रत्येक अभिकारी पदार्थ की सान्द्रता अभिक्रिया की चाल के समीकरण में उस डिग्री में भाग लेती है जो अभिक्रिया के समीकरण में क्रमशः स्थिरांक के बराबर है।

तीन से अधिक कणों की एक ही समय में टक्कर की सम्भावना काफ़ी कम है। इसीलिए जटिल अभिक्रियाएं, जिनके समीकरणों में काफ़ी अधिक सँख्या में कण होते हैं, या क्रमानुसार या समानांतर रूप से घटने वाली क्रियाओं के योग होते हैं, जिनमें से प्रत्येक, नियमतः, या तो दो कणों की टक्कर या पृथक कण के क्षय के परिणामस्वरूप घटती है। समान स्थितियों में द्रव्यमान के प्रभाव का नियम पूर्ण अभिक्रिया पर लागू नहीं होता बल्कि अभिक्रिया के प्रत्येक पृथक स्तर पर लागू होता है।

चाल स्थिराँक k की मात्रा अभिक्रियाशील पदार्थों की प्रकृति, तापमान तथा उत्प्रेरक की उपस्थिति पर आधारित होती है, और पदार्थों के संधनन पर निर्भर नहीं करती।

नियम लागू होने का उदाहरण है नाइट्रिक ऑक्साइड (II) के ऑक्सीकरण की अभिक्रिया :

$$2NO + O_2 = 2NO_2$$

की चाल की NO तथा O_2 के संधनन पर निर्भरता का समीकरण प्रस्तुत किया जा सकता है :

$$v = k[NO]^2[O_2]$$

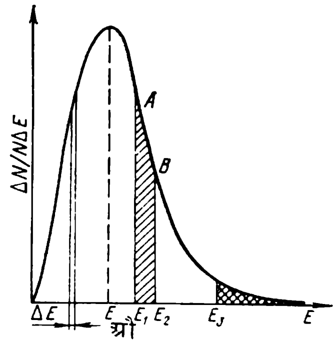
विजातीय अभिक्रियाओं की स्थिति में द्रव्यमानों की परस्पर क्रिया के नियम के समीकरण में केवल उन्हीं पदार्थों के संघनन आते हैं, जो गैसीय कला या घोल में होते हैं। ठोस कला में स्थित पदार्थ का संघनन सामान्यतः एक स्थायी मात्रा होता है, अतः चाल स्थिराँक का भाग होता है। उदाहरणतया, कोयले के जलने की अभिक्रिया $C + O_2 = CO_2$ के लिये नियम निम्न प्रकार लिखा जाएगा :

$$v = k^1 \cdot \text{स्थिराँक} \cdot [O_2] = k[O_2]$$

यहाँ $k = k^1$. स्थिराँक।

59. **तापमान और अभिक्रियाशील पदार्थों की प्रकृति पर अभिक्रिया की चाल की निर्भरता.** गैसों और द्रवों का आण्विक-गतिज सिद्धाँत नियत स्थितियों में किन्हीं भी पदार्थों के अणुओं के बीच होने वाली टक्करों की सँख्याओं को गिनना सम्भव कर देता है। इन अनुकलनों के परिणामों से आपको ज्ञात हो जाएगा कि सामान्य अवस्थाओं

में पदार्थों के अणुओं के बीच होने वाली टक्करों की सँख्या इतनी बड़ी होती है कि अभिक्रियाएं व्यावहारिक रूप में एक ही क्षण में संपन्न होनी चाहिएं। लेकिन वस्तुत: सभी अभिक्रियाएँ पूर्णतया तेज़ी से नहीं होती हैं। इस अन्तर्विरोध को समझा जा सकता है यदि आप अनुमान करें कि अभिक्रियाशील पदार्थों के अणुओं की सभी टक्करें अभिक्रिया का उत्पाद नहीं बनाती हैं। अभिक्रिया संपन्न होने के लिए यानी नए अणुओं के बनने के लिए यह आवश्यक है कि मूल पदार्थों के अणुओं में परमाणुओं के बीच आबन्धों को या तो तोड़ दिया जाए या क्षीण बना दिया जाए। इसके लिए निश्चित ऊर्जा का व्यय अनिवार्य है। यदि टकराव करने वाले अणुओं में इतनी ऊर्जा नहीं है तो टक्कर प्रभावशाली नहीं होगी—नये अणु का निर्माण नहीं होगा। यदि टकराव करने वाले अणुओं की गतिज ऊर्जा आबन्ध को तोड़ने या क्षीण करने के लिए पर्याप्त है, दो टकराव के फलस्वरूप परमाणुओं का पुनर्गठन हो सकता है और नए पदार्थों के अणुओं का निर्माण हो सकता है।



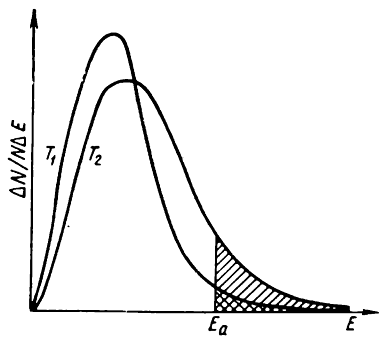
चित्र 63. गैस के अणुओं का गतिज ऊर्जा के आधार पर विस्तारण। E_1ABE_2 भाग का क्षेत्रफल अणुओं के उस अंश के बराबर है, जिसकी ऊर्जा E_1 से E_2 तक होती है। जाली द्वारा आवृत भाग का क्षेत्रफल अणुओं के उस अंश के बराबर है जिसकी ऊर्जा E_3 से अधिक है।

अणुओं में विद्यमान अतिरिक्त ऊर्जा, जो टकराव के फलस्वरूप नए पदार्थों का निर्माण करती है, दी गयी अभिक्रिया की सक्रियकारी ऊर्जा कहलाती है। सक्रियकारी ऊर्जा को कि० जूल/मोल में व्यक्त करते हैं। इस ऊर्जा वाले अणु को सक्रिय अणु कहतें हैं।

ताप के बढ़ने से सक्रिय अणुओं की सँख्या में भी वृद्धि होती है। यहाँ से निष्कर्ष निकलता है कि ताप में वृद्धि होने के साथ-साथ रासायनिक अभिक्रिया की चाल भी बढ़ जानी चाहिए। और यह वस्तुतः सही है कि ताप के बढ़ने से रासायनिक अभिक्रियाएँ तेजी से होती हैं।

रासायनिक अभिक्रिया को तेज़ करने वाले ताप के प्रभाव को अच्छी प्रकार समझने के लिए, आइये देखें कि अपनी ऊर्जा की मात्रा के अनुसार अणुओं का वितरण किस प्रकार होता है। उदाहरण के तौर पर चित्र 63 में स्थायी ताप पर स्थित गैस का ऐसा वितरण दिया गया है। क्षैतिजाक्ष पर गैस के एक अणु की ऊर्जा N है। यदि अणुओं की कुल सँख्या को E से व्यक्त किया जाये, तथा उपयुक्त अन्तराल में स्थित ऊर्जा वाले अणुओं के भाग को $\Delta N/N$ द्वारा घोषित किया जाए, तो ऊर्ध्वाक्ष पर मात्रा $\Delta N/N\Delta E$ के बराबर होगी।

आइये, ΔE चौड़ाई तथा वक्र के ऊर्ध्वाक्ष की ऊँचाई वाले स्तम्भ को देखें (चित्र 63) ऐसे स्तम्भ का क्षेत्रफल $\Delta E \cdot \Delta N/N\Delta E = \Delta N/N$ के बराबर, अर्थात् ΔE अंतराल में स्थित ऊर्जा वाले अणुओं के भाग के बराबर होगा। इसी प्रकार, वक्र, या ऊर्ध्वाक्षों (उदाहरणतया, ऊर्जा के मानों E_1 व E_2 के संगत ऊर्ध्वाक्षों तथा क्षैतिजाक्ष से घिरा क्षेत्रफल (चित्र 63 में क्षेत्र E_1ABE_1) गैस के उन अणुओं के अंश के बराबर है, जिनकी ऊर्जा दिये अंतराल (हमारी स्थिति मे E_1 से E_2) में आती है। ठीक इसी प्रकार, तथाबायीं ओर से ऊर्ध्वाक्ष (उदाहरणतया, E_3 के संगत ऊर्ध्वाक्ष) द्वारा घिरे वक्र के नीचे का क्षेत्रफल उन अणुओं की मात्रा के बराबर है, जिनकी ऊर्जा E_3 से अधिक है (चित्र 63 में जाली द्वारा घिरा हुआ क्षेत्र)। पूरे वक्र तथा क्षैतिजाक्ष द्वारा घिरा क्षेत्र इकाई के बराबर है।



चित्र 64. दो तापमानों T_1 तथा T_2 $T_2 > T_1$ के लिये गतिज ऊर्जा के आधार पर गैस के अणुओं का विस्तारण। E_a – सक्रियता ऊर्जा। रेखांकित भागों के क्षेत्रफल T_1 और T_2 तापमानों पर सक्रिय अणुओं के अंश को व्यक्त करते है।

चित्र 63 में दिया गया वक्र यह दिखाता है कि स्थायी ताप पर स्थित गैस में भिन्न ऊर्जा वाले अणु होते हैं। उनके अधिकतम भाग की ऊर्जा एक औसत मान $E_{\text{औसत}}$ के बराबर या उसकी समीपवर्ती होती है। लेकिन ऐसे भी अणु होते हैं, जिनकी ऊर्जा $E_{\text{औसत}}$ से अधिक या कम होती है। ऊर्जा E औसत से जितनी अधिक भिन्न होगी अर्थात वक्र का बिन्दु शिखर से जितना अधिक दूर होगा, यह ऊर्जा अणुओं के उतने ही कम भाग में विद्यमान होगी।

तापक्रम में परिवर्तन होने से वक्र किस प्रकार बदलता है? चित्र 64 में ये वक्र दिए गए हैं, जो गैस की एक ही मात्रा को व्यक्त करते हैं, इन गैसों के तापक्रम क्रमशः T_1 तथा T_2 ($T_2 > T_1$) है। विदित है कि T_2 पर वक्र दायीं अर्थात अधिक उच्च ऊर्जा की ओर विस्थापित है।

यदि चित्र 64 मे किसी दी गयी गैस के साथ होने वाली किसी अभिक्रिया की सक्रियकारी ऊर्जा E_a को देखें तो विदित होगा कि E_a से अधिक ऊर्जा रखने वाले गैस के अणुओं का भाग ताप में वृद्धि होने से एकदम बढ़ जाता है।

ताप के बढ़ने से अभिक्रिया की चाल मे होने वाली वृद्धि को अभिक्रिया की चाल के तापीय स्थिरांक द्वारा नियत करते हैं। यह वह सँख्या है, जो बताती है कि ताप में 10 डिग्री की वृद्धि से दी गयी अभिक्रिया की चाल कितनी गुनी बढ़ जाती है। भिन्न

अभिक्रियाओं का तापीय स्थिरांक भिन्न होता है। सामान्य ताप पर अधिकांश अभिक्रियाओं के लिये उसका मान 2 से 4 तक होता है। पहली दृष्टि में तापीय स्थिरांक का मान कम लगता है, लेकिन यह ताप की पर्याप्त वृद्धि पर अभिक्रिया की चाल को काफ़ी अधिक कर देता है। उदाहरणतया, यदि तापीय स्थिरांक 2.9 के बराबर है तो ताप में 100 डिग्री की वृद्धि से अभिक्रिया की चाल 2.9^{10} अधिक हो जाएगी, अर्थात् लगभग 50 000 गुना अधिक हो जाएगी।

भिन्न अभिक्रियाओं की सक्रियकारी ऊर्जा भिन्न होती है। इसकी मात्रा के कारणवश अभिक्रिया की चाल पर अभिक्रियाशील पदार्थ के गुण अपना प्रभाव डालते हैं। कुछ अभिक्रियाओं के लिए सक्रियकारी ऊर्जा कम है, तो कुछ के लिए बहुत अधिक है।

यदि सक्रियकारी ऊर्जा बहुत कम (40 कि० जू०/मोल से कम) हो, तो इसका अर्थ हुआ कि अभिक्रियाशील पदार्थों के कणों के बीच अधिकतर टक्करें अभिक्रिया को संपन्न होने में योगदान देंगी। ऐसी अभिकियाओं की चाल काफ़ी बड़ी होती है। नगण्य सक्रियकारी ऊर्जा वाली अभिकियाओं के उदाहरण द्रवों में आयनी अभिक्रियाएँ हैं, जो सामान्यतः विपरीततः आवेशित आयनों की पारस्परिक अभिक्रिया होती हैं। प्रयोगों से यह सिद्ध होता है कि ऐसी अभिक्रियाएँ व्यावहारिकतः क्षण भर में ही संपन्न हो जाती हैं।

इसके विपरीत, यदि सक्रियकारी ऊर्जा बहुत ही अधिक (120 कि० जूल/मोल से अधिक) हो, तो इसका अर्थ हुआ कि परस्पर क्रियाशील कणों की टक्करों का बहुत ही छोटा भाग रासायनिक अभिक्रिया में परिणत होता है। ऐसी अभिक्रिया की चाल बहुत ही कम होती है। ऊच्च सक्रियकारी ऊर्जा वाली अभिक्रिया का उदाहरण अमोनिया के संश्लेषण की अभिक्रिया हैं:

$$N_2 + 3H_2 = 2NH_3$$

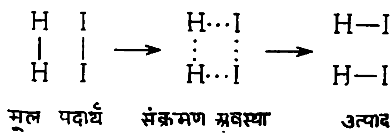
यह अभिक्रिया सामान्य तापों पर इतनी कम चाल से होती है कि इसका दिखना व्यावहारिक रूप से असम्भव है।

अंत में, यदि अभिक्रिया की सक्रियकारी ऊर्जा न तो बहुत कम है, न बहुत अधिक है (40 — 120 कि० जू०/मोल है), तो ऐसी अभिक्रिया की चाल न तो बहुत कम होगी, न बहुत अधिक होगी। ऐसी अभिक्रिया की चाल को मापा जा सकता है। ऐसी अभिक्रिया, जिसकी चाल को मापना सम्भव है, का उदाहरण गत पृष्ठों पर दी गई सल्फ्यूरिक अम्ल द्वारा सोडियम थायोसल्फेट के वियोजन की अभिक्रिया है (दे० पृ० 201)।

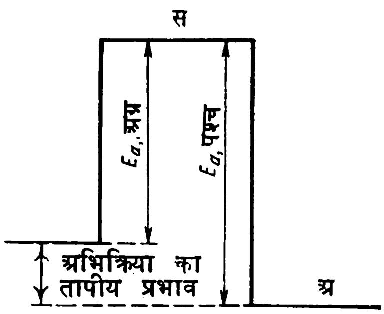
वे अभिक्रियाएँ, जिसके लिए सक्रियकारी ऊर्जा की काफ़ी मात्रा आवश्यक है, मूल पदार्थों के अणुओं के परमाणुओं के बीच आबन्धों के टूटने या क्षीण होने से आरम्भ होती हैं। इस समय पदार्थ अस्थिर मध्यवर्ती अवस्था में परिवर्तित हो जाते हैं, जिनके

लिए ऊर्जा का विशाल भंडार लाक्षणिक है। यह अवस्था सक्रियित सम्मिश्र कहलाती है। इसी अवस्था के निर्माण के लिए सक्रियकारी ऊर्जा आवश्यक होती है। अस्थिर सक्रियित सम्मिश्र की आयु बहुत ही कम होती है। वह अभिक्रिया के उत्पादों के बनने से टूट जाता है। तथा इसके फलस्वरूप ऊर्जा का उत्सर्जन होता है।

सामान्यतम रूप में सक्रियित सम्मिश्र परमाणुओं का विन्यास होता है , जिसमें पुराने आबन्ध क्षीण हो जाते हैं तथा नए आबन्ध बनते हैं। इसका उदाहरण हाइड्रोजन आयोडाइड का संश्लेषण हो सकता है :



सक्रियत सम्मिश्र संक्रमण अवस्था के रूप में न केवल प्रत्यक्ष बल्कि विपरीत अभिक्रिया के समय भी उत्पन्न होता है। ये अनुपात चित्र 65 में दिये गए हैं ; स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष तथा विपरीत अभिक्रियाओं की सक्रियकारी ऊर्जाओं में अन्तर अभिक्रिया के तापीय प्रभाव के बराबर होता है।

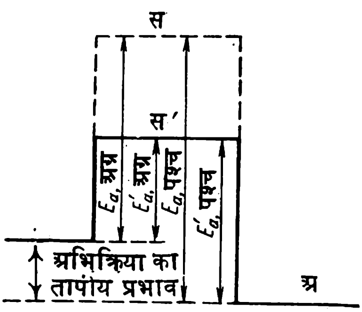


चित्र 65. अभिक्रिया का ऊर्जा आरेख। बायें से प्रथम मोटी क्षैतिज रेखा – मूल पदार्थ; स – सक्रिय मिश्रण ; अ – अभिक्रिया के उत्पाद , E_a, अग्र – प्रत्यक्ष अभिक्रिया की सक्रियता ऊर्जा ; E_a, पश्च – व्युत्क्रमणीय अभिक्रिया की सक्रियता ऊर्जा।

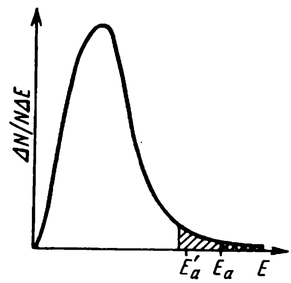
50. **उत्प्रेरण .** अभिक्रिया की चाल पर प्रभाव डालने वाले लेकिन अभिक्रिया में व्यय न होने वाले पदार्थों को उत्प्रेरक कहते हैं ।ऐसे पदार्थों के प्रभाव से अभिक्रिया की चाल में परिवर्तन होने की परिघटना को उत्प्रेरण कहते हैं। उत्प्रेरकों के प्रभाव में होने वाली अभिक्रियाओं को उत्प्रेरित कहते हैं।

अधिकाँश स्थितियों में उत्प्रेरक के प्रभाव का कारण अभिक्रिया की सक्रियकारी ऊर्जा कम कर देना है। उत्प्रेरक की उपस्थिति में उसकी अनुपस्थिति की अपेक्षा अभिक्रिया अन्य मध्यवर्ती अवस्थाओं से गुज़रती है, और ऊर्जा की दृष्टि में ये अवस्थाएँ अधिक सुलभ होती हैं। अन्य शब्दों में उत्प्रेरक की उपस्थिति में अन्य सक्रियित सम्मिश्र उत्पन्न होते हैं, तथा यह बात नोट करनी चाहिए कि उनके निर्माण के लिए उत्प्रेरक की अनुपस्थिति में इन्हें बनाने के लिए आवश्यक ऊर्जा की अपेक्षा कम ऊर्जा की जरूरत

होती है। इस प्रकार, अभिक्रिया की सक्रियकारी ऊर्जा कम हो जाती है; कुछ अणु जिनकी ऊर्जा सक्रिय टक्करों के लिए पर्याप्त नहीं थी, अब सक्रिय हो जाते हैं। उत्प्रेरक की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति में अभिक्रिया की सक्रियकारी ऊर्जाओं का अनुपात चित्र 66 में दिखाया गया है। चित्र 66 से स्पष्ट है कि उत्प्रेरक प्रत्यक्ष तथा विपरीत अभिक्रिया की सक्रियकारी ऊर्जा को एक ही मात्रा द्वारा कम करता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि उत्प्रेरक प्रत्यक्ष तथा विपरीत अभिक्रिया की चाल को समान रूप से तेज़ करता है।



चित्र 66. उत्प्रेरक की उपस्थिति में घटने वाली अभिक्रिया का ऊर्जा आरेख। बायें से प्रथम मोटी क्षैतिज रेखा – मूल पदार्थ; स – उत्प्रेरक के बिना सक्रिय मिश्रण; स′ – उत्प्रेरक की उपस्थिति में सक्रिय मिश्रण; अ – अभिक्रिया के उत्पाद; E_a, अग्र – उत्प्रेरक की अनुपस्थिति में प्रत्यक्ष अभिक्रिया की सक्रियता ऊर्जा; E'_a, अग्र – उत्प्रेरक की उपस्थिति में उपर्युक्त; E_a, पश्च – उत्प्रेरक की अनुपस्थिति में व्युत्क्रमणीय अभिक्रिया की सक्रियता ऊर्जा E'_a, पश्च – उत्प्रेरक की उपस्थिति में उपर्युक्त।



चित्र 67. सक्रिय अणुओं की सँख्या पर उत्प्रेरक का प्रभाव। E_a – उत्प्रेरक के बिना सक्रियता ऊर्जा; E'_a – उत्प्रेरक की उपस्थिति में उपर्युक्त। E_a के दायीं ओर रेखांकित भाग का क्षेत्रफल उत्प्रेरक के बिना सक्रिय अणुओं के अंश के बराबर है, E'_a के दायीं ओर के भाग का क्षेत्रफल उत्प्रेरक की उपस्थिति में सक्रिय अणुओं के अंश के बराबर है।

उत्प्रेरक की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति में सक्रिय अणुओं की सँख्या का अनुपात चित्र 67 में दिखाया गया है।

अनेक अभिक्रियाओं के लिये मध्यवर्ती यौगिकों का अध्ययन किया जा चुका है: नियमतः, ये बहुत ही सक्रिय एवं अस्थिर उत्पाद होते हैं।

रासायनिक उद्योग में उत्प्रेरक का प्रयोग बहुत ही प्रचलित है। उत्प्रेरकों के प्रभाव में अभिक्रियाओं की चाल लाखों गुना अधिक हो जाती है। कुछ स्थितियों में उत्प्रेरकों के प्रभाव से ऐसी अभिक्रियाएँ भी शुरू हो सकती हैं जो इनके बिना दी स्थितियों में व्यावहारिकत: संभव नहीं हैं।

उत्प्रेरण सजातीय तथा विजातीय होते हैं।

सजातीय उत्प्रेरण की स्थिति में उत्प्रेरक तथा अभिक्रियाशील पदार्थ एक ही कला (गैस या घोल) बनाते हैं। विजातीय उत्प्रेरण की स्थिति में उत्प्रेरक विन्यास में स्वतंत्र कला के रूप में विद्यमान होता है।

सजातीय उत्प्रेरण का उदाहरण हाइड्रोजन परऑक्साइड का जल के विलयन में जल तथा ऑक्सीजन मे वियोजन होना है। $Cr_2O_7^{2-}$, WO_4^{2-}, MoO_4^{2-} आयन, जो हाइड्रोजन परऑक्साइड का वियोजन करते हैं, उसके साथ मध्यवर्ती यौगिक बनाते हैं, जो बाद में ऑक्सीजन का उत्सर्जन करके वियोजित हो जाते हैं।

रासायनिक उद्योग में विजातीय उत्प्रेरण का प्रयोग बहुत ही अधिक है। आजकल इस उद्योग द्वारा निर्मित अधिकांश उत्पाद विजातीय उत्प्रेरण की मदद से प्राप्त होते हैं। विजातीय उत्प्रेरण में अभिक्रिया उत्प्रेरक की सतह पर होती है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि उत्प्रेरक की सक्रियता उसकी सतह के गुणों एवं आकार पर निर्भर करती है। बड़ी (विकसित) सतह के लिए उत्प्रेरक की संरचना सरंध्र होनी चाहिए या अत्यधिक विभाजित (उच्च प्रकीर्णित) अवस्था में होनी चाहिए। व्यावहारिक रूप से प्रयोग करते समय उत्प्रेरक को वाहक पर रखा जाता है जिसकी संरचना सरंध्र होती है (जैसे, झामक एस्बेस्टॉस, इत्यादि)।

सजातीय उत्प्रेरण की भाँति, विजातीय उत्प्रेरण में भी अभिक्रिया सक्रिय मध्यवर्ती यौगिकों में से गुज़रती है। लेकिन यहाँ ये यौगिक अभिक्रियाशील पदार्थों के साथ उत्प्रेरक के सतही यौगिक हैं। अनेक स्तरों में से गुज़रने पर, जिनमें ये मध्यवर्ती यौगिक भाग लेते हैं, अभिक्रिया अंत्य उत्पाद बनाते हुए समाप्त होती है और इसके फलस्वरूप उत्प्रेरक का व्यय नहीं होता।

विजातीय-उत्प्रेरकीय अभिक्रियाओं के उदाहरण के रूप में सल्फ्यूरिक अम्ल के स्पर्श विधि द्वारा निर्माण के समय सल्फ्यूरिक डाइआक्साइड का ट्राइआक्साइड में आक्सीकरण, अमोनिया का संश्लेषण, नाइट्रिक अम्ल के निर्माण में अमोनिया का आक्सीकरण को लिया जा सकता है।

उत्प्रेरण जीव-विज्ञान विन्यासों में काफ़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। भोजन-पाचन विन्यास में, लहू में, पशुओं तथा मनुष्य की कोशिकाओं में होने वाली अधिकाँश रासायनिक अभिक्रियाएँ उत्प्रेरकीय होती हैं। उत्प्रेरक, जो इस संदर्भ में किण्व (enzymes) कहलाते हैं, सरल या मिश्रित प्रोटीन होते हैं। अतः, लार में एक प्रकार का किण्व

(enzyme ptyaline) होता है जो स्टार्च के शर्करा में रूपांतरण को उत्प्रेरित करता है। आमशय में किण्व – पेप्सीन – प्रोटीनों के अयुग्मन को उत्प्रेरित करता है। मानव-शरीर में लगभग 30 000 विभिन्न किण्व हैं ; इनमें से प्रत्येक तदनुरूप अभिक्रिया के लिए प्रभावशाली उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है।

61. विजातीय विन्यासों में अभिक्रिया की चाल. तकनीकी में विजातीय अभिक्रियाओं का काफ़ी महत्त्व है। इतना याद रखना पर्याप्त होगा कि इनमें, उदाहरणतया, ठोस ईंधन का जलना, धातुओं व एलायों का जंग लगना, आते हैं।

विजातीय अभिक्रियाओं को देखते हुए यह कहना कठिन नहीं होगा कि वे पदार्थ के स्थानांतरण की क्रिया के साथ पक्की तरह सम्बंधित हैं। वस्तुतः, अभिक्रिया के होने के लिए, जैसे कि कोयले का जलना, यह आवश्यक है कि इस अभिक्रिया के फलस्वरूप बनी कार्बन डाइआक्साइड, हर समय कोयले की सतह से पृथक होती रहे तथा आक्सीजन की नई मात्रा उस पर आती रहे। दोनो क्रियाएँ (कोयले की सतह से CO_2 का दूर होना तथा O_2 का उस पर आना) संवहन (गैस या द्रव के द्रव्यमान का विस्थापन) तथा विस्तारण के फलस्वरूप होती हैं।

अतएव, विजातीय अभिक्रिया के समय कम से कम तीन स्तर पृथक किये जा जा सकते हैं :

1. अभिक्रियाशील पदार्थ का सतह पर लाया जाना ;
2. सतह पर रासायनिक अभिक्रिया का होना ;
3. अभिक्रिया के उत्पाद का सतह से अलग होना।

अभिक्रिया के निश्चित क्रम में सभी तीनों स्तरों पर अभिक्रिया की चाल समान होती है। परन्तु अनेक स्थितियों में अभिक्रिया की सक्रियकारी ऊर्जा अधिक नहीं होती है, तथा दूसरा स्तर (स्वयं रासायनिक अभिक्रिया) काफ़ी तेजी से पूर्ण हो सकता या यदि अभिक्रियाशील पदार्थों का सतह पर लाना तथा सतह पर से अभिक्रिया के उत्पादों का हटाया जाना भी काफ़ी तेजी से होता। अतएव, ऐसी अभिक्रियाओं की चाल पदार्थ के स्थानांतरण द्वारा निश्चित होती है। आशा की जा सकती है कि तीव्र संवहन से उनकी चाल भी बढ़ेगी। यह बात प्रयोग द्वारा सही प्रमाणित होती है। अतः, कोयले के जलने की अभिक्रिया $C + O_2 = CO_2$ जिसके रासायनिक स्तर के लिए अधिक सक्रिय- कारी ऊर्जा की आवश्यकता नहीं है, उतनी ही तेज़ी से होगी, जितनी तेजी से आक्सीजन (या वायु) कोयले पर आएगी।

लेकिन सभी स्थितियों में विजातीय अभिक्रिया की चाल पदार्थ के स्थानांतरण की चाल द्वारा निश्चित नही होती। अधिक सक्रियकारी ऊर्जा वाली अभिक्रियाओं का निश्चायक स्तर दूसरा स्तर होता है – यानी स्वयं रासायनिक अभिक्रिया। स्वाभाविक है कि तीव्र मिश्रण करने पर इन अभिक्रियाओं की चाल नहीं बढ़ेगी। उदाहरणतया नम वायु की आक्सीजन द्वारा लोह के आक्सीकरण की अभिक्रिया की चाल धातु की

सतह पर वायु लाने से नहीं बढ़ती है, क्योंकि क्रिया के रासायनिक स्तर की सक्रियकारी ऊर्जा अधिक नहीं है।

अभिक्रिया की चाल को निश्चित करने वाला स्तर प्रतिबंधक स्तर कहलाता है। पहले उदाहरण में प्रतिबंधक स्तर पदार्थ का स्थानांतरण है, तथा दूसरे में—स्वयं रासायनिक अभिक्रिया।

62. श्रृंखला अभिक्रियाएँ. अभी तक हमने रासायनिक अभिक्रियाओं को देखा है जो अपेक्षाकृत सरलतापूर्वक संपन्न होती हैं। इन अभिक्रियाओं में पारस्परिक क्रिया का प्रत्येक मूल कार्य अभिक्रियाशील पदार्थों के सक्रिय अणुओं के बीच प्रत्येक टक्करगत मूल कार्यों के परिणामों पर निर्भर न होते हुए स्थान लेता है। यहाँ अभिक्रिया उत्पाद की बड़ी मात्रा का बनना इन परस्पर अनिर्भर कार्यों की बड़ी सँख्या का परिणाम है।

लेकिन अधिक जटिल रूप से घटने वाली अभिक्रियाओं का एक काफ़ी बड़ा ग्रुप है। इन अभिक्रियाओं में प्रत्येक मूल कार्य के होने की सम्भावना पूर्वगत कार्य के सफलतापूर्वक होने के साथ सम्बंधित है तथा, अपने क्रम में, भावी कार्य की सम्भावना बनाती है। यहाँ अभिक्रिया के उत्पादों की बड़ी मात्रा का बनना परस्पर क्रिया के मूल कार्यों की श्रृंखला का परिणाम है। ऐसी अभिक्रियाएँ श्रृंखला अभिक्रियाएँ कहलाती हैं।

श्रृंखला अभिक्रियाएँ सक्रिय केन्द्रों—परमाणुओं, आयनों या मूलकों (अणुओं के टुकड़े) के योगदान से होती हैं। इनमें अयुग्मित इलेक्ट्रान होते हैं तथा इसके कारणवश उनमें बहुत ही अधिक अभिक्रिया-सक्रियता होती है। सक्रिय केन्द्रों की भूमिका, उदाहरणतया, $H\cdot$, $:\underset{\cdot\cdot}{\overset{\cdot\cdot}{Cl}}\cdot$, $:\underset{\cdot}{\overset{\cdot}{O}}:$ परमाणु तथा $\cdot\underset{\cdot\cdot}{\overset{\cdot\cdot}{O}}:H$, $H:\underset{\underset{H}{\cdot\cdot}}{\overset{\cdot}{C}}:H\cdot$ परमाणुओं के ग्रुप *निभाते हैं।

सक्रिय केन्द्रों और मूल पदार्थों के अणुओं की परस्पर क्रिया के कार्य के फलस्वरूप अभिक्रिया के उत्पादों के अणु बनते हैं, तथा इसी प्रकार नए सक्रिय कण—नए सक्रिय केन्द्र बनते हैं, जो परस्पर क्रिया के कार्य करने की क्षमता रखते हैं। इस प्रकार, सक्रिय केन्द्र पदार्थों के क्रमानुगत रूपांतरण की श्रृंखला बनाते हैं।

श्रृंखला अभिक्रिया का सरल उदाहरण हाइड्रोजन क्लोराइड के संश्लेषण की अभिक्रिया है:

$$H_2 + Cl_2 = 2HCl$$

---

* बिंदुओं द्वारा अक्सर सिर्फ अयुग्मित इलेक्ट्रोन घोषित करते हैं, जैसे: $H\cdot$, $Cl\cdot$, $\underset{\cdot}{\overset{\cdot}{O}}$, $\cdot OH$, $\cdot CH_3$

यह अभिक्रिया प्रकाश के कारण होती है। क्लोरीन के अणु द्वारा किरण ऊर्जा के क्वान्टम $h\nu$ का अवशोषण उसे उत्तेजित कर देता है – उसमें परमाणुओं की ऊर्जा कम्पन पैदा कर देती है। यदि कम्पन की ऊर्जा परमाणुओं के बीच आबन्ध ऊर्जा से अधिक होती है, तो अणु का वियोजन हो जाता है। फोटोरासायनिक विश्लेषण की इस क्रिया को निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :

$$Cl_2 + h\nu = 2Cl\bullet$$

बनने वाले क्लोरीन के परमाणु आसानी से हाइड्रोजन के अणुओं के साथ अभिक्रिया करते हैं :

$$Cl\bullet + H_2 = HCl + H\bullet$$

अपने क्रम में हाइड्रोजन का परमाणु क्लोरीन के अणु के साथ आसानी से अभिक्रिया करता है :

$$H\bullet + Cl_2 = HCl + Cl\bullet$$

क्रियाओं का यह क्रम आगे बढ़ता है : विचाराधीन स्थिति में कड़ियों की सँख्या 100 000 तक पहुँच सकती है। अन्य शब्दों में, प्रकाश का एक अवशोषित क्वान्टम HCl के एक लाख अणु बनाता है। यह श्रृंखला उस बर्तन की दीवार के साथ स्वतंत्र परमाणु के टकराने से समाप्त होती है, जिसमें अभिक्रिया हो रही है। श्रृंखला के समाप्त होने की एक विधि यह भी है कि दो सक्रिय तथा एक निष्क्रिय कणों का इस प्रकार टकराव हो कि सक्रिय कण आपस में जुड़ कर अणु बना दें तथा निष्क्रिय कण निष्काषित ऊर्जा को अपने साथ ले जायें। इन स्थितियों में श्रृंखला का भंजन हो जाता है।

बहुशाखाहीन श्रृंखला अभिक्रिया की विधि निम्न है : प्रत्येक मूल पारस्परिक क्रिया में एक सक्रिय केन्द्र, अभिक्रिया के उत्पाद के अणु के अतिरिक्त, एक नया सक्रिय केन्द्र भी बनाता है।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में न० न० सिम्योनोव* ने अपने साथियों के साथ विभिन्न क्रियाओं की गतिकी का अध्ययन किया और उन परिघटनाओं को समझाया

---

*निकोलाई निकोलाइविच सिम्योनोव (जन्म 1896), सोवियत अकादमिशियन, लेनिन, राजकीय तथा नोबेल पुरस्कार विजेता, सामाजवादी श्रम के हीरो हैं। उन्होंने श्रृंखला अभिक्रिया के सिद्धांत का अध्ययन किया है तथा उसे प्रायोगिक आधार भी दिया है। इसके आधार पर उन्होंने दहन तथा विस्फ़ोट का सिद्धाँत निर्धारित किया, जिसका बहुत अधिक व्यावहारिक महत्व है।

जिन्हें उन दिनों प्रचलित विचारों की मदद से समझाना असम्भव था। इसके लिये न० न० सिम्योनोव ने बहुशाखी श्रृंखला अभिक्रियाओं का सिद्धांत बनाया, जिनमें स्वतंत्र मूलक तथा मूल पदार्थ के अणु की पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप एक नहीं बल्कि दो या और अधिक सक्रिय केन्द्र बनते हैं। इनमें से एक तो पुरानी श्रृंखला को जारी रखता है तथा अन्य नई श्रृंखला की शुरूआत करते हैं; श्रृंखला का बहुशाखन होता है तथा अभिक्रिया की चाल बढ़ती रहती है।

बहुशाखन श्रृंखला अभिक्रिया का उदाहरण है: सरल पदार्थों से जल के बनने की अभिक्रिया। इस अभिक्रिया का निम्न विधान प्रयोग से सिद्ध हो चुका है तथा परिकलनों द्वारा इसका समर्थन भी किया जा चुका है। हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिश्रण में से वैद्युत विसर्जन द्वारा गर्म किये जाने या उसके गुज़रने के फलस्वरूप इन गैसों के अणुओं में पारस्परिक अभिक्रिया होती है तथा दो हाइड्रोक्सिल मूलक बनते हैं·

$$H_2 + O_2 = \bullet OH + \bullet OH$$

$\bullet OH$ मूलक हाइड्रोजन के अणुओं के साथ आसानी से अभिक्रिया करते है,

$$\bullet OH + H_2 = H_2O + H\bullet$$

फलस्वरूप जल का अणु और हाइड्रोजन का स्वतंत्र परमाणु बनता है। अन्तिम आक्सीजन के अणु के साथ अभिक्रिया करता है और दो नए सक्रिय कण बनाता है:

$$H\circ + O_2 = \bullet OH + \overset{\bullet}{\underset{\bullet}{O}}$$

आक्सीजन का परमाणु H_2 के अणु के साथ अभिक्रिया करके अपनी बारी में दो नए सक्रिय केन्द्र बना सकता है:

$$\overset{\circ}{\underset{\bullet}{O}} + H_2 = \bullet OH + H\bullet$$

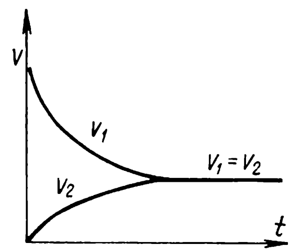
सक्रिय कणों की सँख्या इस प्रकार बढ़ती रहती है तथा यदि श्रृंखलाओं का भंजन नहीं होता है तो अभिक्रिया की चाल एकदम बढ़ जाती है।

दहन, विस्फोट, हाईड्रोकार्बनों के आक्सीकरण (स्प्रिट, ऐल्डेहाइड, कीटोन, कार्बनिक अम्लों का प्राप्त होना) की अभिक्रियाएँ और बहुलकीकरण की क्रियाएँ—ये महत्वपूर्ण रासायनिक अभिक्रियाएँ श्रृंखला विधान के अनुसार होती हैं। इसलिये श्रृंखला अभिक्रियाओं का सिद्धांत तकनीकी तथा रासायनिक टेकनालॉजी के कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों का वैज्ञानिक आधार बनाता हैं।

वे नाभिकीय श्रृंखला अभिक्रियाएँ भी श्रृंखला प्रक्रियाओं में आती है जो, उदाहरणतया, परमाण्वीय रिएक्टरों में या परमाणु बम्ब के विस्फोट के समय होती हैं। यहाँ

सक्रिय कण की भूमिका न्यूट्रान निभाता है जो परमाणु की नाभिक में प्रवेश करके उसका क्षय कर देता है जिसके फलस्वरूप अत्यधिक ऊर्जा विसर्जित होती है और नए स्वतंत्र न्यूट्रान बनते हैं जो नाभिकीय रूपांतरणों की श्रृंखला को जारी रखते हैं।

63. **अनुत्क्रमणीय तथा उत्क्रमणीय अभिक्रियाएँ. रासायनिक संतुलन.** सभी रासायनिक अभिक्रियाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है: अनुत्क्रमणीय तथा उत्क्रमणीय। अनुत्क्रमणीय अभिक्रियाएँ पूर्ण रूप से घटती हैं यानी तब तक, जब तक कि एक अभिक्रियाशील पदार्थ का पूर्ण उपयोग न हो जाए। उत्क्रमणीय अभिक्रियाएँ अंत तक नहीं होती: उत्क्रमणीय अभिक्रिया में किसी भी अभिक्रियाशील पदार्थ का पूर्ण उपयोग नहीं होता है। इन विभेद का कारण अनुत्क्रमणीय अभिक्रिया का केवल एक ही दिशा में घटना है। उत्क्रमणीय अभिक्रिया न केवल प्रत्यक्ष दिशा में बल्कि उत्क्रमणीय दिशा में भी घट सकती है।



चित्र 68. नियत समय (t) में प्रत्यक्ष (v_1) और व्युत्क्रमणीय (v_2) अभिक्रियाओं की चालों में परिवर्तन।

आइये दो उदाहरणों को देखें।

उदाहरण 1. जिंक और सांद्रित नाइट्रिक अम्ल में अभिक्रिया इस समीकरण के अनुसार होती है:

$$Zn + 4HNO_3 = Zn(NO_3)_2 + 2NO_2\uparrow + 2H_2O$$

नाइट्रिक अम्ल की मात्रा पर्याप्त होने पर अभिक्रिया केवल तभी समाप्त होगी जब सपूर्ण जिंक घुल जाएगा इसके अतिरिक्त, यदि इस अभिक्रिया को उत्क्रमणीय दिशा में किया जाये – जिंक नाइट्रेट के घोल में से नाइट्रिक डाइआक्साइड को गुजारा जाये, तो धात्विक जिंक तथा नाइट्रिक अम्ल प्राप्त नहीं होंगे – यह अभिक्रिया उत्क्रमणीय दिशा में नहीं घट सकती। इस प्रकार जिंक और नाइट्रिक अम्ल की परस्पर क्रिया अनुत्क्रमणीय अभिक्रिया है।

उदाहरण 2. अमोनिया का संश्लेषण निम्न समीकरण के अनुसार होता है:

$$N_2 + 3H_2 \rightleftarrows 2NH_3$$

यदि एक मोल नाइट्रोजन को तीन मोल हाइड्रोजन के साथ मिलाया जाये, फिर इन्हें उन अवस्थाओं मे रख दिया जाए जो अभिक्रिया के घटने के लिए उपयुक्त हैं और पर्याप्त समय के बाद गैसीय मिश्रण का विश्लेषण किया जाये तो विन्यास मे न केवल अभिक्रिया का उत्पाद (अमोनिया) विद्यमान होगा बल्कि मूल पदार्थ (नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन) भी उपस्थित होंगे। यदि अब उन्हीं अवस्थाओं में मूल पदार्थ के रूप में नाइट्रोजन व हाइड्रोजन के मिश्रण के स्थान पर अमोनिया रख दिया जाए तो आप देख सकते हैं कि अमोनिया का कुछ भाग नाइट्रोजन व हाइड्रोजन में

वियोजित हो गया है, और सभी तीनों पदार्थों की मात्राओं के बीच अन्तिम अनुपात वही होगा जो उस स्थिति में था जब नाइट्रोजन व हाइड्रोजन के मिश्रण से कार्य आरम्भ किया था। अतः, अमोनिया का संश्लेषण – उत्क्रमणीय अभिक्रिया है।

उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं के समीकरणों मे समानता के चिन्ह के स्थान पर तीर के चिन्ह लगाये जा सकते हैं; वे अभिक्रिया के घटने का प्रत्यक्ष एवं उत्क्रमणीय दिशाओं को सूचित करते हैं।

चित्र 68 में समय के साथ प्रत्यक्ष व उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की चालों में परिवर्तन दिखाया गया है। आरम्भ में, मूल पदार्थों के मिश्रण के समय प्रत्यक्ष अभिक्रिया की चाल बहुत अधिक होती है तथा उत्क्रमणीय अभिक्रिया की चाल शून्य के बराबर होती है। अभिक्रिया के घटने के साथ-साथ मूल पदार्थ खर्च होते जाते हैं तथा उनकी सान्द्रता कम होने लगती है। इसके फलस्वरूप प्रत्यक्ष अभिक्रिया की चाल कम हो जाती है। साथ ही साथ अभिक्रिया के उत्पाद प्राप्त होने लगते हैं तथा उनकी सान्द्रता बढ़ने लगती हैं। इसके परिणामस्वरूप उत्क्रमणीय अभिक्रिया आरम्भ हो जाती है तथा इसकी चाल धीरे-धीरे बढ़ने लगती है। जब प्रत्यक्ष और उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की चालें समान हो जाती हैं तो रासायनिक संतुलन बनता है। अतएव, आखिरी उदाहरण में नाइट्रोजन, हाइड्रोजन व अमोनिया के बीच संतुलन बनता है।

रासायनिक संतुलन को गतिक संतुलन कहते हैं। यह इस बात पर जोर देता है कि संतुलन में प्रत्यक्ष तथा उत्क्रमणीय – दोनों अभिक्रियाएँ घटती हैं लेकिन उनकी चाल समान होती हैं इसीलिए विन्यास मे कोई परिवर्तन नज़र नहीं आता।

रासायनिक संतुलन की संख्यात्मक विशिष्टता वह मात्रा है जो रासायनिक संतुलन का स्थिरांक कहलाती है। आइये, इसे आयोडिन – हाइड्रोजन के संश्लेषण के उदाहरण पर देखें :

$$H_2 + I_2 \rightleftarrows 2HI$$

द्रव्यमान-प्रक्रिया नियम के अनुसार प्रत्यक्ष तथा उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की चालें निम्न समीकरणों* द्वारा व्यक्त होती हैं :

$$v_1 = k_1 [H_2] [I_2]$$

$$v_2 = k_2 [HI]^2$$

संतुलन की स्थिति मे प्रत्यक्ष तथा उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की चालें समान है, अतः

$$k_1 [H_2] [I_2] = k_2 [HI]^2$$

---

* विन्यास की परिगणना ऊँचे ताप पर की जाती है जब आयोडिन वाष्पीय अवस्था मे होती है।

या

$$\frac{k_1}{k_2} = \frac{[HI]^2}{[H_2][I_2]}$$

प्रत्यक्ष व उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की चालों के स्थिरांकों का अनुपात भी एक स्थिरांक होता है। इसे दी गयी अभिक्रिया के संतुलन का स्थिरांक (K) कहते हैं:

$$\frac{k_1}{k_2} = K$$

$$\frac{[HI]^2}{[H_2][I_2]} = K$$

इस समीकरण के वायें पक्ष में परस्पर क्रियाशील पदार्थों की वे सान्द्रताएँ हैं जो संतुलन के समय बनती हैं अर्थात संतुलन सान्द्रताएँ। समीकरण के दायें पक्ष में स्थिर राशि स्थिर ताप पर है।

यह सिद्ध किया जा सकता है कि सामान्यतः उत्क्रमणीय अभिक्रिया $a\text{A} + b\text{B} + + \ldots \rightleftarrows p\text{P} + q\text{Q} + \ldots$ में संतुलन का स्थिरांक निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त हो सकता है:

$$K = \frac{[\text{P}]^p\,[\text{Q}]^q \ldots}{[\text{A}]^a\,[\text{B}]^b \ldots}$$

यहाँ बड़े अक्षरों द्वारा पदार्थों के सूत्रों, व छोटे अक्षरों द्वारा समीकरणों में गुणांकों को व्यक्त किया गया है।

इस प्रकार, स्थिर ताप पर उत्क्रमणीय अभिक्रिया के संतुलन का स्थिरांक एक स्थिर मात्रा है जो अभिक्रिया के उत्पादों (अंश) तथा मूल पदार्थों (हर) की सान्द्रताओं के बीच वह अनुपात दिखाता है जो संतुलन के समय बनता है।

संतुलन स्थिरांकों का समीकरण सिद्ध करता है कि अभिक्रिया में भाग लेने वाले सभी पदार्थों की सान्द्रताएँ संतुलन की अवस्था में आपस में सम्बंधित हैं। इनमें से किसी भी एक पदार्थ की सान्द्रता में परिवर्तन, अपने साथ अन्य सभी पदार्थों की सान्द्रताओं में परिवर्तन लाएगा; अंत में नई सान्द्रताएँ बनेंगी लेकिन उनका अनुपात पुनः संतुलन स्थिरांक के बराबर होगा।

संतुलन स्थिरांक का प्रथम समीपवर्ती सँख्यात्मक मान नियत अभिक्रिया के उत्पाद*

$$[\text{P}]^p\,[\text{Q}]^q \ldots \gg [\text{A}]^a\,[\text{B}]^b \ldots$$

का प्रतीक है। उदाहरणतया, $K \gg 1$ होने पर अभिक्रिया का उत्पाद अधिक है

---

*अभिक्रिया का उत्पाद अबतक प्राप्त होने वाले पदार्थ की मात्रा तथा इसकी उस मात्रा का अनुपात है जो अभिक्रिया के अंत तक होने के फलस्वरूप प्राप्त होता।

क्योंकि इस समय अर्थात् संतुलन के समय अभिक्रिया के उत्पादों की सान्द्रता मूल पदार्थों की सान्द्रता से कहीं अधिक होती है, तथा इसी का यह अर्थ होता है कि अभिक्रिया का निष्काषण अधिक है। $K \ll 1$ होने पर (समान कारणवश्) अभिक्रिया का निष्कासन कम है।

विजातीय अभिक्रियाओं की स्थिति में संतुलन स्थिरांक के समीकरण (§ 58) की भाँति, केवल उन्हीं पदार्थों की सान्द्रताएँ आती हैं, जो गैसीय या द्रव अवस्था में होते हैं। उदाहरणतया, $CO_2 + C = 2CO$ अभिक्रिया के लिए संतुलन स्थिरांक निम्न होगा

$$K = \frac{[CO]^2}{[CO_2]}$$

संतुलन स्थिरांक की मात्रा अभिक्रियाशील पदार्थों की प्रकृति तथा ताप पर निर्भर करती है। यह उत्प्रेरक की विद्यमानता पर निर्भर नहीं करती है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, संतुलन स्थिरांक प्रत्यक्ष तथा उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की चालों के अनुपात के बराबर होता है। चूंकि उत्प्रेरक प्रत्यक्ष तथा उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की सक्रियता की ऊर्जा समान रूप से बढ़ाता है (दे० § 60) तो वह उनकी चालों के अनुपात के स्थिरांक पर कोई प्रभाव नहीं डालता। इसीलिए उत्प्रेरक संतुलन स्थिरांक की मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं डालता तथा, इस प्रकार, अभिक्रिया के उत्पाद को न तो बढ़ा सकता है और न कम कर सकता है। वह केवल संतुलन के आने को तेज़ या कम कर सकता है।

64. **रासायनिक संतुलन का विस्थापन. ले शाटेल्ये का नियम.** यदि विन्यास संतुलन की अवस्था में है तो वह इस अवस्था में तब तक बना रहेगा जब तक बाहरी स्थितियाँ स्थिर बनी रहेंगी। यदि ये स्थितियाँ बदल जाएँगी तो विन्यास संतुलन खो बैठेगा – प्रत्यक्ष तथा उत्क्रमणीय क्रियाओं की चाल असमान रूप से बदल जाएंगी तथा अभिक्रिया स्थान ले लेगी। संतुलन के बिगड़ने का सर्वाधिक मान उस स्थिति में होता है जब संतुलन में भाग लेने वाले किसी एक पदार्थ की सान्द्रता में दाब या ताप से परिवर्तन हो जाता है।

आइये इनमें से प्रत्येक स्थिति को देखें।

अभिक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों में से किसी एक पदार्थ की सान्द्रता में परिवर्तन होने के फलस्वरूप संतुलन का बिगड़ना. मान लें कि निश्चित ताप व दाब पर हाइड्रोजन, हाइड्रोजन आयोडाइड तथा आयोडिन के वाष्प परस्पर संतुलन में हैं। विन्यास में हाइड्रोजन की कुछ अतिरिक्त मात्रा लाते हैं। द्रव्यमान प्रक्रिया नियम के अनुसार हाइड्रोजन की सान्द्रता में बढ़ोत्तरी अपने साथ-साथ प्रत्यक्ष अभिक्रिया की यानी HI के संश्लेषण की अभिक्रिया चाल को बढ़ाएगी, जबकि उत्क्रमणीय अभिक्रिया की चाल में कोई परिवर्तन नहीं होगा। अब अभिक्रिया की चाल उत्क्रमणीय दिशा की अपेक्षा, प्रत्यक्ष दिशा में अधिक होगी। इसके फलस्वरूप हाइड्रोजन व आयोडिन वाष्प

की सान्द्रता कम हो जाएगी और HI की सान्द्रता बढ़ेगी जिससे उत्क्रमणीय अभिक्रिया की चाल बढ़ेगी। कुछ समय बाद प्रत्यक्ष तथा उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की चाल पुन: समान हो जाएँगी – नया संतुलन बन जाएगा। लेकिन अब HI की सान्द्रता H_2 की मात्रा बढ़ाने से पहले की तुलना में अधिक होगी, लेकिन I_3 की सान्द्रता – कम होगी।

संतुलन के बिगड़ने से सान्द्रता के परिवर्तित होने को क्रिया संतुलन का विस्थापन कहलाता है। यदि इस समय समीकरण की दायीं ओर के पक्ष में स्थित पदार्थों की सान्द्रता में बढ़ोत्तरी होती है (तथा उसी समय समीकरण के बायें पक्ष में स्थित पदार्थों की सान्द्रता में कमी होती है), तो कहते हैं कि संतुलन का विस्थापन दायीं ओर है, अर्थात् प्रत्यक्ष अभिक्रिया के घटने की दिशा में; सान्द्रता के उत्क्रमणीय दिशा में परिवर्तन के समय कहते है कि संतुलन का विस्थापन बायीं ओर है – उत्क्रमणीय अभिक्रिया की दिशा में। ऊपर देखे गये उदाहरण में विस्थापन दायीं ओर हुआ है। इस बीच उस पदार्थ H_2 ने, जिसकी सान्द्रता में परिवर्तन संतुलन के बिगड़ने का कारण बना, अभिक्रिया में भाग लिया तथा उसकी सान्द्रता कम हो गई।

इस प्रकार, संतुलन में भाग लेने वाले किसी भी पदार्थ की सान्द्रता में बढ़ोत्तरी होने से संतुलन का विस्थापन इन पदार्थ के खर्च होने की दिशा में होता है; किसी भी पदार्थ की सान्द्रता कम होने पर संतुलन का विस्थापन इस पदार्थ के बनने की दिशा में होता है।

दाब में परिवर्तन होने के कारण संतुलन का बिगड़ना (विन्यास के आयतन के कम या अधिक होने से). जब अभिक्रिया में गैसें भाग लेती हैं तो विन्यास के आयतन में परिवर्तन होने से संतुलन बिगड़ सकता है।

आइये, नाइट्रोजन मोनोआक्साइड तथा आक्सीजन के बीच अभिक्रिया पर दाब के प्रभाव को देखें :

$$2NO + O_2 \rightleftarrows 2NO_2$$

मान लें कि NO, O_2 तथा NO_2 का मिश्रण नियत ताप पर संतुलन की अवस्था में था। ताप को परिवर्तित किये बिना विन्यास के आयतन को आधा कम कर दीजिए। आरम्भ में सभी गैसों का आंशिक दाब व सान्द्रता दुगुनी बढ़ जाएगी, लेकिन इससे प्रत्यक्ष व व्युत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की चालों में अनुपात परिवर्तित हो जाएगा और संतुलन बिगड़ जाएगा।

वस्तुत:, दाब के बढ़ने से पूर्व गैसों की सान्द्रताओं के संतुलन मान [NO] संतुलन $[O_2]$ संतुलन, तथा $[NO_2]$ संतुलन थे, तथा प्रत्यक्ष व व्युत्क्रमणीय अभिक्रियाओं को चाल निम्न समीकरणों द्वारा निश्चित होती थी :

$$v_1 = k_1 [O_2]_{\text{संतु.}} [NO]^2_{\text{संतु.}}$$

$$v_2 = k_2 [NO_2]^2_{\text{संतु.}}$$

संतुलन के बाद आरम्भ के क्षण में गैसों की सान्द्रताओं के निम्न मान होंगे :

$$2\,[NO]_{\text{संतु.}}\;\; 2\,[O_2]_{\text{संतु.}}\;\; \text{तथा}\;\; 2\,[NO_2]_{\text{संतु.}}$$

इस समय प्रत्यक्ष तथा व्युत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की चाल निम्न समीकरणों द्वारा निश्चित होती हैं :

$$v_1' = k_1\, 2\,[O_2]_{\text{संतु.}}\,(2\,[NO]_{\text{संतु.}})^2 = 8k_1\,[O_2]_{\text{संतु.}}\,[NO]^2_{\text{संतु.}} = 8v_1$$

$$v_1' = k_2\,(2\,[NO_2]_{\text{संतु.}})^2 = 4k_2\,[NO_2]^2_{\text{संतु.}} = 4v_2$$

इस प्रकार, दाब के बढ़ने के परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष अभिक्रिया की चाल 8 गुना बढ़ गई है, जबकि व्युत्क्रमणीय अभिक्रिया की चाल केवल चार गुना बढ़ी है। विन्यास में संतुलन बिगड़ जाएगा—श्रृंखला अभिक्रिया व्युत्क्रमणीय अभिक्रिया पर हावी हो जाएगी। कुछ समय बाद प्रत्यक्ष तथा व्युत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की चाल पुनः समान हो जाएगी तथा नया संतुलन बन जाएगा ; लेकिन इसमें NO_2 की मात्रा बढ़ जाती है—संतुलन का विस्थापन दायीं ओर होता है।

यह आसानी से देखा जा सकता है कि प्रत्यक्ष तथा व्युत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की चालों के, असमान परिवर्तन का कारण विचाराधीन अभिक्रिया के समीकरण के बायें और दायें पक्षों में गैसों के अणुओं की विभिन्न सँख्या है। ऑक्सीजन का एक अणु और नाइट्रोजन मोनोक्साइड के दो अणु (गैसों के कुल तीन अणु) नाइट्रोजन डाइआक्साइड के दो अणुओं में रूपांतरित हो जाते हैं। गैस का दाब बर्तन की दीवार पर गैस के अणुओं के टकराव का परिणाम है ; सभी स्थितियों के समान होने पर गैस का दाब जितना अधिक होगा, गैस के नियत आयतन में उतने ही अधिक अणु होंगे। इसीलिए गैसो के अणुओं की सँख्या बढ़ने से होने वाली अभिक्रिया दाब को बढ़ाती है, तथा अणुओं की सँख्या कम होने के फलस्वरूप घटने वाली अभिक्रिया दाब को कम करती है। इसे याद रखते हुए हम रासायनिक संतुलन पर दाब के प्रभाव के बारे में निम्न निष्कर्ष निकाल सकते है :

विन्यास को दबाकर दाब बढ़ाने से संतुलन का विस्थापन गैसों के अणुओं की सँख्या के कम होने की दिशा में होता है, यानी दाब के कम होने की दिशा में होता है ; दाब कम होने से संतुलन का विस्थापन गैसों के अणुओं की सँख्या के बढ़ने की दिशा में होता है, अर्थात् दाब के बढ़ने की दिशा में होता है।

उस स्थिति में, जब गैसों के अणुओं की सँख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता है, जो विन्यास को दबाने या उसे फैलाने के फलस्वरूप संतुलन नहीं बिगड़ता है। उदाहरणतया, निम्न विन्यास में

$$H_2 + I_2 \rightleftarrows 2HI$$

आयतन में परिवर्तन होने से संतुलन नहीं बिगड़ता है; HI का निष्कासन दाब पर निर्भर नहीं करता है।

ताप में परिवर्तन होने के फलस्वरूप संतुलन का बिगड़ना. अधिकांश रासायनिक अभिक्रियाओं में ताप में परिवर्तन होने से संतुलन का विस्थापन हो जाता है। संतुलन के विस्थापन की दिशा को अभिक्रिया के तापीय प्रभाव का चिन्ह निर्धारित करता है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि ताप में वृद्धि होने से संतुलन ऊष्माशोषी अभिक्रिया की दिशा में होता है, तथा ताप के कम होने से ऊष्माक्षेपी अभिक्रिया की दिशा में होता है।

अतः, अमोनिया संश्लेषण ऊष्माक्षेपी अभिक्रिया है

$$N_2 + 3H_2 = 2NH_3 + 92.4 \text{ कि॰जू॰}$$

इसीलिए $H_2 - N_2 - NH_3$ विन्यास में ताप के बढ़ने से संतुलन का विस्थापन बायीं ओर है — अमोनिया के वियोजन की दिशा की ओर क्योंकि यह क्रिया ऊष्मा के अवशोषण के साथ-साथ होती है।

इसके विपरीत नाइट्रिक आक्साइड (II) का संशलेषण ऊष्माशोषी अभिक्रिया है:

$$N_2 + O_2 = 2NO \qquad - 180.5 \text{ कि॰जू॰}$$

इसीलिए ताप के बढ़ने से N_2–O_2–NO विन्यास में संतुलन का विस्थापन दायीं ओर है — NO के बनने की दिशा में।

रासायनिक संतुलन के बिगड़ने के ऊपर देखे गए उदाहरणों में स्पष्ट नियम एक सामान्य नियम की विशिष्ट स्थितियाँ हैं जो विन्यास के संतुलन पर विभिन्न कारणों से पड़ने वाले प्रभाव को निश्चित करता है। यह नियम ले शाटेल्ये नियम के नाम से प्रसिद्ध है तथा रासायनिक संतुलन के लिए इसे निम्न प्रकार लिखा जा सकता है:

यदि संतुलन की अवस्था में स्थित किसी विन्यास पर किसी भी प्रकार का प्रभाव डाला जाये, तो उसमें होने वाली क्रियाओं के फलस्वरूप संतुलन का विस्थापन उस दिशा में होगा जिससे कि डाला गया प्रभाव कम हो जाए।

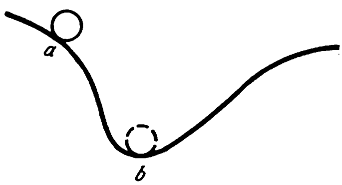
वस्तुतः अभिक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों में से किसी एक पदार्थ को विन्यास में प्रवेश कराने पर संतुलन का विस्थापन इस पदार्थ के खर्च होने की दिशा में होगा। दाब के बढ़ने से उसका विस्थापन इस प्रकार होगा ताकि विन्यास में दाब कम हो जाए; ताप में वृद्धि होने से संतुलन ऊष्माशोषी अभिक्रिया की दिशा में विस्थापित हो जाएगा — विन्यास में ताप कम हो जाएगा।

ले शाटेल्ये नियम न केवल रासायनिक संतुलन पर, अपितु विभिन्न रासायनिक-भौतिकीय संतुलनों पर भी लागू होता है। क्वथन, क्रिस्टलीयकरण तथा घुलना जैसे क्रियाओं में अवस्थाओं के परिवर्तित होने के फलस्वरूप संतुलन का विस्थापन ले शाटेल्ये नियम के अनुसार होता है।

65. **रासायनिक अभिक्रिया की दिशा निश्चित करने वाले कारण.** गत परिच्छेदों में कुछ उदाहरणों की मदद से हमने देखा कि निश्चित अवस्थाओं में प्रत्येक रासायनिक अभिक्रिया स्वतः एक निश्चित दिशा में घटती है। अतः निम्न ताप पर जल वाष्प

$$2H_2 + O_2 = 2H_2O \qquad + 483.6 \text{ कि०जू०}$$

बनने की ऊष्मा क्षेपी अभिक्रिया व्यावहारिक रूप से पूर्णतः प्रत्यक्ष दिशा में घटती है*। लेकिन उच्च ताप पर यह अभिक्रिया उत्क्रमणीय दिशा में होने लगती है: जल वाष्प का हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन में वियोजन हो जाता है। सभी स्थितियों में अभिक्रिया के परिणामस्वरूप स्थायी रासायनिक संतुलन की अवस्था प्राप्त हो सकती है, लेकिन विभिन्न अवस्थाओं में स्वयं संतुलन की अवस्था विभिन्न होती है।



चित्र 69. गोला स्वतः *a* से *b* स्थिति पर आ जाता है।

यहाँ प्रश्न पैदा होता है: रासायनिक अभिक्रियाओं की दिशा के निश्चित होने का क्या कारण है? रासायनिक संतुलन किन घटकों के प्रभाव से होता है?

ज्ञात ही है कि यांत्रिकीय विन्यासों में स्थायी संतुलन का अर्थ है विन्यास की स्थितिज ऊर्जा का न्यूनतम होना। अतः, झुकी हुई सतह पर (चित्र 69 "*a*" स्थिति में से गोला स्वतः ही लुढ़क जाता है, एवं यहाँ पहले उसकी स्थितिज ऊर्जा संपूर्ण गोले की गति की गतिज ऊर्जा में परिवर्तित होती है तथा बाद में अणु की तापीय गति की ऊर्जा में परिवर्तित होती है। "b" स्थिति में गोला संतुलन की अवस्था में है।

स्वभावतः अनुमान किया जा सकता है कि रासायनिक अभिक्रियाएँ भी स्वतः विन्यास की आंतरिक ऊर्जा के कम होने की दिशा में घटनी चाहियें, अर्थात उस दिशा में जो अभिक्रिया धनात्मक तापीय प्रभाव के तदनुरूप है। वस्तुतः प्रयोग सिद्ध करता है कि सामान्य अवस्थाओं में स्वतः घटने वाली अभिक्रियाएँ अधिकतर ऊष्माक्षेपी होती हैं।

लेकिन रासायनिक अभिक्रियाओं की दिशा का कारण केवल उनकी न्यूनतम आन्तरिक ऊर्जा को मानना तथ्यों का अन्तर्विरोध करता है। जैसे सामान्य ताप पर कई लवणों के घुलने की ऊष्माशोषी क्रियाएँ तथा कुछ ऊष्माशोषी रासायनिक स्वतः ही घटती है। ताप में वृद्धि होने के साथ-साथ अभिक्रियाओं की और अधिक सँख्या स्वतः ऊष्माशोषी

---

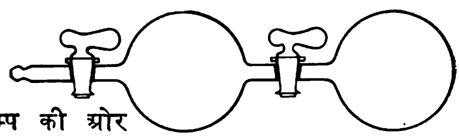
*उत्प्रेरक की अनुपस्थिति में सामान्य अवस्थाओं में इस अभिक्रिया की चाल बहुत ही कम है। लेकिन उत्प्रेरक की विद्यमानता होने पर (जैसे कि प्लैटिनीकृत ऐस्वेस्टॉस की विद्यमानता होने पर) जल के बनने की अभिक्रिया की चाल बहुत ही अधिक होती है।

क्रिया की दिशा में घटने लगती है ; ऐसी अभिक्रियाओं के उदाहरणों के रूप में ऊपर बताये गए जल का वियोजन तथा उच्च ताप पर नाइट्रोजन मोनो आक्साइड (NO) का विश्लेषण है :

$$\frac{1}{2}N_2 + \frac{1}{2}O_2 \rightleftarrows NO \qquad -90.4 \text{ कि०जू०}$$

इसके अलावा, न्यूनतम आन्तरिक ऊर्जा की ओर प्रवृत्त होने के नियम के अनुसार सभी उष्माक्षेपी अभिक्रियाएँ अंत तक चलनी चाहिए, यानी उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की सम्भावना समाप्त हो जाती है ; पर ऐसी अभिक्रियाएँ वस्तुतः होती हैं।

अब याद करें कि ऐसे भी यांत्रिकीय विन्यास होते हैं जिनके व्यवहार को क्रियाओं की केवल न्यूनतन स्थितिज ऊर्जा की ओर की प्रवृति द्वारा वर्णित नहीं किया जा सकता। ये विन्यास कणों की बहुत बड़ी सँख्या से बने हुए होते हैं। उदाहरणतया, वायु में विद्यमान अणु बहुत अधिक किलोमीटर मोटाई वाले वातावरण के रूप में पृथ्वी के चारों ओर फैले हुये हैं, लेकिन पृथ्वी पर नहीं गिरते हैं, हालाँकि प्रत्येक अणु की न्यूनतम स्थितिज ऊर्जा के लिए उसकी अधिक निम्न अवस्था तदनुरूप है।



चित्र 70. दो भागों से बना बर्तन : A भाग में विरलित गैस हैं, तथा B भाग में–निर्वात।

रासायनिक विन्यास भी कणों की विशाल सँख्या से बनते हैं। इसीलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि यहाँ पर भी इनके व्यवहार का एक मात्र कारण न्यूनतम आन्तरिक ऊर्जा हासिल करना नही है।

अभिक्रिया की दिशा पर प्रभाव डालने वाले अन्य कारण को समझने के लिए आइये स्वतःस्फूर्त्त घटने वाली किसी क्रिया को देखें जिसका तापीय प्रभाव के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। ऐसी क्रिया का उदाहरण विरलित गैस का विस्तारण हो सकता है।

मान लें कि दो भागों में विभाजित बर्तन के "A" भाग में (चित्र 70) विरलित गैस है। ऐसी गैस में अणुओं के बीच की औसत दूरी काफ़ी अधिक होती है ; इस अवस्था में गैस की आन्तरिक ऊर्जा उसके विरलन की मात्रा पर निर्भर नहीं करती है। बर्तन के दूसरे भाग "B" में गैस नहीं है। यदि टोंटी को खोल दिया जाए तो गैस स्वयं ही समान्य बर्तन में फैल जाएगी। गैस की आन्तरिक ऊर्जा इस समय नहीं बदलेगी ; लेकिन गैस कें विस्तारण के क्रिया स्वतः ही हो जाएगी, तथा उत्क्रमणीय अभिक्रिया –गैस का अपने आप दबना– नहीं घटेगी।

क्रिया की ऐसी दिशा का कारण भी समझा जा सकता है यदि पहले अणुओं की कुछ सँख्या वाले विन्यास को देखा जाए। मान लें कि बर्तन में केवल दो अणु विद्यमान हैं जिन्हें 1. तथा 2. द्वारा निर्दिष्ट कर दें। बर्तन के दोनों भागों में गैस का समान

वितरण जो गैस की निश्चित स्थूलअवस्था का तदनुरूप है, दो माइक्रोअवस्थाओं* में हो सकता है:

A	B
1	2
2	1

स्थूलअवस्था जिसमें संपूर्ण गैस बर्तन के एक भाग में सकेन्द्रित है (उदाहरणतया, A भाग में) एक ही माइक्रोअवस्था द्वारा पूर्ण होती है:

A	B
1.2	—

स्पष्ट है कि विन्यास की कोई भी स्थूलअवस्था की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी, माइक्रोअवस्थाओं की जितनी अधिक सँख्या द्वारा वह स्थान ले सकती है। ऊपर देखी गई स्थिति में (दो अणु) बर्तन में गैस का समान वितरण बर्तन के A भाग में समस्त गैस के होने की अपेक्षा दुगुनी सम्भावना रखता है।

मान लें कि अब गैस में चार अणु है जिन्हें हमने फिर नम्बरों द्वारा व्यक्त कर दिया है। A बर्तन के A भाग में संपूर्ण गैस का लाया जाना पहले की भाँति एक ही माइक्रोअवस्था का तदनुरूप है:

A	B
1. 2. 3. 4	—

इस बीच, अब बर्तन के दोनों भागों के बीच गैस का समान वितरण छः विभिन्न माइक्रोअवस्थाओं द्वारा पूर्ण हो सकता है:

A	B	A	B
1.2	3.4	2.3	1.4
1.3	2.4	2.4	1.3
1.4	2.3	3.4	1.2

---

*स्थूलअवस्था—पदार्थ की वह अवस्था है जो उसके स्थूलदर्शी गुणों के निश्चित मानों द्वारा विशिष्ट हैं (ताप, दाब, आयतन, आदि); माइक्रोअवस्था—पदार्थ की वह अवस्था है जो प्रत्येक कण की निश्चित अवस्था द्वारा व्यक्त होती है (अणु, परमाणु)। एक ही स्थूल अवस्था विभिन्न माइक्रो-अवस्थाओं की बड़ी संख्या का तदनुरूप है।

इसलिये अब बर्तन के समस्त आयतन में गैस के अणुओं के समान वितरण की सम्भावना वर्तन के किसी एक भाग में इकट्ठे होने की अपेक्षा अधिक प्रत्यक्ष दिखाई देगी। स्वाभाविक. है कि गैस का समान वितरण बर्तन के किसी एक भाग में संपूर्ण सकेन्द्रण की अपेक्षा बहुत अधिक वार दिखाई देगा।

यदि बर्तन में छः अणु विद्यमान हैं तो बर्तन के एक भाग में उनके स्थानांतरण के लिए (यानी गैस का स्वतः इतना दब जाना कि वह अब पहले घेरे गए स्थायी आयतन के आधे आयतन में जमा हो जाए), पहले की भाँति, केवल एक ही माइक्रो-अवस्था है। लेकिन बर्तन के दोनों भागों में गैस के समान विस्तारण के लिए अणुओं के 20 सम्भव संगठन, अर्थात 20 विभिन्न माइक्रोअवस्थाएँ हैं:

A	*B*	*A*	*B*	*A*	*B*	*A*	*B*
1, 2, 3	4, 5, 6	1, 3, 5	2, 4, 6	2, 3, 4	1, 5, 6	2, 5, 6	1, 3, 4
1, 2, 4	3, 5, 6	1, 3, 6	2, 4, 5	2, 3, 5	1, 4, 6	3, 4, 5	1, 2, 6
1, 2, 5	3, 4, 6	1, 4, 5	2, 3, 6	2, 3, 6	1, 4, 5	3, 4, 6	1, 2, 5
1, 2, 6	3, 4, 5	1, 4, 6	2, 3, 5	2, 4, 5	1, 3, 6	3, 5, 6	1, 2, 4
1, 3, 4	2, 5, 6	1, 5, 6	2, 3, 4	2, 4, 6	1, 3, 5	4, 5, 6	1, 2, 3

अब गैस के स्वतः दबने की परिघिटना यानी बर्तन के एक भाग में गैस के सभी अणुओं का सकेन्द्रण बहुत ही कम दिखाई देगा; पूरे बर्तन में गैस का समान वितरण और भी अधिक सम्भव हो जाएगा।

इस प्रकार अणुओं की सँख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ बर्तन में गैस का अव्यवस्थित समान वितरण बहुत तेज़ी से बढ़ता है, तथा गैस का स्वतः दबना एक बहुत ही कम सम्भव क्रिया बन जाती है। यदि अब हम याद करें कि गैस की स्थूलदर्शी मात्रा में अणु बहुत विशाल सँख्या में होते हैं, तो स्पष्ट हो जाएगा कि वास्तविक प्रयोग में गैस का स्वयं दबना एक असम्भव क्रिया है तथा इसकी उत्क्रमणीय क्रिया (गैस का वितरण) ही होगी जिसके फलस्वरूप बर्तन के पूरे आयतन में उसके अणु समान पर, अव्यवस्थित रूप से विस्तारित हो जाएँगे।

गैस के वितरण की ऊपर देखी गई परिघटना अधिकतम संभाव्यता वाली अव-स्था की ओर क्रियाओं का दिशा के नियम का उदाहरण है अर्थात् उस अवस्था की ओर जिसके लिए कणों का वितरण अधिकतम अव्यवस्थित है। रासायनिक अभिक्रियाओं के स्वयं घटने की दिशा दो कारणों का कुल प्रभाव ही है: न्यूनतम आन्तरिक ऊर्जा की अवस्था में विन्यास के आने की प्रवृत्ति और अधिकतम सम्भव अवस्था प्राप्त करने की प्रवृत्ति।

अतः, ऊपर दिए गए वायु के उदाहरण में न्यूनतम स्थितिज ऊर्जा की प्रवृत्ति वायु के अणुओं को पृथ्वी पर गिरने के लिए विवश करती है, तथा अधिकतम सम्भावना की प्रवृति उन्हें वातावरण में अव्यवस्थित रूप से वितरित हो जाने पर विवश करती है। इसके परिणामस्वरूप अणुओं के वितरण का एक प्रकार का संतुलन बन जाता है, जो पृथ्वी की सतह पर उनकी अधिक उच्च सकेन्द्रता तथा पृथ्वी से दूरी बढ़ने के साथ-साथ और अधिक विरलता द्वारा व्यक्त होता है।

लवण-जल के विन्यासों में न्यूनतम आन्तरिक ऊर्जा का अधिकांश स्थितियों में तदनुरूप लवण की क्रिस्टलीय अवस्था है। लेकिन विन्यास की अधिकतम सम्भव अवस्था द्रव जल में लवण के अव्यवस्थित विस्तारण के फलस्वरूप प्राप्त होती है। इन कारणों के कुल प्रभाव के परिणामस्वरूप संतुलन बनता है जो लवण के संतृप्त घोल की निश्चित सकेन्द्रता का लाक्षणिक है।

रासायनिक अभिक्रियाओं में क्रियाओं की न्यूनतम आन्तरिक ऊर्जा की ओर दिशा के नियम के समर्थन में परमाणु ऐसे अणुओं में जुड़ जाते हैं, जिनके बनने में ऊर्जा की अधिकतम मात्रा का उत्सर्जन होता है। अधिकतम सम्भव अवस्था की ओर क्रियाओं की दिशा के नियम के समर्थन में ऐसी अभिक्रियाएँ घटती है जिनमें कणों की सँख्या (उदाहरणतया, अणुओं का परमाणुओं में वियोजन की अभिक्रिया) या परमाणुओं की सम्भव अवस्थाओं की सॅख्या बढ़ जाती है।

अतएव, $N_2 + 3H_2 \rightleftarrows 2NH_3 \quad + 92.4$ कि०जू०

अभिक्रिया की स्थिति में विन्यास की न्यूनतम आंतरिक ऊर्जा अमोनिया की है जो अभिक्रिया की दायीं ओर अंत तक घटने से बनता है। लेकिन विन्यास की अधिकतम सम्भव अवस्था नाइट्रोजन-हाइड्रोजन मिश्रण है जो अमोनिया के सम्पूर्ण वियोजन के फलस्वरूप बनता है, क्योंकि इसी के दौरान गैसों के अणुओं की सँख्या दुगुनी हो जाती है। दोनों कारणों के प्रभाव से विन्यास में संतुलन बन जाता है नियत ताप पर सभी पदार्थों की सान्दताओं का निश्चित अनुपात होता है। अभिक्रिया $N_2 + O_2 \rightleftarrows 2NO$ $- 180.8$ कि०जू० की स्थिति में न्यूनतम आन्तरिक ऊर्जा नाइट्रोजनमोनो आक्साइड के सम्पूर्ण वियोजन के फलस्वरूप बनने वाले नाइट्रो-जन-आक्सीजन मिश्रण की है। चूँकि इस अभिक्रिया के दौरान कणों की सँख्या नहीं बदलती है, तो प्रत्यक्ष तथा उत्क्रमणीय—दोनों दिशाओं में अभिक्रिया के अंत तक होने से विन्यास की सम्भव अवस्था नहीं बढ़ती है। इस समय परमाणुओं की सम्भव अवस्थाओं की सँख्या भी नहीं बढ़ती है: मूल पदार्थों में नाइट्रोजन तथा आक्सीजन का प्रत्येक परमाणु उसी तत्त्व के परमाणु के साथ जुड़ा होता है (N_2 तथा O_2 के अणु), तथा अभिक्रिया के उत्पाद में प्रत्येक परमाणु दूसरे तत्व के परमाणु के साथ जुड़ा

होता है (NO का अणु)। प्रत्यक्ष या उत्क्रमणीय दिशा में क्रिया के आंशिक रूप से होने में बात दूसरी है। अभिक्रिया के आंशिक रूप में होने के फलस्वरूप यानी मूल पदार्थों तथा अभिक्रिया के उत्पादों के इकठ्ठा रहने पर, नाइट्रोजन और आक्सीजन के परमाणु दो अवस्थाओं में स्थित होते हैं : उनका कुछ भाग N_2 तथा O_2 अणुओं के साथ जुड़ा होता है, तथा कुछ भाग NO अणु के साथ। इस प्रकार, देखे जा रहे विन्यास सम्भव माइक्रोअवस्थाओं की सँख्या, तथा इसीलिये, उसकी तदनुरूपी सम्भव स्थूलअवस्था अभिक्रिया के आंशिक रूप में होने पर बढ़ जाती है। अतः, आन्तरिक ऊर्जा के कम होने की प्रवृति नियत अभिक्रिया की उत्क्रमणीय दिशा में अंत तक घटने में मदद देती है, जबकि सम्भव अवस्था के बढ़ने की प्रवृति उसे प्रत्यक्ष दिशा में आंशिक रूप से घटने देती है। दोनों कारणों के कुल प्रभाव के फलस्वरूप नाइट्रोजन-आक्सीजन मिश्रण गर्म होने पर NO में रूपांतरित हो जाता है तथा मूल पदार्थों व अभिक्रिया के उत्पादों के बीच संतुलन बन जाता है।

न्यूनतम आन्तरिक ऊर्जा की अवस्था में संक्रमण करने की प्रवृत्ति सभी तापों पर एक ही मात्रा में होती है। अधिक सम्भव अवस्था प्राप्त करने की प्रवृति उतनी ही अधिक होगी, जितना कि ताप उच्च होगा। इसीलिए निम्न ताप पर अधिकांश स्थितियों में व्यावहारिक रूप से केवल पहली प्रवृति का ही प्रभाव पड़ता है, जिसके फलस्वरूप स्वयं ही ऊष्माक्षेपी क्रियाएं घटती हैं। ताप के बढ़ने के साथ-साथ रासायनिक विन्यासों में संतुलन का विस्थापन वियोजन अभिक्रिया की ओर या परमाणुओं की सँख्या बढ़ने की अवस्था की ओर और अधिक होता रहता है। इस के अलावा यहाँ प्रत्येक ताप के लिए संतुलन की अवस्था होती है, जिसके लिए अभिक्रियाशील पदार्थों तथा अभिक्रिया के उत्पादों की सान्द्रताओं का निश्चित अनुपात लाक्षणिक है।

देखे गए दोनों कारण तथा उनका कुल प्रभाव सँख्यात्मक रूप से व्यक्त किया जा सकता है। उन मात्राओं का जिनकी मदद से यह किया जाता है, भौतिकी के विभाग में अध्ययन किया जाता है जिसे तापीयगतिकी कहते हैं तथा इन मात्राओं को तापीय-गतिकीय मात्राएँ कहते हैं। इनमें, विशेषतः, आन्तरिक ऊर्जा, एन्थैल्पी, एन्ट्राँपी तथा गिब्ज़ ऊर्जा आती हैं।

66. **तापीयगतिकीय मात्राएँ . आन्तरिक ऊर्जा व एन्थैल्पी .** किसी पदार्थ (या विन्यास) की आन्तरिक ऊर्जा U – दिए गए पदार्थ को बनाने वाले कणों की संम्पूर्ण ऊर्जा होती है (दे० § 54)। यह कणों की गतिज व स्थितिज ऊर्जाओं से मिलकर बनती है। गतिज ऊर्जा – यह कणों की अग्र गति, कम्पनिक गति तथा घूर्णी गति की ऊर्जा है; स्थितिज ऊर्जा का कारण कणों के बीच क्रियाशील आकर्षण व प्रतिकर्षण बल हैं।

आन्तरिक ऊर्जा पदार्थ की अवस्था पर निर्भर करती है। एक ही क्रिया के अन्तर्गत $\triangle U$ विन्यास की आन्तरिक ऊर्जा में हुए परिवर्तन को ज्ञात किया जा सकता है। मानें कि क्रिया में विन्यास अवस्था 1 से 2 में आता है; इससे संपन्न कार्य = A व

अवसोपित उष्मा* $=Q$ है। स्पष्ट है कि विन्यास की आन्तरिक ऊर्जा A मात्रा द्वारा कम हो जाएगी, Q मात्रा से बढ़ जाएगी तथा अंत में $U_2 = U_1 + Q - A$ के बराबर हो जाएगी। यहाँ U_1 तथा U_2 – क्रमशः आरम्भिक तथा अन्तिम अवस्था में विन्यास की आन्तरिक ऊर्जाएँ है। यदि $U_2 - U_1$ अन्तर को $\triangle U$ द्वारा निर्दिष्ट कर दें, तो समीकरण को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है।

$$\Delta U = Q - A$$

यह समीकरण ऊर्जा संरक्षण नियम व्यक्त करता है, जिसके अनुसार आन्तरिक ऊर्जा का परिवर्तन क्रिया के घटने की प्रकृति पर निर्भर नही करता है, बल्कि विन्यास की आरम्भिक तथा अन्तिम अवस्थाओं द्वारा ही निश्चित होता है। लेकिन ऊर्जा का कौंन सा भाग कार्य पूर्ण करेगा, तथा कौनसा भाग ऊष्मा में परिवर्तित हो जाएगा – यह क्रिया के घटने की प्रकृति पर निर्भर करता है: कार्य तथा ऊष्मा का अनुपात विभिन्न हो सकता हैं। विशेषतः, यदि क्रिया के दौरान कोई कार्य नहीं होता है, बाहरी दाब के विरूद्ध वितरण का कार्य मिलाकर, यानी यदि विन्यास का आयतन अपरिवर्तित रहता है, तो $\Delta U = Q_v$ यहाँ Q_v – वह ऊष्मा है जो स्थिर आयतन की अवस्था में विन्यास द्वारा अवशोषित कर ली गई थी।

आखिरी समीकरण की मदद से विभिन्न क्रियाओं में आन्तरिक ऊर्जा का परिवर्तन निश्चित किया जा सकता है। उदाहरणतया, स्थिर आयतन पर पदार्थ को गर्म करते समय आन्तरिक ऊर्जा में परिवर्तन इस पदार्थ की विशिष्ट ऊष्मा द्वारा निर्धारित होता है

$$\Delta U = Q_v = nC_v \Delta T$$

यहाँ C_v– स्थिर आयतन पर तोल में पदार्थ की विशिष्ट ऊष्मा है; n – पदार्थ के मोलों की सँख्या; $\triangle T$ – आरम्भिक तथा अन्तिम तापों में अन्तर।

विन्यास के आयतन का परिवर्तन हुये बिना घटने वाली रासायनिक अभिक्रिया की स्थिति में आन्तरिक ऊर्जा का परिवर्तन इस अभिक्रिया के तापीय प्रभाव, जिस पर विपरीत चिन्ह लगा दिया गया, के बराबर होता है।

एन्थैल्पी. हालांकि रसायन में प्रायः कार्य उन क्रियाओं के साथ करना पड़ता है,

---

*तापीरासायनिक समीकरणों में (दे० § 55) ऊष्मा को धनात्मक कहा जाता है यदि उसका निष्कासन विन्यास से हुआ है। तापीयगतिकी के समीकरणों में विपरीत अवस्था है: विन्यास द्वारा अवशोषित ऊष्मा धनात्मक मानी गई है।

जो स्थिर दाब पर घटती हैं। इसके लिए एन्थैल्पी की मात्रा H को ग्रासानी से प्रयुक्त किया जा सकता है जो निम्न ग्रनुपात द्वारा व्यक्त होती है :

$$H = U + PV$$

स्थिर दाब व इस ग्रवस्था पर क्रिया के दौरान केवल वितरण का कार्य होता है $A = P\Delta V$*

$$\Delta H = \Delta U + P\Delta V$$

$$\Delta U = \Delta H - P\Delta V$$

ग्रन्तिम समीकरण की ग्रान्तरिक ऊर्जा के समीकरण के साथ तुलना करने पर

$$\Delta U = Q - A$$

हम देखते हैं कि उक्त ग्रवस्थाग्रों में $\Delta H = Q_p$ यहाँ Q_p – स्थिर दाब पर विन्यास द्वारा ग्रवशोषित ऊर्जा।

ग्रन्तिम समीकरण की मदद से विभिन्न क्रियाग्रों के लिए एन्थैल्पी का परिवर्तन निश्चित किया जा सकता है। ऐसी परिभाषाएं ग्रान्तरिक ऊर्जा की परिभाषाग्रों से मिलती हैं, केवल इतना हो ग्रन्तर है कि सभी माप स्थिर दाब की ग्रवस्था में ही लिए जाएँ। ग्रतः, पदार्थ को गर्म करने पर उसकी एन्थैल्पी में परिवर्तन स्थिर दाब पर इस पदार्थ कि विशिष्ट ऊष्मा द्वारा निश्चित होगा

$$\Delta H = Q_p = nC_p\Delta T$$

यहाँ n – पदार्थ के मोलों की सँख्या ; C_p – स्थिर दाब पर मोल में पदार्थ की विशिष्ट ऊष्मा।

पदार्थ की कुल ग्रवस्था में परिवर्तन होने पर तथा ग्रपररूपी संक्रमणों में एन्थैल्पी का परिवर्तन तदनुरूपी रूपांतरण की ऊष्मा की मात्रा के बराबर होता है लेकिन चिन्ह विपरीत हो जाता है (जैसे, पिघलना, क्वथन, एक रूप से दूसरे में रूपांतरण)। ग्रंत में, रासायनिक ग्रभिक्रिया की स्थिति में एन्थैल्पी का परिवर्तन स्थिर ताप व दाब पर घटने वाली ग्रभिक्रिया के तापीय प्रभाव के बराबर होता है, परन्तु चिन्ह विपरीत हो जाता है।

---

*बाहरी दाब के विरूद्ध कार्य इस बल की मात्रा (F) तथा लम्बाई (Δl) के गुणनफल के बराबर है, यानी $A = F\Delta l$ लेकिन बल दाब (P) तथा उस क्षेत्रफल (S) के गुणनफल के बराबर है जिसपर वह लागू होता है : $F = PS$, ग्रर्थात् $A = PS\Delta l$, या $A = P\Delta V$·

आन्तरिक ऊर्जा की भाँति एन्थैल्पी भी पदार्थ की ऊर्जात्मक अवस्था के लिए लाक्षणिक है लेकिन इसमें बाहरी दाब पर काबू पाने में व्यय हुई ऊर्जा सम्मिलित है, अर्थात् वितरण के कार्य पर व्यय हुई ऊर्जा। आन्तरिक ऊर्जा की तरह ही एन्थैल्पी विन्यास की अवस्था द्वारा निश्चित होती है, पर इस बात पर निर्भर नहीं करती है कि यह अवस्था किस प्रकार प्राप्त हुई। गैसों की स्थिति में किसी भी क्रिया के दौरान ΔU तथा ΔH में अन्तर काफ़ी अधिक हो सकता है। विन्यास की स्थिति में, जिसमें गैस नहीं हैं, आन्तरिक ऊर्जा व एन्थैल्पी में अन्तर, जो क्रिया के समय उत्पन्न होते है, एक दूसरे के बराबर ही होते हैं। इसका कारण यह है कि संघनित अवस्थाओं में (ठोस या द्रव) पदार्थों पर होने वाली क्रियाओं के समय आयतन में परिवर्तन (ΔV) सामान्यतः बहुत अधिक नहीं होते हैं, तथा $P\Delta V$ की मात्रा ΔH की तुलना में बहुत कम होती है।

67. **तापीयगतिकीय मात्राएँ. एन्ट्रॉपी तथा गिब्ज ऊर्जा.** जैसा § 65 में बताया जा चुका है कि अधिक विन्यास की स्थूलअवस्था उतनी ही अधिक सम्भव होती जितनी कि उस द्वारा की जाने वाली माइक्रोअवस्था की सँख्या अधिक होती। सामान्यतः, विन्यास की किसी भी स्थूलअवस्था के लिए लाक्षणिक माइक्रोअवस्थाओं की सँख्या बहुत बड़ी होती है। इसका कारण यह है कि पदार्थ की स्थूलअवस्था मात्रा में कणों की सँख्या अतिविशाल होती है, तथा सामान्य ताप पर उनकी स्थिति एवं चाल अत्यधिक भिन्न होती हैं।

इस अर्थ में विन्यास की अवस्था को दी गई स्थूलअवस्था के होने की सम्भावना द्वारा नहीं, बल्कि उसके लघुगणक के समानुपातिक मात्रा द्वारा व्यक्त करना आसान होगा। इस मात्रा को एन्ट्रॉपी कहते है। एन्ट्रॉपी (S) समानरूप से सम्भव सूक्ष्मदर्शी अवस्थाओं की सँख्या (W) के साथ निम्न समीकरण द्वारा सम्बंधित है, जिनकी मदद से विन्यास की नियत स्थूलदर्शी अवस्था निश्चित की जा सकती है,:

$$S = k \lg W$$

यहाँ k – समानुपातिक गुणाँक है।

परम शून्य पर आदर्शी रूप से सही बने क्रिस्टलों की न्यूनतम एन्ट्रॉपी होती है। क्रिस्टल की एन्ट्रॉपी, जिसकी संरचना में कुछ त्रुटियाँ हैं, परम शून्य पर कुछ अधिक हो जाती है, क्योंकि आदर्श से विचलन को ज्ञात करने के लिए एकमात्र विधि नहीं है। ताप के बढ़ने से एन्ट्रॉपी हमेशा बढ़ेगी, क्योंकि कणों की गति की तीव्रता बढ़ती है, तथा इसके फलस्वरूप इनके स्थित होने की विधियों की सँख्या भी बढ़ जाती है। वह पदार्थ के क्रिस्टलीय अवस्था में से तरल अवस्था में परिवर्तित होने पर भी बढ़ती है, तथा विशेषतः उस समय जब पदार्थ तरल अवस्था से गैसीय अवस्था में आता है। रासायनिक क्रियाओं के समय भी एन्ट्रॉपी परिवर्तित होती है। ये परिवर्तन सामान्यतः विशेषतः उन अभिक्रियाओं में अधिक होते हैं जब गैसों के अणुओं की सँख्या में

परिवर्तन होता है : गैसों के अणुओं की सँख्या बढ़ने पर एन्ट्रॉपी बढ़ जाती है ; तथा कम होने पर कम हो जाती है।

आन्तरिक ऊर्जा एवं एन्थैल्पी की भाँति एन्ट्रॉपी केवल विन्यास की अवस्था पर ही निर्भर करती है। लेकिन इन दो फलनों के विपरीत एन्ट्रॉपी के परिवर्तन तथा ऊष्मा का सम्बन्ध क्रिया के घटने की प्रकृति पर—उसकी चाल पर—निर्भर करता है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, किसी भी क्रिया के दौरान किये गए कार्य तथा ऊष्मा का अनुपात विभिन्न हो सकता है। केवल इन मात्राओं का अन्तर, जो विन्यास की आन्तरिक ऊर्जा के परिवर्तन के बराबर है, क्रिया के घटने की प्रकृति पर निर्भर नहीं करता है। क्रिया की चाल तेज़ होने पर कार्य कम होता है, तथा धीमी होने पर अधिक होता है। क्रिया के अंत तक धीमी चाल होने पर—संतुलन की एक अवस्था में से दूसरी अवस्था में अत्यधिक धीमे कदम लेने पर, पूर्वगत कदम के अत्यधिक समीप होने पर,—कार्य का मान अधिकतम सम्भव हो जाता है। क्रिया के इस व्यवहार को तापीय गतिकीय उत्क्रमणीय या केवल उत्क्रमणीय कहते हैं।

अनेक स्थितियों में प्रायोगिक अवस्थाओं में बहुत ही अधिक परिशुद्धता से क्रिया के उत्क्रमणीय व्यवहार को प्राप्त किया जा सकता है। प्रयोगशाला में व्यावहारिक रूप से उपापचयी अभिक्रियाएँ गैल्वेनिक सेल में (दे० § 98) की जा सकती हैं, ठोस पदार्थ का पिघलना तथा द्रव का वाष्प बनाना उत्क्रमणीयतापूर्वक किया जा सकता है।

यदि क्रिया उत्क्रमणीय है तथा स्थिर ताप पर (समतापीय)है, तो एन्ट्रॉपी का परिवर्तन अवशोषित ऊष्मा के साथ निम्न समीकरण द्वारा सम्बंधित है :

$$\Delta S = \frac{Q_{\text{उत्क्रमणीय}}}{T}$$

यहाँ $Q_{\text{उत्क्रमणीय}}$—ऊष्मा की मात्रा है जो समतापीय उत्क्रमणीय क्रिया में विन्यास द्वारा अवशोषित हुई है ; T—परम ताप है।

इस समीकरण की मदद से, उदाहरणतया, पदार्थों के पिघलने तथा क्वथन के समय एन्ट्रॉपी का परिवर्तन निश्चित किया जा सकता है।

अन्तिम समीकरण से स्पष्ट है कि ऊष्मा की किसी भी मात्रा का अवशोषण होने पर विन्यास की एन्ट्रापी उतनी ही बढ़ती है जितना ताप नीचे आएगा, जिस पर कि ऊष्मा का अवशोषण होता है। इसे निम्न प्रकार समझाया जा सकता है। ऊष्मा की एक ही मात्रा को दिए गए पदार्थ की दो समान मात्राओं पर ले आइये। अब मान लीजिए कि एक भाग तो कम ताप पर स्थित है, उदाहरणतया, 1 K पर, तथा दूसरा भाग—उच्च ताप पर स्थित है, जैसे कि 1000 K पर। स्पष्ट है कि दूसरी स्थिति की तुलना में पहली स्थिति में कणों की गति में आपेक्षिक वृद्धि, उनके अव्यवस्थित होने की मात्रा में वृद्धि तथा, फ़लत : एन्ट्रॉपी में वृद्धि अधिक होगी।

एंन्ट्रॉपी को ताप द्वारा विभाजित ऊर्जा में मापा जाता है तथा सामान्यत: जू०/K में व्यक्त करते हैं।

जैसा कि तापीयगतिकी में स्पष्ट है कि ऐसे फलन प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो क्रिया के घटने की दिशा पर होने वाले प्रभाव को आन्तरिक ऊर्जा के कम होने की प्रवृत्ति के रूप में, तथा विन्यास की अधिकतम सम्भव अवस्था प्राप्त करने की प्रवृत्ति के रूप में दिखाते हैं। किसी भी अभिक्रिया में ऐसे फलन के परिवर्तन का चिन्ह अभिक्रिया के स्वयं ही घटने की सम्भावना का मापदण्ड बन सकता है। स्थिर दाव पर होने वाली समतापी अभिक्रियाओं के लिए ऐसा फलन गिब्ज़ ऊर्जा* G है, जिसे समदाबी–समतापी विभव, समदाबी विभव या स्थिर दाब पर स्वतंत्र ऊर्जा भी कहते हैं।

गिब्ज़ ऊर्जा एन्थैल्पी, एन्ट्रॉपी तथा ताप के साथ निम्न अनुपात द्वारा सम्बंधित है: $G = H - TS$ यदि अभिक्रिया स्थिर दाब व ताप पर (ऐसी क्रिया को समदाबी-समतापी कहते हैं) होती है, तो अभिक्रिया के समय गिब्ज ऊर्जा का परिवर्तन $\Delta G = \Delta H - T\Delta S$ के बराबर होगा।

क्रिया के उत्क्रमणीय तथा समतापी होने पर ΔG का परम मान विपरीत चिन्ह के साथ अधिकतम कार्य-दक्षता के बराबर होगा, जिसे विन्यास नियत क्रिया में करता है:

$$\Delta G = - A_{\text{अधिकतम}}$$

कार्य-दक्षता क्रिया के दौरान किया गया वह सारा कार्य है जिसमें विस्तारण कार्य $P\Delta V$ सम्मिलित नहीं है।

यह सिद्ध किया जा सकता है कि स्थिर दाब व ताप पर अभिक्रियाएँ स्वयं ही गिब्ज़ ऊर्जा के कम होने की दिशा में होती हैं। चूँकि ΔG क्रिया की कार्य-दक्षता की मात्रा के बराबर है पर चिन्ह विपरीत है, तो इसे निम्न प्रकार कहा जा सकता है: केवल वही अभिक्रियाएँ स्वयं घट सकती हैं, जिनकी ऊर्जा के आधार पर कार्य दक्षता पूर्ण की जा सके।

कम या उच्च ताप पर कोई भी अभिक्रिया किस दिशा में होगी–इस बात का मोटे तौर पर अनुमान करने के लिए अभिक्रिया की गिब्ज़ ऊर्जा के लगभग समीकरणों को प्रयुक्त किया जा सकता है। कम तापों पर गुणांक T कम होगा तथा $T\Delta S$ गुणन का परम मान कम होगा। इस स्थिति में पर्याप्त तापीय प्रभाव वाली अभिक्रिया के लिये $|\Delta H| \gg |T\Delta S|$ है। अतः समीकरण $\Delta G = \Delta H - T\Delta S$ के अंतिम पद को

---

*जोज़ेई विलियर्ड गिब्ज़ 1839–1903 –प्रसिद्ध अमेरिकी भौतिकविद, रामायनिक तापीयगतिकी तथा साँख्यिकीय भौतिकी के निर्माताओं में से एक।

को छोड़ा जा सकता है; प्राप्त होगा :

$$\Delta G \approx \Delta H$$

पर्याप्त उच्च ताप पर (गुणांक T बहुत अधिक है) उत्क्रमणीय अनुपात प्राप्त होगा :

$$|\Delta H| \ll |T\Delta S|$$

गिब्ज़ ऊर्जा के समीकरण में पहले सदस्य को छोड़ने पर प्राप्त होगा :

$$\Delta G \approx -T\Delta S$$

ये लगभग समानताएँ यह बताती हैं कि कम ताप पर पहले लगभग मल्य में स्वयं होने वाली अभिक्रिया की दिशा का मापदण्ड अभिक्रिया के तापीय प्रभाव का चिन्ह हो सकता है, तथा उच्च ताप पर–एन्ट्रापी के परिवर्तन का चिन्ह। इसका अर्थ यह हुआ कि कम तापों पर केवल ऊष्माक्षेपी अभिक्रियाएँ हो सकती हैं, तथा उच्च तापों पर–वे अभिक्रियाएँ जिनके साथ एन्ट्रापी की वृद्धि होती है।

यहाँ यह कहना आवश्यक है कि किसी भी अभिक्रिया के ΔG का ऋणात्मक मान केवल अभिक्रिया के घटने की सम्भावना बतलाता है। वस्तुतः अभिक्रिया इस समय नहीं भी दिखाई दे सकती है। बात यह है कि चाल कम नहीं हो सकती; तब $\Delta G < 0$ होसे पर भी व्यावहारिकत: अभिक्रिया नहीं घटेगी। इन स्थितियों में अभिक्रिया की चाल बढ़ाने के लिए उत्प्रेरक को चुनना आवश्यक है। ऐसी स्थिति कम तापों पर प्राय: दिखाई देती है।

68. **मानक तापीयगतिकीय मात्राएँ. रासायनिक तापीयगतिकीय परिकलन.** अभिक्रिया में गिब्ज़ ऊर्जा के परिवर्तन की मात्रा ताप पर ही नहीं निर्भर करती है, बल्कि लिए गए तथा प्राप्त हुए पदार्थों की प्रकृति एवं सांद्रण पर भी निर्भर करती है। विभिन्न अभिक्रियाओं की तुलना को आसान करने के लिए मानक अवस्थाओं, यानी पदार्थों के समान सांद्रण में ΔG के मान की तुलना की जाती है (प्रत्येक पदार्थ की शुद्ध अवस्था, सांद्रण घोल के लिए 1000 ग्रा० घोल में 1 मोल के बराबर, गैसों के लिए आंशिक दाब सामान्य वायुमंडलीय दाब के बराबर)। मानक अवस्थाओं में पदार्थ की अवस्था मानक अवस्था कहलाती है।

तापीयगतिकीय मात्राएँ, जो मानक अवस्था में पदार्थ के लिए लाक्षणिक होती है, मानक मात्राएँ कहलाती हैं। उन अभिक्रियाओं के दौरान, जिनमें मानक अवस्था में स्थित मूल पदार्थ अभिक्रिया के उत्पादों में रूपांतरित हो जाते हैं तथा ये भी मानक अवस्था में होते हैं, तापीयगतिकीय मात्राओं के परिवर्तन तदनुरूपी मात्राओं के मानक

परिवर्तन कहलाते हैं। मानक मात्राओं और उनके परिवर्तनों को «o» चिन्ह द्वारा निर्दिष्ट किया जाता है। उदाहरणतया, मानक एन्ट्रॉपी S° चिन्ह द्वारा व्यक्त होती है, एन्थैल्पी के मानक परिवर्तन – ΔH° द्वारा, तथा गिब्ज़ ऊर्जा के मानक परिवर्तन – ΔG° के द्वारा।

$$\Delta G^{\circ} = -2.3RT \lg K$$

$R = 8.31$ जू०/(मोल $\cdot K$) मूल्य रखने पर ΔG° मात्रा निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त होती है:

$$\Delta G^{\circ} = -2.3 \times 8.31T \lg K = -19.1 \lg K \text{ जू०/मोल}$$

या

$$\Delta G^{\circ} = -0.0191T \lg K \text{ कि०जू०/मोल}$$

इस समीकरण की मदद से, ΔG° का मान जानते हुए, संतुलन का स्थिरांक ज्ञात किया जा सकता है, तथा इसके विपरीत, संतुलन के स्थिरांक का प्रायोगिक रूप से प्राप्त किये गए मान के अनुसार अभिक्रिया का ΔG° ज्ञात किया जा सकता है। वह किसी भी ताप के लिए सही है, लेकिन प्राय: 25° सें० (298K) पर प्रयुक्त होता है; यह ताप मानक के रूप में प्रयोग किया जाता है। यहाँ ताप को पाद-संख्या द्वारा व्यक्त करते हैं:

$$\Delta G^{\circ}_{298} = -0.0191 \times 298 \lg K_{298} \text{ कि०जू०/मोल}$$

या

$$\Delta G^{\circ}_{298} = -5.69 \lg K_{298} \text{ कि०जू०/मोल}$$

एन्थैल्पी तथा गिब्ज़ ऊर्जा के मान के परिवर्तनों को ज्ञात करते समय सामान्यत: पदार्थ के बनने की मानक एन्थैल्पी या गिब्ज़ ऊर्जा प्रयुक्त होती हैं। ये मात्राएँ मानक अवस्थाओं में सरल पदार्थ से दिए गए पदार्थ की बनने की अभिक्रियाओं में ΔH° तथा ΔG° है। इस बीच, यदि तत्त्व कई सरल पदार्थ बनाता है, तो इनमें से अधिकतम स्थायी (दी गई अवस्थाओं में) ले लिया जाता है। अत्यधिक स्थायी सरल पदार्थों के बनने की एन्थैल्पी तथा गिब्ज़ ऊर्जा शून्य के बराबर मानी गई है।

हैस्स नियम के अनुसार अभिक्रिया की एन्थैल्पी में मानक परिवर्तन (लघु रूप में: अभिक्रिया की मानक एन्थैल्पी) अभिक्रिया के उत्पादों की मानक एन्थैल्पियों के योग के बराबर है, लेकिन इस योग में मूल पदार्थों के बनने की मानक एन्थैल्पियों का योग घटा दिया गया है। इसी प्रकार, अभिक्रिया की गिब्ज़ ऊर्जा में मानक परिवर्तन (लघु रूप: अभिक्रिया की मानक गिब्ज़ ऊर्जा) मूल पदार्थों के बनने की मानक गिब्ज़ ऊर्जा को निकाल कर अभिक्रिया के उत्पादों के बनने की मानक गिब्ज़ ऊर्जाओं के योग

तालिका 8

298 K (25° सें.) पर कुछ पदार्थों के बनने की मानक ऐन्थैल्पी और मानक गिब्ज़ ऊर्जा। पदार्थों की कुल अवस्था के संक्षिप्त निर्देश: ग – गैसीय, द्र – द्रव, क – क्रिस्टलीय.

पदार्थ	ΔH° बनने कि॰ जूल/मोल	ΔCr° बनने कि॰ जूल/मोल
Al_2O_3 कुरंड	—1676	—1582
CH_4 (ग)	—74.9	—50.8
C_2H_2 (ग)	+226.8	+208.4
C_2H_4 (ग)	+52.3	+68.2
CO (ग)	—110.5	—137.1
CO_2 (ग)	—393.5	—394.4
CaO (क)	—635.5	—604.2
ClO_2 (ग)	+105	+122.3
Cl_2O (ग)	+75.7	+93.4
Cl_2O_7 (द्र)	+251	...
Cr_2O_3 (क)	—1141	—1059
CuO (क)	—162.0	—129.4
FeO (क)	—264.8	—244.3
Fe_2O_3 (क)	—822.2	—740.3
HF (ग)	—270.7	—272.8
HCl (ग)	—91.8	—94.8
HBr (ग)	—34.1	—51.2
HI (ग)	+26.6	+1.8
H_2O (ग)	—241.8	— 228.6
H_2O (द्र॰)	—285.8	—237.2
H_2S (ग)	—20.9	—33.6
MgO (क)	—601.8	—569.6
NH_3 (ग)	—46.2	—16.7
NH_4Cl (क)	—314.2	—203.2
NO (ग)	+90.2	+86.6
NO_2 (ग)	+33	+51.5
N_2O (ग)	+82.0	+104.1
OF_2 (ग)	+25.1	+42.5
SO_2 (ग)	—296.9	—300.2
SO_3 (ग)	—395.8	—371.2
SiO_2 (α = क्वार्ट्स)	—910.9	—856.7

के बराबर होते हैं। यहां अभिक्रिया के समीकरण को ध्यान में रखते हुए उसमें भाग लेने वाले मोलों की सँख्या के आधार पर ये योग किये जाते हैं।

तालिका 8 में $25°C(298K)$ पर कुछ पदार्थों के बनने की मानक एन्थैल्पियां तथा गिब्ज़ ऊर्जाओं के मान दिए गए हैं। इस प्रकार के अधिक सम्पूर्ण तथ्य निर्देशिकाओं में देखे जा सकते हैं, उदाहरणतया "भौतिकीय-रासायनिक मात्राओं की संक्षिप्त निर्देशिका" संपादक क० प० मिशेन्को तथा अ० अ० रावदेल, (सातवां संस्करण 1977)।*

उदाहरण 1.

$$Fe_2O_3 + 2Al = Al_2O_3 + 2Fe$$

अभिक्रिया के लिए $298K$ तथा स्थिर दाब पर तापीय प्रभाव तथा $\Delta H°_{298}$ व $\Delta G°_{298}$ ज्ञात करें।

अभिक्रिया के तापीय प्रभाव व $\Delta H°_{298}$ का परिकलन :

तालिका 8 में $298K$ पर Fe_2O_3 का $\Delta H°_{298}(-822,2$ कि० जू०/मोल) तथा Al_2O_3 का $\Delta H°_{298}(-1676$ कि० जू०/मोल) ज्ञात करके अंकगणितीय योग करें :

$$\Delta H°_{298} = -1676 - (-822.2) = -853.8 \text{ कि०जू०}$$

चूँकि अभिक्रिया की एन्थैल्पी का परिवर्तन स्थिर ताप व दाब पर मात्रा के अनुसार उसके तापीय प्रभाव के बराबर है लेकिन चिन्ह के अनुसार विपरीत है (दे० पृ० 229), तो अभिक्रिया का तापीय रासायनिक समीकरण निम्न प्रकार लिखा जाएगा :

$$Fe_2O_3 + 2Al = Al_2O_3 + 2Fe + 853.8 \text{ कि०जू०}$$

निम्न तापों पर अभिक्रिया की एन्थैल्पी के परिवर्तन का चिन्ह अभिक्रिया की सम्भव दिशा को लगभग रूप से निश्चित करने में मदद कर सकता है। विचाराधीन अभिक्रिया के लिए $\Delta H°$ का प्राप्त ऋणात्मक मान काफ़ी निम्न तापों पर उसके स्वयं घटने की सम्भावना को इंगित करता है। यहाँ $\Delta H°$ का बड़ा परम मान काफ़ी सम्भावना के साथ यह अनुमान करने में मदद करता है कि लगभग मानक अवस्थाओं में यह अभिक्रिया प्रत्यक्ष दिशा में घट सकती है।

---

*इस तथा कुछ अन्य निर्देशिकाओं में पदार्थों के बनने की मानक एन्थैल्पियो $\Delta H°$ बनने) तथा पदार्थों की मानक एन्ट्रापी ($S°$) के मान दिए गए हैं। पदार्थ के बनने की मानक गिब्ज़ ऊर्जा $\Delta G°$ बनने) का परिकलन करने के लिए पहले ही से पदार्थ के बनने की $\Delta S°$ बनने) मानक एन्ट्रापी ज्ञात कर ली जाती है, तथा फिर इस सूत्र को प्रयुक्त किया जाता है।

$$\Delta G°_{\text{बनने}} = \Delta H°_{\text{बनने}} - T\Delta S°_{\text{बनने}}$$

अभिक्रिया के ΔG°_{298} का परिकलन तालिका 8 में $298K$ पर Fe_2O_3 का ΔG° बनने (–740.3 कि० जू०/मोल) तथा Al_2O_3 का ΔG° बनने (–1582 कि० जू०/मोल) ज्ञात करके उनका योग कर दें :

$$\Delta G^\circ_{298} = -1582 - (-740.3) = -831.7 \text{ कि०जू०}$$

ΔG°_{298} का प्राप्त ऋणात्मक मान उस निष्कर्ष का समर्थन करता है, जो अभिक्रिया के ΔH°_{298} मूल्यांकन के आधार पर किया गया था। ΔH°_{298} तथा ΔH°_{298} के प्राप्त मानों में समानता का कारण, विशेषतः, यह है कि विचाराधीन अभिक्रिया के घटने में गैसों के अणुओं की सँख्या नहीं बदलती है (हमारे उदाहरण में न तो मूल पदार्थ, न ही अभिक्रिया के उत्पाद गैस हैं)। गैस के अणुओं की सँख्या में परिवर्तन होने पर विन्यास की एन्ट्रापी काफ़ी परिवर्तित हो सकती है (पदार्थ के गैसीय अवस्था में संक्रमण होने पर आण्विक अव्यवस्था काफी अधिक बढ़ जाती है), जिसके फलस्वरूप ΔH° तथा ΔG° के मान मात्रा के अनुसार न केवल अधिक भिन्न होते हैं, बल्कि इनके चिन्ह भी भिन्न हो सकते हैं (दे० उदाहरण 2) इसीलिए, ऐसी स्थितियों में ΔH°_{298} का चिन्ह अभिक्रिया के स्वयं घटने की दिशा को निश्चित करने का मापदण्ड नहीं बन सकता है।

विचाराधीन अभिक्रिया के लिए प्राप्त ΔG°_{298} के बड़े परम मान की मदद से पर्याप्त परिशुद्धता के साथ यह कहा जा सकता है कि यह अभिक्रिया प्रत्यक्ष दिशा में न केवल मानक ताप (25° सें०), बल्कि अन्य तापों पर भी, घटने की सम्भावना रखती है, ΔG°_{298} के कम परम मानों की स्थिति में तथा, इसी प्रकार, ऐसी अभिक्रियाओं के लिए भी जिनके घटने में गैसों के अणुओं की सँख्या परिवर्तित होती है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है : ऐसी स्थितियों में ΔG° की ताप पर निर्भरता मालूम होनी चाहिए।

उदाहरण 2

$$CuO + C = Cu + CO$$

अभिक्रिया के लिए $298K$ तथा स्थिर दाब पर तापीय प्रभाव तथा ΔH°_{298} एवं ΔG°_{298} ज्ञात करें।

अभिक्रिया के ΔH°_{298} का परिकलन तालिका 8 में 298K पर CuO का ΔH° बनने (–162.0 कि० जू०/मोल) तथा CO का ΔH° बनने (–110.5 कि० जू०/मोल) ज्ञात करके उनका योग कर दे :

$$\Delta H^\circ_{298} = -110.5 - (-162.0) = 51.5 \text{ कि०जू०}$$

अत :

$$Cuo + C = Cu + CO - 51.5 \text{ कि०जू०}$$

प्राप्त मान ΔH°_{298} धनात्मक है, लेकिन परम मात्रा के अनुसार कम है। इसीलिए वह कम तापों पर भी अभिक्रिया के घटने की दिशा का मापदण्ड नहीं बन सकता है।

इसके अतिरिक्त, अभिक्रिया के दौरान विचाराधीन स्थिति में गैसों के अणुओं की सँख्या बदलती है। अभिक्रिया के ΔH°_{298} का परिकलन तालिका 8 में 298K पर CuO का ΔG° बनने (–129.4 कि० जू०/मोल) तथा CO का ΔG° बनने (–137.1 कि० जू०/मोल) ज्ञात करके उनका योग कर दें:

$$\Delta G^{\circ}_{298} = -137.1 - (-129.4) = -7.7 \text{ कि०जू०}$$

ΔG°_{298} का प्राप्त मान भी परम मात्रा के अनुसार कम है, परन्तु ऋणात्मक है। वह मानक अवस्थाओं में अभिक्रिया के प्रत्यक्ष दिशा में घटने की सम्भावना बताता है, लेकिन मानक अवस्थाओं से भिन्न अवस्थाओं में उसकी दिशा निश्चित करने के बारे में वह कोई आधार नहीं बनाता है।

इस उदाहरण में ΔH°_{298} तथा ΔG°_{298} के भिन्न चिन्हों का कारण अभिक्रिया के दौरान गैसों के अणुओं की सँख्या का बढ़ना है एवं इसके फलस्वरूप एन्ट्रापी का बढ़ना है। इसीलिए ही ताम्र के अपचयन की ऊष्माशोषी अभिक्रिया की स्वयं घटने की सम्भावना नज़र आती है।

उदाहरण 3

$$NH_3 + HCl = NH_4Cl$$

अभिक्रिया का संतुलन स्थिरांक ज्ञात करें।

पहले अभिक्रिया का ΔG°_{298} ज्ञात कीजिए। इसके लिए तालिका 8 में 298K पर NH_3 का ΔG° बनने (– 16.7 कि० जू०/मोल), HCl का ΔG° बनने (–94.8 कि० जू०/मोल) तथा NH_4Cl (– 203.2 कि० जू०/मोल) मालूम करके इनका योग कर दें।

$$\Delta G^{\circ}_{298} = -203.2 - (-16.7 - 94.8) = -91.7 \text{ कि०जू०}$$

अब प्राप्त मान को समीकरण में रख दीजिए (दे० पृ० 234)

$$\Delta G^{\circ}_{298} = -5.69 \lg K_{298}$$

प्राप्त हुआ :

$$-91.7 = -5.69 \lg K_{298}$$

अत:

$$\lg K_{298} \approx 16$$

अर्थात्

$$K_{298} = \frac{1}{[NH_3]\,[HCl]} \approx 10^{16}$$

प्राप्त स्थिरांक का बड़ा मान यह सिद्ध करता है कि मानक ताप पर $NH_3 + HCl \rightleftarrows NH_4Cl$ संतुलन दायीं ओर तीव्रता से विस्थापित है; अन्य शब्दों में 25° से० पर अमोनिया क्लोराइड एक स्थायी यौगिक है।

अध्याय VII

जल. विलयन

जल

69. **प्राकृतिक जल. मानव के लिये जल का महत्व.** प्रकृति में जल स्वतंत्र अवस्था में ही नहीं बल्कि मिश्रित अवस्था में भी मिलता है। स्वतंत्र अवस्थाओं में वह सभी तीन अवस्थाओं में विद्यमान होता है। वाष्प के रूप में वह वायु के संयोजन में होता है। द्रव जल सतही तथा भूमिगत जलाशयों को बनाता है। ठोस जल का मुख्य द्रव्यमान – बर्फ – पृथ्वी के ध्रुवीय क्षेत्रों में स्थित है।

मानव के लिये सभी प्राकृतिक जलाशय महत्वपूर्ण हैं। विशेष महत्व पृथ्वी के समुद्र रखते हैं जिनमें बड़ी सँख्या में विभिन्न प्रकार के जंतु व पौधे हैं। सागरों व समुद्रों के जीव विज्ञानी सम्पति का व्यवसायी तौर पर उपयोग काफी अधिक बढ़ गया है। सन् 1971 में 52000000 टन समुद्री मछली, 5 000 000 टन मृदुकवची तथा परूषकवची जंतु निकाले गये।

सागर केवल खाद्य पदार्थों का ही स्रोत नहीं है। उसके तल से तेल और गैस निकाली जाती है जिसकी मात्रा वर्तमान समय में पृथ्वी से प्राप्त होने वाली कुल मात्रा का 20% है। सागर के तल पर संग्रथन विस्तारित रहती है – यानी खनिज जिनमें लोह, मैंग्नीज़ तथा कोबाल्ट प्रचुर मात्रा में होता है। समुद्री जल में सभी धातुओं के लवण विलीन होते हैं। सोडियम तथा मैंग्नीशियम लवण काफ़ी मात्रा में विद्यमान होते हैं, अतएव अब समुद्री जल में से मैंग्नीशियम प्राप्त करना काफ़ी किफायती है। अन्य धातुओं के लवण कम सान्द्रता में विद्यमान होते हैं। लेकिन समुद्र का आकार बड़ा होने से उसमें विद्यमान तुलनात्मक रूप से अनेक दुर्लभ धातुओं की मात्रा काफ़ी अधिक होती है। उदाहरणतया, सागर में यूरेनियम की कुल मात्रा 4 अरब टन है, व लीथियम – 2000 अरब टन है। सागर से धातुओं को बड़ी मात्रा में बाहर निकालने की किफायती तकनीकी अभी अज्ञात है, लेकिन इसकी खोज पर काफ़ी तेज़ी से कार्य किया जा रहा है। निस्संदेह भविष्य में सागर का जल अनेक धातुओं को प्राप्त करने का स्रोत बन जाएगा।

सागर – शुद्ध जल का असीमित स्रोत है, जिसे उसमें से स्वच्छ रूप में निकाला जा सकता है। पृथ्वी के मौसम की भविष्यवाणी सागर के जल की गति तथा वायुमंडल के साथ उसकी पारस्परिक क्रिया की जानकारी के बिना असम्भव है।

ऊपर बताये गये इन थोड़े-से गुणों से स्पष्ट है कि सागर का व्यापक अध्ययन मानव-जीवन के लिये कितना महत्वपूर्ण है। विशाल रूप में सागर का अध्ययन पृथक देशों के वैज्ञानिक संस्थानों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों द्वारा किया जाता है।

सागर के जल में पदार्थ आयनी, आण्विक तथा कोलाइडी (दे० अध्याय X) अवस्थाओं में होते हैं। इसके अलावा, इसमें निलंबन भी विद्यमान होते हैं। अधिकतर विलीन पदार्थ गैस तथा लवण होते हैं। सागर के जल में गैसों में अधिकतम मात्रा में आक्सीजन तथा नाइट्रोजन होती है।

सागर में आक्सीजन वायुमंडल से आती है। सभी गहराइयों पर वह पौधों व जीव-जंतुओं के श्वास लेने की क्रिया के फलस्वरूप तथा जीवाणुओं द्वारा कार्बनिक पदार्थों के विसर्जन के परिणामस्वरूप विस्तारित होती है। सागर की सतह पर आक्सीजन की मात्रा अधिकतम होती है तथा जल के ताप पर निर्भर करते हुये उसकी मात्रा 0.2 से 1 मिलीमोल/ली० होती है।

सागर के जल में नाइट्रोजन का स्रोत उसी प्रकार वायुमंडल है। एक लीटर सागर के जल में 0.5 मिली मोल नाइट्रोजन होती है।

सागर जल में इसी प्रकार कार्बन डाइऑक्साइड भी होती है। जल के साथ उसकी अभिक्रिया के फलस्वरूप अनेक सतुलन बनते हैं:

$$CO_2 + H_2O \rightleftarrows H_2CO_3 \rightleftarrows H^+ : HCO_3^- \rightleftarrows 3H^+ : CO_3^{2-}$$

ये संतुलन वायुमंडल में CO_2 की मात्रा, ताप और जल में जीव-विज्ञानी क्रियाओं की तीव्रता के आधार पर आसानी से बिगड़ जाते हैं। इसीलिये सामान्यतः समुद्री जल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा के लिये CO_2, H_2CO_3, HCO_3 और CO_3^{2-} की सान्द्रताओं का योग लाक्षणिक होता है (तथाकथित सामान्य कार्बोनिक अम्ल)।

समुद्री जल का कड़वा-नमकीन स्वाद होता है। यदि इसका क्वथन किया जाये तो लवण मिश्रण का 78% भाग सोडियम क्लोराइड होगा। इसी कारण से इसका स्वाद नमकीन होता है। इसी प्रकार इसमें मैग्नीशियम लवण भी काफी मात्रा में होते हैं, जिनके कारण समुद्री जल का स्वाद कड़वा होता है। समुद्री जल के लवण द्रव्यमान का अधिकांश भाग तथाकथित मुख्य आयन बनाते हैं, जिन पर विलीन लवणों के सामान्य द्रव्यमान का 99.99% भाग आता है। ये आयन हैं: Cl^-, SO_4^-, HCO_3^- (व CO_3^{2-}, Bi^-, F^-, $H_2BO_3^-$, Na^+, Mg^{2+}, Ca^{2+}, K^+ व Si^{2+})।

सागर के अधिकांश भाग में सामान्य लवणों का द्रव्यमान 3.4 से 3.5% तक होता है। स्वाभाविक है कि अधिक जल वाली नदियों के सागर में गिरने की जगह

पर लवणों की कुल सान्द्रता (जल की लवणता) कम होती है। जल के वाष्पण तथा वर्षा के फलस्वरूप भी जल की लवणता परिवर्तित होती है। लेकिन खुले सागर में मुख्य आयनों की सापेक्षिक मात्राएँ सामान्यतः स्थिर रहती है और इस बात पर निर्भर नहीं करती कि नमूना किस स्थान से लिया गया है। इसीलिए सागर के किसी भाग की लवणता ज्ञात करने के लिये उसमे विद्यमान किसी एक मुख्य आयन की मात्रा ज्ञात करना पर्याप्त होगा ; सामान्यतः इस के लिये क्लोराइड-आयन की मात्रा मालूम की जाती है। इसके अतिरिक्त, समुद्री जल की लवणता उसकी वैद्युतचालकता मालूम करके निश्चित की जा सकती है।

सागर की तुलना में नदियों एवं अधिकतर झीलों में कम लवण होते हैं। इनमें अधिकांश वे लवण होते है जिनमें निम्न आयन विद्यमान होते हैं : Cl^{2+}, Mg^{2+}, Na^{+}, SO_4^{-}, HCO_3^{-}, Cl^{-} (इसी प्रकार दे० § भाग र में 98)।

पृथ्वी के क्रोड़ में भी स्वतंत्र जल होता है। वह पहाड़ी चट्टानों में रंध्रों, विदरिकाओं और रिक्त स्थानों की पूर्ति करता है। विभिन्न व भूमिगत जलों में लवणों की मात्रा बड़े पसिरों में परिवर्तित होती है। कम लवणता वाले भूमिगत जल का प्रयोग मानव काफ़ी पहिले से करता रहा है।

पृथ्वी की सतह का काफ़ी भाग बर्फ से ढका हुआ है। यह भाग भूमि का 11% है तथा समुद्र का 7% भाग बर्फ से ढका है। ध्रुवीय क्षेत्रों में बर्फ की मोटाई 3-4 कि० मी० तक होती है। बर्फ में पृथ्वी के स्वच्छ जल का दो-तिहाई भाग है।

बर्फीली सतह के साथ पृथ्वी के मौसम में परिवर्तनों, सागरों के स्तर में परिवर्तन का काफ़ी सम्बन्ध है। सागर, भूमि और पृथ्वी के वायुमंडल के साथ-साथ बर्फ भी प्रकृति का महत्वपूर्ण अंग है। इसीलिये वर्तमान समय में सागर की भाँति बर्फ का भी व्यापक अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किया जा रहा है।

तालिका 9

1975 में सोवियत संघ में जल का उपयोग

उपयोग	मात्रा कि० मी०^3/वर्ष
भूमि की सिंचाई	168.1
मछली उद्योग	45.6
तापीय ऊर्जा	39.5
उद्योग	38.1
शहरों तथा गांवों में जल	16.2
कृषि के लिये भूमि-उद्धार तथा जल संचय	10.0

तालिका 10

कुछ उद्योग क्रियाओं में जल का प्रयोग.

उद्योग क्रिया	जल का द्रव्यमान (टन) जो एक टन उत्पाद बनाने में प्रयोग किया गया
तेल का शुद्धिकरण	20
इस्पात का प्रगलन	120
ऐलुमिनियम का उत्पादन	1500
संश्लिष्ट रेशे का उत्पादन	2000
स्ट्रेप्टोमाइसिन का उत्पादन	2.16^6

पृथ्वी के वायुमंडल में स्थित जलीय वाष्प के संघनन के फलस्वरूप वर्षा होती है। सामान्यत: संघनन ठोस भागों पर आरम्भ होता है जो वायुमंडल में विभिन्न स्रोतों से आ जाते हैं। उनका काफ़ी भाग लवण होते हैं जो सागर में लहरों के फलस्वरूप जल के उछलने से वायु में प्रवेश करते हैं। वायु के ऊपर उठते बिंदुओं के साथ सबसे हल्की बूँदे वायुमंडल की उच्च सतहों में चली जाती हैं, उनमें विद्यमान जल का वाष्पण हो जाता है और बनने वाले लवण के क्रिस्टल जलीय वाष्प की अधिक माता के क्षेत्र में आकर उसका संघनन आरम्भ कर सकते हैं। बादल बनते हैं—वायुमंडलीय संरचनाएँ जल की बूँदों या छोटे आकार वाली बर्फ के क्रिस्टलों से बनी होती है। बादल में जल-कणों का व्यास 4 से 140 मिक्रो मी० तक का होता है। बूँदों या क्रिस्टलों का आकार बढ़ने पर वे वायुमंडल में लटके नहीं रह सकते और वायुमंडलीय अवसादन आरम्भ हो जाता है।

वर्षा के जल में घोल के रूप में लवणों, हवा की विभिन्न गैसों आदि की अशुद्धता कुछ अंशों में विद्यमान होती है। पर सागर तटवर्ती स्थानों में वर्षा-जल में लवणों की माता कुछ अधिक हो सकती है। वर्षा के साथ जमीन को प्राप्त होने वाले खनिजों की माता काफ़ी है। पृथ्वी पर प्रति वर्ग-किलोमीटर सतह विभिन्न यौगिकों के रूप में 700 कि० ग्रा० नाइट्रोजन प्रति वर्ष प्राप्त करती है।

पृथ्वी पर असंयुक्त रूप में प्राप्त जल का आयतन लगभग 1450 मिलियन घन कि० मी० है। इसमें सागरों का अंश 1370 मिलियन घन कि० मी० है, हिम-नदियों का 30 मिलियन कि० मी०^3 और नदियों व झीलों का सिर्फ 0.5 मिलियन कि० मी०^3। वायुमंडल में आर्द्रता के रूप में 0.013 मिलियन कि० मी^{3} द्रव जल है।

पृथ्वी के गर्भ में छिपे असंयुक्त जल की मात्रा का अन्दाज लगाना कठिन है। सिर्फ भूगत झीलों में पानी की मात्रा 0.35 मिलियन कि० मी०^3 के लगभग है।

कई पहाड़ी खनिजों में जल संयुक्त रूप में विद्यमान होता है। खनिजों में जल किस शक्ति से कैद है, इसके आधार पर यह जल संरचनात्मक, क्रिस्टलात्मक तथा अवशोषित हो सकता है। संरचनात्मक जल सबसे अधिक शक्ति से जुड़ा होता है। उसे हर खनिज से एक खास तापक्रम अंतराल में ही अलग किया जा सकता है, पर तापक्रम $300°C$ से कम नहीं होना चाहिये। क्रिस्टलात्मक जल (दे० §75) $300°C$ से कहीं कम कम तापक्रम पर अलग होता है। अवशोषित जल (दे० § 109) काफी कम शक्ति से संयुक्त रहता है और $100\text{-}110°C$ तक गर्म करने पर अलग हो जाता है।

पौधों, जंतुओं व मानव के जीवन के लिये जल का बहुत अधिक महत्व है। आधुनिक विचारों के अनुसार जीवन का आरम्भ सागर से हुआ है। प्रत्येक जीव में जल वह माध्यम है, जिसमें वे रासायनिक क्रियाएँ स्थान लेती हैं जो जीवन के लिये आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त, वह स्वयं अनेक जीव-रासायनिक अभिक्रियाओं में भाग लेता है।

जल के उपयोग के साथ मानव के जीवन का बहुत अधिक बड़े स्तर पर सम्बन्ध है। स्वच्छ जल कृषि, उद्योग के सभी क्षेत्रों, तथा निर्माण में उपयोग किया जाता है। तालिका 9 एवं 10 में जल के उपयोग की मात्राएँ दी गई हैं।

वर्तमान समय में सभी औद्योगिक या घरेलू कार्यों के लिये लगभग 150 कि० मी०^3 स्वच्छजल व्यय होता है। लेकिन स्रोतों में से चार गुना अधिक यानी 600 कि० मी०^3 प्रति वर्ष जल निकाला जाता है। यह अन्तर जलाशय वापिस लौट जाने वाले जल का है। इन वापिस लौटने वाले (मल) जलों में प्राकृतिक जलाशयों को गन्दा व जहरीला करने वाले पदार्थों की मात्रा होती है। इस गन्दगी से बचने के लिये मल जलों को शुद्धिकरण उपकरणों में से गुज़ारा जाता है तथा शुद्ध जल को मिलाकर जलाशयों में डाला जाता है। मल जलों में मिलाये जाने वाले शुद्ध जल की मात्रा 6000 कि० मी०^3 प्रति वर्ष है। यह एक वर्ष सभी नदियों द्वारा सागर में लाये जाने वाली जल की मात्रा (लगभग 40000 कि० मी०^3) का काफ़ी बड़ा भाग है। इसीलिये अभी से ही पृथ्वी के अनेक औद्यौगिक रूप से विकसित भागों में शुद्ध जल की काफ़ी कमी महसूस की जा रही है।

इन बातों से स्पष्ट है कि शुद्ध जल की कमी का मुख्य कारण उसका उपयोग नहीं है उसका उद्योगों से वापिस लौटना नहीं है, बल्कि प्राकृतिक जलों का उद्योग व सामाजिक मल द्वारा गन्दा होना एवं शुद्ध जल का उनमें डाला जाना है। इसी संदर्भ में अनेक देशों में, तथा सर्वप्रथम समाजवादी देशों में, जलीय सम्पदा का नियंत्रण सरकार के हाथ में है।

मल जलों के शुद्धिकरण के साथ-साथ प्राकृतिक जल को गन्दा होने से बचाने के लिये एक और विधि है। यह है गन्दा करने वाली उत्पादन तकनीकी को बदलना ये परिवर्तन है: प्रयोग किये जाने वाले जल की मात्रा को कम करना तथा बंद तकनीकी श्रृंखला को बनाना, जिसमें प्रयोग किया गया जल पर्याप्त मात्रा में शुद्ध किया जाता है और फिर उत्पादन क्रिया में प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार इसी जल को अनेक बार प्रयोग किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप स्वच्छ जल की मात्रा काफ़ी कम व्यय होती है, तथा प्रयुक्त जल का जलाशय में पुनः लौट-जाना व्यावहारिक रूप से बंद हो जाता है।

लेकिन फिर भी शुद्ध जल का प्रयोग समय के साथ-साथ बढ़ता है, जिसका कारण है विश्व की जनसँख्या का और उद्योगों का बढ़ना। समुद्र तथा सागर के जलों को प्रयोग करने की समस्या सामने आती है। उच्च लवणता के फलस्वरूप समुद्री जल बहुत ही कम स्थितियों में तकनीकी कार्यों के लिये ही प्रत्यक्ष रूप से प्रयुक्त होता है। इसीलिये घरेलू कार्यों या उद्योगों में इस जल को प्रयुक्त करने से पहले उसकी लवणता दूर की जाती है। वर्तमान समय में समुद्री जल या गन्दे औद्यौगिक जल में से विलीन गन्दगी को दूर करने की कई विधियाँ ज्ञात कर ली गई हैं। इसके लिये आसवन, झिल्लियों को प्रयुक्त करने वाली विधियाँ, रासायनिक क्रियाएँ, जीव-विज्ञानी विधियाँ प्रयोग की जाती हैं।

70. **जल के भौतिक गुण**. शुद्ध जल रंगहीन पारदर्शी द्रव है। ठोस अवस्था में से तरल अवस्था में आने पर अन्य सभी पदार्थों की भाँति उसका घनत्व कम नहीं होता है, बल्कि बढ़ जाता है। 4° सें पर जल का घनत्व अधिकतम होता है तथा केवल और अधिक गर्म करने पर उसका घनत्व कम होता है।

यदि कम ताप पर य तरल अवस्था में से ठोस अवस्था में आने पर जल का घनत्व अधिकांश पदार्थों की भाँति ही बदलता, तो सर्दियाँ आने पर प्राकृतिक जल की सतही परतें 0° सें. तक ठंडी हो जाती, और अधिक गर्म परतों को स्थान देते हुए तली पर बैठ जाती, और यह क्रम तब तक ज़ारी रहता जब तक कि सम्पूर्ण जलाशय का ताप 0° सें. न हो जाता। इसके अलावा, जल जमना शुरू हो जाता, बनने वाले बर्फ के टुकड़े तल तक पहुँच जाते एवं जलाशय अपनी पूरी गहराई तक जम जाता। इसके फलस्वरूप जीवन के अनेक स्वरूप जल में असम्भव हो जाते। लेकिन चूँकि जल का अधिकतम घनत्व 4° सें. पर होता है तो ठंडा होने के कारण उसके किनारों का विस्थापन इस ताप पर समाप्त हो जाता है। ताप के और कम होने पर ठंडी परत, जिसका घनत्व कम होता है, सतह पर ही रह जाती है, जम जाती है, तथा इस प्रकार नीचे स्थित परतों को टंड से जमने से बचाती है।

प्रकृति के जीवन में इस तथ्य का भी बहुत महत्व है कि जल की तापग्राहिता

असाधारण रूप से अधिक होती है [4.18 जू०/(ग्रा० K]* । इसीलिए रात्रि में, तथा इसी प्रकार गर्मी से सर्दी होने पर, जल धीरे-धीरे गर्म होता है। इस प्रकार वह पृथ्वी पर ताप का नियंत्रण रखता है।

इस कारणवश कि बर्फ पिघलने पर जल का आयतन कम हो जाता है, दाब बर्फ के पिघलने का ताप कम कर देता है। यह ले शाटेल्ये नियम के अनुसार है। वस्तुतः मान लें कि बर्फ व तरल जल 0° सें. पर संतुलन की अवस्था में हैं। दाब के बढ़ने से, ले शाटल्ये के नियम के अनुसार, संतुलन का विस्थापन उस कला के बनने की ओर होगा, जो उसी ताप पर कम आयतन घेरती है। इस स्थिति में यह कला तरल अवस्था है। अतएव, 0° सें. पर दाब के बढ़ने से बर्फ तरल अवस्था में रूपांतरित हो जाती है, तथा इसी का यह अर्थ है कि बर्फ के पिघलने का ताप कम हो जाता है।

जल के अणु की कोणीय संरचना होती है; उसे बनाने वाले नाभिक समद्विबाहु त्रिभुज बनाते हैं जिसके आधार पर दो प्रोटोन स्थित होते हैं, तथा शिखर पर– ऑक्सीजन के परमाणु का नाभिक। अन्तरा नाभिकीय दूरी O–H, 0.1 ना० मी० के लगभग है; हाइड्रोजन के परमाणुओं के नाभिकों के बीच की दूरी लगभग 0.15 ना० मी० होती है। जल के अणु

$$\mathrm{H}:\ddot{\underset{\cdot\cdot}{\mathrm{O}}}:\mathrm{H}$$

में आक्सीजन के परमाणु के संयोजकता इलेक्ट्रानी कोश को बनाने वाले आठ इलेक्ट्रानों में से दो इलेक्ट्रानी युगल O–H सहसंयोजी आबन्ध बनाते हैं, तथा अन्य चार इलेक्ट्रान दो अविभाजित इलेक्ट्रानी युगल बनाते हैं।

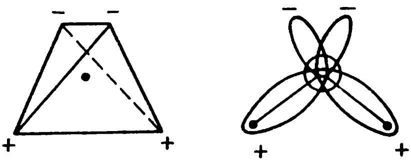
जैसा पृ० 159 पर बताया गया था कि जल के अणु में आक्सीजन का परमाणु Sp^3 – संकरण की अवस्था में स्थित होता है। इसीलिए संयोजकता कोण HOH (104.3°) चतुर्फलकीय (109.5°) के समीप है। O–H आबन्ध बनाने वाले इलेक्ट्रान आक्सीजन के अधिक वैद्युत ऋणात्मक परमाणु की ओर विस्थापित हैं, जिसके फलस्वरूप हाइड्रोजन के परमाणु पर प्रभावी धनात्मक आवेश आ जाते हैं (चित्र 71)। संकर Sp^3 – कोशों पर स्थित अविभाजित इलेक्ट्रानी युगल आक्सीजन के परमाणु की नाभिक के प्रति विस्थापित है तथा दो ऋणात्मक ध्रुव बनाते हैं।

वाष्परूपी जल का आण्विक द्रव्यमान 18 के बराबर है तथा इसके सरलतम सूत्र का तदनुरूप है। लेकिन तरल जल का आण्विक द्रव्यमान, जो अन्य विलयनों में उसके

---

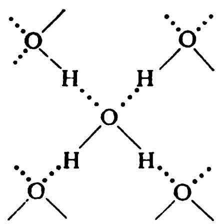
*तुलना के लिए कुछ पदार्थों की ताप-ग्राहिता दे रहे हैं [जू०/(ग्रा० K]: रेत – 0.79; चूना – 0.88; सोडियम क्लोराइड 0.88; ग्लिसरीन – 2.43; ऐथिल स्प्रिट –2.85।

घोलों के अध्ययन द्वारा निश्चित होता है (दे० § 80), अधिक उच्च है। यह इस बात का प्रमाण है कि तरल जल में अणुओं का संयोजन होता है, यानी अधिक जटिल समूहों में उनका जुड़ना। जल के असाधारण रूप से उच्च गलनांक व क्वथनांक इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं (दे० पृ० 182 पर चित्र 57)। जैसा कि §47. में बताया जा चुका है, जल के अणुओं का संयोजन उनके बीच बनने वाले हाइड्रोजन आबन्धों के कारणवश है।



चित्र 71. जल के अणुओं की संरचना का आरेख।

ठोस जल (बर्फ) में प्रत्येक अणु में आक्सीजन का परमाणु निम्न आरेख के अनुसार जल के पड़ोसी अणुओं के साथ दो हाइड्रोजन आबन्ध बनाता है, जिसमें हाइड्रोजन आबन्ध बिन्दु रेखा द्वारा दिखाये



गये हैं। बर्फ की आयतन संरचना का आरेख चित्र 72 में दिया गया है। हाइड्रोजन आबन्धों के बनने से जल के अणुओं का स्थान निर्धारण इस प्रकार होता है कि वे परस्पर अपने विभिन्न चिन्हों वाले ध्रुवों द्वारा मिलते हैं। अणु स्तर बनाते है, तथा इनमें से प्रत्येक स्तर तीन अणुओं के साथ जुड़ा होता है जो उसी स्तर के होते हैं तथा एक अणु पड़ोसी स्तर का होता है। बर्फ़ की संरचना न्यूनतम घनत्व वाली संरचनाओं में से है, उसमें रिक्तताएँ होती हैं जिनके आकार H_2O के अणु के आकार से कुछ बड़े होते हैं।

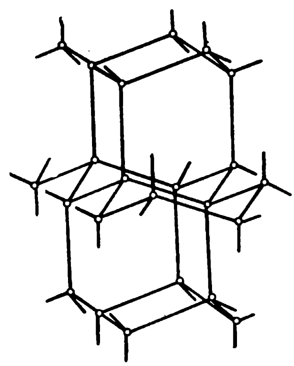
बर्फ के गलन से उसकी संरचना नष्ट हो जाती है। लेकिन द्रव जल में भी अणुओं के बीच हाइड्रोजन आबन्ध बने रहते हैं : बर्फ की संरचना के टुकड़ो की भाँति सहचारी बनते हैं जो जल के अणुओं की अधिक या कम सँख्या से बनते हैं। लेकिन, बर्फ के विपरीत, प्रत्येक सहचारी की जीवन-अवधि बहुत ही कम होती है : हर समय एक पुंज बिगड़ता है तो दूसरा बनने लगता है। एसे "बर्फीले" पुंजों की रिक्तता में जल के अकेले अणु स्थित हो सकते हैं ; इस समय जल के अणुओं का स्थित होना काफी सघन हो जाता है। इसीलिये ही बर्फ के गलन से जल का आयतन कम हो जाता है और घनत्व बढ़ जाता है।

जल को गर्म करने पर बर्फ की संरचना के टुकड़ों की सँख्या और भी कम हो जाती है जिसके कारण जल का घनत्व और अधिक हो जाता है। 0° से 4° सें. ताप के अंतराल में यह प्रभाव तापीय विस्तारण पर हावी हो जाता है, अतएव, जल का घनत्व बढ़ता जाता है। लेकिन 4° सें. से अधिक गर्म करने पर अणुओं की तापीय गति की तीव्रता का प्रभाव बढ़ जाता है, और जल का घनत्व कम हो जाता है। इसीलिए 4° सें. पर जल का घनत्व अधिकतम होता है।

जल के गर्म होने पर ऊष्मा का कुछ भाग हाइड्रोजन आबन्धों को तोड़ने में खर्च हो जाता है (जल में हाइड्रोजन आबन्ध की विपाटन ऊर्जा लगभग 25 कि० जू०/मोल है)। यही जल की उच्च तापग्राहिता का कारण है।

जल के अणुओं के बीच हाइड्रोजन आबन्धों का पूर्णतः विपाटन केवल जल के वाष्प बनने पर होता है। 20° सें. पर जल में लगभग आधे हाइड्रोजन आबन्ध बने रहते हैं।

71. **जल का कलीय रेखाचित्र.** कलीय रेखाचित्र उन मात्राओं, जो विन्यास की अवस्था को व्यक्त करती है तथा विन्यास में कलीय रूपांतरणों (ठोस अवस्था से द्रव अवस्था, द्रव अवस्था से गैसीय अवस्था, इत्यादि) के बीच निर्भरता का आरेखी चित्र है। कलीय रेखाचित्र रसायन में काफ़ी प्रयुक्त किये जाते है। एक अवयवी विन्यासों के लिये सामान्यताः कलीय रेखाचित्र प्रयुक्त करते हैं जो कलीय रूपांतरणों क़ी ताप तथा दाब पर निर्भरता व्यक्त करते हैं, उन्हें निर्देशांकों P–T में कलीय रेखाचित्र कहते हैं।



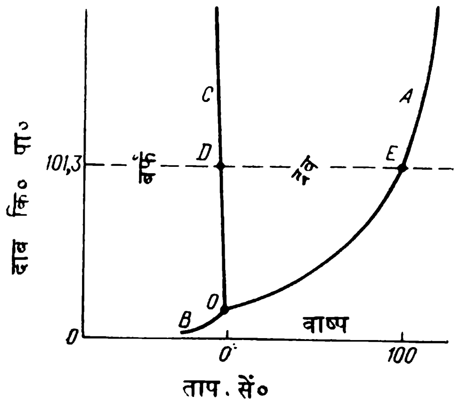
चित्र 72. बर्फ की संरचना का आरेख।

चित्र 73 में आरेख के रूप में (स्केल की परिशुद्धता को ध्यान में न रखते हुए) जल का प्रावस्थीआरेख दिया गया है। आरेख कोई भी बिन्दु ताप व दाब के निश्चित मानों का प्रतीक है।

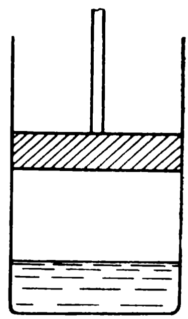
रेखाचित्र जल की उन अवस्थाओं को दिखा रहा है जो तापीय गतिकी के अनुसार निश्चित ताप व दाब पर स्थिर है। वह तीन वक्रों से बना है। ये सभी सम्भव तापों व दाबों को तीन क्षेत्रों में बाँटते हैं, जो बर्फ, तरल व वाष्प के सूचक हैं।

आइये प्रत्येक वक्र को अधिक विस्तार से देखें। *OA* वक्र से शुरू करें (चित्र 73), जो वाष्प के क्षेत्र को तरल अवस्था के क्षेत्र से पृथक करता है। अब एक सिलिंडर की कल्पना कीजिए जिसमें से वायु निकाल ली गई है तथा इसके बाद इस में शुद्ध जल की कुछ मात्रा डाल दी गई है, जो गैसों व विलनशील पदार्थों से रहित हैं। सिलिंडर में पिस्टन लगा हुआ है जो किसी एक स्थिति में है (चित्र 74)। कुछ समय बाद

जल का एक भाग वाष्प में बदल जाएगा तथा उसकी सतह पर संतृप्त वाष्प बन जाएगी। इसका दाब मापा जा सकता है तथा आपको विश्वास हो जाएगा कि वह समय के बीतने के साथ नहीं बदलता है और पिस्टन की स्थिति पर भी निर्भर नहीं करता है। यदि सारे विन्यास का ताप बढ़ा दिया जाए तथा संतृप्त वाष्प का दाब मापा जाये तो आप देखेंगे कि वह बढ़ गया है। विभिन्न तापों पर ये माप दोहराने से हमें संतृप्त जल वाष्प की ताप पर निर्भरता ज्ञात हो जाएगी। *OA* वक्र इस निर्भरता का ग्राफ है: वक्र के बिन्दु ताप व दाब के मानों के वे युगल दर्शाते हैं जिन में तरल जल और जल वाष्प एक दूसरे के साथ संतुलन बनाते हैं—यानी सहजीवी हैं। OA



चित्र 73. कम दाब के क्षेत्र में जल की अवस्था का रेखाचित्र।



चित्र 74. जलीय वाष्प के साथ संतुलन की अवस्था में जल के सथा सिलिंडर।

वक्र द्रव-वाष्प के संतुलन का वक्र कहलाता है या क्वथन का वक्र कहलाता है। तालिका 11. (पृ० 249) में अनेक तापों पर संतृप्त जल वाष्प के दाबों के मान दिए गए हैं।

आइये, सिलिंडर में संतुलन के दाब से भिन्न दाब, उदाहरणतया, संतुलन दाब से कम दाब बनायें। इसके लिए पिस्टन को स्वतंत्र करके उसे ऊपर उठा लें। आरम्भ में सिलिंडर में दाब वस्तुतः कम हो जाएगा, लेकिन शीघ्र ही संतुलन बन जाएगा। जल की कुछ अतिरिक्त मात्रा वाष्प बन जाएगी, तथा दाब पुनः संतुलन की अवस्था में आ जाएगा। केवल तभी, जब संपूर्ण जल वाष्प में बदल जाएगा, संतुलन दाब से कम दाब बनाया जा सकता है। यहाँ से निष्कर्ष निकलता है कि अवस्था रेखाचित्र में *OA* वक्र के नीचे या दायीं ओर स्थित बिन्दु वाष्प के क्षेत्र को दर्शाते हैं। यदि संतुलन के दाब से अधिक दाब बनाया जाये तो इसके लिए पिस्टन को जल की सतह तक नीचे लाना होगा। अन्य शब्दों में रेखाचित्र में OA वक्र के ऊपर या बायीं ओर स्थित बिन्दु तरल अवस्था को दर्शाते हैं।

विभिन्न तापमानों पर संतृप्त जलीय वाष्प का दाब

ताप मान, सें	संतृप्त वाष्प का दाब	
	कि० पास्कल	मरक्यूरिक स्तम्भ मि० मी०
0	0.61	4.6
10	1.23	9.2
20	2.34	17.5
30	4.24	31.8
40	7.37	55.3
50	12.3	92.5
60	19.9	149
70	31.2	234
80	47.4	355
100	107.3	760

तरल तथा वाष्पीय अवस्थाओं के क्षेत्र किस सीमा तक बायीं ओर फैलते हैं? दोनों क्षेत्रों में एक-एक बिन्दु लगायें और उनसे क्षैतिज दिशा में बायीं ओर चलें। रेखाचित्र में बिन्दुओं की यह गति स्थिर दाब पर द्रव या वाष्प के ठंडा होने की सूचक है। ज्ञात ही है कि यदि सामान्य वायुमंडलीय दाब पर जल को ठंडा किया जाए तो 0° सें. पर जल जमना आरम्भ कर देगा। अन्य दाबों पर ऐसे ही प्रयोग करके हम *OC* वक्र पर आ जाएगे जो तरल जल के क्षेत्र को बर्फ के ेत्र से पृथक करता है। यह वक्र—ठोस अवस्था—द्रव, या गलन वक्र—ताप व दाब के मानों के उन युगलों को दर्शाता है, जिनमें बर्फ या तरल जल संतुलन की अवस्था में होते हैं।

क्षैतिज दिशा में बायीं ओर वाष्प के क्षेत्र में आते हुए (रेखाचित्र के नीचले भाग में), सदृश रूप से हम *OB* वक्र पर पहुँचते हैं। यह ठोस अवस्था वाष्प, या ऊर्ध्वपातन वक्र है। यह ताप व दाब के मानों के उन युगलों को दर्शाता है जिनमें बर्फ तथा जल वाष्प संतुलन की अवस्था में होते हैं।

तीनों वक्र *O* बिन्दु पर परस्पर काटते हैं। इस बिन्दु के निर्देशांक ताप व दाब के मानों के एकमात्र युगल हैं, जिसमें सभी तीनों कलाएँ संतुलन की अवस्था में होती हैं: बर्फ, तरल जल और वाष्प। यह त्रिगुण बिन्दु कहलाता है।

गलन वक्र का अध्ययन काफ़ी उच्च दाबों तक किया जा चुका है। इस क्षेत्र में बर्फ के अनेक स्वरूप नज़र आये है (रेखाचित्र में इन्हें नहीं दिखाया गया है)।

दायीं ओर क्वथन वक्र क्रांतिक बिन्दु पर समाप्त हो जाता है। इस बिन्दु के लाक्षणिक ताप पर – क्रांतिक ताप पर – मात्राएँ, जो द्रव तथा वाष्प के भौतिक गुणों को व्यक्त करती हैं, समान हो जाती हैं। अतएव द्रव तथा वाष्पीय अवस्थाओं में अन्तर लुप्त हो जाता है।

द्रवों के गुणों का अध्ययन करते समय सन 1860 में द० ई० मेन्डेलीफ ने क्रांतिक ताप की विद्यमानता को सिद्ध किया था। उसने सिद्ध किया कि क्रांतिक ताप से अधिक तापों पर पदार्थ द्रव अवस्था में नहीं रह सकता है। एन्ड्रूज सन् 1869 में गैसों के गुणों का अध्ययन करते हुए समान निष्कर्ष पर पहुँचा।

विभिन्न पदार्थों के लिए क्रांतिक दाब व ताप विभिन्न होते हैं। अतः, हाइड्रोजन के लिए $t_{\text{क्रा०}} = -239.9°$ सें., $p_{\text{क्रा०}} = 1.30$ म० पा०, क्लोरीन के लिए $t_{\text{क्रा०}} = = 144°$ सें., $p_{\text{क्रा०}} = 7.71$ म० पा०, जल के लिये $t_{\text{क्रा०}} = 374.2°$ सें., $p_{\text{क्रा०}} = 22.12$ म० पा०।

जल को अन्य पदार्थों से पृथक करने वाले गुणों में से एक गुण है दाब के बढ़ने से बर्फ के गलनांक का कम होना (दे० § 70)। यह अवस्था चित्र में दिखाई गई है। जल के अवस्था रेखाचित्र में गलन वक्र OC बायीं ओर ऊपर जाता है, जबकि शेष अन्य सभी पदार्थों की स्थिति में वह ऊपर दायीं ओर को जाता है।

वायुमंडलीय दाब पर जल के साथ होने वाले रूपांतरण रेखाचित्र में बिन्दुओं या काटों द्वारा दिखाए गए हैं जो क्षैतिज पर स्थित हैं तथा 101.3 कि० पा० (760 मि० मी० मरक्यूरिक स्तम्भ) को सूचित करते हैं। अतः, बर्फ का गलना या जल का क्रिस्टलीयकरण D बिन्दु द्वारा व्यक्त होता है (चित्र 73), जल का क्वथन E बिन्दु द्वारा, जल का गर्म या ठंडा होना – DE काट द्वारा, इत्यादि।

वैज्ञानिक या व्यावहारिक महत्व रखने वाले अनेक पदार्थों के प्रावस्थी रेखाचित्र का अध्ययन किया जा चुका है। नियमानुसार वे ऊपर देखे गए जल के प्रावस्थी रेखाचित्र की ही भाँति हैं। लेकिन विभिन्न पदार्थों के प्रावस्थी रेखाचित्र की भी अपनी विशेषताएँ हो सकती हैं। अतएव, ऐसे पदार्थ ज्ञात है जिनका त्रिगुण बिन्दु वायुमंडलीय दाब से अधिक दाब पर है। इस स्थिति में वायुमंडलीय दाब पर क्रिस्टलों को गर्म किये जाने पर उस पदार्थ का पिघलने के स्थान पर ऊर्ध्वपातन हो जाता है – ठोस कला का प्रत्यक्ष रूप से गैसीय कला में रूपांतरण।

72. **जल के रासायनिक गुण.** जल के अणुओं की भिन्नताका कारण गर्म करने की क्रिया के प्रति उनका अधिक स्थायित्व है। लेकिन 1000° सें. से अधिक ताप पर जल वाष्प हाइड्रोजन तथा आक्सीजन में वियोजित हो जाती है।

$$2H_2O \rightleftarrows 2H_2 + O_2$$

किसी पदार्थ को गर्म किये जाने पर उसका वियोजन हो जाना तापीय वियोजन

कहलाता है। जल का तापीय वियोजन ऊष्मा के अवशोषण के साथ होता है। इसीलिये, ले शाटल्ये नियम के अनुसार, ताप जितना अधिक होगा, जल का वियोजन भी उतनी ही अधिक मात्रा में होगा। लेकिन 2000° सें पर भी जल के तापीय वियोजन की मात्रा 2% से ऊपर नहीं बढ़ती है अर्थात् गैसीय जल और उसके उत्पाद वियोजन के उत्पाद—हाइड्रोजन तथा आक्सीजन—के बीच संतुलन अभी भी जल की ओर ही बना रहता है। 1000° सें. कम ताप पर ठंडा करने से संतुलन व्यावहारिक रूप से पूर्णतया इसी ओर बना रहता है।

किसी पदार्थ के तापीय वियोजन की मात्रा निश्चित करने की अनेक विधियाँ हैं। इनमें से एक विधि का तथाकथित नाम है "संतुलन का हिमीकरण करना"। यदि उच्च ताप पर वियोजन के फलस्वरूप बने पदार्थों को ठंडा किया जाये, तो संतुलन एकदम से विस्थापित नहीं होता है, तथा उसके बाद कम ताप पर अत्यधिक कम चाल होने के कारण बिल्कुल भी विस्थापित नहीं होता है। इस प्रकार उच्च ताप पर पदार्थों के बीच स्थित अनुपात कायम रहता है। इस अनुपात का विश्लेषण द्वारा अध्ययन किया जा सकता है।

जल अभिक्रिया करने की अत्यधिक सामर्थ्य रखने वाला पदार्थ है। अनेक धातुओं एवं अधातुओ के आक्साइड जल के साथ मिलकर क्षारक तथा अम्ल बनाते हैं; कुछ लवण जल के साथ क्रिस्टल हाइड्रेट बनाते हैं (दे० § 75); और अधिक सक्रिय धातु जल के साथ पारस्परिक अभिक्रिया करके हाइड्रोजन उत्सर्जन करते हैं।

इसी प्रकार जल में उत्प्रेरकीय गुण भी विद्यमान हैं। नमी की अनुपस्थिति में कुछ साधारण अभिक्रियाएँ व्यावहारिक रूप से स्थान ही नहीं लेती: उदाहरणतया, वायुमंडल में क्लोरीन धातुओं के साथ पारस्परिक अभिक्रिया नहीं करती, फ्लूओरोहाइड्रोजन काँच पर प्रभाव नहीं डालती तथा सोडियम का आक्सीकरण नहीं होता है।

सामान्य स्थितियों में गैसीय अवस्था में स्थित अनेक पदार्थों के साथ मिलकर जल तथाकथित "गैसों के हाइड्रेट" बनाता है। इसके उदाहरण निम्न यौगिक हैं: $Xe \cdot 6H_2O$, $CH_4 \cdot 6H_2O$, $C_2H_5Cl \cdot 15H_2O$, जो 0° सें. से 24° सें. ताप और सामान्यत: क्रमश: गैस के बढ़े हुये दाब पर क्रिस्टल के रूप में बन जाते हैं। ऐसे यौगिक जल की संरचना (अतिथेय) में स्थित अन्तरा आण्विक सतह की गैस के अणुओं अतिथि द्वारा पूर्ति के फलस्वरूप बनते हैं। इन्हें पंजर यौगिक कहते हैं (clathrates)।

पंजर यौगिकों में "अतिथि" व "अतिथेय" के अणुओं के बीच केवल क्षीण अन्तरा-आण्विक आबन्ध बनते हैं: जकड़ा हुआ अणु क्रिस्टल के क्षेत्र में अपना स्थान नहीं छोड़ सकता है और इसका कारण प्राय: होता है आकाशीय कठिनाईयाँ। इसीलिए पंजर यौगिक अस्थिर यौगिक होते हैं, जो अपेक्षाकृत केवल कम ताप पर ही रह सकते हैं।

पंजर यौगिकों को हाइड्रोजन कार्बन और आदर्श गैसों को पृथक करने के लिये प्रयोग किया जाता है। गत समय में पंजर गैसों का बनना व नष्ट होना (प्रोपेन तथा

तालिका 12

साधारण तथा भारी जल के कुछ स्थिरांक.

स्थिरांक	H_2O	D_2O
आण्विक द्रव्यमान	18	20
हिमाँक ०सें.	0	3.8
क्वथनांक ०सें.	100	101.4
25° सें. पर घनत्व ग्रा०/सें · मी०^3	0.9971	1.1042
अधिकतम घनत्व का तापमान, ०सें.	4	11.6

कुछ अन्य गैसों) जल की लवणता को दूर करने में प्रयुक्त किया जाता है। उच्च दाब पर लवण वाले जल में क्रमश: गैस डालकर पंजर यौगिकों के बर्फनुमा क्रिस्टल प्राप्त किये जाते हैं तथा लवण विलयन में रह जाते हैं। बर्फ रूपी क्रिस्टलों को मूल विलयन से अलग किया जाता है और धो लिया जाता है। इसके बाद ताप के बढ़ने या दाब के कम होने से पंजर यौगिकों का विसर्जन हो जाता है और शुद्ध जल व मूल गैस बनती है जिसे पंजर यौगिक बनाने के लिये पुन: प्रयुक्त किया जाता है। इस क्रिया का कम व्यय तथा करने की आसानी समुद्री जल को शुद्ध करने की औद्योगिक विधि में प्रयुक्त करने की सम्भावना पैदा करते है।

भारी जल H_2O के अणुओं के अलावा हाइड्रोजन के भारी समस्थानिक द्वारा बने D_2O के अणुओं की कुछ मात्रा रखने वाले सामान्य जल के विद्युतअपघटन के फलस्वरूप मुख्यत: H_2O के अणुओं का वियोजन होता है। इसीलिए जल के काफ़ी देर तक विद्युत्-अपघटन के कारण शेष मात्रा की D_2O के अणुओं द्वारा समृद्धि होती है। अनेक बार विद्युत अपघटन करने के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले इस प्रकार के अवशेष से सन् 1933 में पहली बार शत प्रतिशत् D_2O के अणुओं से बने जल की कुछ मात्रा पृथक करने में सफलता प्राप्त हुई जिसका नाम भारी जल रखा गया।

अपने गुणों के आधार पर भारी जल सामान्य जल से प्रत्यक्ष भिन्नताएँ रखता है (तालिका 12)। सामान्य जल की अपेक्षा भारी जल के साथ अभिक्रियाएँ धीरे-धीरे होती हैं। नाभिकीय रिऐक्टरों में भारी जल का न्यूट्रान विमंदक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

विलयन

मानव के जीवन तथा व्यावहारिक कार्य-क्षेत्र में विलयनों का महत्वपूर्ण योग है। मानव तथा पशुओं की पाचन क्रियाएँ आहार के विलयन में परिवर्तित होने के साथ सम्बंधित हैं। सभी महत्वपूर्ण शरीर-क्रियात्मक द्रव विलयन होते हैं (रक्त, लसीका,

इत्यादि)। वे उत्पादन, जिनका आधार रासायनिक क्रियाएँ बनाती हैं, विलयनों के प्रयोग से सम्बंधित हैं।

73. विलयनों के गुण. विलय क्रिया. विलयन एक ठोस या तरल सजातीय विन्यास है जो दो या दो से अधिक घटकों, जिनकी आपेक्षिक मात्राएँ बहुत बड़े परिसर में हो सकती हैं, से बना है। विलयनों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप तरल विलयन हैं जिनका अध्ययन इसी भाग में किया जाएगा।

प्रत्येक विलयन विलीन पदार्थों तथा विलायक, अर्थात् वह माध्यम जिसमें ये पदार्थ अणुओं या आयनों के रूप में समान प्रकार से विस्तारित होते हैं। सामान्यता विलायक उस घटक को माना जाता है जो शुद्ध रूप में बिल्कुल वैसी ही कुल अवस्था में होता है जैसी अवस्था में प्राप्त विलयन होता है (उदाहरणतया, लवण के जल विलयन की स्थिति में विलायक, निस्संदेह, जल ही है)। यदि विलीन होने से पहले दोनों घटक समान कुल अवस्था में स्थित थे (उदाहरणतया, स्प्रिट व जल), तो विलायक वह घटक माना जाएगा जो अधिक मात्रा में होगा।

विलयनों की समानता उन्हें रासायनिक यौगिकों के बहुत ही समीप ले आती है। कुछ पदार्थों के विलीन होने के समय ऊष्मा का उत्सर्जन विलायक तथा विलेय पदार्थों के बीच रासायनिक पारस्परिक क्रिया की ओर इशारा करता है। रासायनिक यौगिकों से विलयनों की भिन्नता यह है कि विलयन की संरचना बहुत अधिक परिसर में बदल सकती है। इसके अलावा, विलयन के गुणों में उसके अनेक घटकों के गुण पाए जा सकते हैं, जो रासायनिक यौगिक की स्थिति में देखने में नही आता। विलयनों की संरचना की स्थिरता उन्हें यौगिकीय मिश्रणों के समीप ला देती है, लेकिन उनकी समानता उन्हें अन्तिम से एकदम भिन्न कर देती है। इस प्रकार, विलयन यौगिकीय मिश्रणों तथा रासायनिक यौगिकों के बीच का मध्यवर्ती स्थान घेरे हुए है।

द्रव में क्रिस्टल निम्न प्रकार विलीन होता है। जब क्रिस्टल को द्रव में, जिसमें वह विलीन हो सके, डाला जाता है तो उसकी सतह पर से अलग-अलग अणु पृथक हो जाते हैं। विसरण के फलस्वरूप अन्तिम (दे० पृ० 264-5) विलायक के सम्पूर्ण आयतन में एक सार फैल जाते हैं। ठोस पदार्थ की सतह से अणुओं का पृथक होना, सर्वप्रथम, उनकी अपनी कम्पनाम गति के कारण, तथा, दूसरे, विलायक के अणुओं की ओर से आकर्षण के कारण होता है। यदि एक ही समय में व्युत्क्रमणीय क्रिया—क्रिस्टलीयकरण—न घटती तो यह क्रिया क्रिस्टलों की किसी भी मात्रा के सम्पूर्ण विलीन होने तक जारी रहती। विलयन में आ जाने वाले अणु अभी तक अविलीन पदार्थ की सतह से टकरा कर पुनः उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं तथा उसके क्रिस्टलों की संरचना में प्रवेश कर जाते हैं। स्पष्ट है कि विलयन से अणुओं का पृथक्करण उतनी ही तीव्रता से होगा, विलयन में उनकी सान्द्रता जितनी अधिक होगी। चूँकि विलय होने के अनुसार अन्तिम बढ़ता जाता है तो अंत में ऐसा क्षण आता है जब

विलय होने की चाल क्रिस्टलीयकरण की चाल के समान हो जाती है। तब गतिज संतुलन बन जाता है, जिसमें समय की किसी इकाई में उतने ही अणु विलीन होते है जितने अणु विलयन से पृथक होते हैं। विलयन, जो विलेय पदार्थ के साथ संतुलन बनारहा है, संतृप्त विलयन कहलाता है।

74. विलयनों की सान्द्रता. संतृप्त विलयनों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम ही होता है। अधिकांश स्तिथियों में असंतृप्त विलयनों को प्रयुक्त किया जाता है यानी संतृप्त विलयन की तुलना में विलीन पदार्थ की कम सान्द्रता वाले विलयन।

विलयन की सान्द्रता विलीन पदार्थ की वह मात्रा कहलाती है जो विलयन या विलायक की एक निश्चित मात्रा में होती है। विलीन पदार्थ की अधिक सान्द्रता वाले सान्द्रित विलयन, तथा कम सान्द्रता वाले तनुकृत विलयन कहलाते हैं।

विलयनों की सान्द्रता विभिन्न प्रकार व्यक्त की जा सकती है। रसायन में सान्द्रता को व्यक्त करने की अधिक प्रचलित विधियाँ निम्न हैं:

1. विलयन के द्रव्यमान की 100 इकाइयों (उदाहरणतया, 100 ग्रा० में) (द्रव्यमान की प्रतिशत सान्द्रता) में विलीन पदार्थ के द्रव्यमान की इकाइयों की सँख्या द्वारा (उदाहरणतया, ग्रा० की सँख्या द्वारा)। उदाहरणतया, सोडियम क्लोराइड का 15% विलयन—एक ऐसा विलयन है जिसके 100 ग्रा० में 15 ग्रा० NaCl है तथा 85 ग्रा० जल है।

2. 1 ली० विलयन में विलीन पदार्थ के मोलों की सँख्या द्वारा। इस विधि द्वारा व्यक्त सान्द्रता मोल-आयतन सान्द्रता या मोलरता कहलाती है तथा M—अक्षर द्वारा लिखी जाती है। अतएव, $2M\ H_2SO_4$ का अर्थ हुआ सल्फ्यूरिक अम्ल का विलयन जिसके प्रत्येक लीटर जल में 2 मोल हैं अर्थात् H_2SO_4 के 196 ग्रा०।

3. 1 ली० विलयन में विलीन पदार्थ के तुल्यांकों द्वारा। इस विधि द्वारा व्यक्त सान्द्रता तुल्य सान्द्रता या नार्मल सान्द्रता कहलाती है तथा N अक्षर द्वारा व्यक्त होती है। अतएव, $2\ N\ H_2SO_4$ का अर्थ है सल्फ्यूरिक अम्ल का विलयन, जिसके प्रत्येक लीटर में दो तुल्याँक होते है यानी H_2SO_4 के 98 ग्रा०।

4. विलायक के 1000 ग्रा० में आने वाले विलीन पदार्थ के मोलों की सँख्या द्वारा। इस विधि द्वारा व्यक्त सान्द्रता मोल-द्रव्यमान सान्द्रता या मोलरता कहलाती है तथा m अक्षर द्वारा लिखी जाती है। अतएव, $2mH_2SO_4$ से अभिप्राय है सल्फ्यूरिक अम्ल का विलयन जिसके 1000 ग्रा० जल में H_2SO_4 के दो मोल हों। विलयन की मोल-द्रव्यमान सान्द्रता, उसकी मोलरता के विपरीत, ताप में परिवर्तन होने से अपरिवर्तित रहती है।

5. विलयन में विद्यमान सभी पदार्थों के मोलों की सँख्या के आयतन के प्रति दिये गये पदार्थ के मोलों की सँख्या के अनुपात द्वारा। इस विधि द्वारा व्यक्त सान्द्रता दिये गये पदार्थ का मोल अंश कहलाती है तथा विलायक के लिए N_1 द्वारा, और विलीन

पदार्थों के लिये N_2, N_3 आदि द्वारा लिखी जाती है। एक पदार्थ के दूसरे पदार्थ में विलयन की स्थिति में विलीन पदार्थ का मोल अंश N_2 के बराबर होगा। यहाँ n_1 तथा

$$N_2 = \frac{n_2}{n_1 + n_2}$$

n_2 – विलायक एवं विलीन पदार्थों के मोलों की सँख्या है।

नार्मल में व्यक्त सान्द्रता वाले विलयनों को प्रयुक्त करके इस बात का आसानी से पूर्व अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्हें किन आयतन अनुपातों में मिलाया जाये ताकि पदार्थों की अभिक्रिया बिना अवशेष रहित सम्पूर्ण हो जाए। मान लें कि पदार्थ$_1$ के N_1 नार्मल वाले V_1 लीटर विलयन और 2 पदार्थ के N_2 नार्मल वाले V_2 ली. विलयन की अभिक्रिया होती है। इसका अर्थ हुआ कि 1 पदार्थ के N_1V_1 तुल्यांक तथा 2 पदार्थ के N_2V_2 तुल्यांक अभिक्रिया में भाग ले रहे हैं। लेकिन पदार्थ के अनुसार

$$V_1N_1 = V_2N_2$$

या

$$V_1 : V_2 = N_2 : N_1$$

तुल्य मात्राओं में अभिक्रिया करते हैं।

इस प्रकार, अभिकारक पदार्थों के विलयनों के आयतन उनके नार्मलों के व्युत्क्रमानुपातिक हैं।

इस निर्भरता के आधार पर हम न केवल अभिक्रिया को सम्पूर्ण करने के लिए आवश्यक विलयन ज्ञात कर सकते हैं, बल्कि इसके विपरीत भी अभिक्रिया में व्यय विलयनों के आयतनों के प्रति उनकी सान्द्रता ज्ञात कर सकते हैं।

उदाहरण 1. सिल्वर नाइट्रेट के 160 मि० ली० 0.16 N घोल में सोडियम क्लोराइड के 0.3 N घोल की क्या मात्रा मिलाई जाये ताकि विलयन में विद्यमान रजत की सम्पूर्ण मात्रा का सिल्वर क्लोराइड में अवक्षेप हो जाये ?

$$\frac{150}{V} = \frac{0.3}{0.16}$$

जिससे

$$V_2 = \frac{0.16 \times 150}{0.3} = 80 \text{ मि०ली०}$$

उदाहरण 2. 40 मि० ली० सल्फ्यूरिक अम्ल का उदासीनीकरण करने के लिए क्षार के 24 मि० ली० 0.2 N विलयन की आवश्यकता पड़ी। प्रयुक्त हुये H_2SO_4 विलयन का नार्मल ज्ञात करें।

सल्फ्युरिक अम्ल के विलयन का अज्ञात नार्मल x द्वारा लिखने पर

$$40 : 24 = 0.2 : x$$

अत:

$$x = \frac{24 \times 0.2}{40} = 0.12\ N$$

75. **हाइड्रेट तथा क्रिस्टल हाइड्रेट.** क्रिस्टलीय अवस्था में स्थित अधिकांश पदार्थ ऊष्मा का अवशोषण करके द्रवों में विलीन हो जाते हैं। लेकिन सोडियम हाइड्रोक्साइड, पोटैशियम कार्बोनेट, निर्जल कॉपर सल्फेट तथा अनेक अन्य पदार्थों जल में विलीन होने पर ताप की प्रत्यक्ष वृद्धि होती है। इसी प्रकार अनेक द्रवों तथा सभी गैसों के जल में विलीन होने पर ऊष्मा का उत्सर्जन होता है।

एक मोल पदार्थ के विलयन होने पर अवशेषित होने वाली या (उत्सर्जित) होने वाली ऊष्मा की मात्रा इस पदार्थ की विलायन ऊष्मा कहलाती है।

यदि विलयन के समय ऊष्मा का अवशोषण होता है तो विलयन ऊष्मा का मान ऋणात्मक होगा, तथा यदि ऊष्मा उत्सर्जित होती है, तो धनात्मक होगा। उदाहरणतया, अमोनियम नाइट्रेट की विलयन ऊष्मा −26.4 कि० जू०/मोल के बराबर है, पोटैशियम हाइड्रोक्साइड की +55.6 कि० जू०/मोल है, इत्यादि।*

विलयन क्रिया के कारणवश विन्यास की एन्ट्रॉपी में भी काफ़ी वृद्धि हो जाती है। क्योंकि एक पदार्थ के कणों का दूसरे पदार्थ में एक सार विस्तारन होने के फलस्वरूप विन्यास की माइक्रो अवस्थाओं की सँख्या एकदम बढ़ जाती है, इसीलिए अधिकांश क्रिस्टलों के विलयन की ऊष्मा शोषकता के बावजूद विन्यास की गिब्ज ऊर्जा में विलयन के समय परिवर्तन ऋणात्मक होता है तथा क्रिया स्वेच्छा से होती है।

क्रिस्टलों के विलयन के समय उनका वियोजन हो जाता है जिसके लिए ऊर्जा व्यय होती है। इसीलिए विलयन के साथ-साथ ऊष्मा का अवशोषण भी होना चाहिए था। यदि व्युत्क्रमणीय प्रभाव दिखाई देता है, तो इससे सिद्ध होता है कि विलयन के साथ-साथ ही विलायक तथा विलेय पदार्थों के बीच कोई पारस्परिक अभिक्रिया होती है, जिसमें क्रिस्टलीय जाली को तोड़ने में व्यय होने वाली ऊर्जा से अधिक ऊर्जा ऊष्मा के रूप में विसर्जित होती है।

वस्तुतः वर्तमान समय में सिद्ध हो चुका है कि अनेक पदार्थों के विलयन के समय उनके अणु (या आयन) विलायक के अणुओं के साथ जुड़ जाते है तथा विलायक संकर (solvate) नामक यौगिक बनाते हैं (lat. solvere — विलयन होना)। यह क्रिया विलायक संकरण कहलाती है। विशेष स्थिति में, जब विलायक जल हो, तो ये यौगिक हाइड्रेट कहलाते हैं, तथा इनके बनने की क्रिया जलयोजन कहलाती है।

विलयन ऊष्मा का मान लिये गये विलायक की मात्रा और विलयन होने के ताप पर निर्भर करता है। ऊपर दी गई मात्राएँ 18–20° सें. ताप व जल की विशाल मात्रा से सम्बंधित है (200-800 मोल जल पर 1 मोल विलेय पदार्थ)।

विलीन होने वाले पदार्थों की प्रकृति के आधार पर विलायक संकरों के बनने की विभिन्न विधियाँ हो सकती हैं। अतएव, आयनी संरचना वाले पदार्थों के विलयनों के समय विलायक के अणु स्थिर वैद्युत आकर्षण बल द्वारा आयन के समीप स्थित रहते हैं। इस स्थिति में कहा जाता है कि आयन-द्विध्रुव पारस्परिक क्रिया हुई। इसके अलावा, दाता-ग्राही पारस्परिक अभिक्रिया भी घट सकती है। इस स्थिति में विलीन पदार्थ के आयन सामान्यत: ग्राही के रूप में भाग लेते हैं तथा विलायक के अणु इलेक्ट्रानी युगलों के दाता के रूप में भाग लेते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रकार की पारस्परिक क्रिया में विलायक भाग ले सकते हैं जिनके अणुओं में अविभाजित इलेक्ट्रानी युगल (जैसे, जल, अमोनिया) विद्यमान हैं। दाता-ग्राही पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप बनने वाले हाइड्रेट जटिल यौगिकों की एक विशेष श्रेणी में आते हैं—जिनका अध्ययन XVIII अध्याय में किया गया है।

आण्विक संरचना वाले पदार्थों के विलय होने में विलायक संकर द्विध्रुव-द्विध्रुव पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप बनते हैं, इसमें विलीन होने वाले पदार्थों के द्विध्रुव स्थायी भी हो सकते हैं (ध्रुवी अणुओं वाले पदार्थों की स्थिति में) तथा प्रेरित भी हो सकते हैं (अध्रुवी अणुओं वाले पदार्थों की स्थिति में)।

जलीय विलयनों में हाइड्रेटों की विद्यमानता के बारे में परिकल्पना को XIX शताब्दी की नवीं दशक में मेन्डेलीफ ने न केवल प्रस्तुत किया था, बल्कि उसका आधार भी बनाया था। मेन्डेलीफ के अनुसार विलीन होने की क्रिया न केवल भौतिकीय बल्कि रासायनिक क्रिया भी है, तथा जल में विलीन होने वाले पदार्थ उसके साथ यौगिक बनाते हैं। इस का प्रमाण सर्वप्रथम विलयन ऊष्मा के अध्ययन से मिलता है।

विलयन की क्रिया का रासायनिक माना जाना इस तथ्य से भी सिद्ध होता है कि अनेक पदार्थ जलीय विलयनों में से क्रिस्टलों के रूप में उत्सर्जित होते हैं जिनमें तथाकथित क्रिस्टलीय जल होता है (दे० — नीचे)। इसके साथ ही, विलीन पदार्थ के प्रत्येक अणु में जल के अणुओं की एक निश्चित मात्रा आती है। "इससे," मेन्डेलीफ ने कहा, "यह मानना सम्भव हो जाता है कि स्वयं विलयनों में भी ऐसे ही या इनसे मिलते-जुलते विलीन पदार्थों के यौगिक विद्यमान होते हैं जो विलायक के साथ होते हैं लेकिन ये केवल द्रव रूप में ही (तथा कभी-कभी वियोजित रूप में) होते हैं"।

साधारणत: हाइड्रेट अस्थिर यौगिक हैं तथा अनेक स्थितियों में विलयन की वाष्प बनते ही वियोजित हो जाते हैं। लेकिन कभी-कभी हाइड्रेट इतने स्थिर होते हैं कि विलयन में विलीन पदार्थों के उत्सर्जन के समय जल क्रिस्टल की संरचना में आ जाता है। वे पदार्थ, जिनके क्रिस्टलों में जल के अणु आ जाते हैं, क्रिस्टल हाइड्रेट कहलाते हैं, तथा उनमें विद्यमान जल—क्रिस्टलीय जल कहलाता है।

क्रिस्टल हाइड्रेटों की संरचना को सूत्रों की मदद से व्यक्त किया जाता है जो यह बतलाते हैं कि क्रिस्टल हाइड्रेट में क्रिस्टलीय जल की कितनी मात्रा है। उदाहरणतया,

कॉपर सल्फेट के क्रिस्टल हाइड्रेट का सूत्र है : $CuSO_4 \cdot 5H_2O$ – इसमें एक मोल $CuSO_4$ के प्रति जल के 5 मोल हैं ; सोडियम सल्फेट के क्रिस्टल हाइड्रेट का सूत्र है : $Na_2SO_4 \cdot$ $\cdot 10H_2O$ ।

क्रिस्टल हाइड्रेट में पदार्थ तथा क्रिस्टलीय जल के बीच ग्राबन्ध की दृढ़ता विभिन्न होती है। इनमें से ग्रनेक तो सामान्य ताप पर ही क्रिस्टलीय जल खो बैठते हैं। ग्रतएव, सोडा $Na_2CO_3 \cdot 10H_2O$ के पारदर्शी क्रिस्टल ग्रासानी से "हवा हो जाते हैं," – क्रिस्टलीय जल को खोकर धूमिल हो जाते हैं तथा धीरे-धीरे पाउडर में टूट जाते हैं। ग्रन्य क्रिस्टल हाइड्रेटों के निर्जलीकरण के लिए तीव्र गर्म करने की ग्रावश्यकता होती है।

हाइड्रेटों के बनने की क्रिया के साथ ऊष्मा का उत्सर्जन होता है। जलयोजित होने वाले पदार्थ के विलीन होने में कुल तापीय प्रभाव स्वयं विलीन होने के तापीय प्रभाव तथा जलयोजन के तापीय प्रभाव के योग के बराबर होता हैं। चूँकि इनमें से पहली क्रिया ऊष्माशोषी है, तथा दूसरी – ऊष्माक्षेपी है, तो विलीन होने की क्रिया का कुल तापीय प्रभाव, जो ग्रलग-ग्रलग क्रियाग्रों के तापीय प्रभावों के योग के बराबर है, धनात्मक भी हो सकता है तथा ऋणात्मक भी।

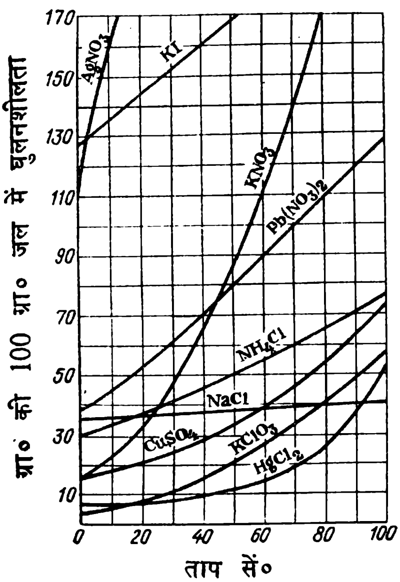
76. **विलयशीलता**. किसी भी विलायक में पदार्थ के विलीन होने की विशेषता को विलयशीलता कहते हैं। नियत ग्रवस्थाग्रों में पदार्थ की विलयशीलता की मात्रा उसके संतृप्त विलयन की सान्द्रता होती है। इसीलिए सँख्यात्मक रूप से विलयशीलता उन्हीं विधियों द्वारा व्यक्त हो सकती है जिनसे सान्द्रता होती है, उदाहरणतया, संतृप्त विलयन के द्रव्यमान के प्रति या एक ली० संतृप्त विलयन में विलीन पदार्थ के मोलों की सँख्या के प्रति विलीन पदार्थ के द्रव्यमान के प्रतिशत ग्रनुपात द्वारा। प्रायः विलयशीलता को नियत ग्रवस्थाग्रों में विलायक के 100 इकाई द्रव्यमानों को संतृप्त करने वाले निर्जलीय पदार्थ के द्रव्यमान की इकाई की सँख्या द्वारा भी व्यक्त किया जाता है। कभी-कभी इस विधि द्वारा व्यक्त विलयशीलता को विलयशीलता स्थिराँक भी कहते हैं।

जल में विभिन्न पदार्थों की विलयशीलता काफ़ी बड़े परिसरों में परिवर्तित होती है। यदि 100 ग्रा० जल में 10 ग्रा० से ग्रधिक पदार्थ विलीन होता है, तो ऐसे पदार्थ को ग्रच्छा विलीन होने वाला पदार्थ कहा जाता है; यदि 1 ग्रा० से कम पदार्थ विलीन होता है, तो – कम विलीन होने वाला पदार्थ, तथा, ग्रंत में, पदार्थ व्यावहारिक रूप से ग्रविलेय माना जाता है, यदि पदार्थ की 0.01 ग्रा० से भी कम मात्रा विलीन हो।

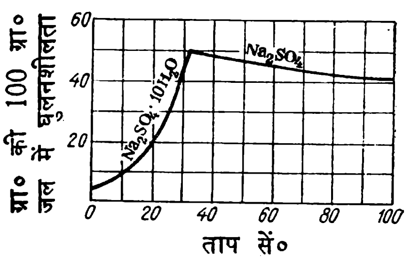
पदार्थ की विलयशीलता के बारे में पूर्वकथन करने वाले नियम ग्रभी ग्रज्ञात हैं। लेकिन, सामान्यतः, ध्रुवीय ग्रणुग्रों से बने पदार्थ, तथा ग्रायनी प्रकार के ग्राबन्ध वाले पदार्थ ध्रुवीय विलायकों में ग्रच्छी तरह विलीन होते हैं (जल, स्प्रिट, द्रव ग्रमोनिया) ग्रौर ग्रध्रुवीय पदार्थ – ग्रध्रुवीय विलायकों में ग्रच्छी प्रकार विलीन हो जाते हैं (बेन्ज़ीन, कार्बन डाइसल्फाइड)।

अधिकांश ठोस पदार्थों के विलीन होने पर ऊष्मा का अवशोषण होता है। इसका कारण है टोस पदार्थ की क्रिस्टलीय जाली को तोड़ने में ऊर्जा का सही मात्रा में व्यय होना, जिसकी पूर्ति सामान्यतः हाइड्रेट (विलायक संकर) के बनने में उत्सर्जित होने वाली ऊर्जा द्वारा नहीं होती है। क्रिस्टलीय अवस्था तथा उसके संतृप्त विलयन में पदार्थ के संतुलन पर ले शाटल्ये नियम (क्रिस्टल + विलायक $\rightleftarrows$ संतृप्त विलयन $\pm Q$) लागू करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन स्थितियों में जब पदार्थ ऊर्जा का अवशोषण करते हुए विलीन होता है तो ताप में होने वाली वृद्धि से उसकी विलयशीलता अवश्य ही बढ़नी चाहिये।

लेकिन, यदि विलायक संकरण की ऊर्जा इतनी अधिक है कि विलयन के बनने में ऊर्जा का उत्सर्जन हो, तो ताप के बढ़ने से विलयशीलता कम हो जाएगी।



चित्र 75. जल में कुछ लवणों की विलेयता की ताप पर निर्भरता।



चित्र 76. जल में सोडियम सल्फेट की विलेयता की ताप पर निर्भरता।

यह, उदाहरणतया, जल में अनेक क्षारों, लीथियम, मैग्नीशियम, ऐलुमिनियम के लवणों के विलीन होने पर होता है।

विलयशीलता तथा ताप के सम्बन्ध को विलयशीलता के वक्रों के रूप में आरेख द्वारा काफ़ी आसानी से व्यक्त किया जा सकता है। विलयशीलता का वक्र बनाने के लिए क्षैतिज अश पर ताप तथा ऊर्ध्वाधर अक्ष पर तदनुरूपी ताप पर पदार्थ की विलयशीलता दर्शाते हैं।

चित्र 75 में विलयशीलता के कुछ विशिष्ट वक्र दिये गए हैं, पोटैशियम नाइट्रेट, लेड नाइट्रेट, तथा सिवर नाइट्रेट के एकदम से ऊपर जाने वाले वक्रों से स्पष्ट है कि ताप में वृद्धि होने के साथ-साथ इन पदार्थों की विलयशीलता तेज़ी से बढ़ती है। सोडियम क्लोराइड की विलयशीलता ताप के बढ़ने से केवल मामूली-सी ही बढ़ती

है जो इस लवण की विलयशीलता का लगभग क्षैतिज वक्र ही दिखाती है। सोडियम सल्फेट की विलयशीलता का अधिक जटिल वक्र है (चित्र 76)। 32° सें. तक यह वक्र एकदम से ऊपर उठता है जिसका अर्थ है विलयशीलता का एकदम से बढ़ना।

32° सें पर वक्र एकदम से मुड़ जाता है तथा उसके बाद नीचे आ जाता है। अतएव, सोडियम सल्फेट की अधिकतम विलयशीलता 32° सें. पर होती है। सोडियम सल्फेट की विलयशीलता के वक्र पर शिखर की उपस्थिति का कारण यह है कि 32° सें. से नीचे संतृप्त विलयन के साथ संतुलन में $Na_2SO_4 \cdot 10H_2O$ क्रिस्टल हाइड्रेट स्थित है, जिसके विलीन होने में ऊष्मा का अवशोषण होता है; लेकिन अधिक उच्च ताप पर ठोस कला, जो संतृप्त विलयन के साथ संतुलन बनाती है, Na_2SO_4 का निर्जलीय लवण है जिसके विलीन होने में ऊष्मा का उत्सर्जन होता है।

जल में ठोस पदार्थों के विलीन होने में विन्यास का आयतन सामान्यतः नगण्य रूप में ही परिवर्तित होता है। इसीलिए ठोस अवस्था में स्थित पदार्थों की विलयशीलता व्यावहारिक रूप से दाब पर निर्भर नहीं करती है।

इसी प्रकार द्रव भी द्रवों में विलीन हो सकते हैं। इनमें से कुछ तो असीमित रूप से एक दूसरे में विलीन हो सकते हैं, यानी किसी भी अनुपात में एक दूसरे में मिश्रित हो सकते हैं, जैसे कि स्प्रिट व जल। कुछ अन्य द्रव एक सीमित मात्रा तक ही विलीन हो सकते हैं। अतः, जल में डाइएथिल ईथर को मिलाया जाए तो दो स्तर प्राप्त होंगे: ऊपर का स्तर ईथर में जल का संतृप्त विलयन है; नीचे का स्तर – ईथर का जल में संतृप्त विलयन है। ऐसी ही अधिकांश स्थितियों में ताप में वृद्धि होने में द्रवों की पारस्परिक विलयशीलता तब तक बढ़ती रहती है जब तक वह तापमान प्राप्त नहीं होगा, जिसपर दोनों द्रव किन्हीं भी अनुपात में मिश्रित होने लायक न हो जाएँ।

वह तापमान, जिसपर द्रवों की सीमित पारस्परिक विलयशीलता असीमित में परिवर्तित हो जाती है विलयन का क्रांतिक तापाँक कहलाता है। अतएव, 66.4° सें. से कम तापमान पर फ़ेनिल जल में सीमित रूप से विलेय है, तथा जल फेनिल में सीमित रूप से विलेय है। 66° सें. ताप जल – फेनिल विन्यास के लिये विलयन का क्रांतिक तापाँक है; इस तापाँक से शुरू होकर दोनों द्रव एक दूसरे में असीमित रूप से विलीन हो सकते हैं।

ठोस पदार्थों के विलयन की स्थिति की भाँति, द्रवों का पारस्परिक विलीन होने के साथ सामान्यतः आयतन का थोड़ा-सा परिवर्तन भी होता है। इसीलिए द्रवों की पारस्परिक विलयशीलता दाब पर कम निर्भर करती है तथा बहुत ही उच्च दाब पर (हज़ार ऐटमौस्फियर के लगभग) प्रत्यक्ष रूप से बढ़ जाती है।

यदि दो अविलेय द्रवों के विन्यास में एक तीसरा पदार्थ डाला जाये, जो इन दोनों द्रवों में ही विलीन हो सकता हो, तो विलीन पदार्थ इन दोनों द्रवों में से प्रत्येक में अपनी विलयशीलता के अनुपात में विस्तारित हो जाएगा। यहाँ से हमें विस्तारण नियम

प्राप्त होता है, जिसके अनुसार वह पदार्थ जो दो अविलेय विलायकों में विलीन हो सकता हो, उनके बीच इस प्रकार विस्तारित होता है कि स्थिर ताप पर इन विलायकों में उसकी सान्द्रताओं का अनुपात स्थायी बना रहता है तथा विलीन पदार्थ की कुल मात्रा पर निर्भर नहीं करता है :

$$\frac{C_1}{C_2} = K$$

यहाँ C_1 तथा C_2 – पहले व दूसरे विलायक में विलीन पदार्थ की सान्द्रताएँ हैं ; K – तथाथित विस्तारण स्थिरांक है।

अतएव, जल व क्लोरोफार्म में आयोडिन का विस्तारण स्थिरांक 130 के बराबर है। यदि जल में विलीन आयोडिन वाले जल में उसमें अविलेय क्लोरोफार्म डाली जाये, तथा इस विन्यास को मिलाया जाए, तो संतुलन बनने के बाद क्लोरोफार्म में आयोडिन की सान्द्रता जल की अपेक्षा 130 गुना अधिक होगी तथा विलीन आयोडिन की कुल मात्रा पर निर्भर नहीं करेगी। इस प्रकार, क्लोरोफार्म की मदद से जल में से उसमें विलीन आयोडिन का अधिकांश भाग निकाला जा सकता है। ऐसी विधि, जो विस्तारण नियम पर आधारित है तथा जिसके द्वारा विलयन में से विलीन पदार्थ को एक अन्य विलायक की मदद से जो पहले विलायक में अविलेय हो, निकालना निष्कर्षण कहलाती है और प्रयोगशालाओं एवं रासायनिक उद्योगों में बहुत ही अधिक प्रयुक्त होती है।

जल में गैसों का विलीन होना ऊष्माक्षेपी क्रिया है। इसीलिए गैसों की विलयशीलता ताप के बढ़ने के साथ कम हो जाती है। यदि ठंडे जल से भरे गिलास को गर्म स्थान पर रख दिया जाये तो उसकी आन्तरिक दीवारों पर गैस के बुलबले इकठ्ठे हो जाएँगे – यह वायु है जो जल में विलीन हो गई थी तथा अब गर्म होने के कारण उत्सर्जित हो रही है। जल को उबालने से उसमें विलीन सम्पूर्ण गैस निकाली जा सकती है।

लेकिन कार्बनिक द्रवों में गैसों के विलीन होने में ऊष्मा का अवशोषण होता है ; समान स्थितियों में ताप के बढ़ने से गैस की विलयशीलता बढ़ती है।

द्रव में गैस के विलीन होने पर निम्न संतुलन बनता है :

$$\text{गैस} + \text{द्रव} \rightleftarrows \text{द्रव में गैस का संतृप्त विलयन}$$

इसमें विन्यास का आयतन काफ़ी कम हो जाता है। अतएव, दाब में होने वाली वृद्धि के कारण संतुलन का दायीं ओर विस्थापन होना चाहिए यानी गैस की विलयशीलता बढ़नी चाहिये।

इस निष्कर्ष पर गैस तथा द्रव में उसके विलयन के बीच संतुलन की गतिज प्रकृति के आधार पर पहुँचा जा सकता है।

बंद बर्तन में द्रव के ऊपर स्थित गैस के अणु द्रव की सतह पर बमबारी करते हैं तथा द्रव में गैस की सान्द्रता के आनुपातिक चाल से विलीन हो जाते हैं। द्रव के अन्दर चले जाने वाले कण अपने क्रम में समयानुसार द्रव की सतह पर अन्दर से

टक्करें मारते हैं तथा ऊपर आ निकलते हैं। इस बात पर निर्भर करते हुए कि विलीन होने के फलस्वरूप विलीन अणुओं की सान्द्रता किस प्रकार बढ़ेगी, उनके उत्सर्जन की चाल, यानी समय की इकाई में विलयन में से बाहर निकलने वाले अणुओं की सँख्या, भी तब तक बढ़ेगी जब तक कि, अंत में, विलीन होने की चाल के बराबर नहीं हो जाती। इसके फलस्वरूप संतुलन की अवस्था बन जाएगी, अर्थात् द्रव एक संतृप्त गैस बन जाएगी।

यदि अब गैस का दाब बढ़ा दिया जाये, उदाहरणतया, उसे दुगुना कर दिया जाए, तो उतनी ही अधिक द्रव के ऊपर उसके अणुओं की सान्द्रता बढ़ जाएगी ; अतएव, गैस के विलीन होने की चाल भी बढ़ जाएगी। संतुलन बिगड़ जाएगा। नए दाब पर संतुलन को पुनः स्थापित करने के लिए विलीन अणुओं की सान्द्रता, स्पष्टतया, भी दुगुनी होनी चाहिए।

इस प्रकार, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं जो हेनरी नियम नाम से प्रचलित है :

द्रव के नियत आयतन में स्थिर ताप पर विलीन होने वाली गैस का द्रव्यमान गैस के आंशिक दाब के समानुपातिक है।

हेनरी नियम को समीकरण द्वारा भी लिखा जा सकता है :

$$C = kp$$

यहाँ $C =$ संतृप्त विलयन में गैस की द्रव्यमान सान्द्रता ; $p =$ आंशिक दाब ; $k =$ आनुपातिक स्थिराँक जिसे हेनरी स्थिराँक कहते हैं।

हेनरी नियम का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम देखें। मान लें कि द्रव के निश्चित आयतन में नियत दाब पर गैस का एक आयतन विलीन होता है जिसमें वस गैस की m ग्रा० मात्रा है। ताप को बिना परिवर्तित किये दाब को "n" गुना बढ़ा दीजिए। इस प्रकार, बॉयल–मेरिओट नियम के अनुसार गैस द्वारा घेरा गया आयतन "n" गुना कम हो जाएगा ; अतएव, आयतन की इकाई "n" स्थित गैस का द्रव्यमान "n" गुना बढ़ कर "nm" ग्रा० हो जाएगा। दूसरी ओर, हेनरी नियम के अनुसार द्रव के निश्चित आयतन में विलीन होने वाली गैस का द्रव्यमान उसी प्रकार "n" गुना बढ़ जाता है, अर्थात् उसी प्रकार "nm" ग्रा० हो जाता है। अन्य शब्दों में, द्रव के निश्चित आयतन में पहले की तरह गैस का एक आयतन विलीन होगा।

अतएव, द्रव के निश्चित आयतन में स्थिर ताप पर विलीन होने वाला गैस का द्रव्यमान उसके आंशिक दाब पर निर्भर नहीं करता है। यही कारण है कि गैसों की विलयशीलता को सामान्यतः ग्रा० मे नहीं अपितु मि० ली० में व्यक्त करते हैं जिससे 100 मि० ली० विलायक में विलीन होने वाले गैस के आयतन को दर्शाते हैं।

जल मे 0 दाब पर व 20° सें. पर कुछ गैसों की विलयशीलता तालिका 13 में दी गई है।

जल में गैसों की विलयशीलता

गैस	100 मि० ली० जल में गैस की विलयशीलता मि० ली०	
	0° सें. पर	20° सें. पर
हाइड्रोजन	2.15	1.8
आक्सीजन	4.9	3.1
नाइट्रोजन	2.35	1.5
कार्बन डाइआक्साइड	171	87.8
क्लोरीन	461	236
मेथैन	5.5	3.3

यदि द्रव के ऊपर अनेक गैसों का मिश्रण है, तो इनमें से प्रत्येक की विलयशीलता उसके आंशिक दाब द्वारा निर्धारित होती है। अन्य गैसों के मिश्रण में उपस्थित गैस की विलयशीलता का परिकलन करते समय इस बात को ध्यान में रखना अतिआवश्यक है।

गैसों पर हेनरी नियम अधिक उच्च दाब पर लागू नहीं होता है तथा यह उन्हीं स्थितियों में लागू होता है जब वे विलायक के साथ रासायनिक अभिक्रिया नहीं करती हैं। उच्च दाब पर, जब सभी गैसों का व्यवहार प्रत्यक्षरूप से आदर्श नहीं होता है, तब हेनरी नियम से थोड़ा विभेद उन गैसों की स्थितियों में भी देखने को मिलता है जो विलायक के साथ रासायनिक पारस्परिक अभिक्रिया नहीं करती हैं।

77. अतिसंतृप्त विलयन. अधिकांश पदार्थों की विलयशीलता ताप के कम होने से कम हो जाती है क्योंकि गर्म संतृप्त विलयनों को ठंडा करने पर अतिरिक्त विलीन पदार्थ का प्रायः उत्सर्जन हो जाता है। लेकिन, यदि ठंडा करने की क्रिया ध्यानपूर्वक व धीरे-धीरे की जाये तथा इस समय विलयन को बाहर से विलीन पदार्थ के कणों के सम्भवतः गिरने से बचा कर रखा जाए, तो उसका उत्सर्जन, हो सकता है नहीं हो। इस स्थिति में विलयन प्राप्त होगा; जिसमें नियत ताप पर संतृप्त बनाने के लिये विलीन पदार्थ की आवश्यक मात्रा की तुलना में विलीन पदार्थ की काफ़ी अधिक मात्रा होगी। इस परिघटना की खोज व सविस्तार अध्ययन रूसी अकादमीशियन त० ई० लोवित्स (सन् 1794) ने किया, जिन्होंने ऐसे विलयनों का नाम अतिसंतृप्त रखा। शाँत अवस्था में ये बिना किसी परिवर्तन के वर्षों तक रह सकते हैं। लेकिन जैसे ही आप इसमें विलीन पदार्थ का छोटा-सा क्रिस्टल डालेंगे, वैसे ही उसके चारों ओर

अन्य क्रिस्टल बनने शुरू हो जाएँगे तथा कुछ समय बाद विलीन पदार्थ की सम्पूर्ण अतिरिक्त मात्रा का क्रिस्टलीयकरण हो जाएगा। कभी-कभी क्रिस्टलीयकरण विलयन को हल्के-से हिलाने पर भी हो जाता है। इसी प्रकार विलयन के बर्तन पर काँच की नली या छड़ द्वारा घोट करने से भी क्रिस्टलीयकरण हो जाता है। क्रिस्टलीयकरण के समय ऊष्मा की काफ़ी मात्रा का उत्सर्जन होता है, अतः विलयन का बर्तन प्रत्यक्ष रूप से गर्म हो जाता है। $Na_2SO_4 \cdot 10H_2O$ (ग्लाउबेर लवण), $N_2B_2O_7 \cdot 16H_2O$ (बोरेक्स), तथा $Na_2S_2O_3 \cdot 5H_2O$ (सोडियम थायो सल्फेट) के अतिसंतृप्त विलयन आसानी से बन जाते हैं।

ऊपर बतायी गई बातों से स्पष्ट है कि अतिसंतृप्त विलयन अस्थिर विन्यास हैं जो केवल उसी स्थिति में बने रह सकते हैं जब विन्यास में विलीन पदार्थ का कोई ठोस कण न हि। ऐसे विलयनों का दीर्घ काल तक बने रहने की सम्भावना का कारण है महोननत "भ्रूणीय" क्रिस्टलों का प्रारम्भिक जन्म होना, जिन्हें तथाकथित रूप से क्रिस्टलीयकरण के केन्द्र कहा जाता है तथा जिनसे क्रिस्टलीयकरण विलयन के सम्पूर्ण द्रव्यमान पर विस्तारित हो जाता है।

78. परासरण. ऊपर बताया ही जा चुका है कि विलयन एक सजातीय विन्यास है। विलीन होने वाले पदार्थ तथा विलायक के कण अव्यवस्थित तापीय गति में रहते हैं तथा विलयन के सम्पूर्ण आयतन पर समान रूप से विस्तारित रहते हैं।

यदि किसी भी पदार्थ का सान्द्रित विलयन सिलिंडर में रखा जाए, जैसे कि, शर्करा का, तथा उसके ऊपर ध्यानपूर्वक शर्करा का अधिक तनु घोल डाल दिया जाए, तो शुरू में शर्करा व जल विलयन के आयतन में असमान रूप से विस्तारित होंगे। लेकिन कुछ समय बाद शर्करा तथा जल के अणु द्रव के सम्पूर्ण आयतन पर समान रूप से पुनः विस्तारित हो जाएँगे। इसका कारण यह है कि शर्करा के अणु, अव्यवस्थित रूप से गति करते हुये सान्द्रित विलयन में से तनु में तथा तनु में से सान्द्रित विलयन में आते हैं; लेकिन इसमें यह बात देखने में आती है कि समय की किसी भी इकाई में अधिक सान्द्रित विलयन में से कम सान्द्रित विलयन में अधिक अणु जाते हैं जबकि तनु विलयन में से सान्द्रित विलयन में कम अणु जाते हैं। ठीक इसी प्रकार जल के अणु विभिन्न दिशाओं में गति करते हैं, लेकिन यहाँ तनु विलयन में से, जिसमें जल अधिक होता है, सान्द्रित विलयन में समय की इसी इकाई के दौरान विपरीत दिशा में आने वाले अणुओं की तुलना में अधिक अणु आते हैं। इस प्रकार, सान्द्रित विलयन में से तनु विलयन में शर्करा का एक दिशा में स्थानांतरण शुरू हो जाता है, तथा जल की स्थिति में यह दिशा तनु विलयन में से सान्द्रित विलयन की ओर होती है; और प्रत्येक पदार्थ वहाँ ले जाती है जहाँ उसकी सान्द्रता कम होती है। पदार्थ के स्थानांतरण की ऐसी स्वेच्छापूर्वक होने वाली क्रिया, जिससे सान्द्रताएँ एक समान हो जाती हैं, विसरण (diffusion) कहलाती है।

विसरण के समय कुछ निश्चित प्रारम्भिक सुव्यवस्था, जो पदार्थ के विस्तारण में होती है (विन्यास के एक भाग में पदार्थ की उच्च सान्द्रता तथा, तथा दूसरे भाग में कम सान्द्रता), के स्थान पर उनके विस्तारण की सम्पूर्ण अव्यवस्था बन जाती है। इस समय विन्यास की ऐन्ट्रॉपी बढ़ जाती है। जल सम्पूर्ण आयतन में विलयन की सान्द्रता बराबर हो जाती है, एन्ट्रॉपी अधिकतम हो जाती है तथा विसरण बंद हो जाता है।

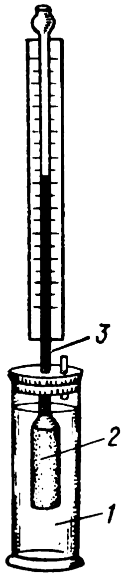
विसरण को देखने के लिए काँच के किसी सिलिंडर में रंगीन विलयन डाल दीजिए, उदाहरणतया, $KMnO_4$ का विलयन, और इसके ऊपर ध्यानपूर्वक ताकि वे एक दूसरे में मिल न जाए, जल डाल दीजिए। शुरू में आप एक प्रत्यक्ष सीमा देखेंगे, लेकिन धीरे-धीरे वह लुप्त हो जाएगी; कुछ समय बाद विलीन पदार्थ विलयन के सम्पूर्ण आयतन पर विस्तारित हो जाएगा तथा सारे द्रव का ही रंग बन जाएगा।

ऊपर देखे गये उदाहरण में विलायक तथा विलीन होने वाले पदार्थ के कण विपरीत दिशाओं में विसरित होते हैं। ऐसी स्थिति को विपरीत या द्वि-पथ विसरण कहते हैं। वह स्थिति एकदम दूसरी होगी यदि दो विलयनों के बीच एक रोधिका लगा दी जाये जिसमें से विलायक तो गुज़र सके लेकिन विलीन पदार्थ न गुज़र सके। ऐसी रोधिकाएँ, जिन्हें उपपारगम्य रोधिकाएँ कहते हैं, प्रकृति में पायी जाती हैं तथा कृत्रिम रूप से भी तैयार की जा सकती हैं। उदाहरणतया, यदि मृत्तिका के संरंध्री सिलिंडर को कॉपर सल्फेट के विलयन से भर दिया जाए और फिर इस सिलिंडर को पोटैशियम हैक्सासायानोफैररेट् $K_4[Fe(CN)_6]$ के विलयन में डाल दिया जाए, तो सिलिंडर के सरंध्रों में कापर हैक्सासायानोफैररेट् (II) जम जाएगा। इस प्रकार तैयार किया गया सिलिंडर उपपारगम्य रोधिका के गुण प्राप्त कर लेता है: उसकी दीवारों मे से जल के अणु तो गुज़र सकते हैं, लेकिन विलीन पदार्थों के अणुओं के लिये वह अपार-गम्य है।

यदि ऐसे सिलिंडर में किसी भी पदार्थ का विलयन डाला जाये, जैसे कि शर्करा का, और सिलिंडर को जल में डुबो दिया जाये, तो सान्द्रता केवल जल के अणुओं की चाल के कारण बराबर हो जाएगी। अन्तिम विलयन में, विपरीत दिशा की तुलना में, अधिक विसरित होते हैं, इसीलिये विलयन का आयतन धीरे-धीरे बढ़ने लगेगा, और उसमें शर्करा की सान्द्रता कम हो जाएगी। उपपारगम्य रोधिका में से होने वाला ऐसा एकतरफा विसरण परासरण कहलाता है।

आइये, एक उपपारगम्य दीवारों वाला बर्तन 2 लेते हैं जो ऊपर की ओर एक संकरी ऊर्ध्वाधर नलिका 3 से जुड़ा है (चित्र 77)। इस बर्तन को शर्करा के विलयन से भर कर जल से भरे बर्तन 1 में डाल दें। परासरण के फलस्वरूप विलयन का आयतन धीरे-धीरे बढ़ने लगेगा तथा विलयन ऊर्ध्वाधर नलिका को भरना शुरू कर देगा। नलिका में विलयन के स्तर के ऊपर उठने से जलीय स्तम्भ का अतिरिक्त दाब

(द्रवस्थैतिक दाब) बनना शुरू हो जाएगा जो द्रवों के स्तरों के अन्तर द्वारा मापा जाता है तथा विलयन में जल के अणु के प्रवेश करने पर प्रतिरोध करता है। जब द्रवस्थैतिक दाब एक निश्चित मान प्राप्त कर लेगा, तो परासरण बंद हो जाएगा तथा संतुलन स्थापित हो जाएगा। द्रवस्थैतिक दाब का मान उस दाब के मान के बराबर हो जाएगा, जो परासरण की साँख्यिक विशिष्टता है – यह विलयन का परासरण दाब है। ऐसे संतुलन में द्रवस्थैतिक दाब को माप कर उसी की मदद से परासरण दाब* का मान ज्ञात किया जा सकता है।



चित्र 77. परासरणी दाब मापने के यंत्र का आरेख। 1– जल का बर्तन ; 2– अर्ध-रंध्र-युक्त दीवारों वाला बर्तन ; 3– नलिका।

प्राणि तथा वनस्पति जीवों के लिये परासरण परिघटना का काफ़ी महत्व है। परा कोशिकाओं की झिल्लियाँ एक जाली की तरह होती हैं जो जल के लिये तो पारगम्य हैं लेकिन कोशिकाओं के अन्दर के द्रव में विलीन पदाथ के लिये लगभग अपारगम्य हैं। कोशिकाओं में प्रवेश करके जल उनमें अतिरिक्त दाब बना देता है जो कोशिकाओं की झिल्ली को हल्का-सा ऊपर उठा देता है तथा उन्हें तनाव की अवस्था में रखे रखता है। यही कारण है कि घास के तने, पत्तियाँ, फूलों की पंखुड़ियाँ लचीली होती हैं। यदि पौधे को काटा जाए, तो जल के वाष्पीकरण के फलस्वरूप कोशिका के अन्दर के द्रव का आयतन कम हो जाएगा, कोशिका की झिल्ली गिर जाती है, शिथिल हो जाती है, तथा पौधा मुरझा जाता है। अभी-अभी मुरझाए पौधे को जल में रख दीजिए ; जैसे ही परासरण आरम्भ होगा कोशिकाओं की झिल्लियाँ पुनः तन जायेंगी तथा पौधा अपना पहले वाला रूप पुनः प्राप्त कर लेगा।

इसी प्रकार परासरण पौधे के तने में जल के चढ़ने, कोशिकाओं को भोजन पहुँचाने तथा अनेक अन्य परिघटनाओं का कारण है।

---

*इस प्रकार मापा गया परासरण दाब मूल विलयन से सम्बन्धित नहीं होता है बल्कि उस विलयन से सम्बन्धित होता है जिसमें प्रयोग के समय होने वाले परासरण के फलस्वरूप थोड़ा जल बढ़ जाता है। लेकिन विलयन का बड़ा आयतन होने पर तथा नलिका का व्यास कम होने पर यह थोड़ी सी वृद्धि मूल विलयन की सान्द्रता को नगण्य रूप से ही बदलती है।

विभिन्न विलयनों के परासरण दाब को मापने से यह सिद्ध हुआ कि परासरण दाब का मान विलयन की सान्द्रता तथा उसके ताप पर निर्भर करता है, परन्तु न तो विलीन पदार्थ की प्रकृति, और न ही विलायक की प्रकृति पर निर्भर करता है। सन् 1886 में वांट-हाफ़* ने सिद्ध किया कि विद्युत्-अनपघट्यों के कम सान्द्रता वाले विलयनों के लिये सान्द्रता व ताप पर परासरण की निर्भरता निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त होती है:

$$P = 1000\,CRT$$

यहाँ P = विलयन का परासरण दाब, पास्कल में; C = उसकी मोल-आयतन सान्द्रता (मोलरता), मोल/ली०; R = मोलर गैसीय स्थिराँक, 8.314 जू०/(मोल K); T = विलयन का परम ताप।

विलयन की मोलरता V विलयन के आयतन n (ली०) के प्रति विलीन पदार्थ के मोलों की सँख्या C का अनुपात होती है तथा पदार्थ के मोलों की सँख्या मोल

$$C = \frac{n}{V}$$

द्रव्यमान M द्वारा विभाजित उसके द्रव्यमान m के बराबर होती है। यहाँ हमें विलयन की मोलरता के लिए समीकरण प्राप्त होता है:

$$C = \frac{m}{MV}$$

C के इस मूल्य को वांट-हॉफ़ समीकरण में रखने पर

$$PV = 1000\,\frac{m}{M}\,RT$$

अपने स्वरूप के आधार पर प्राप्त समीकरण क्लपेरॉन-मेण्डेलीफ के आदर्श गैस की अवस्था के समीकरण जैसा है। इस समीकरण की मदद से विलयन के परासरण दाब का उपयोग कर के विलीन पदार्थ का मोल द्रव्यमान (अतएव, उसका सापेक्षिक आण्विक द्रव्यमान भी) ज्ञात किया जा सकता है।

---

* Jacobus Henricus Van'tHoff (1852—1911) प्रतिभाशाली जर्मन जीवरसायनज्ञ थे। उन्होंने रासायनिक प्रतिक्रियाओं, रासायनिक संतुलनों व विलयनों के गुणों का अध्ययन किया था। उन्होंने कार्बन-परमाणु में दिष्ट संयुज्यता-बंध के विचार को प्रस्तुत किया एवं उसे विकसित किया। उन्होंने व्यौम-रसायन – अणु में परमाणुओं के व्यौम-क्रम का अध्ययन करने वाले विज्ञान – को जन्म दिया।

उदाहरण: विलयन जिसके 250 मि० ली० में 3 ग्रा० शर्करा है, का परासरण दाब 12° सें. पर 83.14 कि. पास्कल है। शर्करा का सापेक्षिक ग्राण्विक द्रव्यमान ज्ञात करें।

अन्तिम समीकरण में आँकड़ें रखने पर

$$83.14 \times 10^3 \times 0.25 = 1000 \times \frac{3}{M} \times 8.314(273 + 12)$$

अतः $M = 342$ ग्रा०/मोल। शर्करा का सापेक्षिक ग्राण्विक द्रव्यमान 342 प० द्र० ई० के बराबर है।

यदि अर्धपारगम्य अवरोधिका द्वारा जल से पृथक किये गये विलयन पर बाहरी दाब लगाया जाये जो विलयन के परासरणी दाब के बराबर है, तो, जैसा ऊपर बताया गया है, परासरण बंद हो जाएगा। यदि लगाया गया बाहरी दाब परासरणी दाब से अधिक है तो जल का विसरण प्रायः विलयन में से जलीय कला में हो जाएगा, यानी परासरण के समय जल के प्रवाह की दिशा की विपरीत दिशा में होगा। इस परिघटना को व्युत्क्रमणीय परासरण कहते हैं।

वर्तमान समय में व्युत्क्रमणीय परासरण को जल के शुद्धिकरण के लिये काफ़ी किफ़ायती विधि माना गया है। लवण वाले विलयन (जैसे, समुद्री जल) को अर्ध-पारगम्य झिल्ली द्वारा शुद्ध जल से पृथक करके उसपर विलयन के परासरण दाब से अधिक दाब लगाया जाता है। इसके परिणामस्वरूप विलयन में स्थित जल का एक भाग शुद्ध जल की कला में "सघन" हो जाता है, और शेष विलयन में लवण की सान्द्रता बढ़ जाती है। सान्द्रित लवण विलयन को समयानुसार शुद्धिकरण किये जाने वाले जल के ताज़े नमूनों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है।

79. विलयनों का वाष्पीय दाब. निश्चित ताप पर द्रव के ऊपर संतृप्त वाष्प का दाब एक स्थिर मात्रा होता है। प्रयोग द्वारा सिद्ध होता है कि विलयन में किसी पदार्थ के विलीन होने पर इस द्रव के संतृप्त वाष्प का दाब कम हो जाता है। अतएव, विलयन के ऊपर विलायक का संतृप्त वाष्प का दाब समान ताप पर शुद्ध विलायक के ऊपर बने दाब की तुलना में हमेशा कम होगा! इन मात्राओं के अन्तर को विलयन के ऊपर वाष्पीय दाब का पात (drop in vapour pressure) (या विलयन के वाष्प के दाब का पात) कहते हैं। शुद्ध विलायक के ऊपर संतृप्त वाष्प के दाब तथा इस पात की मात्रा का अनुपात विलयन के ऊपर वाष्प के दाब का सापेक्षिक पात कहलाता है।

शुद्ध विलायक के ऊपर विलायक का संतृप्त वाष्प के दाब को P_0, तथा विलयन के ऊपर के दाब को P द्वारा निर्दिष्ट करें। तब विलयन के ऊपर दाब का सापेक्षिक पात निम्न भिन्न के बराबर होगा :

$$\frac{p_0 - p}{p_0}$$

सन् 1887 में फ्रांसीसी भौतिकविद रूग्राल ने विभिन्न ग्रवाष्पशील* द्रवों तथा ठोस पदार्थों के विलयनों का ग्रध्ययन करते हुये एक नियम निर्धारित किया जो विद्युत्-ग्रनपघ ट्यों के तनु विलयनों के ऊपर वाष्पीय दाब के पात को सान्द्रता के साथ सम्बंधित करता है :

विलयन के ऊपर विलायक के संतृप्त वाष्प के दाब का सापेक्षिक पात विलीन पदार्थ के मोल ग्रंश के बराबर है।

गणितीय रूप में रूग्राल नियम निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जाता है. यहाँ

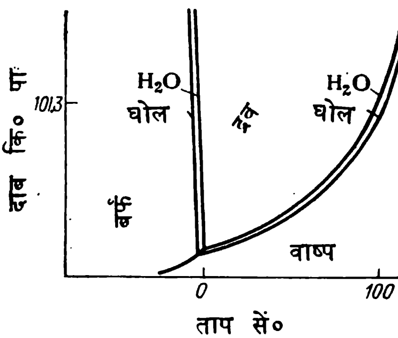
$$\frac{p_0 - p}{p_0} = N_2$$

N_2 = विलीन पदार्थ का मोल ग्रंश।

विलयन के ऊपर संतृप्त वाष्प के दाब के पात की परिघटना ले शाटल्ये नियम पर ग्राधारित है। द्रव तथा उसकी वाष्प के बीच संतुलन का ग्रनुमान करें, उदाहरणतया, जल तथा उसकी वाष्प में। यह संतुलन, जिसे संतृप्त वाष्प का निश्चित दाब बना रहा है, निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :

$$(H_2O)_{द्रव} \rightleftarrows (H_2O)_{वाष्प}$$

यदि ग्रब जल में किसी पदार्थ की कोई मात्रा विलीन की जाये, तो द्रव में जल के ग्रणुग्रों की सान्द्रता कम हो जाएगी ग्रौर उसे बढ़ाने वाली क्रिया—वाष्प का द्रवण—ग्रारम्भ हो जाएगी। नया संतुलन संतृप्त वाष्प के ग्रौर कम दाब पर बनेगा।



चित्र 78. जल की ग्रवस्था व ग्रवाष्पशील पदार्थ के जलीय विलयन की ग्रवस्था का रेखाचित्र।

विलयन के ऊपर वाष्पीय दाब का पात प्रावस्थी रेखाचित्र में दर्शाया गया है। चित्र 78 में जल तथा ग्रवाष्पशील पदार्थ के जलीय विलयन का प्रावस्थी रेखाचित्र दिखाया गया है। रूग्राल नियम के ग्रनुसार जलीय विलयन के ऊपर जलीय वाष्प का दाब जल के ऊपर की तुलना में कम है। इसीलिए क्वथन वक्र विलयन के लिये

*ग्रवाष्पशील पदार्थों के घोल के लिये नियमों के रूप जटिल होते हैं क्योंकि घोल के ऊपर घोलक व घुल्य दोनों ही के वाष्पों का मिश्रण छाया रहता है।

जल की तुलना में, नीचे स्थित है। जल से विलयन की ओर आने में इसी प्रकार गलन वक्र की स्थिति भी परिवर्तित हो जाती है। विलयन के क्वथन वक्र तथा गलन वक्र जल के वक्रों से मशः उतनी ही अधिक दूरी पर स्थित हैं जितनी कि विलयन की सान्द्रता अधिक है।

80. विलयनों का हिमीकरण तथा क्वथन. पृथक पदार्थों का एक योग अवस्था में से दूसरी योग अवस्था में संक्रमण का एकदम निश्चित ताप होता है (क्वथनांक, गलनांक या हिमीकरण ताप)। अतः, सामान्य वायुमंडलीय दाब (101.3 कि० पास्कल) पर जल का 0° से पर क्रिस्टलीयकरण हो जाता है तथा 100° सें० पर क्वथन हो जाता है।

विलयनों की स्थिति कुछ अलग है। विलीन पदार्थ की उपस्थिति क्वथनांक को बढ़ा देती है और विलायक के हिमीकरण ताप को कम कर देती है तथा यह उतना ही अधिक होगा है जितनी अधिक विलयन की सान्द्रता होगी। अधिकांश स्थितियों में विलयन में केवल विलायक का ही हिमीकरण होता है (हिमीकरण के समय) या क्वथन होता है (क्वथन के समय), जिसके फलस्वरूप विलयन की सान्द्रता हिमीकरण या क्वथन के दौरान बढ़ जाती है। अतएव, विलयन का हिमीकरण या क्वथन निश्चित ताप पर नहीं होता, अपितु किसी तापीय अंतराल में होता है। नियत विलयन के क्रिस्टलीयकरण तथा क्वथन के आरम्भ होने के तापों को क्रमशः हिमीकरण तापांक तथा क्वथनांक कहते हैं।

विलयन तथा शुद्ध विलायक के क्वथनांकों के अंतर को विलयन के क्वथनांक की वृद्धि कहते हैं ($\Delta t_{\text{क्वथ०}}$)। विलयन तथा शुद्ध विलायक हिमांकों के अंतर को विलयन के हिमांक में पात ($\Delta t_{\text{हिमा०}}$) कहते हैं। विलयन के क्वथनाक व हिमांक को क्रमश: $t^1_{\text{क्वथ०}}$ व $t^1_{\text{हिमा०}}$ से और शुद्ध विलायक के लिए इन्हीं मात्राओं को क्रमशः $t_{\text{क्वथ०}}$ तथा $t_{\text{हिमा०}}$ द्वारा लिख कर प्राप्त होता है:

$$\Delta t_{\text{क्वथ०}} = t^1_{\text{क्वथ०}} - t_{\text{क्वथ०}}$$

$$\Delta t_{\text{हिमा०}} = t^1_{\text{हिमा०}} - t_{\text{हिमा०}}$$

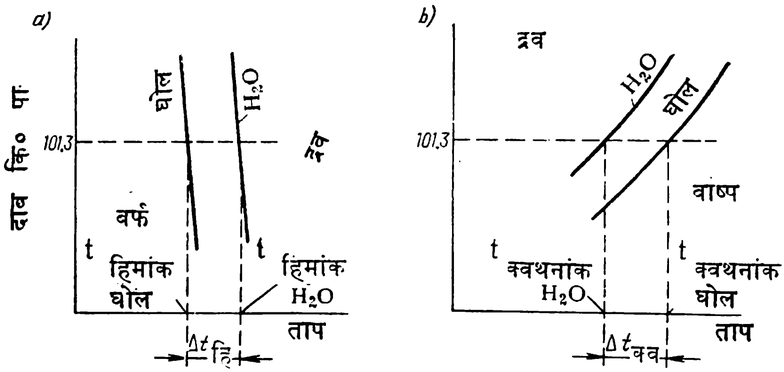
प्रत्येक द्रव उस ताप पर उबलना आरम्भ करता है जिस पर उसके संतृप्त वाष्प का दाब बाहरी दाब के मान के बराबर पहुँच जाता है। उदाहरणतया, 101.3 कि० पा० दाब पर जल 100° सें० पर इसीलिये उबलाता है, क्योंकि इसी ताप पर जलीय वाष्प का दाब 101.3 कि० पा० के बराबर होता है। यदि जल में किसी

अवाष्पशील पदार्थ को विलीन किया जाए तो उसके वाष्प का दाब कम हो जाएगा। प्राप्त विलयन के वाष्प के दाब को 101.3 कि० पा० तक लाने के लिये विलयन को 100° सें से अधिक ताप पर गर्म करना होगा। यहाँ से निष्कर्ष निकलता है कि विलयन का क्वथनांक शुद्ध विलायक के क्वथनांक से हमेशा अधिक होगा। विलयनों के हिमांकों के पात का भी यही कारण है।

विलयनों के क्वथनांकों में वृद्धि तथा हिमांकों में पात ले शाटल्ये नियम के अनुसार ही है। आइये इसी संदर्भ में विलयन के हिमीकरण को देखें। मान लें कि द्रव तथा ठोस कला में, उदाहरणतया, जल-बर्फ में 0° सें० पर संतुलन बना हुआ है। इसे निम्न समीकरण द्वारा लिखा जा सकता है :

$$H_2O_{\text{ठोस}} \rightleftarrows (H_2O)_{\text{द्रव}}$$

यदि जल में किसी पदार्थ की कुछ मात्रा विलीन की जाये, तो द्रव में जल के अणुओं की सान्द्रता कम हो जाएगी तथा उसे बढ़ाने वाली क्रिया – बर्फ का गलना –



चित्र 79. जल की अवस्था तथा 101.3 कि० पास्कल के लगभग दाब के क्षेत्र में विलयन की अवस्था के रेखाचित्र का भाग (आरेख)। a — गलन वक्र; b — क्वथन वक्र।

आरम्भ हो जाएगी। नए संतुलन को निर्धारित करने के लिए ताप को कम करना होगा।

क्वथनांक की वृद्धि तथा हिमांक का पात प्रावस्था रेखाचित्र में दर्शाये जाते हैं; चित्र 79 में जल व विलयन के अवस्था रेखाचित्र का एक भाग दिखाया गया है— सामान्य वायुमंडलीय दाब (101.3 कि० पा०) के लगभग दाब के क्षेत्रों में गलन

तथा क्वथन वक्रों के हिस्सों को दिखाया गया है। इन हिस्सों को क्षैतिज रेखा द्वारा काटा गया है जिसका अर्थ है 101.3 कि० पा० (आरेख का पैमाना चित्र 73 तथा 78 की तुलना में बढ़ा दिया गया है)। विदित है कि इस क्षैतिज रेखा व गलन और क्वथन वक्रों के काटने के बिन्दु जल तथा विलयन के लिए विभिन्न हैं। इन बिन्दुओं के अक्षांक – हिमांक तथा क्वथनांक – जल के लिए क्रमश: 0° सें० तथा 100° सें० है, तथा विलयन के लिये वे क्रमश: 0° सें. से कम तथा 100° सें. से अधिक हैं। विलयन के वक्र जल के वक्रों से क्रमश: उतनी ही अधिक दूर होंगे, जितनी अधिक विलयन की सान्द्रता होगी। इसीलिए जल व विलयन के क्वथनांकों व हिमांकों में अंतर उतना ही अधिक होगा जितनी अधिक विलयन की सान्द्रता होगी।

विलयनों के हिमीकरण तथा क्वथन का अध्ययन करते हुये रूआल ने सिद्ध किया कि विद्युत्-अनपघट्यों के तनु विलयनों के लिये क्वथनांक में वृद्धि तथा हिमांक में पात विलयन की सान्द्रता के आनुपातिक है:

$$\Delta t_{\text{क्वथ०}} = Em$$

$$\Delta t_{\text{हिमा०}} = Km$$

यहाँ m = मोल-द्रव्यमान सान्द्रता (मोललता); E तथा K = क्वथनांकमापी स्थिरांक तथा हिमांकमापी स्थिरांक* हैं जो केवल विलायक की प्रकृति पर निर्भर करते हैं तथा विलीन पदार्थों की प्रकृति पर निर्भर नहीं करते हैं। जल के लिए हिमांक स्थिरांक $K = 1.86$ है, और क्वथनांक थिस्थरांक $E = 0.52$ है। बेन्ज़ीन के लिए $K = 5.07$ तथा $E = 2.6$।

पदार्थों के आण्विक द्रव्यमानों को निश्चित करने की क्वथनांक तथा हिमांक विधियाँ विलयनों के क्वथनांकों व हिमांकों को मापने पर आधारित हैं। दोनों ही विधियों का रसायन में काफ़ी प्रचलन है क्योंकि विभिन्न विलायकों को प्रयुक्त करते हुये नाना प्रकार के पदार्थों के आण्विक द्रव्यमानों को निर्धारित किया जा सकता है।

उदाहरण: 200 ग्रा० जल में 2.70 ग्रा० ग्लिसरीन को विलीन करने से हिमांक 0.279° कम हो गया। ग्लिसरीन का आण्विक द्रव्यमान ज्ञात करें।

पहले मालूम करें कि 1 000 ग्रा० जल में कतनी ग्लिसरीन आती है:

---

* इन्हें अंग्रेजी में क्रमश: ebullioscopic constant (या boiling constant) तथा cryoscoqic constant (lat. "lbullire"-क्वथन, greek "cryos"-हिम) भी कहते हैं।

$$p = \frac{2.76 \times 1000}{200} = 13.8 \text{ ग्रा०}$$

विलयन की मोललता (m) को ग्लिसरीन के द्रव्यमान (p), जो 1 000 ग्रा० जल में ग्राता है, तथा उसके मोल द्रव्यमान (M) द्वारा व्यक्त करने पर :

$$m = \frac{p}{M} = \frac{13.8}{M}$$

इन ग्राँकड़ों को समीकरण में रखने पर :

$$\Delta t_{\text{हिमा}} = Km$$

$$0.279 = 1.86 \times \frac{13.8}{M}$$

ग्रतः ग्लिसरीन का मोल द्रव्यमान $M = 92$ ग्रा०/मो० तथा ग्राण्विक द्रव्यमान 92 प० द्र० इ० के बराबर है।

अध्याय VIII

वैद्युत्-अपघट्यों के विलयन

81. **लवणों, अम्लों व क्षारकों के विलयनों के विशेष गुण.** अध्याय VI में हम ने आप का परिचय तनु विलयनों पर लागू होने वाले नियमों के साथ कराया। इन नियमों की सत्यता का समर्थन अनेक प्रयोगों के परिणामों से मिलता है। लेकिन ऐसे भी पदार्थ हैं, जिनके विलयनों पर कोई भी देखा गया नियम लागू नहीं होता। ऐसे पदार्थ हैं: लवण, अम्ल तथा क्षार। इनकी स्थिति में विलयन की सान्द्रता की तुलना में इनका परासरण दाब, वाष्पीय दाब में पात, क्वथनांक व हिमांक में परिवर्तन हमेशा अधिक होता है।

उदाहरणतया, 100 ग्रा० जल में 1 ग्रा० NaCl विलीन करने पर विलयन के हिमांक का पात रूआल नियम के अनुसार प्राप्त Δt हिमा० के मान से दो गुना अधिक है। सैध्दांतिक मान की तुलना में इस विलयन का परासरण दाब भी इतना ही अधिक है।

§ 78 में बताया गया था कि परासरण दाब की मात्रा समीकरण द्वारा व्यक्त होती

$$p = 1000\,CRT$$

है।

"असामान्य" परासरण दाब वाले विलयनों पर इस समीकरण को लागू करने के लिये वांट-हॉफ ने शुद्धि स्थिराँक i (समदाबी गुणांक)* प्रयुक्त किया जो यह बतलाता था कि नियत विलयन का परासरण दाब "सामान्य" दाब से कितना अधिक है:

$$p = 1000i\,CRT$$

प्रत्येक विलयन के लिये i स्थिरांक प्रायोगिक रूप से ज्ञात किया जाता है— उदाहरणतया, या तो वाष्प के दाब में पात की मदद से, या फिर हिमांक में पात की मदद से, या क्वथनांक में वृद्धि की मदद से।

---

* ग्रीक isos-समान, tonas-दाब, जोर।

विलयन के परासरण दाब को p' द्वारा, तथा वांट-हॉफ व रूग्राल के नियमों का अनुसरण न करने वाले विलयन के क्वथनांक में वृद्धि को $\Delta t'_{\text{क्वथ०}}$ द्वारा, हिमांक में पात को $\Delta t'_{\text{हिमा}}$ द्वारा व्यक्त करें, और इन्हीं मात्राओं के मानों को, जिन्हें विलयन की सान्द्रता द्वारा सैद्धांतिक रूप से ज्ञात किया गया हैं, $P, \Delta t_{\text{क्वथ०}}$ तथा $\Delta t_{\text{हिमा०}}$ द्वारा व्यक्त करें। चूंकि परासरण दाब और हिमांक व क्वथनांक में परिवर्तन विलयन में विद्यमान विलीन पदार्थ के कणों की सँख्या के आनुपातिक हैं; तो i स्थिराँक को निम्न अनुपात द्वारा लिखा जा सकता है:

$$i = \frac{P'}{P} = \frac{\Delta t'_{\text{क्वथ}}}{\Delta t_{\text{क्वथ}}} = \frac{\Delta t'_{\text{हिमा०}}}{\Delta t_{\text{हिमा०}}}$$

i स्थिराँक के मान, जिन्हें वाँट-हॉफ ने कुछ लवणों के 0.2 नॉ. वाले विलयनों के लिये उनके हिमांक में पात के आधार पर ज्ञात किया था, तालिका 14 में दिये गये हैं।

तालिका 14

कुछ लवणों के 0.2 न० विलयनों के लिये i स्थिराँक का मान।

लवण	सूत्र	हिमाँक का पात		$t = \frac{\Delta t'_{\text{हिमा०}}}{\Delta t_{\text{हिमा०}}}$
		देखा गया मान ($\Delta t'_{\text{हिमा०}}$)	रूग्राल सूत्र के आधार पर निकाला गया ($\Delta t_{\text{हिमा०}}$)	
पोटैशियम क्लोराइड	KCl	0.673	0.373	1.81
पोटैशियम नाइट्रेट	KNO_3	0.664	0.372	1.78
मैग्नीशियम क्लोराइड	$MgCl_2$	0.519	0.186	2.79
कैल्सियम नाइट्रेट	$Ca(NO_3)_2$	0.461	0.186	2.48

तालिका 14 के आँकड़ों से स्पष्ट है कि विभिन्न लवणों के लिए i स्थिरांक विभिन्न है। विलयनों के तनु होने पर वह बढ़ता है और पूर्ण सॅख्याओं 2, 3, 4 के लगभग हो जाता है। समान संरचना वाले लवणों के लिये ये सँख्याएँ समान होती हैं। उदाहरणतया, एक संयोजकता वाले धातुओं तथा एक क्षारीय अम्लों के सभी लवणों के लिये उनके विलयनों के पर्याप्त तनु होने पर स्थिराँक i लगभग 2 हो जाता है; द्वि-संयोजकता वाले धातुओं तथा एक क्षारीय अम्लों से बने लवणों के लिये 3 के लगभग हो जाता है।

अतः, लवण, अम्ल व क्षार जल में विलीन होकर, सभी शेष पदार्थों की समान आण्विक मात्रा की तुलना में कहीं अधिक परासरण दाव बनाते हैं। इस परिघटना को किस प्रकार समझाया जा सकता है?

गौर कीजिए कि समान परिघटना कुछ गैसों या पदार्थों, जो गैसीय अवस्था में आ गए हैं, की स्थिति में देखी जाती है। उदाहरणतया, फास्फोरस पेंटाक्लोराइड PCl_5 आयोडिन तथा कुछ अन्य पदार्थों के वाष्प बंद बर्तन में गर्म करने पर अधिक दाब दिखाते है, जबकि गे-लुसक नियम के अनुसार कम होना चाहिए।

गैसों के लिये यह परिघटना वियोजन के आधार पर समझी जा सकती है। यदि, उदाहरणतया, PCl_5 पूर्णतया PCl_3 और Cl_2 में वियोजित हो जाएगा तो स्पष्ट है कि अपरिवर्तित आयतन में कणों की सँख्या पर निर्भर दाब अवश्य ही दुगुना हो जाएगा। अपूर्ण वियोजन में, जब केवल कुछ ही अणु वियोजित हुये हों, दाब उसी प्रकार बढ़ जाता है लेकिन यह वृद्धि दुगुनी से कम होती है।

स्वाभाविकतः यह मान लिया गया है कि असामान्य रूप से उच्च परासरण दाब वाले विलयनों के लिये विलीन पदार्थ के अणु भी कुछ अधिक महीन कणों में वियोजित हो जाते हैं, क्योंकि विलयन में कणों की आम सँख्या बढ़ती जाती है। लेकिन चूँकि विलयन के इकाई आयतन में विद्यमान विलीन पदार्थ के कणों की सँख्या पर परासरण दाब निर्भर करता है, तो इस सँख्या के बढ़ने के साथ वह भी बढ़ जाता है। यह अनुमान सर्वप्रथम सन् 1887 में स्वीडीश वैज्ञानिक आरेनियस* ने प्रस्तुत किया तथा इसके सिद्धाँत का आधार बना, जो जलीय विलयनों में लवण, अम्ल व क्षारों का व्यवहार समझाता है।

लवण, अम्ल तथा क्षारों के जलीय विलयनों में एक और विशेषता है – वे विद्युत के सुचालक हैं। और निर्जलीय ठोस लवण तथा क्षार एवं, इसी प्रकार, निर्जलीय अम्ल विद्युत के सुचालक नहीं हैं; शुद्ध जल भी विद्युत को लगभग गुज़रने नहीं देता है। विदित है कि इस प्रकार के पदार्थों पर जल में विलीन होने के समय काफ़ी गहरे परिवर्तन होते है जो प्राप्त होने वाले विलयनों की वैद्युत-चालकता का कारण बनते हैं। जैसा कि हम अभी देखेंगे कि ये परिवर्तन तदनुरूपी पदार्थों का आयनों में वियोजन के कारणवश होते हैं।

---

*स्वान्टे आरेनियस (1859-1927) – स्टाकहोम – विश्वविद्यालय में प्रोफेसर तथा नोबेल संस्थान के निदेशक। इन्होंने लवणों, अम्लों तथा क्षारों के विलयनों के गुणों के बारे में सिद्धाँत प्रस्तुत किया जिसका नाम पड़ा विद्युत्-अपघट्य वियोजन का सिद्धाँत। आरेनियस इसी प्रकार नक्षत्र-भोगोलिकी, अंतरिक्ष भौतिकी तथा भौतिक-रासायनिक नियमों में शोध-निबंधों के लेखक हैं।

वे पदार्थ जो आयनों में वियोजित होते हैं वैद्युत् अपघट्य कहलाते हैं। लवण, अम्ल तथा क्षार वैद्युत-अपघट्य हैं।

82. वैद्युत्-अपघटय वियोजन का सिद्धाँत. आरेनियस ने लवणों, अम्लों व क्षारों के विलयनों की वैद्युत् धारा गुज़ारने की विशेषता और इन पदार्थों के विलयनों का वांट-हॉफ तथा रूआल नियमों से विचलन के बीच गहरे सम्बन्ध पर ध्यान दिया। उन्होंने सिद्ध किया कि विलयन की वैद्युत-चालकता के आधार पर उसके परासरण दाब का मान ज्ञात किया जा सकता है, तथा, इस प्रकार, शुद्धता स्थिराँक i भी ज्ञात किया जा सकता है। i के मान जिन्हें वैद्युत्-चालकता के आधार पर ज्ञात किया गया है, अन्य विधियों द्वारा प्राप्त किये गए इन्हीं पदार्थों के मानों के साथ बहुत अधिक मिलते हैं।

आरेनियस के अनुसार वैद्युत्-अपघट्य के विलयनों के अत्यधिक उच्च परासरण दाब का कारण है—वैद्युत-अपघट्यों का आयनों में वियोजन। इसके फलस्वरूप, एक ओर से, विलयन में कणों की कुल सँख्या में वृद्धि होती है और इस प्रकार परासरण दाब बढ़ जाता है, वाष्पीय दाब कम हो जाता है, क्वथनांक एवं हिमांक परिवर्तित हो जाते है, तथा, दूसरी ओर से, आयन विलयन को वैद्युत के सुचालक बना देते हैं।

ये परिकल्पनाएँ बाद में एक दृढ़ सिद्धाँत में विकसित हुई जिसका नाम रखा गया: वैद्युत् अपघट्य वियोजन का सिद्धाँत। इस सिद्धाँत के अनुसार जल में विलीन होने पर वैद्युत्-अपघट्य धनात्मक आवेशित तथा ऋणात्मक आवेशित आयनों में वियोजित हो जाते हैं। धनात्मक आवेशित आयन धनायन कहलाते हैं तथा इनके उदाहरण हैं: हाइड्रोजन व धातुओं के आयन। ऋणात्मक आवेशित आयन ऋणायन कहलाते हैं और इनके उदाहरण हैं: अम्लीय अवशेषों के आयन तथा हाइड्रोक्साइड आयन। विलायक के अणुओं की भाँति, विलयन में आयन अव्यवस्थित तापीय गति में स्थित होते हैं।

वैद्युत अपघट्य वियोजन की क्रिया रासायनिक समीकरणों की मदद से व्यक्त की जाती है। उदाहरणतया, HCl का वियोजन निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जाता है:

$$HCl = H^+ + Cl^-$$

आयनों में वैद्युत अपघट्यों का वियोजन वांट-हांफ तथा रूआल नियमों के विचलनों का कारण है जिनके बारे में इस अध्याय के आरम्भ में बताया जा चुका है। उदाहरण के रूप में हमने NaCl विलयन के हिमांक का पात दिखाया था। अब यह समझना कठिन नहीं है कि इस विलयन के हिमांक का पात इतना अधिक क्यों है। सोडियम क्लोराइड Na^+ तथा Cl^- के आयनों के रूप में विलयन में आ जाती है। इस समय NaCl के एक मोल से 6.02×10^{23} कण के स्थान पर इस सँख्या से दुगुने कण प्राप्त

होते हैं। यही कारण है कि NaCl विलयन में हिमांक का पात समान सान्द्रता वाले वैद्युत ग्रनपघट्य की तुलना में दोगुना ग्रधिक होना चाहिये।

ठीक इसी प्रकार ही बेरियम क्लोराइड के ग्रत्यधिक तनु विलयन में वियोजन निम्न समीकरण के ग्रनुसार होता है:

$$BaCl_2 = Ba^{2+} + 2Cl^-$$

वांट-हॉफ नियम द्वारा परिकलित परासरण दाब के मान की तुलना में परासरण दाब का इसमें मान तिगुना होता है, क्योंकि विलयन में कणों की सँख्या उस तुलना में तिगुनी ग्रधिक है यदि विलयन में बेरियम क्लोराइड $BaCl_2$ ग्रणु के रूप में होती।

ग्रतएव, वैद्युत-ग्रपघट्यों के जलीय विलयनों के गुण, जो पहली दृष्टि में वांट-हॉफ व रूग्राल के नियमों का ग्रन्तर्विरोध करते दिखाई देते हैं, इन नियमों के ग्राधार पर ही समझाये गए थे।

लेकिन ग्रारेनियस के सिद्धाँत ने विलयन में परिघटनाग्रों की प्रकृति की सभी जटिलताग्रों पर ध्यान नहीं दिया। विशेषकर, उसने ग्रायनों को स्वतंत्र कणों के रूप में देखा जो विलायक के ग्रणुग्रों पर निर्भर नहीं थे। ग्रारेनियस के सिद्धाँत का ग्रन्तर्विरोध किया मेन्डेलीफ के विलयनों के रासायनिक या हाइड्रेट सिद्धाँत ने, जिसके ग्राधार में विलीन पदार्थ तथा विलायक की पारस्परिक ग्रभिक्रिया की परिकल्पना थी। इन ग्रन्तविरोधों का हल करने का काफ़ी बड़ा श्रेय रूसी वैज्ञानिक ई० ग्र० काबलूकोव* को दिया जाता है जिन्होंने सर्वप्रथम ग्रायनों के जलयोजन के बारे में विचार प्रस्तुत किया। इस विचार के विकास के फलस्वरूप ग्रारेनियस व मेन्डेलीफ के सिद्धाँतों का मिलन हुग्रा।

83. **वियोजन की क्रिया.** निर्जलीय ग्रवस्था में विलीन पदार्थ की संरचना के ग्राधार पर उसका वियोजन विभिन्न प्रकार से हो सकता है। इसकी ग्रत्यधिक सामान्य दो स्थितियाँ हैं। इनमें से एक विलीन लवणों का वियोजन है ग्रर्थात् ग्रायनी संरचना वाले क्रिस्टलों का वियोजन, ग्रौर दूसरी स्थिति है: ग्रम्लों के विलीन होने में वियोजन, यानी ध्रुवीय ग्रणुग्रों वाले पदार्थों का वियोजन।

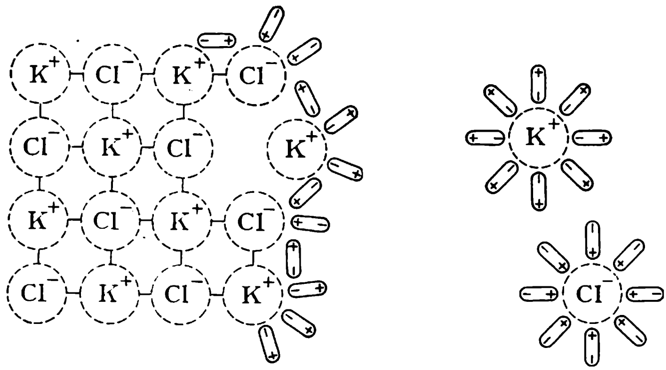
जब किसी लवण का क्रिस्टल, जैसे पौटैशियम क्लोराइड का, जल में ग्राता है, तो उसकी सतह पर स्थित ग्रायन जल के ध्रुवीय ग्रणुग्रों को ग्रपनी ग्रोर ग्राकृष्ट करते

---

*ईवान ग्रलेक्सेईविच काबलूकोव (1857-1942) ने विलयनों की वैद्युत् चालकता का ग्रध्ययन किया। उनके कार्य "रासायनिक संतुलन सिद्धाँत के सम्बंध में विलयनों के ग्राधुनिक विचार (वांट-हॉफ तथा ग्रारेनियस के)" ने रूस में भौतिकी रसायन के विकास पर काफी प्रभाव डाला तथा वैद्युत-ग्रपघट्य वियोजन के सिद्धाँत को समझने में योग दिया।

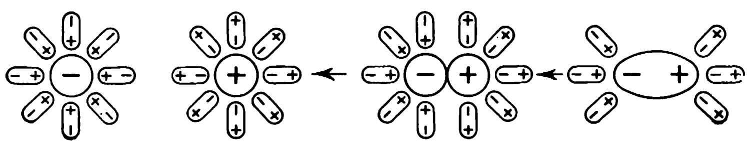
हैं (आयन-द्विध्रुव पारस्परिक क्रिया)। पोटैशियम के आयनों की ओर जल के अणु अपने ऋणात्मक ध्रुवों के कारण आकृष्ट होते हैं तथा क्लोराइड आयनों की ओर–धनात्मक ध्रुवों द्वारा (चित्र 80)।

लेकिन यदि आयन अपनी ओर जल के अणुओं को आकृष्ट करते हैं तो जल के अणु भी इसी शक्ति द्वारा आयनों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। उसी समय जल



चित्र 80. लवण के विलीन होने का आरेख।

के आकृष्ट अणु अन्य गतिरत अणुओं द्वारा भी धक्का खाते हैं। क्रिस्टलों में आयनों के तापीय कम्पनों के साथ-साथ ये धक्के आयनों के पृथक्करण एवं उन्हें विलयन में परिवर्तित करने के लिए पर्याप्त होते हैं। आयनों के पहले स्तर के साथ ही विलयन में दूसरा स्तर परिवर्तित होता है, तथा इस प्रकार क्रिस्टल का धीरे-धीरे विलयन आरम्भ हो जाता है।



चित्र 81 विलयन में ध्रुवीय अणुओं के वियोजन का आरेख।

ध्रुवीय अणुओं का वियोजन अन्य प्रकार से होता है (चित्र 81)। ध्रुवीय अणु के छोरों द्वारा आकृष्ट जल के अणु (द्विध्रुव-द्विध्रुव पारस्परिक क्रिया) के फलस्वरूप उनके ध्रुवों का पृथक्करण हो जाता है–यानी अणु का ध्रुवीकरण हो जाता है। विचाराधीन अणु में परमाणुओं की कम्पायमान तापीय गति के साथ, और इसी प्रकार इसके चारों ओर स्थित जल के अणुओं की निर्विघ्न तापीय गति के साथ मिल कर ऐसा ध्रुवीकरण अंत में ध्रुवी अणु का आयनों में वियोजन कर देता है। आयनी क्रिस्टल

के विलीन होने की स्थिति की भाँति ये श्रायन हाइड्रेट बन जाते हैं। इसमें हाइड्रोजन का श्रायन H^+ (यानी, प्रोटोन) दृढ़ता से हाइड्रोक्सोनियम के श्रायन H_3O^+ में जल के श्रणु के साथ जुड़ा होता है। श्रतः, जल में हाइड्रोजन क्लोराइड के विलीन होने में एक क्रिया घटती है जिसे श्रारेखी रूप में निम्न समीकरण की मदद से लिखा जा सकता है :

$$H_2O + HCl = H_3O^+ + Cl^-$$

इस क्रिया के फलस्वरूप HCl का श्रणु इस प्रकार टूट जाता है कि इलेक्ट्रानों का श्राम युगल क्लोरीन के परमाणु के पास रह जाता है, जो Cl^- के श्रायन में रूपांतरित हो जाता है तथा प्रोटोन, जल के श्रणु में श्राक्सीजन के परमाणु के इलेक्ट्रानी कोश में प्रवेश करके हाइड्रोक्सोनियम श्रायन H_3O^+ बनाता है।

जल में श्रन्य श्रम्लों के विलीन होने पर भी इसी प्रकार की क्रियाएँ घटती हैं, जैसे नाइट्रिक श्रम्ल :

$$H_2O + HNO_3 = H_3O^+ + NO_3^-$$

विलयन में परिवर्तित श्रायन जल के श्रणुश्रों के साथ जुड़े रहते हैं श्रौर श्रायनों के हाइड्रेट बनाते हैं। श्रन्य शब्दों में, वियोजन के फलस्वरूप स्वतंत्र श्रायनों के स्थान पर विलायक के श्रणुश्रों के साथ श्रायनों के यौगिक बनते हैं। किसी भी विलायक की सामान्य स्थिति में ये यौगिक श्रायनों के विलायक संकर कहलाते हैं। लेकिन वियोजन समीकरणों में सामान्यतः श्रायनों के सूत्र लिखे जाते हैं न कि हाइड्रेट या विलायक संकरों के सूत्र। इसके श्रतिरिक्त श्रायनों से सम्बंधित विलायक के श्रणुश्रों की सँख्या विलयन की सान्द्रता तथा श्रन्य श्रवस्थाश्रों के श्राधार पर परिवर्तित होती है।

श्रायनी तथा श्राण्विक संरचना वाले पदार्थों के वियोजन विलायक के श्रणुश्रों का ध्रुवीयता बताने में योग देते हैं। इसीलिए न केवल जल बल्कि श्रन्य द्रव भी जो ध्रुवीय श्रणुश्रों से बने होते हैं (फार्मिक श्रम्ल, ऐथिल स्प्रिट, श्रमोनिया, श्रादि), श्रायनी विलायक कहलाते हैं: लवण, श्रम्ल तथा क्षार, जो इन द्रवों में विलीन हों, श्रायनों में वियोजित हो जाते हैं।

84. वियोजन की डिग्री. वैद्युत्-श्रपघट्यों की सान्द्रता. यदि वैद्युत्-श्रापघट्यों का श्रायनों में पूर्णतः वियोजन हो जाता तो परासरण दाब (तथा उसकी समानुपातिक श्रन्य मात्राएँ) वैद्युत्-श्रनपघट्यों के विलयनों की तुलना में एक पूर्ण सँख्या गुना श्रधिक होता। लेकिन श्रभी वांट-हॉफ ने भी सिद्ध किया था कि i स्थिरांक एक भिन्न सँख्या में व्यक्त होता है जो विलयन के तनु होने के साथ-साथ बढ़ती है श्रौर पूर्ण सँख्या के लगभग होती जाती है।

श्रारेनियस ने इस तथ्य का कारण यह बतलाया कि विलयन में केवल वैद्युत्-श्रपघट्य का केवल एक भाग ही श्रायनों में वियोजत होता है, तथा उन्होंने वियोजन डिग्री की

धारणा प्रस्तुत की। वैद्युत-अपघट्य के वियोजन की डिग्री दिए गए विलयन में आयनों में वियोजित उसके अणुओं की सँख्या व विलयन में उसके अणुओं की कुल सँख्या का अनुपात है।

बाद में यह सिद्ध हुआ कि वैद्युत-अपघट्यों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है: प्रबल तथा क्षीण। वैद्युत-अपघट्य व्यावहारिक रूप से पूर्णतः वियोजित हो जाते हैं। उन पर वियोजन की डिग्री की धारणा लागू नहीं होती है, और पूर्ण सँख्या वाले मानों से समपरासारी स्थिराँक i के मानों का विचलन अन्य कारणों से है (दे० § 86)। जलीय विलयनों में क्षीण वैद्युत्-अपघट्य केवल अंशतः ही वियोजित होते हैं, तथा विलयन में अवियोजित अणुओं और आयनों में गतिज संतुलन बन जाता है।

लगभग सभी लवण प्रबल वैद्युत-अपघट्य होते हैं; महत्वपूर्ण अम्लों तथा क्षारों में निम्न इसी श्रेणी में आते हैं: HNO_3, $HClO_4$, HCl, HBr, HI, KOH, NaOH, $Ba(OH)_2$ तथा $Ca(OH)_2$।

अधिकांश कार्बनिक अम्ल क्षीण वैद्युत-अपघट्य होते हैं; महत्वपूर्ण अकार्बनिक यौगिकों में वैद्युत्-अपघट्य निम्न हैं: H_2CO_3, H_2S, HCN, H_2SiO_3 तथा NH_4OH।

वियोजन की डिग्री को ग्रीक अक्षर α द्वारा लिखा जाता है तथा या तो इकाई के अंशों में या प्रतिशत में व्यक्त किया जा सकता है: अतः, 0.1 न० CH_3COOH विलयन के लिए $\alpha = 0.013$ (या 1.3%), और 0.1 न० HCN विलयन के लिए $\alpha = 10^{-4}$ (या 0.01%)

85. **वियोजन स्थिरांक.** क्षीण वैद्युत्-अपघट्य के विलयन में अणुओं व आयनों के बीच बनने वाले संतुलन पर रासायनिक संतुलन के नियम लागू किये जा सकते हैं और संतुलन स्थिरांक का समीकरण लिखा जा सकता है। उदाहरणतया, ऐसिटिक अम्ल के वियोजन:

$$CH_3COOH \rightleftarrows H^+ + CH_3COO^-$$

के लिये संतुलन स्थिराँक इस प्रकार होगा:

$$K = \frac{[H^+][CH_3COO^-]}{[CH_3COOH]}$$

यहाँ भिन्न के अंश में आयनों की सान्द्रताएँ हैं — वियोजन के उत्पाद, — तथा हर में — अवियोजित अणुओं की सान्द्रताएँ।

क्षीण वैद्युत-अपघट्य के वियोजन का संतुलन स्थिरांक वियोजन स्थिरांक कहलाता है। K की मात्रा वैद्युत्-अपघट्य तथा विलायक की प्रकृति एवं ताप पर निर्भर करती है, लेकिन विलयन की सान्द्रता पर निर्भर नहीं करती है। वह नियत अम्ल या क्षार की आयनों में वियोजित होने की विशेषता को बताती है: — K जितनी अधिक होगी, उतनी ही आसानी से वैद्युत अपघट्य वियोजित हो जाएगा।

वहुक्षारीय अम्ल, तथा इसी प्रकार दो या अधिक संयोजकता वाले धातुओं के क्षार चरणशः वियोजित होते हैं। इन पदार्थों के विलयनों में जटिल संतुलन बनते हैं जिसमें विभिन्न आवेशों के आयन भाग लेते हैं। उदाहरणतया, कार्बनिक अम्ल का वियोजन दो चरणों में होता है:

$$H_2CO_3 \rightleftarrows H^+ + HCO_3^-$$

$$HCO_3^- \rightleftarrows H^+ + CO_3^{2-}$$

प्रथम संतुलन – पहले चरण में वियोजन – वियोजन स्थिरांक, जो K_1 द्वारा निर्दिष्ट है, निम्न द्वारा व्यक्त होता

$$K_1 = \frac{[H^+][HCO_3^-]}{[H_2CO_3]}$$

और दूसरा – दूसरे चरण में वियोजन – स्थिरांक K_2 द्वारा:

$$K_2 = \frac{[H^+][CO_3^{2-}]}{[HCO_3^-]}$$

कुल संतुलन

$$H_2CO_3 \rightleftarrows 2H^+ + CO_3^{2-}$$

के लिए K वियोजन स्थिरांक हुआ:

$$K = \frac{[H^+]^2[CO_3^{2-}]}{[H_2CO_3]}$$

K, K_1 तथा K_2 मात्राएँ एक दूसरे के साथ

$$K = K_1K_2$$

द्वारा जुड़ी हुई हैं।

ऐसे ही समानुपातों द्वारा बहुसंयोजकता वाले धातुओं के क्षारों के चरणशः वियोजन व्यक्त होते हैं। उदाहरणतया, लौह हाइड्रोक्साइड के वियोजन के दो चरणों

$$Fe(OH)_2 \rightleftarrows FeOH^+ + OH^-$$

$$FeOH^+ \rightleftarrows Fe^{2+} + OH^-$$

के लिये वियोजन स्थिरांक हैं:

$$K_1 = \frac{FeOH^+][OH^-]}{[Fe(OH)_2]} \quad \text{तथा} \quad K_2 = \frac{[Fe^{2+}][OH^-]}{[FeOH^+]}$$

कुल वियोजन

$$Fe(OH)_2 \rightleftarrows Fe^{2+} + 2OH^-$$

के लिये

$$K = \frac{[Fe^{2+}][OH^-]^2}{[Fe(OH)_2]}$$

यहाँ $$K = K_1K_2$$

पदार्थों के चरणश: वियोजन में अगले चरण में वियोजन पहले चरण की अपेक्षा हमेशा कम डिग्री में होगा (पहले चरण की तुलना में दूसरे में कम होगा इत्यादि). अन्य शब्दों में, असमानता देखने में आती है:

$$K_1 > K_2 > K_3 \ldots$$

इसका कारण यह है कि आयन को पृथक करने के लिए व्यय होने वाली ऊर्जा उदासीन अणु से उसके पृथक होने के समय न्यूनतम होती है तथा प्रत्येक अगले चरण में वियोजन के समय अधिक होती है।

यदि दो आयनों में विभाजित होने वाले वैद्युत-अपघट्य की सान्द्रता को C द्वारा, और नियत विलयन में उसके वियोजन की डिग्री को α द्वारा निर्दिष्ट करें तो प्रत्येक आयन की सान्द्रता $C\alpha$ के बराबर होगी, तथा अवियोजित अणुओं की सान्द्रता $C(1-\alpha)$ के बराबर होगी। तब वियोजन स्थिरांक के समीकरण का निम्न स्वरूप होगा:

$$K = \frac{(C\alpha)^2}{C(1-\alpha)} \quad \text{या} \quad K = \frac{\alpha^2}{1-\alpha}C$$

यह समीकरण ओस्टवाल्ड तनु नियम को व्यक्त करता है। इसके द्वारा वैद्युत अपघट्य की विभिन्न सान्द्रताओं के लिये वियोजन की डिग्री मालूम की जा सकती है, यदि उसका वियोजन स्थिरांक ज्ञात हो। इस समीकरण को प्रयुक्त करके वैद्युत अपघट्य के वियोजन स्थिरांक को मालूम किया जा सकता है, किसी भी सान्द्रता पर उसके वियोजन की डिग्री ज्ञात होनी चाहिये।

उन विलयनों के लिए, जिनमें वैद्युत अपघट्य का वियोजन बहुत ही कम हो, ओस्वाल्ड के नियम का समीकरण सरल हो जाता है। चूँकि ऐसी स्थितियों मे $\alpha \ll 1$ है, तो समीकरण के पहले भाग में अंश में α की मात्रा की उपेक्षा की जा सकती है। समीकरण इस प्रकार होगा:

$$K \cong \alpha^2 C \quad \text{या} \quad \alpha \cong \sqrt{\frac{K}{C}}$$

इस समीकरण को देखने से क्षीण वैद्युत अपघट्य की सांन्द्रता और उसके वियोजन की डिग्री के बीच सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है: विलयन के तनु होने पर वियोजन की डिग्री बढ़ जाती है।

तालिका 15

25° सें. पर जलीय विलयनों में कुछ क्षीण वैद्युत अपघटट्यों के वियोजन स्थिराँक.

नाम	सूत्र	स्थिराँक
नाइट्रस अम्ल	HNO_2	4×10^{-4}
हाइड्रोजन परऑक्साइड	H_2O_2	$K_1 \cong 10^{-12}$
		$K_2 \cong 10^{-25}$
सिलिसिक अम्ल	H_2SiO_3	$K_1 \cong 10^{-10}$
		$K_2 \cong 10^{-12}$
सल्फ्यूरस अम्ल	H_2SO_3	$K_1 \cong 2 \times 10^{-2}$
		$K_2 \cong 6 \times 10^{-8}$
हाइड्रोजन सल्फाइड	H_2S	$K_1 \cong 6 \times 10^{-8}$
		$K_2 \cong 10^{-14}$
आर्थोफास्फोरस अम्ल	H_3PO_4	$K_1 = 8 \times 10^{-3}$
		$K_2 = 6 \times 10^{-8}$
		$K_3 = 1 \times 10^{-19}$
कार्बोनिक अम्ल	H_2CO_3	$K_1 = 4.5 \times 10^{-7}$
		$K_2 = 4.7 \times 10^{-11}$
ऐसिटिक अम्ल	CH_3COOH	2×10^{-5}
हाइड्रोजन फ्लूओराइड	HF	7×10^{-4}
हाइड्रोजन सायनाइड	HCN	8×10^{-10}
अमोनियम हाइड्रोक्साइड	NH_4OH	2×10^{-5}

प्राप्त निष्कर्ष वियोजन की परिघटना की प्रकृति से निकलता है। सभी रासायनिक सतुलनों की भाँति, क्षीण वैद्युत-अपघट्य के विलयन में संतुलन गतिज होता है, यानी उसके बनने पर समान गतियों से दो क्रियाएँ स्थान लेती हैं: वियोजन की क्रिया तथा इसकी व्युत्क्रम क्रिया जिसमें आयनों से अणु बनते हैं। पहली क्रिया – वियोजन – में विलयन का तनु होना कोई महत्व नहीं रखता है। लेकिन आयनों से अणुओं के बनने की क्रिया में विलयन के तनु होने से कठिनाई उत्पन्न होती है: अणु के बनने के लिए आयनों में टक्करें होनी चाहिए, जिसकी सम्भावना तनु विलयन में कम होती है।

तालिका 15 में कुछ क्षीण वैद्युत अपघट्यों के वियोजन स्थिरांकों के मान दिए गए हैं।

86. प्रबल वैद्युत-अपघट्य. जलीय विलयनों में प्रबल वैद्युत-अपघट्य सामान्यतः पूर्णतः वियोजित हो जाते हैं। इसीलिए उनमें आयनों की सँख्या उसी सान्द्रता वाले क्षीण वैद्युत-अपघट्यों के विलयन की तुलना में अधिक होती है। और यदि क्षीण वैद्युत् अपघट्यों के विलयनों की सान्द्रता कम होती है–उनके बीच की दूरी अधिक हो तथा आयनों की परस्पर क्रियाएँ नगण्य हो,–तो प्रबल वैद्युत अपघट्यों के कम तनु विलयनों में आयनों के बीच की औसत दूरी काफ़ी सान्द्रता होने के कारणवश् अपेक्षाकृत कम होती है। उदाहरणतया, सोडियम क्लोराइड के संतृप्त विलयन में आयनों के बीच की औसत दूरी NaCl के क्रिस्टलों की तुलना में दुगुनी होती है। इसमें अन्तरा आयनी आकर्षण व प्रतिकर्षण बल काफी अधिक होते हैं। ऐसे विलयनों में आयन पूर्णतया स्वतंत्र नहीं होते तथा उनकी गति भी पारस्परिक आकर्षण के कारण धीमी हो जाती है। इस आकर्षण के कारणवश प्रत्येक आयन विपरीत आवेशित आयनों के गोलेनुमा गुच्छों से घिरा होता है, जिसे "आयनी वायुमंडल" कहते हैं।

बाहरी वैद्युत क्षेत्र की अनुपस्थिति में आयनी वायुमंडल सममित होता है तथा केन्द्री आयन पर लागू बल पारस्परिक रूप से समान हो जाते हैं। यदि विलयन पर स्थायी वैद्युत क्षेत्र लागू कर दिया जाए तो विभिन्न आवेशों वाले आयन विपरीत दिशाओं में प्रतिस्थापित होंगे। इसमें प्रत्येक आयन एक दिशा में गतिरत होने की चेष्टा करेगा तथा उसके चारों ओर का आयनी वायुमंडल विपरीत दिशा में, जिसके परिणाम-स्वरूप आयन की दिशात्मक गति धीमी हो जाएगी, और] इस प्रकार, समय की इकाई में विलयन में से गुजरने वाले आयनों की सँख्या कम हो जाएगी, अर्थात् धारा बल कम हो जाएगा। विलयन की सान्द्रता जितनी अधिक होगी, विलयन की वैद्युत-चालकता पर आयनी वायुमंडल का प्रतिरोध लगाने वाला प्रभाव उतना ही अधिक प्रबल होगा। पोटैशियम क्लोराइड के वियोजन की डिग्री के मान, जिन्हें 18° सें. पर उसके विलयनों की वैद्युत चालकता के आधार पर ज्ञात किया गया था, सिद्ध करते हैं कि सान्द्रता के बढ़ने से α का मान कम होता है :

KCl की सान्द्रता, न०	0.01	0.1	1	2
α, %	94.2	86.2	75.6	71.2

लेकिन वियोजन की डिग्री के कम हो जाने का कारण अणुओं का बनना नहीं है, बल्कि आयनी वायुमंडल का प्रतिरोध लगाने के प्रभाव में वृद्धि का होना है। इसी संदर्भ में वैद्युतचालकता (या अन्य विधियों) के आधार पर निर्धारित प्रबल वैद्युत-अपघट्यों के वियोजन की डिग्री का मान वियोजन की आभासी डिग्री कहलाता है।

इसी प्रकार से अन्तराआयनी आकर्षण व प्रतिकर्षण बल परासरण दाब की मात्रा पर प्रभाव डालते हैं, जो पूर्ण वियोजन के बावजूद कणों की सँख्या दुगुनी, तिगुनी या अधिक होने की तुलना में कम है। अतएव, आयनों की सान्द्रता पर निर्भर वैद्युतअपघट्य

के विलयन के सभी गुण इस प्रकार व्यक्त होते हैं जैसे कि विलयन में आयनों की सँख्या वैद्युत-अपघट्य के पूर्ण वियोजन की स्थिति की तुलना में कम हो।

विलयन में आयनों की अवस्था का मूल्यांकन करने के लिये सक्रियता नामक मात्रा को प्रयुक्त करते हैं।

आयन की सक्रियता उसकी वह प्रभावी प्रतिबंधित सान्द्रता है, जिसके अनुसार वह रासायनिक अभिक्रियाओं में भाग लेता है। आयन की सक्रियता α सक्रियता स्थिरांक f से गुणित उसकी सान्द्रता C के के बराबर होती है:

$$a = f\mathrm{C}$$

विभिन्न आयनों के सक्रियता स्थिरांक विभिन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त वे अवस्थाओं के परिवर्तित होने पर, विशेषकर विलयन की सान्द्रता परिवर्तित होने पर, परिवर्तित हो जाते हैं। सान्द्रित विलयनों में सक्रियता स्थिरांक सामान्यत: एक से कम होता है, तथा विलयन के तनु होने पर वह एक के बराबर हो जाता है। एक से कम f का मान आयनों के बीच पारस्परिक क्रिया की ओर इंगित करता है जिसके फलस्वरूप वे एक दूसरे के साथ सम्बंधित हो जाते हैं। यदि सक्रियता स्थिरांक एक के लगभग हो तो इसका अर्थ हुआ कि अन्तरा आयनी पारस्परिक क्रिया क्षीण है। वस्तुत: बहुत ही तनु विलयनों में आयनों की पारस्परिक औसत दूरी इतनी अधिक होती है कि अन्तराआयनी बलों का प्रभाव लगभग नहीं पड़ता है।

तनु विलयनों में आयनों की प्रकृति उनके सक्रियता स्थिराँक पर कम प्रभाव डालती है। लगभग रूप में यह माना जा सकता है कि नियत आयन का सक्रियता स्थिरांक केवल उसके आवेश और विलयन I के आयनी बल पर निर्भर करता है जिससे अभिप्राय है कि विलयन में विद्यमान सभी आयनों की सान्द्रताओं व उनके आवेशों के वर्ग के गुणनफल के योग के आधे के बराबर है:

$$I = \frac{1}{2}\left(C_1 z_1^2 + C_2 z_2^2 + \ldots + C_n z_n^2\right)$$

उदाहरणतया, आइये 0.1 मोल०/लि० सोडियम क्लोराइड के विलयन का आयनी बल ज्ञात करें। यहाँ Na^+ (C_1) आयनों की सान्द्रता 0.1 मोल/लि०, है, $z_1 = 1$; Ba^{2+} आयनों की सान्द्रता $C_2 = 0.1$ मोल/लि० है, $z_2 = 2$; क्लोराइड-आयनों की कुल सान्द्रता (C_3) $0.1 + 0.1 \times 2 = 0.3$ मोल लि० है, $z_3 = -1$ है। अत:

$$I = \frac{1}{2}[0.1 \times 1^2 + 0.1 \times 2^2 + 0.3(-1)^2] = \frac{1}{2}(0.1 + 0.4 + 0.3) = 0.4$$

तालिका 16 में विलयन के विभिन्न आयनी बलों पर विभिन्न आवेश वाले आयनों के लिये सक्रियता स्थिराँक के मान दिये गये हैं। इस तालिका के आंकड़ों को प्रयोग करके, उदाहरणतया, आप आसानी से यह सिद्ध कर सकते हैं कि उपरोक्त विलयन

तालिका 16

विलयन की विभिन्न आयनिक प्रबलता पर आयनों के सक्रियता स्थिरांक *f*

विलय की आयनिक प्रबलता I	आयन का आवेश		
	± 1	± 2	± 3
0.05	0.84	0.50	0.21
0.1	0.81	0.44	0.16
0.2	0.80	0.41	0.14
0.3	0.81	0.42	0.14
0.4	0.82	0.45	0.17
0.5	0.84	0.50	0.21

में Na^+ तथा Cl^- के एक आवेश वाले आयनों के सक्रियता स्थिरांक समान हैं और 0.82 के बराबर हैं, और Ca^{2+} दो आवेशों वाले आयनों के सक्रियता स्थिराँक 0.45 के बराबर है।

यदि सक्रियता के मानों का प्रयोग किया जाए तो रासायनिक संतुलन के नियमों को प्रबल वैद्युत अपघट्यों के लिये भी प्रयुक्त किया जा सकता है। विशेषतः, प्रबल अम्लों के वियोजन स्थिराँकों के मान प्राप्त किये जा सकते हैं। वियोजन स्थिरांक के समीकरण में आयनों की सान्द्रता व अवियोजित अणुओं के स्थान पर उनकी सक्रियताएँ होंगी। इसके थोड़ा विधिवत होने के बावजूद वे उपयोगी हैं क्योंकि वे प्रबल

तालिका 17

25° सें. पर जलीय विलयनों में कुछ प्रबल अम्लों के वियोजन स्थिराँक

अम्ल	सूत्र	वियोजन स्थिराँक
नाइट्रिक	HNO_3	43.6
हाइड्रोजन ब्रोमाइड	HBr	10^9
हाइड्रोजन आयोडाइड	HI	10^{11}
परमैंगनिक	$HMnO_4$	200
सल्फ़्यरिक	H_2SO_4	$K_1 = 1000;\ K_2 = 10^{-2}$
हाइड्रोक्लोराइड	HCl	10^7

अम्लों के गुणों की आपस में एक दूसरे के साथ तुलना करने की सम्भावना देते हैं। तालिका 17 में कुछ प्रबल अम्लों के वियोजन स्थिराँक दिये गए हैं जो सक्रियता द्वारा व्यक्त किये गए हैं।

87. वैद्युत अपघट्य वियोजन के सिद्धाँत के दृष्टिकोण से अम्लों, क्षारों तथा लवणों के गुण. आइये, जलीय विलयनों में वैद्युत-अपघट्यों के गुण दिखाने वाले पदार्थों के गुणों को वैद्युत-अपघट्य वियोजन के सिद्धाँत के प्रकाश में देखे।

अम्ल. अम्लों के लिये निम्न सामान्य गुण लाक्षणिक हैं:

क) क्षारों के साथ मिलकर पारस्परिक क्रिया करके लवण बनाने की विशेषता;

ख) कुछ धातुओं के साथ पारस्परिक क्रिया करके हाइड्रोजन उत्सर्जन करने की विशेषता;

ग) सूचकों के रंग बदलने, विशेषतः, लिटमस को लाल रंग देने की विशेषता;

घ) खट्टा स्वाद।

किसी भी अम्ल के वियोजन में हाइड्रोजन के आयन बनते हैं। इसीलिये सभी गुण, जो अम्लों के जलीय विलयनों के लिये सामान्य हैं, हाइड्रोजन के जलयोजित आयनों के कारणो से हैं। वे ही लिटमस को लाल रंग देते हैं, अम्लों को खट्टा स्वाद देते हैं, इत्यादि। हाइड्रोजन के आयनों से छुटकारा पाने पर जैसे कि उदासीनता के समय, अम्लीय गुण भी लुप्त हो जाते हैं। इसीलिये वैद्युत-अपघट्य वियोजन का सिद्धाँत यह परिभाषा देता है कि अम्ल वे वैद्युत-अपघट्य हैं जो विलयनों में वियोजित होकर हाइड्रोजन के आयन बनाते हैं।

पूर्णतया वियोजित होने वाले प्रबल अम्लों में अम्लों के गुण अधिक डिग्री में प्रकट होते हैं। क्षीण अम्लों में – कम डिग्री में। अम्ल जितनी अच्छी प्रकार वियोजित होगा, यानी उसका वियोजन स्थिराँक जितना अधिक होगा, उतना ही वह अम्ल प्रबल होगा।

तालिका 15 व 17 में दिए गए आँकड़ों की तुलना करते हुये आप नोट कर सकते हैं कि अम्लों के वियोजन स्थिराँकों की मात्राएँ बहुत बड़े परिसर में परिवर्तित होती हैं। विशेषकर, एसीटिक अम्ल की तुलना में हाइड्रोजन सायनाइड का वियोजन स्थिराँक बहुत ही कम है। और, हालाँकि ये दोनों अम्ल क्षीण हैं; तदपि ऐसीटिक अम्ल हाइड्रोजन सायनाइड की तुलना में काफ़ी प्रबल है। सल्फ्यूरिक अम्ल के वियोजन के पहले और दूसरे स्थिराँकों की मात्राएँ यह सिद्ध करती हैं कि वियोजन के पहले चरण में H_2SO_4 प्रबल अम्ल है, तथा दूसरे चरण में – क्षीण अम्ल है। वे अम्ल, जिनके वियोजन स्थिरांक 10^{-4}–10^{-2} के बीच में होते है, कभी-कभी मध्य (या साधारण) प्रबलता वाले अम्ल कहलाते हैं। ये, विशेषकर, हैं: आर्थोफास्फोरिक व सल्फ्यूरस अम्ल (पहले चरण के वियोजन के अनुसार)।

क्षार. क्षारों के जलीय विलयनों में निम्न सामान्य गुण विद्यमान होते हैं:

क) अम्लों के साथ पारस्परिक क्रिया करके लवण बनाने की विशेषता;

ख) सूचकों के रंगों को अम्लों की अपेक्षा अलग प्रकार से बदलने की विशेषता (उदाहरणतया, वे लिटमस को नीला रंग दे देते हैं);

ग) अपनी प्रकार का "साबुन-सा" स्वाद।

चूँकि क्षारों के सभी विलयनों के लिये उनमें हाइड्रोक्साइड-आयनों की विद्यमानता का होना लाक्षणिक है, तो स्पष्ट है कि मुख्य गुणों के वाहक हाइड्रोक्साइड-आयन हैं। इसीलिये वैद्युत-अपघट्य वियोजन के सिद्धाँत के दृष्टिकोण से क्षार वह वैद्युत-अपघट्य है जो विलयन में वियोजित होकर हाइड्रोक्साइड-आयन उत्सर्जित करता है।

अम्लों की प्रबलता की भाँति, क्षारों की प्रबलता वियोजन स्थिराँक की मात्रा पर निर्भर करती है। दिये गये क्षार का वियोजन स्थिरांक जितना अधिक होगा, उतना ही वह प्रबल होगा।

ऐसे हाइड्रोक्साइड भी होते हैं जो पारस्परिक क्रिया में भाग ले सकते हैं और न केवल अम्लों के साथ, बल्कि क्षारों के साथ भी लवण बना सकते हैं। ऐसे हाइड्रोक्साइडों में जिंक का हाइड्रोक्साइड आता है। उदाहरणतया, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ उसकी पारस्परिक क्रिया से जिंक क्लोराइड प्राप्त होता है:

$$Zn(OH)_2 + 2HCl = ZnCl_2 + 2H_2O$$

तथा सोडियम हाइड्रोक्साइड के साथ – सोडियम जिंकेट:

$$Zn(OH)_2 + 2NaOH = Na_2ZnO_2 + 2H_2O$$

इस गुण वाले हाइड्रोक्साइड उभयधर्मी हाइड्रोक्साइड या उभयधर्मी वैद्युत-अपघट्य कहलाता है। ऐसे हाइड्रोक्साइडों में, जिंक हाइड्रोक्साइड के अतिरिक्त, ऐलुमिनियम हाइड्रोक्साइड, क्रोमियम हाइड्रोक्साइड, इत्यदि आते हैं।

उभयधर्मी परिघटना का कारण यह है कि उभयधर्मी वैद्युत-अपघट्यों के अणुओं में धातुओं व आक्सीजन के बीच आबन्ध की दृढ़ता आक्सीजन एवं हाइड्रोजन के बीच आबन्ध की दृढ़ता से थोड़ी-सी भिन्न होती है। अतएव, ऐसे अणुओं का वियोजन इन दोनों आबन्धों के स्थानों में सम्भव है। यदि उभयधर्मी वैद्युत-अपघट्यों को ROH सूत्र द्वारा लिखा जाये, तो उसके वियोजन को निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है

$$H^+ + RO^- \rightleftarrows ROH \rightleftarrows R^+ + OH^-$$

इस प्रकार, उभयधर्मी वैद्युत्-अपघट्य के विलयन जटिल संतुलन होते है जिसमें दोनों प्रकार के – अम्लों व क्षारों के – वियोजन के उत्पाद भाग लेते हैं।

इसी प्रकार कुछ कार्बनिक यौगिकों के बीच भी उभयधर्मी परिघटना देखने में आती है। इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका जीव रसायन में है; उदाहरणतया, प्रोटीन उभयधर्मी वैद्युत-अपघट्य हैं।

लवण लवण वे वैद्युत-अपघट्य हैं जो जल में विलीन होने पर वियोजित होते हैं तथा हाइड्रोजन आयनों से पृथक धनात्मक आयन उत्सर्जित करते हैं, और हाइड्रोक्साइड-आयनों से पृथक् ऋणात्मक आयन उत्सर्जित करते हैं। सभी लवणों के जलीय विलयनों के लिये कोई आम आयन नहीं होते हैं ; इसीलिये लवणों में सामान्य गुण नहीं होते हैं। नियमानुसार, लवण अच्छी प्रकार वियोजित होते हैं तथा लवण बनाने वाले आयनों के आवेश जितने कम होंगे उतनी ही अच्छी प्रकार वियोजित होंगे।

अम्लीय लवणों के विलीन होने पर विलयन में धातु के धनायन, अम्लीय अवशेष के जटिल ऋणायन तथा इस जटिल अम्लीय अवशेष के वियोजन के उत्पाद तथा H^+ आयन बनते हैं। उदाहरणतया, सोडियम हाइड्रोकार्बोनेट का वियोजन निम्न समीकरण के अनुसार होता है :

$$NaHCO_3 = Na^+ + HCO_3^-$$
$$HCO_3^- = H^+ + CO_3^{2-}$$

क्षारीय लवणों के वियोजन में अम्लों के ऋणायन तथा जटिल धनायन, जो धातुओं व हाइड्रोक्सीग्रुपों के होते हैं, बनते हैं। ये जटिल धनायन भी वियोजित होने की विशेषता रखते हैं। इसीलिये क्षारीय लवण के विलयन में OH^- आयन उपस्थित होते हैं। उदाहरणतया, मैग्नीशियम हाइड्रोक्सोक्लोराइड के विलीन होने पर वियोजन निम्न समीकरण के अनुसार होता है :

$$MgOHCl = MgOH^+ + Cl^-$$
$$MgOH^+ = Mg^{2+} + OH^-$$

अतएव, वैद्युत्-अपघट्य वियोजन के सिद्धाँत के अनुसार अम्लों के आम गुणों का कारण उनके विलयनों में हाइड्रोजन आयनों, तथा क्षारों के आम गुणों का कारण उनके विलयनों में हाइड्रोक्साइड-आयनों की विद्यमानता है। यह कारण, हालाँकि, सभी पर लागू नहीं होता है। ऐसी रासायनिक अभिक्रियाएँ होती हैं, जिनमें वे अम्ल व क्षार भाग लेते हैं, जिन पर वैद्युत्-अपघट्यों के वियोजन का सिद्धाँत लागू नहीं होता है। विशेषकर, अम्ल व क्षार एक दूसरे के साथ आयनों में बिना वियोजित हुये पारस्परिक क्रिया कर सकते हैं। अत: केवल अणुओं से बनी निर्जलीय हाइड्रोजन क्लोराइड निर्जलीय क्षारों के साथ आसानी से अभिक्रिया करती है। इसके अलावा, ऐसे पदार्थ ज्ञात हैं जिनकी संरचना में हाइड्रोक्सील ग्रुप नहीं होते हैं, लेकिन उनमें क्षारीय गुण विद्यमान होते हैं। उदाहरणतया, अम्लों के साथ पारस्परिक क्रिया करके अमोनिया लवण बनाता है (अमोनियम लवण), हालांकि उसकी संरचना में OH ग्रुप नहीं है। अतएव, हाइड्रोजन क्लोराइड के साथ वह एक आम लवण – अमोनियम क्लोराइड – बनाता है :

$$NH_3 + HCl = NH_4Cl$$

इस प्रकार की अभिक्रिया तथा निर्जलीय माध्यमों में घटने वाली अभिक्रियाओं के अध्ययन के आधार पर अम्लों व क्षारों के बारे में बहुत अधिक सामान्य विचार बने। 1923 में प्रस्तुत किया गया प्रोटोन सिद्धाँत अम्लों व क्षारों के महत्वपूर्ण आधुनिक सिद्धाँतों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रोटोन सिद्धाँत के अनुसार, अम्ल प्रोटोन के दाता होते हैं यानी वह कण (अणु या आयन) जो हाइड्रोजन आयन – प्रोटोन – देने की विशेषता रखता हो, तथा क्षार प्रोटोन ग्राही होता है, अर्थात् वह कण (अणु या आयन) जो प्रोटोन को युग्मित करने की विशेषता रखता हो। अम्ल तथा क्षार के बीच अनुपात निम्न आरेख द्वारा व्यक्त होता है:

$$\text{क्षार} + \text{प्रोटोन} \rightleftarrows \text{अम्ल}$$

इस अनुपात द्वारा सम्बंधित क्षार तथा अम्ल संयुग्मी कहलाते हैं। उदाहरणतया, HSO_4^- का आयन क्षार है जो H_2SO_4 अम्ल के साथ संयुग्मी है।

अम्ल तथा क्षार के बीचकी अभिक्रिया को प्रोटोन सिद्धाँत निम्न आरेख द्वारा व्यक्त करता है:

$$(\text{अम्ल})_1 + (\text{क्षार})_2 = (\text{अम्ल})_2 + (\text{क्षार})_1$$

उदाहरणतया, निम्न अभिक्रिया

$$HCl + NH_3 = NH_4^+ + Cl^-$$

में Cl^- आयन क्षार है, जो HCl अम्ल के साथ संयुग्मी है, तथा NH_4^+ आयन अम्ल है, जो NH_3 क्षार के साथ संयुग्मी है।

प्रोटोन सिद्धाँत में मुख्य बात यह है कि किसी भी पदार्थ का अम्ल या क्षार होना इस बात पर निर्भर करता है कि वह किस अन्य पदार्थ के साथ अभिक्रिया करता है। इसमें पदार्थ व प्रोटोन की आबन्धी ऊर्जा महत्वपूर्ण है। अतएव, NH_3—H_2O—HF श्रेणी में यह ऊर्जा NH_3 के लिए अधिकतम तथा HF के लिये न्यूनतम है। इसीलिये NH_3 के साथ मिश्रण में जल अम्ल की भाँति व्यवहार करता है, और HF के साथ मिश्रण में – क्षार की भाँति:

$$NH_3 + H_2O = NH_4^+ + OH^-$$

$$HF + H_2O = F^- + H_3O^+$$

88. आयनी-आण्विक समीकरण. किसी भी प्रबल अम्ल को प्रबल क्षार द्वारा उदासीन करने पर बनने वाले जल के प्रत्येक मोल पर लगभग 57.6 कि० जू० ऊष्मा उत्सर्जित होती है:

$$HCl + NaOH = NaCl + H_2O + 57.53 \text{ कि०जू०}$$

$$HNO_3 + KOH = KNO_3 + H_2O + 57.61 \text{ कि०जू०}$$

इससे अभिप्राय यह है कि ऐसी अभिक्रियाएँ एक ही प्रक्रिया हैं। इस प्रक्रिया का समीकरण हम प्राप्त करेंगे यदि हम दी गई अभिक्रियाओं में से किसी एक को विस्तार में देखेंगे, जैसे पहली अभिक्रिया को। इसके समीकरण को पुनः लिखे, चूंकि वे विलयन में आयनों के रूप में विद्यमान है, तथा क्षीण वैद्युत्-अपघट्यों को आण्विक स्वरूप में लिखे, चूंकि वे विलयन में अधिकांश रूप में अणुओं के रूप में होते हैं (जल बहुत ही क्षीण वैद्युतपघट्य है, दे० § 90) :

$$H^+ + Cl^- + Na^+ + OH^- = Na^+ + Cl^- + H_2O$$

इस समीकरण को देखते हुये हम कह सकते हैं कि अभिक्रिया के समय Na^+ तथा Cl^- आयनों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसीलिये आइये समीकरण को पुनः लिखें तथा इन आयनों को समीकरण के दोनों भागों से बाहर रखें

$$H^+ + OH^- = H_2O$$

इस प्रकार, किसी भी प्रबल क्षार द्वारा किसी भी प्रबल अम्ल की उदासीनता अभिक्रियाएँ एक ही क्रिया पर आ जाती है —हाइड्रोजन के आयनों तथा हाइड्रोक्साइड-आयनों से जल के अणुओं के बनने की क्रिया। स्पष्ट है कि इन अभिक्रियाओं के तापीय प्रभाव समान होने चाहिए।

यथावत् शब्दों में, अणुओं से जल के बनने की अभिक्रिया उत्क्रमणीय होती है जिसे निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है

$$H^+ + OH^- \rightleftarrows H_2O$$

लेकिन, जैसा हम नीचे देखेंगे, जल बहुत ही क्षीण वैद्युत्-अपघट्य है और वह बहुत ही कम मात्रा में वियोजित होता है। अन्य शब्दों में, जल के अणुओं और आयनों के बीच का संतुलन अणुओं के बनने की ओर काफ़ी अधिक विस्थापित है। इसीलिये व्यावहारिक रूप से प्रबल क्षार द्वारा प्रबल अम्ल की उदासीनता की अभिक्रिया अंत तक होती है।

सिल्वर के किसी भी लवण के विलयन और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल या उसके किसी भी लवण के विलयन के मिश्रण में हमेशा सिल्वर क्लोराइड का श्वेत स्कन्दित अवशेष बनता है।

$$AgNO_3 + HCl = AgCl\downarrow + HNO_3$$
$$Ag_2SO_4 + CuCl_2 = 2AgCl\downarrow + CuSO_4$$

इस प्रकार की अभिक्रियाएँ भी एक क्रिया पर आ जाती हैं। उसके आयनी-आण्विक समीकरण को प्राप्त करने के लिये पुनः लिखना होगा, उदाहरणतया, प्रथम अभिक्रिया

का समीकरण ग्रौर गत उदाहरण की भाँति प्रबल वैद्युत-ग्रपघट्यों को ग्रायनी स्वरूप में तथा ग्रवशेष में स्थित पदार्थ को ग्राण्विक स्वरूप में लिखें

$$Ag^+ + NO_3^- + H^+ + Cl^- = AgCl\downarrow + H^+ + NO_3^-$$

जैसा विदित है कि H^+ तथा NO_3^- ग्रायन ग्रभिक्रिया के समय परिवर्तित नहीं होते। इसीलिये उन्हें बाहर रखकर समीकरण को पुनः लिखें

$$Ag^+ + Cl^- = AgCl\downarrow$$

ऊपर देखी गई क्रिया का ग्रायनी-ग्राण्विक समीकरण यही है।

यहाँ इसी प्रकार ध्यान में रखना चाहिये कि सिल्वर क्लोराइड का ग्रवशेष Ag^+ तथा Cl^- ग्रायनों के साथ विलयन में संतुलन बनाता है, चूँकि ग्रन्तिम समीकरण द्वारा व्यक्त क्रिया उत्क्रमणीय है

$$Ag^+ + Cl^- \rightleftarrows AgCl\downarrow$$

लेकिन सिल्वर क्लोराइड की कम विलयशीलता के फलस्वरूप यह संतुलन बहुत ही ग्रधिक दायीं ग्रोर विस्थापित है। इसीलिये यह माना जा सकता है कि ग्रायनों से AgCl के बनने की ग्रभिक्रिया व्यवहारिक रूप से ग्रंत तक होते है।

AgCl के ग्रवशेष का बनना हमेशा देखा जा सकेगा जब एक विलयन में Ag^+ तथा Cl^+ ग्रायन काफ़ी सान्द्रता में विद्यमान होंगे। इसीलिए सिल्वर ग्रायनों की मदद से विलयन में Cl^- ग्रायनों की विद्यमानता को ज्ञात किया जा सकता है, ग्रौर इसके विपरीत क्लोराइड ग्रायनों की मदद से – सिल्वर ग्रायनों की विद्यमानता का पता लगाया जा सकता है; Cl^- ग्रायन Ag^+ ग्रायन का ग्रभिकारक हो सकता है तथा Ag^+ ग्रायन — Cl^- ग्रायन का।

भविष्य में हम वैद्युत्-ग्रपघट्यों के साथ ग्रभिक्रियाग्रों के समीकरणों के लिखने के ग्रायनी-ग्राण्विक स्वरूप का काफ़ी प्रयोग करेंगे।

ग्रायनी-ग्राण्विक समीकरणों को बनाने के लिये यह जानना ग्रावश्यक है कि जल में कौन-से लवण विलयशील हैं तथा कौन-से लवण व्यावहारिक रूप से विलयशील नहीं हैं। महत्त्वपूर्ण लवणों के जल में विलयशीलता के विशेष लक्षण तालिका 18 में दिए गए हैं।

ग्रायनी-ग्राण्विक समीकरणों की मदद से वैद्युत्-ग्रपघट्यों के बीच ग्रभिक्रियाग्रों के घटने की विशेषताग्रों को समझने में ग्रासानी होती है। उदाहरणतया कुछ ग्रभिक्रियाग्रों को देखें जिनमें क्षीण ग्रम्ल व क्षार भाग लेते हैं।

जैसा ऊपर बताया गया था कि किसी भी प्रबल क्षार द्वारा किसी भी प्रबल ग्रम्ल की उदासीनता के फलस्वरूप एक ही तापीय प्रभाव होता है, चूँकि वह एक ही क्रिया

तालिका 18

जल में अतिमहत्वपूर्ण लवणों की विलयशीलता

ऋणायन तथा धनायन	लवनों की विलयशीलता
NO_3^-	सभी लवण विलयशील हैं।
Cl^-	AgCl, CuCl, $PbCl_2$ तथा Hg_2Cl_2 के अतिरिक्त सभी लवण विलेय हैं।
SO_4^{2-}	$BaSO_4$, $SrSO_4$ तथा $PbSO_4$ के अतिरिक्त सभी लवण विलेय हैं; $CaSO_4$ कम विलेय है।
CO_3^{2-}	माध्यमिक लवणों में से केवल सोडियम, पोटैशियम तथा अमोनिया के लवण विलेय हैं।
PO_4^{3-}	इसी प्रकार
Na^+, K^+, NH_4^+	लगभग सभी लवण विलेय हैं।

पर पहुँचती है–हाइड्रोजन के आयनों तथा हाइड्रोक्साइड-आयनों में से जल के अणुओं का बनना। लेकिन क्षीण क्षार द्वारा प्रबल अम्ल की या क्षीण अम्ल की प्रबल अथवा क्षीण क्षार द्वारा उदासीनता के फलस्वरूप तापीय प्रभाव विभिन्न होंगे। ऐसी अभिक्रियाओं के आयनी-आण्विक समीकरण लिखें।

प्रबल क्षार (सोडियम हाइड्रोक्साइड) द्वारा क्षीण अम्ल (ऐसीटिक) की उदासीनता

$$CH_3COOH + NaOH = CH_3COONa + H_2O$$

यहाँ सोडियम हाइड्रोक्साइड व प्राप्त लवण प्रबल वैद्युत्-अपघटय हैं, तथा क्षीण–अम्ल व जल हैं

$$CH_3COOH + Na^+ + OH = CH_3COO^- + Na^+ + H_2O$$

जैसा कि विदित है, अभिक्रिया के दौरान केवल सोडियम के आयनों का परिवर्तन नहीं होता। इसीलिए आयनी-आण्विक समीकरण का निम्न स्वरूप होता है

$$CH_3COOH + OH^- = CH_3COO^- + H_2O$$

क्षीण क्षार (अमोनिया हाइड्रोक्साइड) द्वारा प्रबल अम्ल (नाइट्रिक) की उदासीनता

$$HNO_3 + NH_4OH = NH_4NO_3 + H_2O$$

यहाँ आयनों के रूप में अम्ल व प्राप्त होने वाला लवण है, तथा अणु के रूप में – अमोनिया हाइड्रोक्साइड व जल है

$$H^+ + NO_3^- + NH_4OH = NH_4^+ + NO_3 + H_2O$$

NO_3^- के आयन परिवर्तित नहीं होते हैं। उनको निकाल कर निम्न समीकरण प्राप्त होता है

$$H^+ + NH_4OH = NH_4^+ + H_2O$$

क्षीण क्षार (अमोनिया हाइड्रोक्साइड) द्वारा क्षीण अम्ल (ऐसीटिक) की उदासीनता

$$CH_3COOH + NH_4OH = CH_3COONH_4 + H_3O$$

इस अभिक्रिया में सभी पदार्थ, केवल प्राप्त होने वाले लवण को छोड़कर, क्षीण वैद्युत-अपघट्य हैं। इसीलिए समीकरण का आयनी-आण्विक स्वरूप यह है :

$$CH_3COOH + NH_4OH = CH_3COO^- + NH_4^+ + H_2O$$

प्राप्त आयनी-आण्विक समीकरणों की तुलना करके आप देखेंगे कि वे सभी विभिन्न है। इसीलिए स्पष्ट है कि विचाराधीन अभिक्रियाओं की ऊष्मा भी असमान है।

ऊपर बताया ही जा चुका है कि प्रबल क्षारों द्वारा प्रबल अम्लों की उदासीनता की अभिक्रियाएँ, जिनके दौरान हाइड्रोजन के आयन तथा हाइड्रोक्साइड आयन जल के अणु में युग्मित हो जाते हैं, व्यावहारिक रूप से अंत तक होती हैं। उदासीनता की अभिक्रियाएँ, जिनके दौरान कम से कम एक मूल पदार्थ क्षीण वैद्युत-अपघट्य होता है तथा कम वियोजित पदार्थों के अणु न केवल समीकरण के बायें पक्ष में होते हैं बल्कि दायें पक्ष में भी होते हैं, अंत तक नहीं घटती हैं। वे संतुलन की अवस्था तक पहुँच जाती हैं, जिसमें लवण उन क्षार तथा अम्ल के साथ बना रहता है जिनसे कि वह बना है। इसीलिये समान अभिक्रियाओं के समीकरणों को उत्क्रमणीय अभिक्रियाओं की भाँति लिखना सही होगा :

$$CH_3COOH + OH^- \rightleftarrows CH_3COO^- + H_2O$$

$$H^+ + NH_4OH \rightleftarrows NH_4^+ + H_2O$$

$$CH_3COOH + NH_4OH \rightleftarrows CH_3COO^- + NH_4^+ + H_2O$$

89. **विलेयता गुणनफल**. हम जानते हैं कि (§ 73) जल में ठोस पदार्थ के विलीन होने पर विलयन के संतृप्त होने पर विलीन होने की क्रिया बंद हो जाती है, यानी,

जब विलीन होने वाले पदार्थ तथा विलयन में विद्यमान उसी पदार्थ के अणुओं के बीच संतुलन बन जाता है। वैद्युत्-अपघट्य, जैसे लवण, के विलीन होने पर, विलयन में अणु नहीं अपितु आयन आ जाते हैं। अतः, संतृप्त विलयन में संतुलन ठोस लवण तथा विलयन में आने वाले आयनों के बीच बनता है। उदाहरणतया, पोटैशियम सल्फेट के संतृप्त विलयन में संतुलन बनता है:

$$\underset{\text{ठोस लवण}}{CaSO_4} \rightleftarrows \underset{\text{विलयन में आयन}}{Ca^{2+} + SO_4^{2-}}$$

इस क्रिया के लिए संतुलन स्थिरांक निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त होगा:

$$K = \frac{[Ca^{2+}]\,[So_4^{2-}]}{[CaSo_4]}$$

भिन्न के हर में ठोस लवण की सान्द्रता एक स्थिर मात्रा है जो स्थिरांक बन सकती है: अतः निम्न प्रकार से लिख कर

$$K\,[CaSO_4] = K'$$

हमें प्राप्त होगा:

$$[Ca^{2+}]\,[SO_4^{2-}] = K'$$

अतएव, वैद्युत्-अपघट्यों के संतृप्त विलयन में उसके आयनों की सान्द्रताओं का गुणनफल नियत ताप पर एक स्थिर मात्रा है। यह मात्रा सांख्यिक रूप से वैद्युत-अपघट्य की विलीन होने की विशेषता बतलाती है; इसे वैद्युत्-अपघट्य का विलेयता गुणनफल कहते हैं तथा वि० गु० अक्षरों द्वारा लिखते हैं।

K′ को वि० गु०$_{CaSO_4}$ द्वारा लिखने पर

$$\text{वि०गु०}_{CaSO_4} = [Ca^{2+}]\,[SO_4^{2-}]$$

वैद्युत-अपघट्य के विलेयता गुणनफल का सांख्यिक मान उसकी विलेयता ज्ञात होने पर मालूम करना कठिन नहीं है। उदाहरणतया, 20° सें. पर पोटैशियम सल्फेट की विलेयता $1.5 \cdot 10^{-2}$ मोल/ली० है। इसका अर्थ यह हुआ कि Ca^{2+} तथा SO_4^{2-} में से प्रत्येक आयन की सान्द्रता संतृप्त विलयन में $1.5 \cdot 10^{-2}$ मोल/लि० के बराबर है। अतएव, इस लवण का विलेयता गुणनफल

$$\text{वि०गु०}_{CaSO_4} = [Ca^{2+}]\,[SO_4^{2-}] = (1.5 \cdot 10^{-2})^2 = 2.25 \cdot 10^{-4}$$

वैद्युत्-अपघट्य वियोजन के शास्त्रीय सिद्धाँत के आधार पर किया गया यह परिकलन एकदम परिशुद्ध नहीं है, क्योंकि इसमें आयनों के बीच लागू स्थिर-वैद्युत बलों का

वैद्युत-अपघट्यों की विलेयता पर प्रभाव ध्यान में नहीं रखा गया है। यदि इस प्रभाव को ध्यान में रखा जाए, यानी यदि Ca^{2+} तथा SO_4^{2-} सान्द्रताओं के स्थान पर $CaSO_4$ के सान्द्रित विलयन में उनकी सक्रियताओं को गुणित करने पर विलेयता गुणनफ्ल का मान कुछ कम हो जाएगा; वि० गु०$_{CaSO_4}$ का परिशुद्ध मान है: $1.3 \cdot 10^{-4}$।

बहुत ही कम विलयशील वैद्युत-अपघट्यों की स्थिति मे उक्त बलों का प्रभाव ध्यान में नहीं भी लिया जा सकता है।

उन स्थितियों में जब वैद्युत्-अपघट्यों में दो या अधिक समान आयन होते हैं, इन आयनों की सान्द्रताओं पर विलेयता गुणनफल के परिकलन के समय क्रमशः घात लगानी चाहिये:

$$\text{वि०गु०}_{PbI_2} = [Pb^{2+}]\,[I^-]^2$$

विलेयता गुणनफल का मान उन प्रश्नों को हल करना सम्भव करता हैं, जो रासायनिक अभिक्रियाओं में अवशेषों के बनने या विलीन होने के साथ सम्बंधित हैं। यह विश्लेषिक रसायन के लिये काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। लेकिन यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि सक्रियता स्थिरांकों के बिना परिकलित विलेयता गुणनफल केवल कम विलयशील वैद्युत अपघट्यों के लिये ही एक स्थिर मात्रा है, तथा वह भी इस शर्त पर कि विलयन में विद्यमान अन्य आयनों की सान्द्रता अधिक न हो। इसका कारण यह है कि केवल अत्यधिक तनु विलयनों में (दे० पृ० 285) सक्रियता स्थिरांक एक के लगभग है। अच्छी प्रकार विलीन होने वाले वैद्युत-अपघट्यों के लिये संतृप्त विलयन में आयनों की सान्द्रताओं के गुणनफलों के मान अन्य पदार्थों की उपस्थिति में काफ़ी अधिक परिवर्तित हो सकते हैं। यह आयनों के सक्रियता स्थिरांकों में परिवर्तनों के फलस्वरूप होता है। इसीलिए सक्रियता स्थिरांकों के बिना विलेयता गुणनफल के आधार पर किये गये परिकलन इन स्थितियों में त्रुटिपूर्ण परिणाम देते हैं।

तालिका 19 में जल में कुछ कम विलेयशील यौगिकों के विलेयता गुणनफलों के मान दिये गये हैं।

90. जल का वियोजन. हाइड्रोजन निर्देशांक. शुद्ध जल विद्युत का अच्छा सुचालक नहीं है, लेकिन फिर भी उसमें वैद्युत चालकता इतनी है कि मापी जा सकती है तथा हाइड्रोजन के आयनों तथा हाइड्रोक्साइड-आयनों में जल के कम वियोजन की वज़ह से है:

$$H_2O \rightleftarrows H^+ + OH^-$$

शुद्ध जल की वैद्युत्-चालकता की मात्रा के अनुसार जल में हाइड्रोजन के आयनों तथा हाइड्रोक्साइड-आयनों की सान्द्रता ज्ञात की जा सकती है। 25° सें० पर वह 10^{-7} मोल/ली० के बराबर है।

तालिका 19

25° सें. पर कुछ पदार्थों की विलयशीलता के गुणनफल.

यौगिक	विलयशीलता के गुणनफल
AgCl	$1.8 \cdot 10^{-10}$
AgBr	$6 \cdot 10^{-13}$
AgI	$1 \cdot 10^{-16}$
$Cu(OH)_2$	$2.2 \cdot 10^{-20}$
$Zn(OH)_2$	$1 \cdot 10^{-17}$
$BaSO_4$	$1.1 \cdot 10^{-10}$
$CaSO_4$	$1.3 \cdot 10^{-4}$
$CaCO_3$	$5 \cdot 10^{-9}$
CuS	$6 \cdot 10^{-36}$
Cu_2S	$1 \cdot 10^{-48}$
FeS	$5 \cdot 10^{-18}$
HgS	10^{-52}
MnS	$2.5 \cdot 10^{-10}$
ZnS	10^{-23}

जल के वियोजन स्थिरांक के समीकरण को लिखें:

$$K = \frac{[H^+][OH^-]}{[H_2O]}$$

इस समीकरण को निम्न प्रकार से लिखें:

$$[H^+][OH^-] = [H_2O]\,K$$

चूँकि जल के वियोजन की डिग्री बहुत ही कम है, तो जल में H_2O के अवियोजित अणुओं की सान्द्रता व्यवहारिक रूप से जल की सामान्य सान्द्रता के बराबर है: 55.55 मोल/ली० (1 ली० में 1 000 ग्रा० जल है, यानी 100 : 18.02 = 55,55 मोल) तनु जलीय विलयनों में जल की सान्द्रता को वैसी ही माना जा सकता है। इसीलिए अन्तिम समीकरण में $[H_2O]\,K$ गुणनफल के स्थान पर नए स्थिरांक K_{H_2O} को रखने पर:

$$[H^+][OH^-] = K_{H_2O}$$

प्राप्त समीकरण से स्पष्ट है कि स्थिर ताप पर जल तथा तनु जलीय विलयनों के लिए हाइड्रोजन के आयनों तथा हाइड्रोक्साइड-आयनों की सान्द्रताओं का गुणनफल एक स्थिर मात्रा है। यह स्थिर मात्रा जल का आयनी गुणनफल कहलाता है। इसका

सांख्यिक मान प्राप्त करना कठिन नहीं है यदि अन्तिम समीकरण में हाइड्रोजन के आयनों तथा हाइड्रोक्साइड आयनों की सान्द्रताओं के मान रख दिये जाएँ। 25° सें० पर शुद्ध जल में $[H^+] = [OH^-] = 1 \cdot 10^{-7}$ मोल/लि० है। इसीलिए उक्त ताप * के लिये

$$K_{H_2O} = 10^{-7} \cdot 10^{-7} = 10^{-14}$$

वे विलयन, जिनके हाइड्रोजन के आयन तथा हाइड्रोक्साइड-आयनों की सान्द्रताएँ बराबर हैं, उदासीन विलयन कहलाते हैं। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, 25° सें. पर उदासीन विलयनों में हाइड्रोजन के आयनों तथा हाइड्रोक्साइड आयनों की सान्द्रताएँ 10^{-7} मोल/ली० है। अम्लीय विलयनों में हाइड्रोजन के आयनों की सान्द्रता अधिक होती है तथा क्षारीय विलयनों में हाइड्रोक्साइड-आयनों की मात्रा अधिक होती है। लेकिन विलयन की अभिक्रियामें , चाहे जैसी भी क्यों न हो, हाइड्रोजन के आयनों तथा हाइड्रोक्साइड-आयनों की सान्द्रताओं के गुणनफल स्थिर ही रहेंगे।

यदि, उदाहरणतया, शुद्ध जल में इतना अम्ल डाला जाये कि हाइड्रोजन के आयनों की सान्द्रता 10^{-3} मोल/ली० तक बढ़ जाये, तो हाइड्रोक्साइड-आयनों की सान्द्रता इस प्रकार कम हो जाएगी कि $[H^+][OH^-]$ का गुणनफल 10^{-14} के बराबर रह जाएगा। अतएव, इस विलयन में हाइड्रोक्साइड-आयनों की सान्द्रता के बराबर होगी:

$$[OH^-] = \frac{10^{-14}}{10^{-3}} = 10^{-11} \text{ मोल/ली०}$$

इसके विपरीत, यदि जल में क्षार डालें तथा इस प्रकार हाइड्रोक्साइड-आयनों की सान्द्रता को बढ़ा दिया जाए, उदाहरणतया 10^{-5} मोल/ली० तक, तो हाइड्रोजन के आयनों की सान्द्रता बराबर होगी:

$$[H^+] = \frac{10^{-14}}{10^{-5}} = 10^{-9} \text{ मोल०/ली०}$$

इन उदाहरणों से विदित है कि यदि जलीय विलयन में हाइड्रोजन के आयनों की सान्द्रता ज्ञात है तो हाइड्रोक्साइड-आयनों की सान्द्रता को ज्ञात किया जा सकता है। इसीलिए हाइड्रोजन के आयनों की सान्द्रता द्वारा सांख्यिक रूप से विलयन की अम्लीयता की डिग्री तथा क्षारीयता की डिग्री व्यक्त की जा सकती है:

उदासीन	विलयन	$[H^+] = 10^{-7}$	मोल/ली०	
अम्लीय	»	$[H^+] > 10^{-7}$	»	»
क्षारीय	»	$[H^+] < 10^{-7}$	»	»

---

* ताप के बढ़ने से जल के आयनी गुणनफल का मान बढ़ जाता है। 100° सें० पर वह $5.5 \cdot 10^{-13}$ के बराबर पहुँच जाता है।

विलयन की अम्लीयता या क्षारीयता अन्य, अधिक आसान विधि द्वारा, व्यक्त की जा सकती है: हाइड्रोजन के आयनों की सान्द्रता के स्थान पर उसका दसवां लघुगणक विपरीत चिन्ह के साथ लिखा जाता है। यह मात्रा हाइड्रोजन निर्देशांक कहलाती है तथा pH द्वारा लिखी जाती हैं,

$$pH = -\lg [H^+]$$

उदाहरणतया, यदि $[H^+] = 10^{-5}$ मोल/ली० है, तो pH =5; यदि $[H^+] = 10^{-9}$ मोल/ली०, तो pH = 9 इत्यादि। यहाँ से स्पष्ट है कि उदासीन विलयन में ($[H^+] = 10^{-7}$ मोल लि०) pH = 7. अम्लीय विलयनों में $pH < 7$, तथा वह उतना ही कम होगा, जितना अधिक विलयन अम्लीय होगा। इसके विपरीत, क्षारीय विलयनों में $pH > 7$, तथा उतना ही अधिक होगा, जितनी अधिक विलयन की क्षारीयता होगी।

pH को मापने के लिये विभिन्न विधियाँ हैं। विलयन की अभिक्रिया को लगभग रूप से विशेष अभिकारकों – जिन्हें सूचक कहते हैं – की मदद से मापा जा सकता है जिनका रंग हाइड्रोजन के आयनो की सान्द्रता के आधार पर बदलता है। अत्यधिक प्रचलित सूचक हैं – मेथिलों आरेंज, मेथिलीन, लाल फीनॉलपथेलीन। तालिका 20 में कुछ सूचकों के गुण दिये गए हैं।

अनेक क्रियाओं के लिए pH की मात्रा का अधिक मान होता है, अत: मनुष्य तथा पशुओं के रक्त का pH एकदम स्थिर मान रखता है। पौधे केवल नियत किस्म के पौधे के लिये लाक्षणिक निश्चित अंतरालों में स्थित भूमि के विलयन के pH के मान में ही बढ़ सकते हैं। प्राकृतिक जल के गुण, विशेषकर उनकी संक्षारक सक्रियता, उनकी pH पर काफ़ी अधिक निर्भर करती है।

91. आयनी संतुलनों का विस्थापन. किसी भी रासायनिक संतुलन की भाँति, वैद्युत-अपघट्यों का संतुलन तब तक अपरिवर्तित रहता है जब तक की उसकी निर्धारण अवस्थाएँ अपरिवर्तित रहती हैं। अवस्थाओं में परिवर्तन के साथ संतुलन बिगड़ जाता है।

अत: इस संतुलन में भाग लेने वाले आयनों में से एक आयन की सान्द्रता बदल जाने से संतुलन बिगड़ जाता है: इसके बढ़ने पर एक क्रिया स्थान लेती है जिसके दौरान आयन जुड़ जाते हैं। उदाहरणतया, यदि एसीटिक अम्ल के विलयन में, जो निम्न समीकरण के अनुसार वियोजित होता है

$$CH_3COOH \rightleftarrows H^+ + CH_3COO^-$$

इस अम्ल का कोई लवण डाला जाये तथा इस प्रकार CH_3COO^- आयनों की सान्द्रता को बढ़ा दिया जाये, तो ले शाटल्ये नियम के अनुसार संतुलन का विस्थापन बायीं ओर हो जाएगा, यानी, एसीटिक अम्ल के वियोजन की डिग्री कम हो जाएगी। यहाँ से निष्कर्ष निकलता है कि क्षीण वैघुत-अपघट्यों के विलयन में समान चिन्हों वाले आयनों के (यानी, वैद्युत-अपघट्यों के आयनों में किसी एक के समान आयनों के)

अतिमहत्वपूर्ण सूचक

सूचक का नाम	विभिन्न माध्यमों में सूचक का रंग		
	अम्लीय	उदासीन	क्षारीय
मेथिल ऑरेन्ज	लाल ($pH < 3.1$)	संतरी ($3.1 < pH < 4.4$)	पीला ($pH > 4.4$)
मेथिल रेड	लाल $pH < 4.2$	संतरी ($4.2 < pH < 6.3$)	पीला $pH > 6.3$)
फ़ीनालफ्थेलिन	रंगहीन $pH < 8.0$	हल्का-किर भिजी ($8.0 < pH < 9.8$)	किरमिजी ($pH > 9.8$)
लिटमस	लाल $pH < 5$	बैंगनी $5 < pH < 8$	नीला $pH > 8$

डाले जाने से इस वैद्युत्-अपघट्य के वियोजन की डिग्री कम हो जाती है। इसके विपरीत, किसी एक आयन की सान्द्रता कम हो जाना अणुओं की नई मात्रा का वियोजन कर देता है। उदाहरणतया, उक्त अम्ल के विलयन में हाइड्रोक्साइड-आयनों, जो हाइड्रोजन के आयनों को जोड़ते हैं, अम्ल का वियोजन बढ़ जाता है।

इसी प्रकार कम विलेय वैद्युत्-अपघट्य की स्थिति में संतुलन बिगड़ता है: हर बार जब विलयन में कम विलेय बैद्युत्-अपघट्य के आयनों की सान्द्रताओं का गुणनफल विलेयता गुणनफल की मात्रा से अधिक हो जाता है, तो अवशेष बचता है। अतः यदि कैल्सियम सल्फेट के संतृप्त विलयन में एक अन्य अच्छी प्रकार विलेय वैद्युत्-अपघट्य जिसमें कैल्सियम सल्फैट के आयन जैसा आयन हो, डाला जाए, तो SO_4^{2-} आयनों की सान्द्रता के बढ़ने के फलस्वरूप संतुलन $CaSO_4$ के क्रिस्टलों के बनने की दिशा में विस्थापित हो जाएगा; Ca^{2+} तथा SO_4^{2-} विलयन में से अलग हो जाएँगे तथा अवशेष बनाएँगे। यह क्रिया तब तक जारी रहेगी, जब तक इन आयनों की सान्द्रताओं का गुणनफल $CaSO_4$ के विलेयता गुणनफल के बराबर नहीं हो जाता। अंत में कैल्सियम सल्फेट की मात्रा विलयन में कम हो जाएगी।

इस प्रकार, वैद्युत-अपघट्य की विलयशीलता समान आयनों के डालने पर कम हो जाती है। यहाँ वे स्थितियाँ अपवाद हैं, जब विलयन में विद्यमान किसी आयन का

डाले गये आयनों में से किसी एक आयन के साथ अधिक जटिल (मिश्रित) आयन में युग्मन हो जाए।

देखे गए उदाहरणों के आधार पर एक आम निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

वैद्युत-अपघट्यों के बीच अभिक्रिया घटने के लिए आवश्यक प्रतिबन्ध यह है कि विलयन में से किन्हीं भी आयनों का पृथक्करण हो, उदाहरणतया, कम वियोजित पदार्थों या अवशेषों अथवा गैस के रूप में विलयन में से निष्कासित पदार्थों के बनने के फलस्वरूप। अन्य शब्दों में वैद्युत-अपघट्यों के विलयनों में अभिक्रियाएँ हमेशा न्यूनतम वियोजित या विलयशील पदार्थों की दिशा में घटती हैं।

विशेषकर यहाँ से निष्कर्ष निकलता है कि प्रबल अम्ल क्षीण अम्लों को उनके लवणों में से निकालते हैं। उदाहरणतः, सोडियम एसिटेट तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की पारस्परिक क्रिया में व्यावहारिक रूप से अभिक्रिया पूर्णतः होती है तथा ऐसीटिक अम्ल बनाती है

$$CH_3COONa + HCl = CH_3COOH + NaCl$$

या आयनी-आण्विक स्वरूप में:

$$CH_3COO^- + H^+ = CH_3COOH$$

इसी प्रकार प्रबल क्षारों व क्षीण क्षारों के लवणों में अभिक्रियाएँ स्थान लेती हैं। उदाहरणतया, सोडियम हाइड्रोक्साइड तथा लोह सल्फेट (II) की क्रिया में लोह हाइड्रोक्साइड (II) बनती है

$$FeSO_4 + 2NaOH = Na_2SO_4 + Fe(OH)_2 \downarrow$$

या आयनी-आण्विक स्वरूप में:

$$Fe^{2+} + 2OH^- = Fe(OH)_2 \downarrow$$

अन्तिम अभिक्रिया न केवल क्षीण बल्कि कम विलयशील विद्युत्-अपघट्य का उदाहरण है।

उक्त दृष्टिकोण से प्रबल क्षार द्वारा प्रबल अम्ल की उदासीनता की अभिक्रियाओं तथा उदासीनता की उन स्थितियों में, जब कम से कम एक मूल पदार्थ क्षीण वैद्युत्-अपघट्य है, अन्तर स्पष्ट हो जाता है। प्रबल क्षार द्वारा प्रबल अम्ल की उदासीनता में विलयन में केवल एक क्षीण वैद्युत अपघट्य – जल – बनता है। यहाँ संतुलन काफी अधिक

$$H^+ + OH^- \rightleftarrows H_2O$$

दायीं ओर विस्थापित है तथा इस स्थिति में अभिक्रिया व्यावहारिक रूप से अंत तक होती है। क्षीण अम्ल या क्षीण क्षार की उदासीनता में विलयन में कम से कम दो

क्षीण वैद्युत्-अपघट्य-जल तथा क्षीण अम्ल या क्षीण क्षार होते हैं। उदाहरणतया, एसीटिक अम्ल की प्रबल क्षार द्वारा उदासीनता के समय विलयन में दो संतुलन बनते हैं :

$$H^+ + CH_3COO^- \rightleftarrows CH_3COOH$$
$$H^+ + OH^- \rightleftarrows H_2O$$

इस प्रकार, हाइड्रोजन का आयन या तो ऐसीटिक अम्ल के अणु या जल के अणु के साथ जुड़ सकता है। CH_3COO^- तथा OH^- के आयन, लगता है, हाइड्रोजन के आयन के साथ जुड़ने में कोई प्रतियोगिता कर रहे हो। इसीलिए दी गई स्थिति में उदासीनता की अभिक्रिया अंत तक नहीं होती है, बल्कि संतुलन की अवस्था तक होती है :

$$CH_3COOH + OH^- \rightleftarrows CH_3COO^- + H_2O$$

लेकिन यह संतुलन दायीं ओर काफ़ी अधिक विस्थापित हैं, चूँकि जल एसीटिक अम्ल की तुलना में काफ़ी अधिक क्षीण वैद्युत्-अपघट्य है। अतः ऐसीटिक अम्ल के अणु के साथ H^+ आयनों के जुड़ने की तुलना में उनका जल के अणुओं के साथ जुड़ना अधिक पूर्णतः होता है।

क्षीण क्षार – अमोनिया हाइड्रोक्साइड – की प्रबल अम्ल द्वारा उदासीनता में विलयन में भी दो संतुलन बनते हैं :

$$NH_4^+ + OH^- \rightleftarrows NH_4OH$$
$$H^+ + OH^- \rightleftarrows H_2O$$

यहाँ NH_4^+ तथा H^+ आयन, जो हाइड्रोक्साइड-आयनों को अवियोजित अणुओं में जोड़ते हैं, प्रतिस्पर्धा करते हैं। फलस्वरूप यह अभिक्रिया भी अंत तक नहीं होती है बल्कि संतुलन की अवस्था तक होती हैं :

$$H^+ + NH_4OH \rightleftarrows NH_4^+ + H_2O$$

लेकिन चूँकि NH_4OH की तुलना में जल काफ़ी अधिक क्षीण वैद्युत्-अपघट्य हैं, तो संतुलन दायीं ओर बहुत अधिक विस्थापित है।

ऐसी ही क्रियाएँ उन अभिक्रियाओं में भी होती है, जिनके दौरान कम विलयशील, लेकिन कम वियोजित करने वाले उत्पाद में बदल जाता है। ऐसी अभिक्रियाएँ है, उदाहरणतया हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में कुछ धातुओं के सल्फाइडों का विलीन होना। अतएव, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल व मैंगनीज सल्फाइड की पारस्परिक क्रिया निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त होती है :

$$MnS(к) + 2HCl = MnCl_2 + H_2S$$

या $$MnS(к) + 2H^+ = Mn^{2+} + H_2S$$

मूल पदार्थों में कम विलयशील वैद्युत-अपघट्य (MnS) की विद्यमानता, जिसके बनने में S^{2-} आयन जुड़ जाते हैं, अभिक्रिया को बायीं ओर ले जाती है। दूसरी ओर क्षीण वैद्युत्-अपघट्य के बनने में (H_2S) इसी प्रकार S^{2-} आयन जुड़ जाते है जिसके फलस्वरूप अभिक्रिया दायीं ओर स्थान लेती है। इस प्रकार, S^{2-} आयन दो प्रतिस्पर्धा करने वाली क्रियाओं में भाग लेते हैं जिनके कारण दो संतुलन बनते हैं:

$$S^{2-} + Mn^{2+} \rightleftarrows MnS(\text{к})$$

तथा

$$S^{2-} + 2H^{+} \rightleftarrows H_2S$$

विचाराधीन अभिक्रिया की दिशा इस बात पर निर्भर है कि H_2S या MnS में से कौन-सा पदार्थ S^{2-} आयनों को अधिक मात्रा में जोड़ता है। हाइड्रोजन सल्फाइड कुल वियोजन स्थिरांक $K = K_1K_2 = 6 \cdot 10^{-22}$ (दे० तालिका 15); MnS विलयता गुणनफल $2.5 \cdot 10^{-10}$ (दे० तालिका 19) है। यहाँ से स्पष्ट है कि S^{2-} अणुओं का हाइड्रोजन सल्फाइड के अणुओं में जुड़ना MnS की तुलना में पूर्णतः होता है। इसीलिए विचाराधीन अभिक्रिया दायीं ओर होती है – मैंगनीज सल्फाइड हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में विलीन हो जाती है।

विन्यास में समान दो संतुलन बन जाते हैं – हाइड्रोक्लोरिक अम्ल – कॉपर सल्फाइड (II), लेकिन CuS का विलयता गुणनफल काफ़ी कम है; वह $6 \cdot 10^{-36}$ के बराबर है (दे० तालिका 19)। इसीलिए S^{2-} आयनों का जुड़ना हाइड्रोक्लोरिक अम्लों के अणुओं की अपेक्षा CuS के अणुओं के साथ पूर्णतः होता है; और विन्यास में संतुलन

$$CuS(\text{к}) + 2HCl \rightleftarrows CuCl_2 + H_2S$$

बायीं ओर विस्थापित है; कॉपर सल्फाइड (II) हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में अविलय है।

देखे गए नियमों की मदद से उभयधर्मी हाइड्रोक्साइडों की प्रकृति को समझा जा सकता है। अतः जिंक हाइड्रोक्साइड तथा विलयन के बीच संतुलन अम्ल या क्षार के डाले जाने पर बिगड़ जाता है। इस स्थिति में संतुलन को निम्न प्रकार* लिखा जा सकता है:

$$2H^{+} + ZnO_2^{2-} \rightleftarrows Zn(OH)_2 \rightleftarrows Zn^{2+} + 2OH^{-}$$

विलयन

$$\downarrow\uparrow$$

$$Zn(OH)_2$$

अवशेष

---

*वस्तुतः विचाराधीन संतुलन अधिक जटिल है। प्रथमतः, वियोजन चरणशः होता है; द्वितीयतः सरल आयनों के साथ-साथ जटिल आयन भी बनते हैं। लेकिन इन f याओं को अधिक विस्तार में देखना इन निष्कर्षों को नहीं बदलता है जो सरल आरेख के आधार पर निकाले गए हैं।

जिंक हाइड्रोक्साइड में अम्ल डाले जाने पर हाइड्रोजन के आयनों की सान्द्रता बढ़ जाती है। $[H^+][OH^-]$ का गुणनफल जल के आयनी गुणनफल से अधिक हो जाता है–आयनों से H_2O के अणु बनने की क्रिया स्थान लेती है ; इसमें $Zn(OH)_2$ विन्यास में भी संतुलन बिगड़ जाता है। ले शाटल्ये नियम के अनुसार H^+ आयनों के बढ़ने तथा OH^- आयनों के व्यय होने के फलस्वरूप $Zn(OH)_2$ का वियोजन अम्लों की भाँति तो कम हो जाता है परन्तु क्षार की भांति अधिक हो जाता है। अंत में $Zn(OH)_2$ का अवशेष विलीन हो जाता है तथा लवण बनता है जिसमें जिंक धनायन होता है। उदाहरणतया, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में निम्न अभिक्रिया होगी :

$$Zn\,(OH)_2 + 2HCl = ZuCl_2 + 2H_2O$$

जिंक हाइड्रोक्साइड में क्षार डालने पर OH^- आयनों की सान्द्रता बढ़ जाती है: इस स्थिति में क्रिया की दिशा हाइड्रोजन के आयनों के जुड़ने की दिशा में स्थान लेती है। विन्यास में संतुलन बिगड़ जाता है लेकिन अब अम्ल की भाँति $Zn(OH)_2$ के वियोजन का जोर है। अंत में $Zn(OH)_2$ का अवशेष विलीन हो जाता है तथा लवण बनता है जिसमें जिंक ऋणायन के रूप में भाग लेता है। उदाहरणतया, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की स्थिति में निम्न अभिक्रिया घटती है :

$$Zn\,(OH)_2 + 2NaOH = Na_2ZnO_2 + 2H_2O$$

दोनों स्थितियों में क्रिया सम्भव है तथा इसीलिए घटती है कि जल के अणुओं के साथ H^+ तथा OH^- आयनों का जुड़ना अधिक मात्रा में होता है जबकि $(ZnOH)_2$ के अणुओं के साथ कम मात्रा में होता है।

92. लवणों का जलापघटन. पदार्थों की जल के साथ वह पारस्परिक क्रिया जिसमें पदार्थ के अवयव जल के अवयवों के साथ जुड़ जाते हैं जलापघटन कहलाती है। जलापघटन का उदाहरण है: फॉस्फोरस क्लोराइड (III) PCl_3 की जल के साथ पारस्परिक क्रिया। इस अभिक्रिया के फलस्वरूप फॉस्फोरस अम्ल H_3PO_3 और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल बनते हैं :

$$PCl_3 + 3H_2O = H_3PO_3 + 3HCl$$

विभिन्न प्रकार के यौगिकों का जलापघटन हो सकता है। इस परिच्छेद में जलापघटन की एक अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थिति–लवणों का जलापघटन–का अध्ययन किया गया है।

हम पहले ही बता चुके हैं कि उदासीनता की अभिक्रियाओं की स्थिति में, जिनमें क्षारीय अम्ल व क्षार भाग लेते हैं ; अभिक्रियाएँ अंत तक नहीं होती हैं। इसका अर्थ हुआ कि किसी हद तक उत्क्रमणीय अभिक्रिया भी (जल के साथ लवण की पारस्परिक क्रिया) घटती है जो अम्ल या क्षार बनाती है। यही लवण का जलापघटन है।

जलापघटन अभिक्रिया में वे लवण भाग लेते हैं जो क्षीण अम्ल तथा क्षीण क्षार, या क्षीण अम्ल व प्रबल क्षार, या क्षीण क्षार व प्रबल अम्ल से बनते हैं। लवण जो प्रबल क्षार व प्रबल अम्ल से बनते हैं, का जलापघटन नहीं होता है; इस स्थिति में उदासीनता की यह क्रिया होती है:

$$H^+ + OH^- = H_2O$$

और उत्क्रमणीय अभिक्रिया – जल के अणुओं का आयनों में वियोजन – बहुत ही कम मात्रा में होती है।

आइये, एक क्षारीय अम्ल और एक संयोजकता वाले धातु से बने लवण के जलापघटन को देखें। उदाहरण के तौर पर सोडियम ऐसीटेट को लें जो क्षीण अम्ल व प्रबल क्षार का लवण है, इस लवण के जलापघटन का समीकरण निम्न प्रकार होगा:

$$CH_2COONa + H_2O \rightleftarrows CH_3COOH + NaOH$$

या उसका आयनी-आण्विक स्वरूप यह होगा:

$$CH_3COO^- + H_2O \rightleftarrows CH_3COOH + OH^-$$

समीकरण से स्पष्ट है कि इस स्थिति में लवण के ऋणायनों का जलापघटन होता है तथा OH^- आयन बनते हैं। लेकिन चूँकि जल का आयनी गुणनफल $[H^+][OH^-]$ एक स्थिर मात्रा है, तो OH^- आयनों के इकट्ठा होने पर हाइड्रोजन के आयनों की सान्द्रता कम हो जाती है। अतएव, क्षीण अम्ल तथा प्रबल क्षारों द्वारा बने लवणों के विलयन की क्षारीय अभिक्रिया होती है।

इसी प्रकार, क्षीण क्षारों तथा प्रबल अम्लों के लवणों की स्थिति में लवण के ऋणायनों का जलापघटन होता है तथा अभिक्रिया के साथ H^+ आयनों का निर्माण होता है। उदाहरणतया,

$$NH_4Cl + H_2O \rightleftarrows NH_4OH + HCl$$

या

$$NH_4^+ + H_2O \rightleftarrows NH_4OH + H^+$$

H^+ आयनों का इकट्ठा होना OH^- आयनों की सान्द्रता को कम कर देता है। इस प्रकार, क्षीण क्षारों तथा प्रबल अम्लों के लवणों के विलयनों की अम्लीय अभिक्रिया होती है।

उक्त स्थितियों में विलयन में विद्यमान लवण की सम्पूर्ण मात्रा का जलापघटन नहीं होता है, बल्कि उसके किसी भाग का होता है। अन्य शब्दों में, विलयन में लवण और बनने वाले अम्ल तथा क्षारों के बीच संतुलन बन जाता है। पदार्थ की वह मात्रा जिसका जलापघटन होता है – जलापघटन की डिग्री – इस संतुलन के स्थिरांक, ताप तथा लवण की सान्द्रता पर निर्भर करती है।

आइये, सामान्य रूप में जलापघटन के समीकरण को लिखें। मान लें कि HA – अम्ल, MOH – क्षार, MA – बनने वाला लवण है। अब जलापघटन के समीकरण का निम्न रूप होगा :

$$MA + H_2O \rightleftarrows HA + MOH$$

इस संतुलन के लिए निम्न स्थिरांक है

$$K = \frac{]HA][MOH]}{[MA][H_2O]}$$

तनु विलयनों में जल की सान्द्रता व्यावहारिक रूप से एक स्थिर मात्रा है। $K[H_2O]$ को Kr द्वारा लिखने पर :

$$K_r = \frac{[HA][MOH]}{[MA]}$$

K_r मात्रा लवण के जलापघटन का स्थिरांक कहलाती है। इसका मान नियत लवण के जलापघटन होने की क्षमता को सूचित करता है। Kr जितना अधिक होगा, उतना ही अधिक जलापघटन (समान ताप तथा लवण की सान्द्रता पर) होगा।

क्षीण अम्ल तथा प्रबल अम्ल के लवण की स्थिति में जलापघटन स्थिरांक $K_{\text{अम्ल}}$ के वियोजन स्थिरांक के साथ निम्न अनुपात द्वारा सम्बंधित है :

$$K_r = \frac{K_{H_2O}}{K_{\text{अम्ल}}}$$

इस समीकरण से स्पष्ट हैं कि Kr जितना अधिक होगा, उतना ही $K_{\text{अम्ल}}$ कम होगा। शन्य अब्दों में, अम्ल जितना क्षीण होगा उतनी ही अधिक मात्रा में उसके लवण का जलापघटन होगा।

क्षीण क्षारों तथा प्रवल अम्लों के लवणों के लिये जलापघटन स्थिरांक तथा $K_{\text{क्षार}}$ क्षार का वियोजन स्थिरांक सदृश अनुपात द्वारा सम्बंधित है :

$$K_r = \frac{K_{H_2O}}{K_{\text{क्षार}}}$$

इसीलिए क्षार जितना क्षीण होगा, उतनी ही अधिक मात्रा में उसके लवण का जलापघटन होगा।

क्षीण अम्ल तथा क्षीण क्षार के लवण के लिए जलापघटन स्थिरांक तथा अम्लों एवं क्षारों के वियोजन स्थिरांक निम्न अनुपात द्वारा सम्बंधित है :

$$K_r = \frac{K_{H_2O}}{K_{\text{अम्ल}} K_{\text{क्षार}}}$$

जलापघटन स्थिरांक को अम्ल तथा क्षार के वियोजन स्थिरांक के साथ जोड़ने वाले अनुपात जलापघटन स्थिरांक के समीकरण से आसानी से प्राप्त किये जा सकते हैं। आइये इनमें से प्रथम अनुपात को निकालें जो क्षीण अम्ल तथा प्रवल क्षार को जोड़ता है। इसके लिये यह ध्यान रखें कि MOH क्षार, जिससे MA लवण वना है, प्रवल है, अर्थात् इसका पूर्णतः वियोजन होता है। इसीलिए

$$[MOH] = [OH^-]$$

स्वयं लवण का भी पूर्णतः वियोजन हो जाता है। अतएव,

$$[MA] = [A^-]$$

अम्ल की सान्द्रता, उसकी वियोजित मात्रा को छोड़ कर, $K_{\text{अम्ल}}$ अम्ल के वियोजन स्थिरांक की मदद से व्यक्त करें:

$$K_{\text{अम्ल}} = \frac{[H^+][A^-]}{[HA^-]} \quad \text{या} \quad [HA] = \frac{[H^+][A^-]}{K_{\text{अम्ल}}}$$

जलापघटन स्थिरांक के समीकरण में MOH, MA तथा HA के ज्ञात मानों को रखने पर:

$$K_r = \frac{[HA]\,MOH]}{[MA]} = \frac{]H^+][\ddot{A}^-][OH^-]}{K_{\text{अम्ल}}[A^-]} = \frac{[H^+][OH^-]}{K_{\text{अम्ल}}}$$

यह ध्यान में रख कर कि $[H^+][OH^-]$ जल का आयनी गुणनफल है, हमें प्राप्त होता है:

$$K_r = \frac{K_{H_2O}}{K_{\text{अम्ल}}}$$

जलापघटन की डिग्री लवण की प्रकृति, उसकी सान्द्रता तथा ताप पर निर्भर करती है। लवण की प्रकृति जलापघटन स्थिरांक की मात्रा में व्यक्त होती है। सान्द्रता पर निर्भरता उस वात में व्यक्त होती है कि विलयन के तनु होने पर जलापघटन की डिग्री बढ़ जाती है। वस्तुतः, मान लें कि हमारे पास, उदाहरणतया, पोटैशियम साय-नाइड का विलयन है। उसमें

$$KCN + H_2O \rightleftarrows HCN + KOH$$

संतुलन वनता है, जिसका स्थिरांक है:

$$K_r = \frac{[HCN[\,[KOH]}{[KCN]}$$

विलयन को दस गुना तनु वना दें। सभी पदार्थों – KCN, HCN व KOH – की सान्द्रता पहले क्षण में 10 गुनी कम हो जाएगी। इसके परिणाम स्वरूप जलापघटन

स्थिरांक के समीकरण के दायें पक्ष में अंश 100 गुना कम हो जाता है, तथा हर केवल 10 गुना कम होता है। लेकिन जलापघटन स्थिरांक, किसी भी संतुलन स्थिरांक की भाँति, पदार्थ की सान्द्रता पर निर्भर नहीं करता है। इसीलिए विलयन में संतुलन विगड़ जाता है। इसे पुनः बनने के लिए भिन्न का अंश बढ़ना चाहिये, तथा हर– कम हो जाना चाहिये, अर्थात् लवण की कुछ मात्रा का अतिरिक्त जलापघटन होना ही चाहिये। इसके फलस्वरूप HCN तथा KOH सान्द्रताएँ बढ़नी चाहिए। अतएव, लवण के जलापघटन की डिग्री बढ़ जाएगी।

जलापघटन की डिग्री पर ताप का प्रभाव ले शाटल्ये नियम के अनुसार होता है। उदासीनता की सभी अभिक्रियाएँ ऊष्मा के उत्सर्जन के साथ होती हैं (§ 88), तथा जलापघटन की अभिक्रियाए – ऊष्मा के अवशोषण के साथ। चूँकि ताप के वढ़ने से ऊष्माशोषी अभिक्रियाओं का निष्कासन बढ़ जाता है, तो जलापघटन की डिग्री भी ताप के वढ़ने से बढ़ जाती है।

ऊपर लिखित बातों से स्पष्ट है कि जलापघटन को क्षीण करने के लिए विलयनों को सान्द्रित तथा निम्न ताप पर रखना चाहिये। इसके अलावा, जलापघटन को दबाने के लिये विलयन का अम्लीकरण (प्रबल अम्ल तथा क्षीण क्षार के लवणों की स्थिति में) या क्षारीकरण (प्रबल क्षार तथा क्षीण अम्ल के लवण की स्थिति में) होना चाहिये।

आइये, अव क्षीण बहुक्षारीय अम्ल या बहु संयोजकता वाले धातु के क्षीण क्षार के लवणों के जलापघटन को देखें। ऐसे लवणों का जलापघटन चरणशः होता है। अतः, सोडियम कार्बोनेट के जलापघटन का प्रथम चरण निम्न समीकरण के अनुसार होता है:

$$Na_2CO_3 + H_2O \rightleftarrows NaHCO_3 + NaOH$$

या आयनी-आण्विक रूप से:

$$CO_3^{2-} + H_2O \rightleftarrows HCO_3^- + OH^-$$

वनने वाले अम्लीय लवण का अपने क्रम में जलापघटन हो जाता है (जलापघटन का दूसरा चरण)

$$NaHCO_3 + H_2O \rightleftarrows H_2CO_3 + NaOH$$

या

$$HCO_3^- + H_2O \rightleftarrows H_2CO_3 + OH^-$$

विदित है कि जलापघटन के प्रथम चरण में HCO_3^- का आयन वनता है जिसका वियोजन कार्बोनिक अम्ल के दूसरे वियोजन स्थिरांक द्वारा व्यक्त होता है, और जल जलापघटन के दूसरे चरण में कार्बोनिक अम्ल बनता है, जिसका वियोजन उसका पहला वियोजन स्थिरांक व्यक्त करता है। इसीलिए पहले चरण में जलापघटन स्थिराँक $K_{r,1}$ अम्ल के दूसरे वियोजन स्थिराँक के साथ, तथा जलापघटन के दूसरे चरण का

स्थिरांक $K_{r,2}$ – अम्ल के पहले वियोजन स्थिरांक के साथ जुड़ा है। यह आबन्ध निम्न अनुपात द्वारा व्यक्त होता है :

$$K_{r,1} = \frac{K_{H_2O}}{K_{2,\text{अम्ल}}}; \quad K_{r,2} = \frac{K_{H_2O}}{K_{1,\text{अम्ल}}}$$

चूँकि अम्ल का पहला वियोजन स्थिरांक दूसरे की तुलना में हमेशा अधिक होता है, तो पहले चरण में जलापघटन स्थिरांक जलापघटन के दूसरे चरण की तुलना में हमेशा अधिक होगा :

$$K_{r,1} > K_{r,2}$$

इसी कारणवश पहले चरण में जलापघटन दूसरे चरण की अपेक्षा हमेशा अधिक मात्रा में होता है। इसके अलावा, पहले चरण के जलापघटन के समय बनने वाले आयन (हमारे उदाहरण में – OH^- आयन) दूसरे चरण में संतुलन को बायीं ओर विस्थापित कर देते हैं, अर्थात् इसी प्रकार दूसरे चरण में भी जलापघटन को दबाते हैं।

इसी रूप में उन लवणों का जलापघटन होता है जो बहुसंयोजकता वाले धातुओं के क्षीण क्षारों से बनते हैं। जैसे, कॉपर क्लोराइड का जलापघटन (II) पहले चरण में कॉपरहाइड्रोक्सो क्लोराइड बनाता है :

$$CuCl_2 + H_2O \rightleftarrows CuOHCl + HCl$$

या आयनी-आण्विक रूप में :

$$Cu^{2+} + H_2O \rightleftarrows CuOH^+ + H^+$$

दूसरे चरण में जलापघटन नगण्य मात्रा में ही होता है :

$$CuOHCl + H_2O \rightleftarrows Cu(OH)_2 + HCl$$

$$CuOH^+ + H_2O \rightleftarrows Cu(OH)_2 + H^+$$

क्षीण अम्ल व क्षीण क्षार के लवणों का जलापघटन विशेषतः अधिक गहरा होता है। उपरोक्त समीकरण के अनुसार इस स्थिति में जलापघटन स्थिरांक अम्ल व क्षार के वियोजन स्थिरांकों के गुणनफल के व्युत्क्रमानुपातिक है, यानी, उसका मान विशेष रूप से अधिक होता है। इस स्थिति का उदाहरण ऐलुमिनियम ऐसीटेट का जलापघटन हो सकता है जो क्षारीय लवणों तक होता है – हाइड्रोक्सो – तथा डिहाइड्रोक्सी ऐलुमिनियम ऐसीटेट के लवणों तक होता है :

$$Al(CH_3COO)_3 + H_2O \rightleftarrows Al(OH)(CH_3COO)_2 + CH_3COOH$$

$$Al(OH)(CH_3COO)_2 + H_2O \rightleftarrows Al(OH)_2(CH^3COO) + CH_3COOH$$

इस स्थिति में आइये ऋणायनों व धनायनों के जलापघटनों को अलग-अलग देखें ये क्रियाएँ आयनी-आण्विक समीकरणों द्वारा व्यक्त होती है :

$$Al^{3+} + H_2O \rightleftarrows AlOH^{2+} + H^+$$

$$CH_3COO^- + H_2O \rightleftarrows CH_3COOH + OH^-$$

अतएव, धनायन के जलापघटन के फलस्वरूप H^+ आयन बनते हैं; तथा ऋणायन के जलापघटन के समय – OH^- आयन। ये आयन काफ़ी सान्द्रता में नहीं रह सकते हैं; वे जुड़ जाते हैं तथा जल का अणु बना देते हैं: इसके फलस्वरूप दोनों संतुलनों का विस्थापन दायीं ओर हो जाता है। अन्य शब्दों में, इस स्थिति में ऋणायनों तथा धनायनों के जलापघटन एक दूसरे को तीव्र करते हैं।

क्षीण अम्ल तथा क्षीण क्षार के लवणों के विलयनों की अभिक्रिया लवण को बनाने वाले अम्ल व क्षार के वियोजन स्थिरांकों के अनुपात पर निर्भर करती है। यदि अम्ल का वियोजन स्थिरांक क्षार के वियोजन स्थिरांक से अधिक है, तो विलयन की कम अम्लीय अभिक्रिया होती है, वियोजन स्थिरांकों के व्युत्क्रमणीय अनुपात होने पर – कम क्षारीय अभिक्रिया होती है।

यदि लवण बनाने वाले अम्ल तथा क्षार न केवल क्षीण वैद्युत-अपघट्य हैं, बल्कि कम विलयशील भी हैं या अस्थिर हैं एवं वाष्पशील उत्पाद बनाते हुए वियोजित हो जाते हैं, तो प्रायः लवण का जलापघटन उत्क्रमणीय नहीं होता है, अर्थात् लवण के सम्पूर्ण वियोजन के साथ होता है। अतः विलयन में ऐलुमिनियम लवण की, जैसे कि $AlCl_3$, और सोडियम कार्बोनेट की पारस्परिक क्रिया में ऐलुमिनियम हाइड्रोक्साइड का अवशेष बनता है तथा कार्बन डाइआक्साइड बनती है :

$$2AlCl_3 + 3Na_2CO_3 + 3H_2O = 2Al(OH)_3\downarrow + 3CO_2\uparrow + 6NaCl$$

$$2Al^{3+} + 3CO_3^{2-} + 3H_2O = 2Al(OH)_3\downarrow + 3CO_2\uparrow$$

क्षीण अम्लों के अम्लीय लवणों का भी जलापघटन होता है। लेकिन यहाँ जलापघटन के साथ-साथ अम्लीय लवण के ऋणायन का वियोजन भी होता है। अतः, सोडियम हाइड्रोकार्बोनेट के विलयन में एक ही समय में HCO_3^- आयन का जलापघटन होता है जिसके परिणामस्वरूप OH^- आयन बनते हैं :

$$HCO_3^- + H_2O \rightleftarrows H_2CO_3 + OH^-$$

और HCO_3^- आयन का वियोजन होता है, जिसके फलस्वरूप H^+ आयन बनते हैं :

$$HCO_3^- \rightleftarrows CO_3^{2-} + H^+$$

अतएव, अम्लीय लवण के विलयन की अभिक्रिया क्षारीय भी हो सकती है (यदि ऋणायन का जलापघटन उसके वियोजन पर हावी रहता है) तथा अम्लीय भी

(विपरीत स्थिति में)। यह लवण के जलापघटन स्थिरांक तथा अम्ल के क्रमश: वियोजन स्थिरांक के अनुपात द्वारा निर्धारित होता है। विचाराधीन उदाहरण में ऋणायन का जलापघटन स्थिरांक अम्ल के क्रमश: वियोजन स्थिरांक मे अधिक है इसीलिए विलयन की अभिक्रिया कम क्षारीय है।

उत्क्रमणीय अनुपात में (जैसे कि, $NaHSO_3$ जलापघटन में) विलयन की अभिक्रिया अम्लीय है।

अम्लों व क्षारों के प्रोटोन सिद्धाँत के अनुसार जलापघटन अम्लीय क्षारीय संतुलन की विशेष स्थिति है: प्रोटोन जल के अणु से नियत आयन पर या नियत आयन से जल के अणु पर आ जाता है। उदाहरणतया, अमोनिया के आयन का जलापघटन निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता है:

$$NH_4^+ + H_2O \rightleftarrows H_3O^+ + NH_3$$

अध्याय IX

अपचयोपचयन अभिक्रियाएँ. विद्युत्-रसायन के मुख्य नियम.

93. तत्त्वों की उपचयन अवस्था. जब तत्त्व स्वतंत्र अवस्था में होता है—यानी सरल पदार्थ बनाता है—तब इस पदार्थ के सभी परमाणुओं के चारों ओर इलेक्ट्रानों की गति समान रूप से होती है। यह गुण सभी सरल तत्त्वों में पाई जाती है, चाहे उनकी संरचना जैसी भी हो। उदाहरणतया, हाइड्रोजन के अणु में इलेक्ट्रान दोनों परमाणुओं के चारों ओर समान रूप से घूमते हैं: अणु H_2 अध्रुवीय है। सहसंयोजी आबन्ध वाले क्रिस्टलों की स्थिति में परमाणुओं के बीच रासायनिक आबन्ध जोड़े गए परमाणुओं के प्रति उसी प्रकार सममित हैं। धातुओं की स्थिति में जुड़े हुए तथा स्वतंत्र इलेक्ट्रानों का विस्तारण औसतन समान है।

जटिल पदार्थों की स्थिति कुछ और ही है। विभिन्न तत्त्वों के परमाणुओं के बीच रासायनिक आबन्ध असममिक हैं; नियमतः जटिल पदार्थों के अणुओं में ध्रुवीय सहसंयोजी आबन्ध होते हैं। आयनी यौगिकों में इलेक्ट्रानों के विस्तारण की यह असमानता अधिकतम होती है—आयनी आबन्ध वाले पदार्थों के बनने में संयोजकता इलेक्ट्रान व्यावहारिक रूप से पूर्णतः एक तत्त्व के परमाणु से दूसरे तत्त्व के परमाणु पर चले आते हैं।

यौगिकों में परमाणुओं के बीच इलेक्टानों के विस्तारण की असमानता का नाम उपचयन की अवस्था रखा गया। इसमें वह तत्त्व, जिसके इलेक्ट्रान दूसरे तत्त्व के परमाणुओं की ओर विस्थापित हो जाते हैं (आयनी आबन्ध की स्थिति में—पूर्णतः, तथा ध्रुवीय आबन्ध की स्थिति में—अंशतः), धनात्मक अपचयन दिखाता है। वह तत्त्व, जिसके परमाणुओं की ओर दूसरे तत्त्व के परमाणु के इलेक्ट्रान विस्थापित हो जाते हैं, ऋणात्मक अपचयन दिखाता है।

नियत तत्त्व के एक परमाणु से विस्थापित (धनात्मक उपचयन अवस्था में) या नियत तत्त्व के एक परमाणु की ओर विस्थापित (ऋणात्मक उपचयन में) इलेक्ट्रानों की सँख्या तत्त्व की उपचयन अवस्था की डिग्री* कहलाती है।

---

* इस मात्रा को तत्त्व की उपचयन की डिग्री या तत्त्व की उपचयन सँख्या भी कहते हैं।

सरल पदार्थों में तत्त्व की उपचयन डिग्री हमेशा शून्य के बराबर होती है। यौगिकों में कुछ तत्त्वों को हमेशा एक ही उपचयन डिग्री होती है, लेकिन अधिकांश तत्त्वों के लिए वह विभिन्न यौगिकों में विभिन्न मान रखती है।

क्षारीय धातु (+ 1), क्षारीय मृदाधातु (+ 2), फ्लुओरीन (— 1) की अपचयन डिग्री स्थिर होती है। अधिकांश यौगिकों में हाइड्रोजन की उपचयन संख्या + 1 के बराबर होती है, तथा धातुओं के हाइड्राइडों व कुछ अन्य यौगिकों में वह — 1 के बराबर होती है। नियमतः आक्सीजन की उपचयन संख्या — 2 के बराबर है; इसके महत्त्वपूर्ण **अपवाद हैं: यौगिकों** की परऑक्साइड जिनमें इसका मान — 1 के बराबर होता है, तथा आक्सीजन फ्लुओराइड OF_2, जिसमें इसका मान + 2 के बराबर है। अस्थिर उपचयन डिग्री वाले तत्त्वों के लिए इसका मान हमेशा आसानी से ज्ञात किया जा सकता है यदि आप यौगिक का सूत्र जानते हैं तथा यह बात ध्यान में रखते हैं कि अणु में सभी परमाणुओं की उपचयन डिग्रीयों का योग शून्य के बराबर है।

उदाहरणतया, आइये, CO, CO_2, ClH_4, C_2H_6 तथा C_2H_5OH में कार्बन की उपचयन डिग्री का मान ज्ञात करें। इसे x द्वारा लिखते हैं। अब यह ध्यान में रखते हुए कि हाइड्रोजन की उपचयन डिग्री + 1, तथा आक्सीजन की उपचयन डिग्री — 2 के बराबर हैं, हम प्राप्त करते हैं:

CO	$x + (-2) = 0$	$x = +2$
CO_2	$x + 2(-2) = 0$	$x = +4$
CH_4	$x + 4(+1) = 0$	$x = -4$
C_2H_6	$2x + 6(+1) = 0$	$x = -3$
C_2H_5OH	$2x + 6(+1) + (-2) = 0$	$x = -2$

यौगिकों में तत्त्वों की उपचयन डिग्री ज्ञात करने के लिए तत्त्वों की वैद्युत ऋणात्मकता की तालिका (तालिका 6) को प्रयुक्त किया जा सकता है। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रासायनिक आबन्ध बनते समय इलेक्ट्रान अधिक वैद्युत-ऋणात्मकता वाले तत्त्व के परमाणु की ओर विस्थापित होते हैं। अतः, फास्फोरस की सापेक्षिक विद्युत-ऋणात्मकता 2.2, व आयोडिन की 2.6 के बराबर है। इसीलिए PI_3 यौगिक में सामान्य इलेक्ट्रान आयोडिन के परमाणुओं की ओर विस्थापित हैं तथा फॉस्फोरस व आयोडिन की उपचयन संख्या क्रमशः + 3 तथा — 1 हैं। लेकिन आयोडिन नाइट्राइड NI_3 में नाइट्रोजन तथा आयोडिन की उपचयन संख्या — 3 तथा + 1 के बराबर है, चूँकि नाइट्रोजन की विद्युत्-ऋणात्मकता (3.07) आयोडिन की विद्युत्-ऋणात्मकता से अधिक है।

94. अपचयोपचयन अभिक्रियाएँ. सभी रासायनिक अभिक्रियाओं को दो ग्रुपों में बाँटा जा सकता है। पहले ग्रुप की अभिक्रियाओं में अभिकारकों को बनाने वाले सभी

तत्वों की उपचयन अवस्था अपरिवर्तित रहती है, जबकि दूसरे ग्रुप की अभिक्रियाओं में एक या कई तत्वों की उपचयन अवस्था परिवर्तित हो जाती है।

पहले ग्रुप की अभिक्रियाओं के उदाहरण के रूप में निम्न उदासीनता की अभिक्रिया को लिया जा सकता है :

$$HCl + NaOH = NaCl_2 + H_2O$$

दूसरे ग्रुप की अभिक्रिया का उदाहरण धातु की अम्ल के साथ पारस्परिक क्रिया से लिया जा सकता है :

$$Zn + 2HCl = ZnCl + H_2\uparrow$$

यदि उदासीनता अभिक्रिया में एक भी तत्व उपचयन अवस्था की डिग्री को परिवर्तित नहीं करता है, तो दूसरे उदाहरण में जिंक की उपचयन अवस्था की डिग्री 0 से $+2$ तक परिवर्तित होती है तथा हाइड्रोजन की $+1$ से 0 तक परिवर्तित होती है।

वे अभिक्रियाएँ, जिनके दौरान तत्वों की उपचयन अवस्था की डिग्री परिवर्तित होती हैं, अपचयोपचयन अभिक्रियाएँ कहलाती हैं।

अपचयोपचयन अभिक्रियाओं का जीव-विज्ञानी विन्यासों में बहुत महत्व है। प्रकाश संश्लेपण , श्वास-क्रिया, पाचन-क्रिया – ये सभी अपचयोपचयन अभिक्रियाओं की शृँखलाएँ हैं। अपचयोपचयन अभिक्रियाओं की शृँखलाएँ हैं। अपचयोपचयन अभिक्रियाओं का तकनीकी में भो बहुत महत्व है। अतः, समस्त इस्पात उद्योग भी अपचयोपचयन अभिक्रियाओं पर आधारित हैं, जिनकी मदद से धातुओं को उनके प्राकृतिक यौगिकों से पृथक् किया जाता है।

अपचयोपचयन अभिक्रियाओं का सरल उदाहरण है सरल पदार्थ से आयनी यौगिक का बनना, जैसे कि, सोडियम व क्लोरीन की पारस्परिक क्रिया :

$$2Na + Cl_2 = 2NaCl$$

यह अभिक्रिया, किसी भी विजातीय अभिक्रिया की भाँति, अनेक चरणों में होती है। इनमें से एक चरण में सोडियम के परमाणु धनात्मक आवेशित आयनों में परिवर्तित हो जाते हैं; सोडियम की उपचयन अवस्था की डिग्री 0 से $+1$ तक परिवर्तित होती है :

$$Na = Na^+ + e^-$$

यह क्रिया, जिसमें इलेक्ट्रान के देने के साथ तत्व की उपचयन अवस्था की डिग्री बढ़ती है, आक्सीकरण कहलाती है।

सोडियम द्वारा दिये गये इलेक्ट्रान क्लोरीन के परमाणुओं द्वारा ले लिये जाते हैं, जो इसके कारण ऋणात्मक आवेशित आयनों में परिवर्तित हो जाते हैं; क्लोरीन

की अपचयन अवस्था की डिग्री 0 से —1 तक परिवर्तित हो जाती है:

$$Cl_2 + 2e^- = 2Cl^-$$

इलेक्ट्रानों का जुड़ना, जिसके दौरान तत्त्व की अपचयन अवस्था की डिग्री कम हो जाती है, अपचयन कहलाती है।

इस प्रकार, उक्त अभिक्रिया में सोडियम का आक्सीकरण होता है तथा क्लोरीन का अपचयन होता है।

वह पदार्थ, जिसमें आक्सीकरण करने वाला तत्त्व विद्यमान हो, अपचायक कहलाता है, तथा वह पदार्थ, जिसमें अपचयन करने वाला तत्त्व विद्यमान हो, आक्सीकारक कहलाता है। अतएव, इस उदाहरण में सोडियम अपचायक है, तथा क्लोरीन आक्सीकारक है।

अपचयन तथा उपचयन क्रियाओं के समीकरणों से स्पष्ट है कि क्लोरीन का एक अणु अपचयन करते हुये, दो इलेक्ट्रानों को जोड़ता है, तथा सोडियम के एक परमाणु के आक्सीकरण के दौरान एक इलेक्ट्रान का निष्कासन होता है। रासायनिक अभिक्रिया में इलेक्ट्रानों की कुल सँख्या अपरिवर्तित रहती है। अपचायक के अणुओं (परमाणुओं, आयनों) द्वारा निष्कासित इलेक्ट्रानों की सँख्या आक्सीकारक के अणुओं (परमाणुओं, आयनों) द्वारा स्वीकृत इलेक्ट्रानों की सँख्या के बराबर होती है। इसीलिए क्लोरीन का एक अणु सोडियम के दो परमाणुओं का आक्सीकरण कर सकता है।

95. अपचयोपचयन अभिक्रियाओं के समीकरणों को बनाना. § 94 में हमने अपचयोपचयन अभिक्रिया का सरलतम उदाहरण देखा—दो सरल पदार्थों से यौगिक का बनना। प्रायः अपचयोपचयन अभिक्रियाओं के समीकरण काफ़ी जटिल होते हैं और सामान्यतः स्थिरांकों का निर्धारण काफ़ी कठिन कार्य होता है। आइये, कुछ उदाहरणों को देखें।

उदाहरण 1. हाइड्रोजन आयोडाइड तथा सान्द्रित सल्फ्यूरिक अम्ल की पारस्परिक क्रिया। यह अभिक्रिया निम्न आरेख के अनुसार होती है:

$$HI + H_2SO_4 \longrightarrow I_2 + H_2S + H_2O$$

यदि हम मूल पदार्थों व अभिक्रिया के उत्पादों में प्रत्येक तत्त्व की उपचयन अवस्था की डिग्री को गिनें, तो आप देखेंगे कि वह आयोडीन तथा सल्फर में परिवर्तित हुई है। वह HI में आयोडिन के लिये —1 है, तथा स्वतंत्र I में 0 के बराबर है। सल्फर की उपचयन डिग्री $+6$ (H_2SO_4 में) से -2 (H_2S में) तक परिवर्तित होती है। अतएव, आयोडिन की उपचयन अवस्था की डिग्री बढ़ती है, तथा सल्फर की—घटती है। अतः, आयोडिन का आक्सीकरण होता है, तथा सल्फर का अपचयन होता है।

आयोडिन के आक्सीकरण की क्रिया के समीकरण का निम्न रूप है:

$$2I^- = I_2 + 2e^- \text{ (आक्सीकरण)}$$

सल्फर के अपचयन का समीकरण अधिक जटिल है, क्योंकि मूल पदार्थ (H_2SO_4 या SO_4^{2-}) तथा अभिक्रिया के उत्पाद (H_2S) में सल्फर के अतिरिक्त अन्य तत्त्व भी विद्यमान हैं। इस समीकरण को बनाते समय हम यह सोचेंगे कि अभिक्रिया अम्लीय जलीय माध्यम में घटती है तथा SO_4^{2-} का आयन H_2S के अणु में परिवर्तित होता है :

$$SO_4^{2-} \rightarrow H_2S$$

इस क्रिया के दौरान स्वतंत्र हुये आक्सीजन के चार परमाणु जल के चार अणुओं के साथ जुड़ने चाहिए। इसके लिये हाइड्रोजन के आठ आयन चाहिये। इसके अतिरिक्त, हाइड्रोजन के दो आयन H_2S के अणु के बनने के लिए भी चाहिए। अतएव, SO_4^{2-} आयन के साथ हाइड्रोजन के दस आयन पारस्परिक क्रिया करने चाहिए :

$$SO_4^{2-} + 10H^+ \rightarrow H_2S + 4H_2O$$

इस आरेख के बायें पक्ष में स्थित आयनों का कुल आवेश आठ मूल धनात्मक आवेशों के बराबर है, तथा दायें पक्ष में केवल अनावेशित कण ही स्थित हैं। चूँकि क्रिया के दौरान कुल आवेश अपरिवर्तित रहता है, अतएव, अपचयन क्रिया में इसी प्रकार आठ इलेक्ट्रान भाग लेते हैं :

$$SO_4^{2-} + 10H^+ + 8e^- = H_2S + 4H_2O \text{ (अपचयन)}$$

इस उदाहरण में अपचयन क्रिया में भाग लेने वाले इलेक्ट्रानों की सँख्या एवं आक्सीकरण क्रिया के दौरान स्वतंत्र हुए इलेक्ट्रानों की सँख्या का अनुपात 4:1 के बराबर है। अभिक्रिया का कुल समीकरण प्राप्त करने के लिए, अपचयन तथा आक्सीकरण क्रियाओं के समीकरणों को जोड़ते हुए यह अनुपात ध्यान में रखना चाहिए—अपचयन समीकरण को 4 से गुना करना चाहिए। इसे लिखते समय प्रायः ऊर्ध्वाधर रेखा की दायीं ओर आवश्यक गुणांकों को लिखा जाता है :

$$\begin{array}{rr|l} & 2I^- = I_2 + 2e^- & 4 \\ + & SO_4^{2-} + 10O^+ + 8e^- = H_2S + 4H_2O & 1 \\ \hline & SO_4^{2-} + 8I^- + 10H^+ = 4I_2 + H_2S + 4H_2O & \end{array}$$

अभिक्रिया के प्राप्त समीकरण को आण्विक रूप में भी लिखा जा सकता है :

$$H_2SO_4 + 8HI = 4I_2 + H_2S + 4H_2O$$

उदाहरण 2. क्षारीय माध्यम में ऐलुमिनियम तथा पोटैशियम नाइट्रेट की पारस्परिक क्रिया। अभिक्रिया का आरेख :

$$KNO_3 + Al + KOH + H_2O \rightarrow NH_3 + KAlO_2$$

यहाँ नाइट्रोजन तथा ऐलुमिनियम की उपचयन अवस्था को डिग्री परिवर्तित होती है। धात्विक ऐलुमिनियम (जिसकी उपचयन अवस्था की डिग्री 0 है) AlO_2^- आयन में परिवर्तित हो जाता है, जिसमें ऐलुमिनियम की उपचयन डिग्री +3 के बराबर है। उपचयन समीकरण को बनाने के लिए हम निम्न आरेख को प्रयुक्त करेंगे :

$$Al \rightarrow AlO_2^-$$

क्षारीय माध्यम में आक्सीजन का स्रोत, जो इस क्रिया के घटने के लिए आवश्यक है, OH^- आयन है। ऐलुमिनियम के एक आयन को AlO_2^- के आयन में बदलने के लिए चार हाइड्रोक्साइड आयन आवश्यक हैं :

$$Al + 4OH^- \rightarrow AClO_2^- + 2H_2O$$

आरेख के बायें पक्ष में चार ऋणात्मक आवेश हैं, तथा दायें पक्ष में – एक। अतएव, क्रिया के दौरान तीन इलेक्ट्रान निष्कासित होते हैं :

$$Al + 4OH^- = AlO_2^- + 2H_2O + 3e^- \text{ (आक्सीकरण)}$$

अपचयन के समीकरण को प्राप्त करने के लिये निम्न आरेख के अनुसार चलेंगे :

$$NO_3^- \rightarrow NH_3$$

यहाँ क्रिया के दौरान नाइट्रोजन के परमाणु आक्सीजन के परमाणुओं से वंचित हो जाते हैं तथा हाइड्रोजन के परमाणुओं के साथ जुड़ जाते हैं। क्षारीय माध्यम में यह जल के अणुओं के भाग लिए जाने पर सम्भव है। आक्सीजन के तीन परमाणुओं को जोड़ने के लिए जल के तीन अणुओं की आवश्यकता है, तथा NH_3 के अणु के बनने के लिए जल के और तीन अणुओं की आवश्यकता है :

$$NO_3^- + 6H_2O \rightarrow NH_3 + 9OH^-$$

आरेख के दायें पक्ष का कुल आवेश नौ ऋणात्मक आवेशों के बराबर है, और बायें पक्ष का – एक के बराबर है। अतएव, क्रिया में आठ इलेक्ट्रान भाग लेते हैं :

$$NO_3^- + 6H_2O + 8e^- = NH_3 + 9OH^- \text{ (उपचयन)}$$

आक्सीकरण क्रिया में स्वतंत्र होने वाले इलेक्ट्रानों की सँख्या तथा अपचयन में स्वीकृत इलेक्ट्रानों की सँख्या का उक्त उदाहरण में अनुपात 3:8 है। अतएव, अभि-क्रिया का कुल समीकरण प्राप्त करने के लिए आक्सीकरण तथा अपचयन क्रियाओं के समीकरणों को जोड़ना होगा, इन समीकरणों में पहले समीकरण को 8 से गुना करें

तथा दूसरे समीकरण को 3 से गुना करें:

$$\begin{array}{ll} \mathrm{Al} + 4\mathrm{OH}^- = \mathrm{AlO_2^-} + 2\mathrm{H_2O} + 3e^- & 8 \\ + \;\; \mathrm{NO_3^-} + 6\mathrm{H_2O} + 8e^- = \mathrm{NH_3} + 9\mathrm{OH}^- & 3 \\ \hline 8\mathrm{Al} + 3\mathrm{NO_3^-} + 5\mathrm{OH}^- + 2\mathrm{H_2O} = 8\mathrm{AlO_2^-} + 3\mathrm{NH_3} & \end{array}$$

यही आण्विक रूप में:

$$8Al + 3KNO_3 + 5KOH + 2H_2O = 8KAlO_2 + 3NH_3$$

उदाहरण 3. अमोनिया का उत्प्रेरकी आक्सीकरण। इस अभिक्रिया को नाइट्रिक अम्ल बनाने के कार्य में प्रयुक्त किया जाता है (§ 143)। इसे 750° सें० के लगभग ताप पर किया जाता है। अभिक्रिया का आरेख है:

$$NH_3 + O_2 \longrightarrow NO + H_2O$$

750° सें० पर जलीय वाष्प का द्रवण असम्भव है। इसीलिए हम आक्सीकरण तथा अपचयन क्रियाओं के समीकरणों को उस प्रकार नहीं लिखेंगे, जैसे कि हमने जल के माध्यम में घटने वाली अभिक्रियाओं, यानी जल के अणुओं, हाइड्रोजन के आयनों या हाइड्रोक्साइड आयनों के भाग लेने वाली क्रियाओं के लिए किया था। आक्सीकरण और अपचयन में भाग लेने वाले इलेक्ट्रानों की सँख्या को ही गिनें। इस बीच ध्यान रखें कि तत्त्व की उपचयन डिग्री में वृद्धि दिए गए इलेक्ट्रानों की सँख्या के बराबर होती है, तथा उपचयन डिग्री का कम होना गृहीत इलेक्ट्रानों की सँख्या के ऊपर निर्भर करता है।

अभिक्रिया के आरेख के अनुसार उपचयन डिग्री नाइट्रोजन तथा आक्सीजन में परिवर्तित होती है। नाइट्रोजन में वह —3 से +2 तक बढ़ता है और आक्सीजन में 0 से —2 तक घटता है। आइये, इन परिवर्तनों को आरेख के रूप में लिखें और तत्त्वों की उपचयन डिग्री को उनके प्रतीकों के ऊपर लिखें। हम इसके लिये रोमन सँख्याएँ प्रयुक्त करेंगे ताकि ये आयन के आवेश के साथ भ्रांति पैदा न करें:—

$$N^{-III} \longrightarrow N^{+II} + 5e^- \text{ (आक्सीकरण)}$$
$$O_2^0 + 4e^- \longrightarrow 2O^{-II} \text{ (अपचयन)}$$

अपचयन के दौरान गृहीत इलेक्ट्रानों की संख्या तथा आक्सीकरण के समय स्वतंत्र हुए इलेक्ट्रानों की संख्या का अनुपात 4:5 है। अतएव, आक्सीजन के पाँच अणु अमोनिया के चार अणुओं का आक्सीकरण कर सकते हैं:

$$4NH_3 + 5O_2 = 4NO + 6H_2O$$

ऊपर देखे गए तीनों उदाहरणों में अभिक्रिया के समीकरणों को एक नियत क्रम में लिखा गया है। अपचयोपचयन अभिक्रियाओं के समीकरणों को बनाने की अन्य स्थितियों में भी इसे प्रयुक्त किया जा सकता है। इसमें क्रियाओं का निम्न प्रकार होगा :

1. अभिक्रिया का आरेख बनाया जाये तथा निर्दिष्ट मूल पदार्थों तथा अभिक्रिया के उत्पादों को सूचित किया जाए।

2. आरेख के बायें तथा दायें पक्षों में स्थित पदार्थों के तत्वों की उपचयन डिग्री ज्ञात की जाए; वे तत्त्व निर्दिष्ट किए जाएं जिनकी उपचयन डिग्री परिवर्तित हो सकती है।

3. उपचयन व अपचयन क्रियाओं के समीकरणों को बनाएँ; अपचयन में गृहीत तथा आक्सीकरण में दिए गए इलेक्ट्रानों की संख्याओं का अनुपात ज्ञात करें।

4. इलेक्ट्रानों की प्राप्त सँख्या के अनुपातों को ध्यान में रखते हुए उपचयन तथा अपचयन के समीकरणों का योग कर दें।

96. **महत्त्वपूर्ण उपचायक तथा अपचायक**. कौनसे पदार्थ अपने गुणों के अनुसार उपचायक हो सकते हैं तथा कौनसे अपचायक? जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि उपचायक में ऐसा तत्त्व होता है जो उपचयन की अवस्था की डिग्री कम कर देता है, तथा अपचायक में वह तत्त्व होता है जो अभिक्रिया के दौरान उपचयन डिग्री को बढ़ा देता है। अतएव, निश्चित तत्त्व की उच्च उपचयन डिग्री वाले यौगिक उपचायक हो सकते हैं तथा निम्न उपचयन डिग्री वाले यौगिक अपचायक हो सकते हैं।

धातु अपने यौगिकों में धनात्मक उपचयन अवस्था व्यक्त करते हैं तथा उनकी निम्न उपचयन डिग्री शून्य के बराबर होती है। अन्य शब्दों में, इनमें निम्न उपचयन डिग्री केवल इनकी स्वतंत्र अवस्था में ही होती है। वस्तुतः, स्वतंत्र अवस्था में सभी धातु, हालांकि विभिन्न मात्रा में, केवल अपचयन गुण व्यक्त करते हैं। व्यावहारिक रूप में अपचायकों के रूप में ऐलुमिनियम, मैग्नीशियम, सोडियम, पोटैशियम, जिंक तथा कुछ अन्य धातु प्रयुक्त किये जाते हैं। यदि किसी धातु की कई उपचयन डिग्रियाँ हैं तो उसके वे यौगिक, जिनमें यह न्यूनतम है, प्रायः अपचायक है, जैसे लोह (II), टिन (II), क्रोमियम (II), कॉपर (I) के यौगिक।

उपचायक धातु के वे तत्त्व होते हैं, जिनमें धातु की उपचयन डिग्री उच्च होती है—धातु के ग्रुप की सँख्या के बराबर या उसके लगभग होती है। व्यावहारिक रूप से विशेषतः मुख्य उपचायक हैं : सिल्वर आक्साइड का अमोनिया विलयन, कॉपर सल्फेट (II) का अमोनिया विलयन, मरक्यूरिक क्लोराइड (II), लेड डाइआक्साइड PbO_2, लोह क्लोराइड (III), पोटैशियम क्रोमेट व डिक्रोमेट (K_2CrO तथा $K_2Cr_2O_7$), पोटैशियम परमैग्नेट $KMnO_4$, मैग्नीज़ डाइआक्साइड MnO_2।

अधातुओं में धनात्मक व ऋणात्मक दोनों ही उपचयन की अवस्थाएँ होती हैं।

स्वाभाविक है कि वे यौगिक, जिनमें उच्च धनात्मक उपचयन डिग्री वाले अधातु हैं, उपचायक हो सकते हैं, और वे यौगिक, जिनमें ऋणात्मक उपचयन डिग्री व्यक्त होती है, अपचायक हो सकते हैं।

महत्वपूर्ण अपचायक हैं: हाइड्रोजन, कार्बन तथा कार्बन मोनोआक्साइड।

प्रबल उपचायक में आवर्त-प्रणाली के VI तथा VII ग्रुपों के ऊपर के भागों में स्थित अधातु आते हैं। इन पदार्थों के प्रबल उपचयन गुणों का कारण इनके परमाणुओं की अधिक विद्युत्-ऋणात्मकता है। सर्वाधिक प्रबल उपचयनकारी गुण फ्लुओरोन में हैं, लेकिन व्यावहार में प्रायः उपचायक के रूप में आक्सीजन, क्लोरीन तथा ब्रोमियम प्रयुक्त किये जाते हैं।

उन यौगिकों में जो उपचायकों के रूप में प्रयुक्त होते हैं, अम्ल भी आते हैं। अत्यधिक व्यावहारिक महत्व रखने वाले अम्ल हैं: हाइड्रोक्लोरिक, सल्फ्यूरिक तथा नाइट्रिक अम्ल। यहाँ उपचयनकारी तत्त्व हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में हाइड्रोजन है, तथा नाइट्रिक में – नाइट्रोजन, तनु सल्फ्यूरिक अम्ल में – हाइड्रोजन, तथा सान्द्रित अम्ल में – सल्फर। इसीलिये हाइड्रोक्लोरिक तथा तनु सल्फ्यूरिक अम्लों की अपचयन क्रियाओं के समीकरणों के रूप निम्न होते हैं:

$$2H^{+} + 2e^{+} = H_2$$

नाइट्रिक अम्ल अपनी सान्द्रता, ताप व अपचायक की प्रकृति पर निर्भर करते हुये, नाइट्रोजन की विभिन्न उपचयन डिग्री तक अपचयित हो सकता है (दे० § 142)। सामान्यतः इसके अपचयन उत्पादों में से एक नाइट्रिक आक्साइड NO होती है:

$$NO_3^{-} + 4H^{+} + 3e^{-} = NO + 2H_2O$$

इसी प्रकार सान्द्रित सल्फ्यूरिक अम्ल के अपचयन के उत्पाद विभिन्न होते हैं (दे० § 130)। इनमें से एक उत्पाद है: सल्फ्यूरिक डाइआक्साइड:

$$SO_4^{2-} + 4H^{+} + 2e^{-} = SO_2 + 2H_2O$$

उपचायकों के रूप में प्रयुक्त होने वाले अधातुओं के अन्य यौगिकों में हाइड्रोजन परआक्साइड, तथा उन अम्लों के लवण आ सकते हैं जिनमें अम्ल बनाने वाला तत्त्व उच्च उपचयन डिग्री व्यक्त करता है – क्लोरेट ($KClO_3$), परक्लोरेट ($KClO_4$)।

97. अपचयोपचयन द्वैत, अंतराअणुक अपचयोपचयन . नियत तत्त्व की उच्च उपचयन डिग्री वाले यौगिक अपचयोपचयन अभिक्रियाओं में केवल उपचायकों के रूप में भाग ले सकते हैं, और इस स्थिति में तत्त्व की उपचयन अवस्था की डिग्री कम हो सकती है। इसके विपरीत, निम्न उपचयन डिग्री वाले यौगिक केवल अपचायक ही हो सकते हैं। इस स्थिति में तत्त्व की उपचयन डिग्री केवल बढ़ ही सकती है। यदि तत्त्व की

उपचयन डिग्री मध्यवर्ती है, तो अवस्थाओं पर निर्भर करते हुये उसके परमाणु इलेक्ट्रानों को दे भी सकते हैं तथा ले भी सकते हैं। पहली स्थिति में तत्त्व की उपचयन डिग्री कम हो जाएगी तथा दूसरी स्थिति में बढ़ जाएगी। इसीलिए मध्यवर्ती उपचयन डिग्री वाले तत्त्वों के यौगिकों में अपचयोपचयन द्वैत होता है—अभिक्रियाओं में उपचायक तथा अपचायक दोनों के रूपों में ही भाग लेने की विशेषता होती है।

अतः, नाइट्रोजन वे यौगिक बनाती है जिनमें उसकी उपचयन डिग्री -3 (अमोनिया, व अमोनिया के लवण) से $+5$ (नाइट्रिक अम्ल तथा उसके लवण) तक परिवर्तित होती है। अमोनिया में विद्यमान नाइट्रोजन केवल अपचायक के रूप में भाग ले सकती है, तथा नाइट्रिक अम्ल में नाइट्रोजन—केवल उपचायक के रूप में ही भाग ले सकती है। नाइट्रॅस अम्ल HNO_2 और उसके लवण जिनमें नाइट्रोजन की उपचयन डिग्री $+3$ के बराबर है, अभिक्रिया में प्रबल उपचायक तथा प्रबल अपचायक दोनों ही रूपों में भाग लेते हैं। पहली स्थिति में उसका नाइट्रिक अम्ल तक आक्सीकरण हो जाता है, तथा दूसरी स्थिति में उसका अपचयन सामान्यतः NO तक होता है। नाइट्रॅस अम्ल के अपचयोपचयन द्वैत के उदाहरण के रूप में निम्न अभिक्रियाएँ ली जा सकती हैं:

$$5KNO_2 + 2KMnO_4 + 3H_2SO_4 = 5KNO_3 + 2MnSO_4 + K_2SO_4 + 3H_2O$$

$$2HNO_2 + H_2S = 2NO + S + 2H_2O$$

नाइट्रॅस अम्ल के अतिरिक्त, सल्फर, आयोडिन, हाइड्रोजन परआक्साइड तथा अनेक अन्य पदार्थों में भी अपचयोपचयन द्वैत होता है।

मध्यवर्ती उपचयन डिग्री वाले तत्त्वों के पदार्थों में अनेक स्थितियों में एक और विशिष्ट गुण होता है। वह है पदार्थ का नियत अवस्थाओं में ऐसी क्रिया करना जिसके दौरान तत्त्व के एक भाग का उपचयन होता है तथा एक भाग का अपचयन होता है। इस क्रिया को स्वतः उपचयन—स्वतः अपचयन या स्वतः अपचयोपचयन कहते हैं। अतः, क्लोरीन व जल की पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप हाइड्रोक्लोरिक तथा हाइपोक्लोरस अम्लों का मिश्रण प्राप्त होता है:

$$Cl_2 + H_2O = HCl + HClO$$

यहाँ क्लोरीन की उपचयन तथा अपचयन दोनों ही क्रियाएँ होती हैं:

$$Cl_2 + 2H_2O = 2HClO + 2H^+ + 2e^- \text{ (उपचयन)}$$

$$Cl_2 + 2e^- = 2Cl^- \text{ (अपचयन)}$$

स्वतः अपचयोपचयन को असमानुपातन भी कहते हैं।

निश्चित अवस्थाओं में कुछ जटिल पदार्थों (सामान्यतः गर्म करने में) का अंतराअणुक अपचयोपचयन होता है। इस क्रिया में पदार्थ का एक भाग उपचायक होता है,

तो दूसरा अपचायक। तापीय वियोजन की अनेक क्रियाएँ अंतराअणुक अपचयोपचयन के उदाहरण हैं। अतः, तापीय वियोजन के दौरान जटील वाष्प

$$2H_2O = 2H_2 + O_2$$

आक्सीजन का उपचयन होता है (उसकी उपचयन डिग्री -2 से 0 तक बढ़ जाती है) तथा हाइड्रोजन का अपचयन होता है (उसकी उपचयन डिग्री $+1$ से 0 तक कम हो जाती है)।

प्रयोगशाला में शुद्ध नाइट्रोजन प्राप्त करने के लिये प्रयुक्त की जाने वाली अमोनिया नाइट्रेट के वियोजन की अभिक्रिया इसका अन्य उदाहरण है :

$$NH_4NO_2 = N_2 + 2H_2O$$

यहाँ NH_4^+ आयन का उपचयन, और NO_2^- आयन का अपचयन स्वतंत्र नाइट्रोजन तक होता है।

98. वैद्युत ऊर्जा के रासायनिक स्रोत. हम जानते ही हैं कि किसी अपचयोपचयन अभिक्रिया में अपचायक से उपचायक की ओर इलेक्ट्रानों का संक्रमण होता है। अतः, कॉपर सल्फेट के विलयन में जिंक की प्लेट डालने पर निम्न अभिक्रिया होती है :

$$Zn + Cu^{2+} = Cu + Zn^{2+}$$

यहाँ अपचायक है – जिंक, जो इलेक्ट्रान देता है। इस अर्ध-अभिक्रिया को निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया गया है :

$$Zn = Zn^{2+} + 2e^-$$

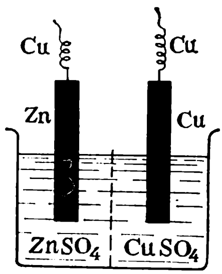
उपचायक – कॉपर का आयन – इलेक्ट्रानों को गृहीत करता है। इस अर्ध-अभिक्रिया का समीकरण है :

$$Cu^{2+} + 2e^- = Cu$$

ऊपर देखे गए उदाहरण में दोनों अर्ध-अभिक्रियाएँ उस स्थान पर घटती हैं जहाँ जिंक विलयन को स्पर्श करता है। अतः इलेक्ट्रान जिंक के परमाणुओं से कॉपर के आयनों पर प्रत्यक्ष रूप से आ जाते हैं। लेकिन इस अभिक्रिया को इस प्रकार भी किया जा सकता है कि ये अपचयोपचयन अर्ध-अभिक्रियाएँ एक दूसरे से पृथक स्थानों पर ही तथा अपचायक से उपचायक पर इलेक्ट्रानों का संक्रमण प्रत्यक्ष न हो कर वैद्युत्-धारा के चालक – बाहरी परिपथ में से हो। इलेक्ट्रानों का यह दिष्ट प्रवाह वैद्युतधारा होता है। अपचयोपचयन अभिक्रिया को इस प्रकार करने से उसकी ऊर्जा को वैद्युत ऊर्जा में रूपांतरित किया जा सकता है जिसे प्रयोग करने के लिए बाहरी परिपथ में वह उपकरण जोड़ा जा सकता है जो वैद्युत ऊर्जा पर कार्य करता हो (जैसे, गर्म करने का वैद्युत उपकरण, वैद्युत लैम्प, आदि)।

वे साधन, जिनकी मदद से प्रत्यक्ष रूप से रासायनिक अभिक्रिया की ऊर्जा को वैद्युत ऊर्जा में रूपांतरित किया जाता है, गैल्वैनी सेल कहलाते हैं। इन्हें इसी प्रकार वैद्युत ऊर्जा के रासायनिक स्रोत भी कहते हैं (संक्षिप्त: वै० ऊ० रा० स्रो०) या धारा के रासायनिक स्रोत भी कहते हैं।

तकनीकी में गैल्वैनी सेल को केवल वै० ऊ० रा० स्रो० ही कहते हैं, जिनमें व्यावहारिक रूप से अनुत्क्रमणीय अभिक्रियाएँ होती हैं। ऐसे वै० ऊ० रा० स्रो० को पुनः आवेशित नहीं किया जा सकता: ये केवल एक ही बार के प्रयोग के लिए बनाये जाते हैं (एक या अधिक ग्राही-बिन्दुओं के लिये)। वै० ऊ० रा० स्रो०, जिनमें व्यावहारिक रूप से उत्क्रमणीय अभिक्रियाएँ होती हैं, सेल कहलाते हैं तथा इन्हें पुनः आवेशित किया जा सकता है: इन्हें अनेक बार प्रयोग भी किया जा सकता है।



चित्र 82. कॉपर-जिंक गैल्वैनी सेल का आरेख।

किसी भी गैल्वैनी सैल का कार्य उसमें अपचयोपचयन अभिक्रिया घटने पर आधारित होता है। सरलतम गैल्वैनी सेल में दो भिन्न धातुओं के पट्टे या प्लेटें होती हैं जो वैद्युत-अपघट्य के विलयन में स्थित होती हैं। ऐसे विन्यास के कारण अपचयोपचयन अभिक्रियाएँ भिन्न स्थानों पर होती हैं: आक्सीकरण एक धातु में होता है तथा अपचयन — दूसरे धातु में। इस प्रकार, अपचायक से उपचायक पर इलेक्ट्रानों का संक्रमण बाहरी परिपथ से होता है।

आइये उदाहरण के तौर पर कॉपर-जिंक गैल्वैनी सेल को देखें, जो जिंक व कॉपर सल्फेट की ऊपर दी गई अभिक्रिया की ऊर्जा के आधार पर कार्य करता है (चित्र 82)। यह सेल (जैकोबी-डेनियल सेल) कॉपर सल्फेट के विलयन में डूबी हुई कॉपर की प्लेट (कॉपर इलैक्ट्रोड) तथा जिंक सल्फेट के विलयन में डूबी हुई जिंक की प्लेट (जिंक इलैक्ट्रोड) से बना है। दोनों विलयन एक दूसरे को स्पर्श करते हैं लेकिन एकदम मिलने न पाये इसीलिए इनके बीच सरंध्र प्लेट लगा दी जाती है।

सेल के कार्य करने पर यानी परिपथ के बंद होने पर, जिंक का उपचयन होता है: विलयन को उसके स्पर्श करने की सतह पर जिंक के परमाणु आयन में रूपांतरित हो जाते हैं तथा जलयोजित होकर विलयन में आ जाते हैं। इसमें स्वतंत्र हुए इलेक्ट्रान बाहरी परिपथ में से गुज़र कर कॉपर इलैक्टोड पर आ जाते हैं। इन क्रियाओं का कुल योग आरेखी रूप से अर्ध-अभिक्रिया के समीकरण या वैद्युत्-रासायनिक समीकरण द्वारा व्यक्त होता है:

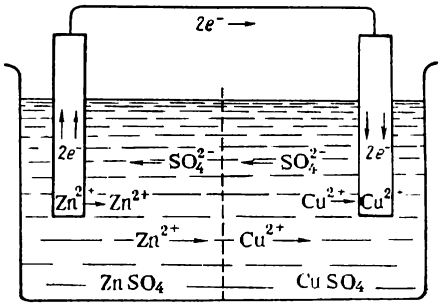
$$Zn = Zn^{2+} + 2e^-$$

कॉपर इलैक्ट्रोड पर कॉपर के आयनों का अपचयन होता है। जिंक इलैक्ट्रोड से यहाँ आने वाले इलेक्ट्रान विलयन में से वाले निर्जलित कॉपर के निकलने आयनों के

साथ जुड़ जाते हैं। इस प्रकार कॉपर के परमाणु बनते हैं जो धातु के रूप में निष्कासित हो जाते हैं। तदनुरूपी वैद्युत रासायनिक समीकरण का निम्न रूप होता है :

$$Cu^{2+} + 2e^- = Cu$$

तत्त्व में घटने वाली अभिक्रिया का कुल समीकरण प्राप्त करने के लिये दोनों अर्ध-अभिक्रियाओं के समीकरणों का योग करना होगा। अतएव, गैल्वैनी सेल के कार्य के समय इलेक्ट्रान अपचायक से उपचायक पर बाहरी परिपथ में से आते हैं, इलैक्ट्रोडों पर वैद्युत्-रासायनिक अभिक्रियाएँ होती हैं तथा विलयन में आयानों की दिष्ट गति देखने में आती है।



चित्र 83. कॉपर-जिंक गैल्वैनी सेल के कार्य के समय आयनों व इलेक्ट्रानों की गति का आरेख।

विलयन में आयनों की गति की दिशा इलैक्ट्रोडों पर घटने वाली वैद्युत-रासायनिक क्रियाओं पर निर्भर करती है। जैसा ऊपर बताया ही जा चुका है, जिंक इलैक्ट्रोड पर धनायन विलयन में जाते हैं और उसमें अतिरिक्त धनात्मक आवेग बनाते हैं, कॉपर इलैक्ट्रोड पर विलयन ऋणात्मक आवेशित हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप वैद्युत क्षेत्र बन जाता है जिसमें विलयन में स्थित धनायन (Cu^{2+} तथा Zn^{2+}) जिंक इलैक्ट्रोड से कॉपर इलैक्ट्रोड की ओर आते हैं तथा SO_4^{2-} ऋणायन विपरीत दिशा में गतिरत होते हैं। इसके फलस्वरूप दोनों इलैक्ट्रोडों पर द्रव वैद्युत के प्रति उदासीन हो जाता है। कॉपर-जिंक सेल के कार्य के दौरान इलेक्ट्रान तथा आयनों की गति का आरेख चित्र 83 में दिखाया गया है।

इलैक्ट्रोड, जिस पर आक्सीकरण होता है, ऐनोड कहलाता है। इलैक्ट्रोड, जिस पर अपचयन होता है, कैथोड कहलाता है। कॉपर-जिंक सेल में जिंक इलैक्ट्रोड ऐनोड है, तथा कॉपर इलैक्ट्रोड – कैथोड।

गैल्वैनी सेल में होने वाली अपचयोपचयन अभिक्रिया एक जटिल क्रिया है। इसमें वैद्युत-रासायनिक चरण (इलैक्ट्रोडों पर परमाणुओं, आयनों या अणुओं का रूपांतरण), इलेक्ट्रानों तथा आयनों का संक्रमण सम्मिलित हैं। ये सभी चरण एक दूसरे के साथ सम्बन्धित हैं तथा एक ही चाल से घटते हैं। समय की इकाई में जिंक द्वारा निष्कासित इलेक्ट्रानों की सँख्या इसी समय में कॉपर के आयनों द्वारा गृहीत इलेक्ट्रानों की सँख्या के बराबर होती है। इसीलिए गैल्वैनी सेल में घटने वाली अभिक्रिया की चाल

समय की इकाई में परिपथ में से जाने वाली विद्युत की मात्रा के आनुपातिक होती है, अर्थात् परिपथ में धारा बल के आनुपातिक होती है।

गैल्वैनी सेल के बाहरी परिपथ में से गुज़रने वाली विद्युत धारा लाभकारी कार्य कर सकती है। लेकिन वह कार्य जो रासायनिक अभिक्रिया की ऊर्जा द्वारा किया जा सकता है, इसकी चाल पर निर्भर करता है: वह अधिकतम होगा यदि अभिक्रिया अनंत रूप से धीमी तथा उत्क्रमणीय होगी (दे० §67)। अतएव, गैल्वैनी सेल में घटने वाली अभिक्रिया द्वारा किया जा सकने वाला कार्य उसमें से प्राप्त की जाने वाली धारा की मात्रा पर निर्भर करता है। यदि बाहरी परिपथ का प्रतिरोध बढ़ा कर धारा को अनंत रूप से कम पर पहुँचा दिया जाए, तो सेल में अभिक्रिया की चाल भी अनंत रूप से कम हो जाएगी, तथा कार्य अधिकतम हो जाएगा। ऊष्मा, जो सेल के आन्तरिक परिपथ में विसर्जित होती है, इसमें, इसके विपरीत न्यूनतम होगी।

वैद्युत धारा का कार्य परिपथ में से गुज़रने वाली विद्युत और वोल्टता के गुणनफल के बराबर होता है। कॉपर-जिंक सेल में एक तुल्य जिंक के उपचयन तथा एक ही समय में एक तुल्य कॉपर के आयनों के अपचयन में परिपथ में से एक फैराडे विद्युत गुज़रेगी ($F = 96\,485$ कूलम्ब*) अतः लाभकारी कार्य A', जिसे धारा कर सकती है, $A' = FV$ के बराबर होगा। यहाँ $V =$ सेल के ध्रुवों के बीच वोल्टता।

लेकिन चूंकि यह कार्य धारा बल पर निर्भर करता है, तो सेल के ध्रुवों के बीच वोल्टता भी धारा बल पर निर्भर करती है ($F =$ एक स्थिर मात्रा है)। चरम स्थिति में, जब अभिक्रिया उत्क्रमणीय होती है, वोल्टता अधिकतम होगी। गैल्वैनी सेल की वोल्टता का अधिकतम मान, जो उत्क्रमणीय अभिक्रिया के लिये है, नियत सेल का वैद्युतगतिक बल (वै० ग० ब०) कहलाता है।

इस चरमस्थिति के लिये लाभकारी कार्य, जिसे कॉपर-जिंक सेल में विद्युत् धारा ने एक तुल्य जिंक तथा एक तुल्य कॉपर के आयनों की पारस्परिक क्रिया के समय किया, निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त° होगा:

$$A'_{\text{अधिकतम}} = FV_{\text{अधिकतम}} = FE$$

यहाँ $E = V_{\text{अधिकतम}}$ – सेल का वैद्युत गतिक बल।

स्पष्ट है कि जिंक के एक मोल परमाणुओं तथा कॉपर के एक मोल आयनों की पारस्परिक क्रिया में समीकरण का निम्न रूप होगा:

$$A_{\text{अधिकतम}} = 2A'_{\text{अधिकतम}} = 2FE$$

---

*परिकलनों में हम इस मात्रा का लगभग मान ही प्रयुक्त करेंगे ($F = 95\,600$ कू०/मोल०)।

सामान्य स्थिति में विलीन होने के समय (या उत्सर्जन के समय) एक मोल पदार्थ, जिसके आयन z के बराबर आवेश रखते हैं, का अधिकतम लाभकारी कार्य वै० ग० ब० के साथ निम्न समीकरण द्वारा सम्बंधित है :

$$A_{\text{अधिकतम}} = zFE$$

स्थिर ताप व दाब पर अभिक्रिया का अधिकतम लाभकारी कार्य गिब्ज़ ऊर्जा के परिवर्तन, विपरीत चिन्ह के साथ, के बराबर है ΔG (दे० § 67)। अतः

$$\Delta G = -zFE$$

यदि अभिकारक पदार्थों की सान्द्रता (अन्य शब्दों में सक्रियता) इकाई के बराबर हैं, यानी यदि मानक अवस्थाओं का पालन किया गया है, तो सेल का वै० ग० ब० उसका मानक वैद्युत गतिक बल कहलाता है तथा E° द्वारा निर्दिष्ट होता है। इसमें अन्तिम समीकरण का स्वरूप निम्न हो जाता है :

$$\Delta G = -zFE^\circ$$

यह ध्यान रखते हुए कि अभिक्रिया के गिब्ज़ ऊर्जा का मानक परिवर्तन उसके संतुलन स्थिरांक के बराबर हैं (§ 68) :

$$\Delta G^\circ = -RT \ln K$$

हम उस समीकरण को प्राप्त करेंगे जो मानक वै० ग० ब० को उस अभिक्रिया के संतुलन स्थिरांक के साथ सम्बंधित करता है, जो गैल्वैनी सेल में घटती है :

$$RT \ln K = zFE^\circ$$

वैद्युत गतिक बलों को काफ़ी उच्च परिशुद्धतापूर्वक मापा जा सकता है। गिब्ज़ की मानक ऊर्जाओं को निश्चित करने तथा, अतएव, विलयनों में अपचयोपचयन अभिक्रियाओं के संतुलन स्थिरांक को निर्धारित करने की सर्वाधिक परिशुद्ध विधियों में से एक विधि इनका मापा जाना है।

गैल्वैनी सेल में अपचयोपचयन अभिक्रिया घटती है हालांकि उपचायक तथा अपचायक एक दूसरे को प्रत्यक्ष रूप से स्पर्श नहीं करते हैं। यह समझने के लिथे कि ऐसा किस प्रकार होता है, उपचयन तथा अपचयन ि याओं का पृथक स्थानों पर घटने पर भी वैद्युत गतिक बल कैसे बनता है, आइये गैल्वैनी सेल में कलाओं के पृथक्करण की सीमा पर होने वाली परिघटना को अधिक विवरण में देखें।

रेडियोऐक्टिव सूचकों की मदद से किये गए प्रत्यक्ष प्रयोगों से सिद्ध होता है कि यदि धातु (M) को उसके लवण के विलयन से स्पर्श कराया जाए, तो धातु के आयन M^{z+} धात्विक कला में से विलयन में आ जाते हैं तथा विलयन में से धातु में आ

जाते हैं। चूँकि इन कलाओं में आयनों की ऊर्जा अवस्था असमान है, तो स्पर्श होने के बाद पहले क्षण में धातु के आयन धातु में से विलयन में तथा विपरीत दिशा में भिन्न चालों से जाते हैं। यदि धातु कला में से विलयन में आयनों का जाना अधिक है, तो विलयन का आवेश धनात्मक हो जाता है तथा धात्विक इलैक्ट्रोड पर ऋणात्मक आवेश चढ़ जाता है। इन आवेशों के बढ़ने के साथ-साथ धनायनों का एक ही चिन्ह से आवेशित विलयन में जाना कठिन हो जाता है, अतः इस क्रिया की चाल धीमी हो जाती है, विलयन में से ऋणात्मक आवेशित इलैक्ट्रोड पर धनायनों के जाने की चाल बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप दोनों क्रियाओं की चालें बराबर हो जाती हैं तथा धातु व विलयन के बीच निम्न संतुलन बन जाता है:

$$M^{z+} \text{ (धातु) } \rightleftarrows M^{z+} \text{ (विलयन)}$$

इस प्रकार धात्विक इलैक्ट्रोड ऋणात्मक आवेशित होता है तथा विलयन धनात्मक आवेशित। यदि धातु-विलयन के स्पर्श बनने के समय धातु में से विलयन में धनायनों के जाने की चाल विपरीत दिशा में चाल की तुलना में कम हो तो इलैक्ट्रोड तथा विलयन के बीच इसी प्रकार संतुलन बन जाता है, लेकिन इस स्थिति में इलैक्ट्रोड धनात्मक, तथा विलयन ऋणात्मक आवेशित होता है।

जैकोबी-डेनियल सेल में तदनुरूपी संतुलन जिंक के इलैक्ट्रोड तथा जिंक सल्फेट के विलयन के बीच बनता है:

$$Zn^{2+} \text{ (धातु) } \rightleftarrows Zn^{2+} \text{ (विलयन } ZnSO_4 \text{)}$$

तथा इसी प्रकार कॉपर इलैक्ट्रोड व कॉपर सल्फेट के विलयन में भी संतुलन वनता है:

$$Cu_2^{+} \text{ (धातु) } \rightleftarrows Cu^{2+} \text{ (विलयन } CuSO_4 \text{)}$$

इस सेल में कलाओं के पृथक्करण की दो और सीमाएँ होती हैं: जिंक तथा कॉपर सल्फेट के विलयनों में तथा कॉपर व जिंक के बीच (चित्र पृ० 82)। विलयनों के बीच की सीमा न तो वै० ग० ब० की मात्रा पर, न ही सेल के कार्य करने पर अभि-क्रिया के घटने में विशेष प्रभाव डालती है। जहाँ तक धातुओं के बीच की सीमा का प्रश्न है तो उसमें से आयनों के गुज़रने की जगह, जैसा कि धातु-विलयन सीमा की स्थिति में होता है, इलैक्ट्रान* गुज़रते हैं। यहाँ पर भी कॉपर व जिंक में असमान ऊर्जा अवस्था के परिणामस्वरूप एक धातु में से दूसरे में तथा विपरीत दिशा में इलेक्ट्रानों के संक्रमण की चालें भिन्न होती हैं। हालांकि इस स्थिति में भी वृद्धि ही संतुलन बन

---

*धातु से धातु में परमाणुओं व एलेक्ट्रोनों की प्रसृति अत्यधिक धीमी होती है और धातुओं के विभाजन तल पर संतुलन की स्थापना पर व्यावहारिकतः कोई प्रभाव नहीं डालती।

जाता है जिसमें धातु उसी प्रकार विपरीत चिन्ह से आवेशित हो जाते हैं:

$$e^{-} \text{ (कॉपर) } \rightleftarrows e^{-} \text{ (जिंक)}$$

इस प्रकार, खुले परिपथ में जैकोबी-डेनियल सेल में कला के पृथक्करण की तीन सीमाओं पर संतुलन बन जाते हैं, और कलाएँ आवेशित हो जाती हैं। फलस्वरूप खुले परिपथ के सिरों पर इलेक्ट्रानों की ऊर्जा अवस्था असमान होती है; और उस कॉपर चालक पर जो जिंक इलैक्ट्रोड को स्पर्श करती है, इलेक्ट्रानों की गिब्ज ऊर्जा अधिक होती है, तथा उस पर जो कॉपर इलैक्ट्रोड के साथ जुड़ी है, कम होती है। परिपथ के सिरों पर इलेक्ट्रानों की गिब्ज़ ऊर्जा का अंतर नियत सेल का वै० ग० ब० निश्चित करता है।

बाहरी परिपथ के बंद होने पर इलेक्ट्रान जिंक इलैक्ट्रोड से कॉपर इलैक्ट्रोड पर आ जाते हैं। इसीलिये कला सीमाओं पर संतुलन बिगड़ जाते हैं; जिंक धातु में से विलयन में आयनों का, तथा कॉपर के आयनों का—विलयन में से धातु में, इलेक्ट्रानों का—जिंक से कॉपर पर संक्रमण होता है: अपचयोपचयन अभिक्रिया स्थान लेती है।

नियमत: कोई भी अपचयोपचयन अभिक्रिया वैद्युत ऊर्जा दे सकती है। लेकिन वैद्युत ऊर्जा के रासायनिक स्रोतों में प्रयुक्त की जाने वाली अभिक्रियाओं की सँख्या अधिक नहीं है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक अपचयोपचयन अभिक्रिया गैल्वैनी सेल नहीं बनाती है जिसमें तकनीकी दृष्टि से मूल्यवान गुण विद्यमान हों (उच्च व व्यावहारिक रूप से स्थायी वै० ग० ब०, विशाल धाराओं की सम्भावना, दीर्ध आयु, आदि)। इसके अतिरिक्त अनेक अपचयोपचयन अभिक्रियाओं में महंगे पदार्थों की आवश्यकता होती है।

कॉपर-जिंक सेल के विपरीत, सभी आधुनिक गैल्वैनी सेलों तथा बैटरियों में दो वैद्युत अपघट्य नहीं अपितु एक ही वैद्युत-अपघट्य प्रयुक्त होता है। धारा के ऐसे स्रोत कार्य के लिए अधिक उपयोगी हैं। उदाहरणतया, लेड बैटरी में (दे० § 189) वैद्युत-अपघट्य के रूप में सल्फ्यूरिक अम्ल का विलयन प्रयुक्त किया गया है।

लगभग सभी आधुनिक गैल्वैनी सेलों में ऐनोड जिंक से बनाया जाता है, व कैथोड के लिए प्राय: कम सक्रिय धातुओं की आक्साइड प्रयुक्त की जाती है। महत्वपूर्ण गैल्वैनी सेलों का वर्णन § 214 में तथा बैटरियों का वर्णन—§§ 189, 201 तथा 244 में दिया गया है।

वैद्युत ऊर्जा के रासायनिक स्रोतों का उपयोग तकनीकी के विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। संचार-साधनों (रेडियो, टेलीफोन, टेलीग्राफ) तथा विद्युत-मापन यंत्रों में वे वैद्युत-धारा के स्रोत का काम करते हैं, मोटर-गाड़ियों, बायुयानों तथा ट्रैक्टरों में ये स्टार्टरों तथा अन्य उपकरणों को चालू करने के काम में आते हैं, यातायात तथा सुवाह्य टार्चों में इनकी मदद से प्रकाश किया जाता है।

सभी साधारण वै० ऊ० रा० स्रो० में दो कमियाँ होती हैं। सर्वप्रथम, इनमें प्रयोग किये जाने वाले पदार्थ बहुत महंगे होते हैं (उदाहरणतया, लेड, कैडमियम) दूसरे, सेल द्वारा दी जाने वाली विद्युत की मात्रा उसके द्रव्यमान के प्रति बहुत कम होती है। गत दशकों के दौरान ऐसे शोधकार्य किये गये हैं जिनका उद्देश्य इस प्रकार के सेल बनाना था जिनके कार्य में कम घनत्व वाले सस्ते पदार्थ प्रयोग किये जा सकते हों, जैसे कि द्रव या गैसीय ईंधन (प्राकृतिक गैस, मिट्टी का तेल, हाइड्रोजन, इत्यादि)। ऐसे गैल्वैनी सेल ईंधन सेल कहलाते हैं। आजकल ईंधन सेल समस्या पर काफ़ी ध्यान दिया जाता है तथा अनुमान किया जा कसता है कि निकट भविष्य में ईंधन सेल काफ़ी लोकप्रिय हो जाएँगे।

99. इलैक्ट्रोडी विभव. प्रत्येक अपचयोपचयन अभिक्रिया उपचयन की अर्ध-अभिक्रिया तथा अपचयन की अर्ध-अभिक्रिया के योग से बनी होती है। जब गैल्वैनी सेल में या वैद्युत-अपघट्य की मदद से अभिक्रिया होती हैं, तो प्रत्येक अर्ध-अभिक्रिया तदनुरूपी इलैक्ट्रोड पर घटती है। इसीलिए अर्ध-अभिक्रियाओं को इलैक्ट्रोडी क्रियाएँ भी कहा जाता है।

§ 98 में यह दिखाया गया था कि गैल्वैनी सेल में होने वाली अपचयोपचयन अभिक्रिया के लिए इस सेल का वै० ग० ब० E है जो अभिक्रिया की गिब्ज ऊर्जा के परिवर्तन के साथ निम्न समीकरण द्वारा सम्बंधित है:

$$\Delta G = -zFE$$

अपचयोपचयन अभिक्रिया का दो अर्ध-अभिक्रियाओं में बंट जाने के कारण वैद्युत गतिक बलों को भी दो मात्राओं के अंतर के रूप में दिखाना चाहिये, जिनमें से प्रत्येक नियत अर्ध-अभिक्रिया के लिए हो। इन मात्राओं को इलेक्ट्रोडी विभव कहते हैं।

कॉपर-जिंक सेल के लिये घटने वाली अभिक्रिया

$$\mathrm{Zn} + \mathrm{Cu}^{2+} = Zn^{2+} + \mathrm{Cu}$$

दो अर्ध-अभिक्रियाओं में विभा-जित हो जाती है:

$$\mathrm{Cu}^{2+} + 2e^- = \mathrm{Cu}$$
$$Zn = Zn^{2+} + 2e^-$$

इसी प्रकार, इस सेल का वै० ग० ब० E इलैक्ट्रोनी विभवों (φ) के अंतर के रूप में दिखाया जा सकता है, जिनमें से एक (φ_1) पहली, तथा दूसरा (φ_2) – दूसरी ऊपर लिखी अर्ध-अभिक्रियाओं के लिये है

$$\mathrm{E} = \varphi_1 - \varphi_2$$

इसमें गिब्ज़ ऊर्जा का परिवर्तन ΔG_1, जो कॉपर के एक मोल ग्रायन के तापीय-गतिकी रूप से उत्क्रमणीय ग्रपचयन को व्यक्त करता है, बराबर है

$$\Delta G_1 = 2F\varphi_1$$

तथा गिब्ज ऊर्जा में परिवर्तन ΔG_2, जो जिंक के एक मोल परमाणुग्रों के तापीयगतिकी उत्क्रमणीय उपचयन को व्यक्त करता है,

$$\Delta G_2 = 2F\varphi_2$$

के बराबर है।

सामान्य रूप से किसी भी इलैक्ट्रोडी क्रिया

$$\mathrm{Ox} + ze^- = \mathrm{Red}$$

के लिए इलेक्ट्रोडी विभव φ है तथा गिब्ज़ ऊर्जा का परिवर्तन ΔG :

$$\Delta G = -zF\varphi$$

के बराबर होता है। यहाँ Red तथा Ox लैटिन शब्दों reductio (ग्रपचयन) तथा oxidatio (उपचयन) के संक्षिप्त रूप हैं तथा इलैक्ट्रोड प्रक्रियाग्रों में भाग लने वाले पदार्थों की ग्रपचयन ग्रौर उपचयन ग्रवस्था निर्दिष्ट करते हैं।

ग्रागे चल कर इलैक्ट्रोडी क्रियाग्रों का जिक्र करते समय हम उनके समीकरणों को ग्रपचयन की दिशा में लिखेंगे (बेशक, उन स्थितियों को छोड़कर जब हम केवल उपचयन की चर्चा कर रहे हों)।

विभिन्न इलैक्ट्रोडी क्रियाग्रों के विभवों के ग्रध्ययन के परिणामस्वरूप यह सिद्ध हुग्रा कि उनकी मात्राएँ निम्न तीन कारणों पर निर्भर हैं: 1) इलैक्ट्रोडी क्रियाग्रों में भाग लेने वाले पदार्थों की प्रकृति; 2) इन पदार्थों की सान्द्रताग्रो* का ग्रनुपात; 3) विन्यास का ताप। यह निर्भरता निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त होती है:

$$\varphi = \varphi^\circ + \frac{2.3RT}{zF} \lg \frac{[\mathrm{Ox}]}{[\mathrm{Red}]}$$

यहाँ φ° = नियत क्रिया का मानक इलेक्ट्रोडी विभव – एक स्थिरांक है जिसका भौतिक मान नीचे दिया गया है; R – गैसीय स्थिराँक; T – परम ताप; z – क्रिया में भाग लेने वाले इलेक्ट्रानों की सँख्या; F = फैराडे सँख्या; [Ox] तथा [Red] – क्रिया के

---

* सुस्पष्ट शब्दों में, इलैक्ट्रोडी विभव की मात्रा पदार्थों की सान्द्रता पर नहीं, बल्कि सक्रियताग्रों पर निर्भर करती है (दे० § 81); देखे गए सभी समीकरणों में सान्द्रता के स्थान पर सक्रियता होनी चाहिए। लेकिन विलयनों की सान्द्रता कम होने पर सक्रियता के स्थान पर सान्द्रता को प्रयुक्त करना ग्रधिक बड़ी ग्रशुद्धि पैदा नहीं करता।

उपचयन [Ox] तथा अपचयन [Red] रूपों में भाग लेने वाले पदार्थों की सान्द्रताओं के गुणनफल हैं।

φ° के मात्रा का भौतिक मान उस स्थिति को देखने पर स्पष्ट हो जाएगा, जब नियत इलैक्ट्रोडी क्रिया में भाग लेने वाले सभी पदार्थों की सान्द्रताएँ (सक्रियताएँ) इकाई के बराबर होंगीं। इस प्रतिबन्ध पर सभीकरण के दायें पक्ष में दूसरा घटक शून्य बन जाता है ($\lg 1 = 0$) तथा समीकरण का रूप निम्न हो जाता है :

$$\varphi = \varphi^\circ$$

इकाई के बराबर सान्द्रताएँ (सक्रियताएँ) मानक सान्द्रताएँ (सक्रियताएँ) कहलाती हैं। इसीलिए विभव, जो इस स्थिति के लिए है, भी मानक विभव कहलाता है। अतएव, मानक इलैक्ट्रोडी विभव – नियत इलैक्ट्रोडी क्रिया का उसमें भाग लेने वाले सभी पदार्थों की इकाई के बराबर सान्द्रता (सुस्पष्ट शब्दों में, सक्रियता) पर विभव है।

अतएव, इलैक्टोडी विभव के समीकरण में पहला घटक (φ°) अपनी मात्रा पर पदार्थ की प्रकृति का प्रभाव महसूस करता है, तथा दूसरा $\left(\frac{2.3RT}{zF}\lg\frac{[\mathrm{Ox}]}{[\mathrm{Red}]}\right)$ उनकी सान्द्रताओं का प्रभाव महसूस करता है। इसके अलावा, दोनों घटक ताप द्वारा परिवर्तित होते हैं।

विद्युत-रासायनिक मापों के लिए (25° सें. = 298K), स्थिरांकों का मान रखने पर [$R = 8.31$ जू०/(मोल·K), $F = 96\,500$ कू०/मो०] समीकरण का रूप निम्न हो जाता है :

$$\varphi = \varphi^\circ + \frac{2.3\cdot 8.31\cdot 298}{z\cdot 96\,500}\lg\frac{[\mathrm{Ox}]}{[\mathrm{Red}]} = \varphi^\circ + \frac{0.059}{z}\lg\frac{[\mathrm{Ox}]}{[\mathrm{Red}]}$$

इलेक्ट्रोडी विभवों की सांख्यिक स्केल बनाने के लिए किसी भी इलैक्ट्रोडी क्रिया के विभव को शून्य के बराबर मानना होगा। ऐसी स्केल के बनाने के लिए मानक के रूप में निम्न इलैक्ट्रोडी क्रिया ली जाती है :

$$2H^+ + 2e^- = H_2$$

मानक अवस्थाओं में इस अर्ध-अभिक्रिया के घटने से सम्बंधित गिब्ज ऊर्जा का परिवर्तन शून्य के बराबर माना जाता है। इसके अनुसार नियत इलैक्ट्रोडी क्रिया का मानक विभव भी शून्य के बराबर माना जाता है। इस पुस्तक में तथा अधिकांश अन्य आधुनिक पुस्तकों में दिये गए इलैक्ट्रोडी विभव इस हाइड्रोजन स्केल में व्यक्त किये जाते हैं।,

ऊपर दी गई इलैक्ट्रोडी क्रिया हाइड्रोजन इलैक्ट्रोड पर की जाती है। अन्तिम प्लैटिनम की एक प्लेट होती है जिस पर विद्युत्-अपघटन द्वारा स्पंज प्लैटिनम की परत

चढ़ी होती है, और जो एक अम्लीय विलयन में डूबी हुई होती है जिसमें से हाइड्रोजन गैस गुजर रही है (चित्र 84)। हाइड्रोजन प्लैटिनम में अच्छी प्रकार विलीन हो जाती है, इस में प्लैटिनम के अणु अंशतः परमाणुओं में वियोजित हो जाते हैं (प्लैटिनम इस वियोजन का उत्प्रेरण कर देता है)। प्लैटिनम तथा अम्लीय विलयन के स्पर्श होने की सतह पर या तो परमाणुओं का आक्सीकरण हो सकता है या हाइड्रोजन के आयनों का अपचयन। इसमें प्लैटिनम इलैक्ट्रोडी अभिक्रियाओं में व्यावहारिक रूप से बिल्कुल भाग नहीं लेता, तथा स्पंज जैसा रोल अदा करता है जिसमें परमाण्वीय हाइड्रोजन हो।

हाइड्रोजन इलैक्ट्रोड के विभव को काफी अधिक परिशुद्धता के साथ व्यक्त किया जा सकता है। इसीलिए इलैक्ट्रोडी विभवों की स्केल बनाने के लिये हाइड्रोजन इलैक्ट्रोड को मानक के रूप में लिया गया है।

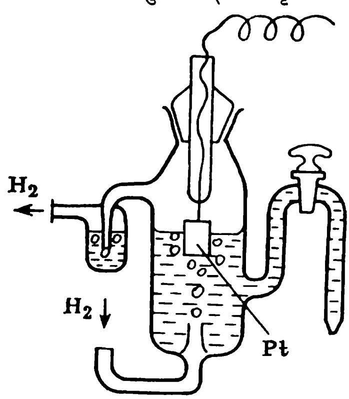
आइये ज्ञात करें कि हाइड्रोजन इलैक्ट्रोड के लिये इलैक्ट्रोडी विभव के सामान्य समीकरण का क्या रूप होगा। इलैक्ट्रोडी क्रिया के समीकरण के अनुसार (दे० पृ० 331 $z=2$, $[Ox]=[H^+]^2$, $[Red]=[H_2]$। प्लैटिनम में विलीन हाइड्रोजन की सान्द्रता उसके अंशिक दाब p_{H_2} के आनुपातिक है:

$$[H_2]=kp_{H_2}$$

यहाँ $k=$ नियत ताप पर स्थिर मात्रा। इसे φ° के मान में रखने पर

$$\varphi=\varphi^\circ+0.059\lg[H^+]-0.030\lg p_{H_2}$$

सामान्यतः p_{H2} हाइड्रोजन का आंशिक दाब समान सामान्य वायुमंडलीय दाब, जिसे सप्रतिबन्ध रूप से इकाई के बराबर मान लिया जाता है, द्वारा संतुलित होता है। इस स्थिति में प्राप्त समीकरण का अन्तिम सदस्य शून्य के बराबर हो जाता है ($\lg 1=0$)) तब :



चित्र 84. हाइड्रोजन इलैक्ट्रोड।

$$\varphi=\varphi^\circ+0.059\lg[H^+]$$

चूँकि विचाराधीन क्रिया का मानक विभव शून्य के बराबर माना गया है, तो

$$\varphi=0.059\lg[H^+]$$

या, स्मरण करके कि $\lg[H^+]=-pH$ तो अन्तिम रूप से प्राप्त होता है:

$$\varphi=-0.059pH$$

किसी भी इलैक्ट्रोडी क्रिया के विभव को मापने के लिए प्रायोगिक व मानक हाइड्रोजन इलैक्ट्रोडों में गैल्वैनी सेल बनाया जा सकता है, तथा इसका वै० ग० बल मापा जाता है। चूँकि मानक हाइड्रोजन इलैक्ट्रोड का विभव शून्य के बराबर है, तो वै० ग० ब० के माप नियत इलैक्ट्रोडी क्रियाओं के विभव होंगे।

इलैक्ट्रोडों के रूप में विभवों को व्यावहारिक रूप से मापे जाने के समय न कि मानक हाइड्रोजन का प्रयोग किया जाता है, परन्तु अन्य इलैक्ट्रोडों का प्रयोग किया जाता है जो कार्य करने में आसान हैं तथा जिन के विभव मानक हाइड्रोजन इलैक्ट्रोड के प्रति ज्ञात हैं। यहाँ सेल का वै० ग० बल निम्न समीकरण के अनुसार देखना आवश्यक है :

$$E = /\varphi_{(\text{तुलना})} - \varphi_x/$$

यहाँ E = सेल का वैद्युत-गतिक बल है ; $\varphi_{\text{तुलना}}$ – तुलना के इलैक्ट्रोड का ज्ञात प्रतिबल, भोजन, इत्यादि ; φ_x = प्रायोगिक इलैक्ट्रोड का विभव।

φ_x के प्रति समीकरण का हल करते हुए:

$$\varphi_{\text{तुलना}} > \varphi_x \text{ की स्थिति में } \quad \varphi_x = \varphi_{\text{तुलना}} - E$$

$$\varphi_{\text{तुलना}} < \varphi_x \text{ की स्थिति में } \varphi_x = \varphi_{\text{तुलना}} + E$$

तुलना इलैक्ट्रोडों के रूप में प्राय: क्लोरीन-रजत और कोलॉइडी इलैक्ट्रोड प्रयुक्त किये जाते हैं। क्लोरीन-रजत इलैक्ट्रोड – यह AgCl की परत चढ़ा हुआ रजत का तार है जो हाइड्रोक्लोरिक अम्ल या उसके लवण के विलयन में डूबोया हुआ है। वंद परिपथ में उसमें निम्न अभिक्रिया होती है :

$$AgCl + e^- = Ag^+ + Cl^-$$

कैलोमल इलेक्ट्रोड मर्करी है जो KCl विलयन में निलंबित कैलोमल Hg_2Cl_2 की परत से चढ़ी हुई है। इन इलैक्ट्रोडों के विभव काफ़ी अधिक परिशुद्धता से व्यक्त होते हैं। चित्र 85 में कोलॉइडी इलैक्ट्रोड का परिपथ दिखाया गया है।

इलैक्ट्रोडी विभव का मान ज्ञात करने के लिये कार्यरत सेल की वोल्टता नहीं, अपितु उसका वै० ग० ब० मापा जाना आवश्यक है। वै० ग० ब० को मापने में बाहरी परिपथ (यानी मापने के यंत्र) का प्रतिरोध बहुत अधिक होता है। इस बीच सेल में अभिक्रिया व्यावहारिक रूप से नहीं घटती है। अतएव, इलेक्ट्रोडी विभव उत्क्रमणीय क्रियाओं के लिए होते हैं, या, इलैक्ट्रोडों पर वैद्युत रासायनी संतुलन की

अवस्था को व्यक्त करते हैं, जो एक ही बात है। इसीलिए इलैक्ट्रोडी विभवों का संतुलन इलैक्ट्रोडी विभव या केवल संतुलन विभव कहते हैं।

अब, आइये, देखें कि महत्वपूर्ण स्थितियों में इलैक्ट्रोडी विभव के सामान्य समीकरण का क्या रूप होता है।

1. निम्न समीकरण द्वारा इलैक्ट्रोडी क्रिया व्यक्त होती है:

$$M^{z+} + ze^{-} = M$$

यहाँ M किसी भी धातु के परमाणु हैं, M^{z+} – उसके z-आवेशित आयन हैं।

इस स्थिति में कॉपर-जिंक सेल के दोनों इलैक्ट्रोड तथा सामान्यतः कोई भी धात्विक इलैक्ट्रोड, जो उसी धातु के लवण के विलयन में है, आते हैं। यहाँ धातु का उपचयन रूप उसके आयन, तथा अपचयन रूप – उसके परमाणु हैं। अतएव, $[Ox] = [M^{z+}]$, तथा $[Red]$ = स्थिरांक है, क्योंकि स्थिर ताप पर धातु में परमाणुओं की सान्द्रता एक स्थिर मात्रा है। φ° मात्रा में इस स्थिरांक का मान रखने पर:

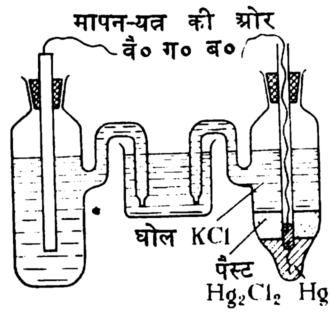
$$\varphi = \varphi^{\circ} + \frac{0.059}{z} \lg [M^{z+}]$$

उदाहरणतया, $Ag^{+} + e^{-} = Ag$ क्रिया के लिए

$$\varphi = 0.799 + 0.059 \lg [Ag^{+}]$$

तथा $Zn^{2+} + 2e^{-} = Zn$ क्रिया के लिए

$$\varphi = -0.763 + 0.030 \lg [Zn^{2+}]$$



चित्र 85. इलैक्ट्रोडी विभव मापने का परिचय। बायीं ओर – वह इलैक्ट्रोड, जिसका विभव मापना है; दायीं – कैलोमेल इलैक्ट्रोड; बीच में – जोड़ने वाला बर्तन।

2. निम्न समीकरण द्वारा इलैक्ट्रोडी क्रिया व्यक्त होती है:

$$M^{z_2+} + [z_2 - z_1]\, e^{-} = M^{z_1+}$$

इस स्थिति में धातु के उपचयन (M^{z_2+}) तथा अपचयन (M^{z_1+}) रूप विलयन में हैं तथा इनकी सान्द्रताएँ प्रत्यावर्ती मात्राएँ हैं। इसीलिए

$$\varphi = \varphi^{\circ} + \frac{0.059}{z_2 - z_1} \lg \frac{[M^{z_2+}]}{[M^{z_1+}]}$$

उदाहरण: $Fe^{3+} + e^{-} = Fe^{2+}$ प्रक्रिया के लिए:

$$\varphi = 0.771 + 0.059 \lg \frac{[Fe^{3+}]}{[Fe^{2+}]}$$

इस स्थिति व निम्न विचाराधीन स्थितियों में इलैक्ट्रोड, जिसपर इलैक्ट्रोड क्रिया घटती है, निष्क्रिय पदार्थ से बनाया जाता है। अधिकतर इस पदार्थ के रूप में प्लैटिनम प्रयुक्त होता है।

हम ने अभी उदाहरण देखे हैं जब इलैक्ट्रोडी क्रियाओं में एक ही तत्त्व से बने केवल आयनों ने ही भाग लिया है। लेकिन प्रायः ऐसे पदार्थ का उपचयन या अपचयन हो जाता है जो एक नहीं, बल्कि दो या अधिक तत्त्वों से बना होता है। अधिकतर उपचायक में ऑक्सीजन होती है; यहाँ इलेक्ट्रोडी क्रिया में सामान्यतः जल तथा उसके वियोजन के उत्पाद–हाइड्रोजन के आयन (अम्लीय माध्यम में) या हाइड्रोक्साइड-आयन (क्षारीय माध्याम में) भाग लेते हैं। आइये देखें कि इन स्थितियों में इलैक्ट्रोडी विभवों के समीकरणों का क्या रूप होगा।

3. निम्न समीकरण द्वारा इलैक्ट्रोडी क्रिया व्यक्त होती है:

$$O_2 + 4H^+ + 4e^- 2H_2O$$

यह अर्ध-अभिक्रिया (जब इसकी दिशा अपचयन की ओर होती है) धातुओं के संक्षारण में बहुत महत्व रखती है। आक्सीजन सर्वाधिक प्रचलित उपचायक है जो जलीय माध्यमों में धातुओं का संक्षारण करता है।

विचाराधीन इलेक्ट्रोडी क्रिया में ऑक्सीजन के अपचयन के फलस्वरूप, जिसमें हाइड्रोजन के आयन भाग लेते हैं, जल बनता है। अतएव, $[Red] = [H_2O]^2$, परन्तु $[Ox] =$ $= [O_2][H^+]^4$। तनु विलयनों में जल की सान्द्रता स्थायी कही जा सकती है। विलयन में ऑक्सीजन की सान्द्रता विलयन के ऊपर उसके आंशिक दाब के आनुपातिक होती है ($[O_2] = kp_{O_2}$)। आवश्यक परिकलनों को करके तथा स्थायी मात्राओं के योग को φ° द्वारा निर्दिष्ट करके प्राप्त होता है:

$$\varphi = \varphi^\circ + 0.059 \lg [H^+] + \frac{0.059}{4} \lg p_{O_2}$$

विचाराधीन क्रिया के लिये $\varphi^\circ = 1.228$ वो०, अतः,

$$\varphi = 1.228 - 0.059 pH + 0.015 \lg p_{O_2}$$

आक्सीजन के आंशिक दाब पर, जो सामान्य वायुमंडलीय दाब के बराबर है (जिसे प्रतिबन्ध रूप से इकाई के बराबर माना जाता है), $\lg p_{O_2} = 0$ तथा अन्तिम समीकरण का रूप निम्न होगा:

$$\varphi = 1.228 - 0.059 \, pH$$

4. अधिक जटिल समीकरणों द्वारा व्यक्त इलैक्ट्रोडी क्रियाओं के लिये विभवों के व्यंजकों में प्रत्यावर्ती सान्द्रताओं की बड़ी सँख्या होती है। उदाहरणतया, आइये निम्न इलैक्ट्रोडी क्रिया को देखे:

$$MnO_4^- + 8H^+ + 5e^- = Mn^{2+} + 4H_2O$$

यह अर्ध-अभिक्रिया (अपचयन की दिशा में) पोटैशियम परमैंग्नेट तथा अम्लीय माध्यम में स्थित अनेक अपचायकों की पारस्परिक क्रिया के दौरान घटती है।

विचाराधीन इलैक्ट्रोडी क्रिया में भाग लेने वाले जल के सिवा सभी पदार्थों की सान्द्रताएँ प्रत्यावर्ती मात्राएँ हैं। इस क्रिया के लिये $\varphi^\circ = 1.507$ B है। इलैक्ट्रोडी विभव का समीकरण निम्न होगा :

$$\varphi = \varphi^\circ + \frac{0.059}{5} \lg \frac{[MnO_4^-]}{[Mn^{2+}]} + \frac{8 \cdot 0.059}{5} \lg [H^+] =$$

$$= 1.507 + 0.012 \lg \frac{[MnO_4^-]}{[Mn^{2+}]} - 0.095\, pH$$

3 तथा 4 उदाहरणों से स्पष्ट है कि जल की उपस्थिति में घटने वाली वैद्युत-रासायनिक क्रियाओं की स्थिति में हाइड्रोजन के आयनों की सान्द्रता विभव समीकरण के लघुगणकीय सदस्य का अंश बनाती है। इसीलिए ऐसी क्रियाओं के इलैक्ट्रोडी विभव विलयन की pH पर निर्भर करते हैं तथा इनकी मात्रा उतनी ही अधिक होती है, जितना कि विलयन अम्लीय होता है।

जैसा पहले बताया जा चुका है कि इलैक्ट्रोडी विभव की उन पदार्थों की प्रकृति पर निर्भरता, जो इलैक्ट्रोडी क्रिया में भाग लेते है, φ° मात्रा द्वारा ध्यान में ली जाती है। इसी संदर्भ में सभी इलैक्ट्रोडी क्रियाओं को उनके मानक विभवों की मात्रा के अनुसार एक श्रेणी में रखा जाता है। तालिका 21 में महत्वपूर्ण इलैक्ट्रोडी क्रियाएँ तथा तदनुरूपी इलैक्ट्रोडी विभव φ° मात्रा के बढ़ने के क्रम में दिये गए हैं।

इस श्रेणी में किसी वैद्युत-रासायनिक विन्यास की स्थिति उसकी अपचयोपचयन विशेषता व्यक्त करती है। यहाँ वैद्युत-रासायनिक विन्यास का अभिप्राय नियत इलैक्ट्रोडी क्रिया में भाग लेने वाले सभी पदार्थों के योग से है।

अपचयोपचयन विशेषता वह धारणा है जो वैद्युत-रासायनिक विन्यास की लाक्षणिक है, लेकिन प्रायः किसी खास पदार्थ (या आयन) की अपचयोपचयन विशेषता के बारे में कहा जाता है। यहाँ ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि कई पदार्थ विभिन्न उत्पादों तक उपचयन या अपचयन कर सकते हैं। उदाहरणतया, पोटैशियम परमैंग्नेट (आयन MnO_4^-) का अवस्थाओं पर निर्भर करते हुए, सर्वप्रथम विलयन की pH पर, या तो Mn^{2+} आयन तक या MnO_2 तक या MnO_4^{2-} आयन तक अपचयन हो जाता है।

तदनुरूपी इलैक्ट्रोडी क्रियाओं को निम्न समीकरण व्यक्त करते हैं :

$$MnO_4^- + 8H^+ + 5e^- = Mn^{2+} + 4H_2O$$

$$MnO_4^- + 4H^+ + 3e^- = MnO_2 + 2H_2O$$

$$MnO_4^-S + e^- = MnO_4^{2-}$$

25° सें० पर तथा गैसों के आंशिक दाब पर, जो सामान्य वायुमंडलीय दाब के बराबर है, जलीय विलयनों में इलैक्ट्रोडी विभव।

इलैक्ट्रोडी क्रिया	इलैक्ट्रोडी विभव का समीकरण
$Li^+ + e^- = Li$	$\varphi = -3.045 + 0.059 \lg [Li^+]$
$Rb^+ + e^- = Rb$	$\varphi = -2.925 + 0.059 \lg [Rb^+]$
$K^+ + e^- = K$	$\varphi = -2.924 + 0.059 \lg [K^+]$
$Cs^+ + e^- = Cs$	$\varphi = -2.923 + 0.059 \lg [Cs^+]$
$Ca^{2+} + 2^- e = Ca$	$\varphi = -2.866 + 0.030 \lg [Ca^{2+}]$
$Na^+ + e^- = Na$	$\varphi = -2.714 + 0.059 \lg [Na^+]$
$Mg^{2+} + 2e^- = Mg$	$\varphi = -2.363 + 0.030 \lg [Mg^{2+}]$
$H_2 + 2e^- = 2H^-$	$\varphi = -2.251 - 0.059 \lg [H^-]$
$Al^{3+} + 3e^- = Al$	$\varphi = -1.663 + 0.020 \lg [Al^{3+}]$
$Ti^{2+} + 2e^- = Ti$	$\varphi = -1.630 + 0.030 \lg [Ti^{2+}]$
$Mn^{2+} + 2e^- = Mn$	$\varphi = -1.179 + 0.030 \lg [Mn^{2+}]$
$Cr^{2+} + 2e^- = Cr$	$\varphi = -0.913 + 0.030 \lg [Cr^{2+}]$
$Zn^{2+} + 2e^- = Zn$	$\varphi = -0.763 + 0.030 \lg [Zn^{2+}]$
$Cr^{3+} + 3e^- = Cr$	$\varphi = -0.744 + 0.020 \lg [Cr^{3+}]$
$[Au(CN)_2]^- + e^- = Au + 2CN^-$	$\varphi = -0.61 + 0.059 \lg \frac{[[Au(CN)_2]^-]}{[CN^-]^2}$
$2H^+ + 2e^- = H_2$	$\varphi = -0.059\ pH$
I_2 (क) $+ 2e = 2I^-$	$\varphi = 0.536 - 0.059 \lg [I^-]$
$MnO_4^- + e^- = MnO_4^{2-}$	$\varphi = 0.564 + 0.059 \lg \frac{[MnO_4^-]}{[MnO_4^{2-}]}$
$Fe^{3+} + e^- = Fe^{2+}$	$\varphi = 0.771 + 0.059 \lg \frac{[Fe^{3+}]}{[Fe^{2+}]}$
$NO_3^- + 2H^+ + e^- = NO_2 + H_2O$	$\varphi = 0.78 + 0.059 \lg [NO_3^-] - 0.118\ pH$
$Hg_2^{2+} + 2e^- = 2Hg$	$\varphi = 0.788 + 0.030 \lg [Hg_2^{2+}]$
$Ag^+ + e^- = Ag$	$\varphi = 0.799 + 0.059 \lg [Ag^+]$
$Hg^{2+} + 2e^- = Hg$	$\varphi = 0.850 + 0.030 \lg [Hg^{2+}]$
$2Hg^{2+} + 2e^- = Hg_2^{2+}$	$\varphi = 0.920 + 0.030 \lg \frac{[Hg^{2+}]^2}{[Hg_2^{2+}]}$
Br_2 (द्र) $+ 2e^- = 2Br^-$	$\varphi = 1.065 - 0.059 \lg [Br^-]$
$Pt^{2+} + 2e^- = Pt$	$\varphi = 1.188 + 0.030 \lg [Pt^{2+}]$
$O_2 + 4H^+ + 4e^- = 2H_2O$	$\varphi = 1.228 - 0.059\ pH$

तालिका 21

इलैक्ट्रोडी क्रिया	इलैक्ट्रोडी विभव का समीकरण
$Cr_2O_7^{2-}+14H^++6e^- = 2Cr^{3+}+7H_2O$	$\varphi = 1.333+0.010 \lg \frac{[Cr_2O_7^{2-}]}{[Cr^{3+}]^2} - 0.138\,pH$
Cl_2 (ग) $+ 2e^- = 2Cl^-$	$\varphi = 1.359 - 0.059 \lg [Cl^-]$
$PbO_2+4H^++2e^- = Pb^{2+}+4H_2O$	$\varphi = 1.449 - 0.030 \lg [Pb^{2+}] - 0.118\,pH$
$Au^{3+}+3e^- = Au$	$\varphi = 1.498 = 0.020 \lg [Au^{3+}]$
$MnO_4^- +8H^++5e^- = Mn^{2+}+4H_2O$	$\varphi = 1.507+0.012 \lg \frac{[MnO_4^-]}{[Mn^{2+}]} - 0.095\,pH$
$PbO_2+SO_4^{2-}+4H^++2e^- = PbSO_4+2H_2O$	$\varphi = 1.685+0.030 \lg [SO_4^{2-}] - 0.118\,pH$
$Au^++e^- = Au$	$\varphi = 1.692+0.059 \lg [Au^+]$
$MnO_4^- +4H^++3e^- = MnO_2+2H_2O$	$\varphi = 1.902+0.020 \lg [MnO_4^-] - 0.079\,pH$
$H_2O_2+2H^++2e^- = 2H_2O$	$\varphi = 1.776+0.030 \lg [H_2O_2] - 0.059\,pH$
$S_2O_8^{2-}+2e^- = 2SO_4^{2-}$	$\varphi = 2.010+0.030 \lg \frac{[S_2O_8^{2-}]}{[SO_4^{2-}]^2}$
$F_2+2e^- = 2F^-$	$\varphi = 2.87 - 0.059 \lg [F^-]$

चूंकि इन तीन इलैक्ट्रोडी क्रियाओं के मानक विभव विभिन्न हैं (दे० तालिका 21) तो φ° श्रेणी में इन तीनों विन्यासों की स्थिति भी विभिन्न होगी। अतएव, एक ही उपचायक (MnO_4^-) मानक विभवों की श्रेणीं में अनेक स्थान ग्रहण कर सकता है।

अपने यौगिकों में केवल एक ही उपचयन डिग्री रखने वाले तत्त्वों में सरल अपचयोपचयन गुण होते हैं तथा मानक विभवों की श्रेणी में कम स्थान ग्रहण करते हैं। मुख्यत: ये हैं : आवर्ती प्रणाली के मुख्य उपग्रुपों I—III के धातु। φ° श्रेणी में अधिक स्थान उन तत्त्वों का होता है जो विभिन्न उपचयन डिग्री के यौगिक बनाते हैं – अधातु तथा आवर्ती प्रणाली के उपग्रुपों के अनेक धातु। अनेक मानक इलैक्ट्रोडी विभवों की मदद से अपचयोपचयन अभिक्रियाओं के स्वत: घटने की दिशा निर्धारित होती है।

श्रेणी स्वत:स्फूर्त क्रिया की दिशा बताती है। गिब्ज ऊर्जा के परिवर्तन का चिह्न अक्सर निर्णायक है। दो वैद्युत रासायनिक विन्यासों से बने गैल्वैनी सेल के

कार्य करने पर इलैक्ट्रान स्वतः सेल के ऋणात्मक ध्रुव से धनात्मक ध्रुव की ओर संक्रमण करेंगे, यानी इलैक्ट्रोडी विभव के अधिक कम मान वाले वैद्युत-रासायनिक विन्यास से अधिक मान वाले विन्यास की ओर संक्रमण करेंगे। लेकिन इसका अर्थ हुआ कि इनमें से पहला विन्यास अपचायक के रूप में भाग लेगा, तथा दूसरा विन्यास — उपचायक के रूप में। अतएव, गैल्वैनी सेल में अपचयोपचयन अभिक्रिया स्वतः उस दिशा में घट सकती है जिसमें इलैक्ट्रोडी विभव के अधिक उच्च मान वाला वैद्युत-रासायनिक विन्यास उपचायक होता है, यानी उसका अपचयन हो जाता है। पदार्थों के प्रत्यक्ष पारस्परिक क्रिया करने पर अभिक्रिया की सम्भव दिशा, बेशक वही होगी जो गैल्वैनी सेल में उसकी दिशा थी।

यदि φ° श्रेणी में उपचायक और अपचायक एक दूसरे से काफी दूरी पर स्थित हैं, तो अभिक्रिया की दिशा व्यावहारिक रूप से इस श्रेणी में उनके पारस्परिक स्थान द्वारा निश्चित होती है। उदाहरणतया, जिंक ($\varphi^{\circ} = -0.763$ B) कॉपर ($\varphi^{\circ} = +0.337$ B) को उसके लवण के जलीय विलयन में से इस विलयन की किसी भी सम्भव सान्द्रता होने पर निकाल देगा। यदि उपचायक तथा अपचायक की φ° मात्राएँ एक दूसरे के काफ़ी करीब है, तो अभिक्रिया के स्वतः घटने की दिशा को निश्चित करने में इलैक्ट्रोडी विभवों पर क्रमशः पदार्थों की सान्द्रताओं के प्रभाव को भी ध्यान में रखना होगा। उदाहरणतया, अभिक्रिया बायीं ओर से दायीं ओर, या दायीं ओर से बायीं ओर स्वतः घट सकती है।

$$Hg_2^{2+} + 2Fe^{2+} = 2Hg + 2Fe^{3+}$$

उसके घटने की दिशा लोह तथा मरक्यूरी के आयनों की सान्द्रताओं द्वारा निश्चित होती है। इस अभिक्रिया में दो वैद्युत-रासायनिक क्रियाएँ भाग लेती हैं:

$$Hg_2^{2+} + 2e^- = 2Hg$$

$$Fe^{3+} + e^- = Fe^{2+}$$

तदनुरूपी इलैक्ट्रोडी क्रियाओं के निम्न विभव हैं:

$$\varphi_1 = 0.788 + 0.030 \lg [Hg_2^{2+}]$$

$$\varphi_2 = 0.771 + 0.059 \lg \frac{[Fe^{3+}]}{[Fe^{2+}]}$$

आइये, $[Hg_2^{2+}] = [Fe^{2+}] = 10^{-1}$ तथा $[Fe^{3+}] = 10^{-4}$ मोल/1 000 ग्रा० H_2O पर φ_1 तथा φ_2 की मात्राएँ ज्ञात करें;

$$\varphi_1 = 0.788 + 0.030 \lg 10^{-1} = 0.788 - 0.030 \cong 0.76 \text{ वो०}$$

$$\varphi_2 = 0,771 + 0.059 \lg \frac{10^{-4}}{10^{-1}} = 0.771 - 3 \cdot 0.059 \cong 0.59 \text{ वो०}$$

अतः $\varphi_1 > \varphi_2$ और सान्द्रता के अनुपात के अनुसार अभिक्रिया भी बायीं ओर से दायीं ओर होती है।

अब सान्द्रता के व्युत्क्रमाणुपात पर φ_1 तथा φ_2 को ज्ञात करें। मान लें कि $[Hg_2^{2+}] = [Fe^{2+}] = 10^{-4}$, तथा $[Fe^{3+}] = 10^{-1}$ मोल/1 000 ग्रा० H_2O

$$\varphi_1 = 0.788 + 0.030 \lg 10^{-4} = 0.788 - 4.0.030 \cong 0.67 \text{ वो०}$$

$$\varphi_2 = 0.771 + 0.059 \lg \frac{10^{-1}}{10^{-4}} = 0.771 + 3 \cdot 0.059 \cong 0.95 \text{ वो०}$$

अतएव, $\varphi_1 > \varphi_2$ सान्द्रता पर अभिक्रिया दायीं ओर से बायीं ओर होती है।

यदि अपचयोपचयन अभिक्रिया में जल तथा हाइड्रोजन के आयन या हाइड्रोक्साइड-आयन भाग लेते हैं तो माध्यम की pH पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

तालिका 21 में 38 अर्ध-अभिक्रियाएँ हैं; इन्हें एक दूसरे के साथ मिलाकर $\frac{38 \cdot 37}{2} = 703$ अभिक्रिया के स्वतः घटने की दिशा के प्रश्न को हल किया जा सकता है।

उदाहरण: निम्न अभिक्रिया के घटने की सम्भव दिशा निश्चित करें

$$2KBr + PbO_2 + 4HNO_3 = Pb(NO_3)_2 + Br_2 + 2KNO_3 + 2H_2O$$

अभिक्रिया के समीकरण को आयनी-आण्विक रूप में लिखे:

$$2Br^- + PbO_2 + 4H^+ = Pb^{2+} + Br_2 + 2H_2O$$

तालिका 21 में अभिक्रिया में भाग लेने वाले वैद्युत-रासायनिक विन्यास के मानक इलैक्ट्रोडी विभव ज्ञात करें:

$$Br_2 + 2e^- = 2Br^- \qquad \varphi^\circ_1 = 1.065 \text{ वो०}$$

$$PbO_2 + 4H^+ + 2e^- = Pb^{2+} + 4H_2O \qquad \varphi^\circ_2 = 1.449 \text{ वो०}$$

इलैक्ट्रोडी विभव के अधिक उच्च मान वाला वैद्युत्-रासायनिक विन्यास हमेशा उपचायक होता है। चूँकि यहाँ φ_1 की तुलना में φ_2 काफ़ी अधिक है, तो व्यावहारिक रूप से पारस्परिक क्रियाकारी पदार्थों की किसी भी सान्द्रता पर बोमाइड-आयन अपचायक का कार्य करेगा तथा लेड डाइआक्साइड द्वारा इसका उपचयन हो जाएगा: अभिक्रिया स्वतः बायीं ओर से दायीं ओर घटेगी।

मानक विभवों की श्रेणी में कोई भी विन्यास जितना अधिक दूर स्थित होगा, यानी उसका मानक विभव जितना अधिक होगा, उसका उपचयन रूप उतना ही अधिक प्रबल उपचायक होगा। और इसके विपरीत, श्रेणी में विन्यास जितना अधिक समीप होगा, यानी φ° का मान जितना कम होगा, उसका अपचयन रूप उतना ही प्रबल अपचायक होगा। वस्तुतः, श्रेणी के अंत के विन्यासों के उपचयन रूपों में ऐसे प्रबल

उपचायक मिलेंगे जैसे F_2, H_2O_2, MnO_4^-। श्रेणी के आरम्भ के विन्यासों के अपचयन रूप सबसे प्रबल अपचायक होते हैं—क्षारीय तथा क्षारीय मृदा धातु।

अपचयोपचयन अभिक्रियाओं के घटने में मूल पदार्थों की सान्द्रताएँ कम हो जाती हैं, तथा अभिक्रिया के उत्पादों की—बढ़ जाती है। इसके कारण दोनों अर्ध अभिक्रियाओं की विभवों की मात्राओं का परिवर्तन हो जाता है: उपचायक का इलैक्ट्रोडी विभव कम हो जाता है तथा अपचायक का इलैक्ट्रोडी विभव एक दूसरे के बराबर हो जाते हैं, तो अभिक्रिया समाप्त हो जाती है—रासायनिक संतुलन की अवस्था बन जाती है।

100. धातुओं के विभवों की श्रेणी. यदि मानक इलैक्ट्रोडी विभवों की पूरी श्रेणी में से केवल उन इलैक्ट्रोडी क्रियाओं को निकाला जाए जिनका निम्न सामान्य समीकरण है:

$$M^{z+} - ze^- = M$$

तो धातुओं के विभवों की श्रेणी प्राप्त होगी। इस श्रेणी में हमेशा, धातुओं के अतिरिक्त हाइड्रोजन भी होती है जिसकी मदद से यह देखा जा सकता है कि अम्लों के जलीय विलयनों में से हाइड्रोजन को कौन-से धातु बाहर निकाल सकते हैं। महत्वपूर्ण धातुओं के लिए विभवों की श्रेणी तालिका 22 में दी गई है। विभवों की श्रेणी में किसी भी धातु की स्थिति मानक अवस्थाओं में जलीय विलयनों में अपचयोपचयन क्रिया करने की विशेषता व्यक्त करती है। धातुओं के आयन उपचायक होते हैं, सरल पदार्थों के रूप में धातु अपचायक होते हैं। इसमें विभवों की श्रेणी में धातु जितना दूर स्थित होगा, जलीय विलयन में उसके आयन उतने ही अधिक प्रबल उपचायक होंगे, तथा, इसके विपरीत, धातु श्रेणी के आरम्भ के जितना समीप होगा, उतने ही प्रबल अपचयनी गुण सरल पदार्थ-धातु व्यक्त करेगा।

इलैक्ट्रोडी क्रिया का विभव

$$2H^+ + 2e^- = H_2$$

उदासीन माध्यम में $(pH = 7) - 0.059 \cdot 7 = -0.41$ B वो० के बराबर है दे० पृ० 335)। श्रेणी के आरम्भ के सक्रिय धातु जिनका विभव -0.41 वो०, की तुलना में काफ़ी अधिक ऋणात्मक है, जल में से हाइड्रोजन को निकाल देते हैं। मैग्नीशियम केवल गर्म जल में से ही हाइड्रोजन को निकालता है। धातु, जो मैग्नीशियम तथा कैडमियम के बीच स्थित होते हैं, सामान्यतः जल में से हाइड्रोजन को नहीं निकालते हैं। इन धातुओं की सतह पर आक्साइड परतें बन जाती हैं जो रक्षात्मक कार्य करती हैं*।

---

* जल में धातुओं के विभव, बेशक, मानक अवस्थाओं में उनके विभवों से भिन्न होते हैं; अधिकांश स्थितियों में वे ऋणात्मक मान रखते है। लेकिन, नियमतः, जल में से हाइड्रोजन निकालने की धातुओं की विशेषता के प्रति निकाले गए निष्कर्षों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

तालिका 22

धातुओं की वोल्टता की श्रेणी

इलेक्ट्रोडी क्रिया का समीकरण	25° सें. पर मानक विभव φ°, वो०
$Li^+ + e^- = Li$	—3.045
$Rb^+ + e^- = Rb$	—2.925
$K^+ + e^- = K$	—2.925
$Cs^+ + e^- = Cs$	—2.923
$Ca^{2+} + 2e^- = Ca$	—2.866
$Na^+ + e^- = Na$	—2.714
$Mg^{2+} + 2e^- = Mg$	—2.363
$Al^{3+} + 3e^- = Al$	—1.662
$Ti^{2+} + 2e^- = Ti$	—1.628
$Mn^{2+} + 2e^- = Mn$	—1.180
$Cr^{2+} + 2e^- = Cr$	—0.913
$Zn^{2+} + 2e^- = Zn$	—0.763
$Cr^{3+} + 3e^- = Cr$	—0.744
$Fe^{2+} + 2e^- = Fe$	—0.440
$Cd^{2+} + 2e^- = Cd$	—0.403
$Co^{2+} + 2e^- = Co$	—0.277
$Ni^{2+} + 2e^- = Ni$	—0.250
$Sn^{2+} + 2e^- = Sn$	—0.136
$Pb^{2+} + 2e^- = Pb$	0.126
$Fe^{3+} + 3e^- = Fe$	0.036
$2H^+ + 2e^- = H_2$	0
$Bi^{3+} + 3e^- = Bi$	0.215
$Cu^{2+} + 2e^- = Cu$	0.337
$Cu^+ + e^- = Cu$	0.521
$Hg_2^{2+} + 2e^- = 2Hg$	0.788
$Ag^+ + e^- = Ag$	0.799
$Hg^{2+} + e^- = Hg$	0.854
$Pt^{2+} + 2e^- = Pt$	1.2
$Au^{3+} + 3e^- = Au$	1.498
$Au^+ + e^- = Au$	1.691

मैग्नीशियम तथा हाइड्रोजन के बीच स्थित धातु अम्लों के विलयनों में से हाइड्रोजन निकाल देते हैं। यहाँ कुछ धातुओं की सतह पर भी रक्षात्मक परतें चढ़ जाती हैं, जो अभिक्रिया की चाल धीमी कर देती हैं। अतः, ऐलुमिनियम पर आक्साइड परत इस धातु को न केवल जल में, बल्कि कुछ अम्लों के विलयनों में अधिक टिकाऊ बना देता है। लेड सल्फ्यूरिक अम्ल में, उसकी सान्द्रता 80% से कम होने पर, विलीन नहीं होता है, क्योंकि लेड तथा सल्फ्यूरिक अम्ल की पारस्परिक क्रिया के फलस्वरूप बनने वाला लवण $PbSO_4$ अविलेय है तथा धातु की सतह पर रक्षात्मक परत बना देता है। धातु के उपचयन के अत्यधिक धीमा हो जाने की परिघटना, जो धातु की सतह पर आक्साइड या लवण की परत बनने के कारण होता है, निश्चेष्टता कहलाता है तथा इस समय धातु की अवस्था निष्क्रिय अवस्था कहलाती है।

लवणों के विलयनों में से धातु एक दूसरे को निकालने की विशेषता रखते हैं। इस समय इनकी अभिक्रिया की दिशा उनके विभवों की श्रेणी में उनके पारस्परिक स्थान द्वारा निश्चित होती है। ऐसी अभिक्रियाओं की निश्चित स्थितियों का अध्ययन करते हुए यह ध्यान रखना चाहिए कि सक्रिय धातु न केवल जल में से, बल्कि किसी भी जलीय विलयन में से हाइड्रोजन को निकाल सकते हैं। इसीलिए धातुओं का उनके लवणों में से पारस्परिक निष्कासन व्यावहारिक रूप से केवल उन धातुओं की स्थिति में होता है जो श्रेणी में मैग्नीशियम के बाद आते हैं।

धातुओं के यौगिकों में से अन्य धातुओं द्वारा उनके निष्कासन का सर्वप्रथम अध्ययन बिक्येतोव* ने किया। अपने कार्य के फलस्वरूप उसने धातुओं को उनकी रासायनिक सक्रियता के आधार पर "निष्कासन श्रेणी" में रखा जो धातुओं के विभवों की श्रेणी का आदिप्ररूप था।

विभवों की श्रेणी तथा आवर्त प्रणाली में कुछ धातुओं का पारस्परिक स्थान पहली दृष्टि में एक दूसरे से भिन्न लगता है। उदाहरणतया, आवर्त प्रणाली के अनुसार पोटैशियम की रासायनिक सक्रियता सोडियम से अधिक होनी चाहिए, तथा सोडियम

---

* निकोलाई निकोलाईविच बिक्येतोव (1826-1911) – महान् रूसी वैज्ञानिक – भौतिक-रासायनज्ञ। बिक्येतोव का अद्वितीय कार्य है – "एक तत्त्वों का अन्य तत्त्वों द्वारा निष्कासन की परिघटनाओं पर शोध-कार्य" जो 1865 में प्रकशित हुआ था। उसने उच्च ताप पर ऐलुमिनियम की अन्य धातुओं के आक्साइडों में से उन धातुओं के निष्कासित करने की विशेषता ज्ञात की। यह खोज बाद में तापीय अपचयन विधि का आधार बनी, जो धात्विकी में काफ़ी प्रचलित है। बिक्येतोव ने अनेक तापीय रासायनिक माप भी किये। उसने सर्वप्रथम (1865 से) भौतिकीय रसायन को एक विषय के रूप में पढ़ाना आरम्भ किया।

की लीथियम से अधिक होनी चाहिए। विभवों की श्रेणी में अत्यधिक सक्रिय लीथियम है तथा पोटैशियम लीथियम एवं सोडियम के बीच स्थित है। आवर्त प्रणाली के अनुसार जिंक व कॉपर की रासायनिक सक्रियता समान होनी चाहिए, लेकिन विभवों की श्रेणी में जिंक कॉपर से काफ़ी पहले आ जाता है। इस प्रकार की असमानता का कारण निम्न है।

आवर्त प्रणाली में किसी स्थान पर स्थित धातुओं की तुलना करने में उनकी रासायनिक सक्रियता का माप – अपचयन करने की विशेषता – स्वतंत्र परमाणुओं की आयनन ऊर्जा का मान होता है। वस्तुतः, उदाहरणतया, आवर्त प्रणाली के प्रथम ग्रुप के मुख्य उपग्रुप में ऊपर से नीचे की ओर संक्रमण में परमाणुओं की आयनन ऊर्जा कम हो जाती है जिसका कारण उनके अर्ध व्यासों में वृद्धि (यानी नाभिक से संयोजकता इलेक्ट्रानों का और दूर हो जाना) तथा मध्यवर्ती इलेक्ट्रानी कोशों द्वारा धनात्मक आवेश के आवरण में वृद्धि (दे० § 30) है। इसीलिए पोटैशियम के परमाणु सोडियम के परमाणुओं की तुलना में अधिक रासायनिक सक्रियता दिखाते हैं – यानी उनमें अधिक प्रबल अपचयनी गुण होते हैं, तथा सोडियम के परमाणुओं में – लिथियम के परमाणुओं की तुलना में अधिक सक्रियता होती है।

विभवों की श्रेणी में धातुओं की तुलना करने के समय रासायनिक सक्रियता का माप वह कार्य होता है जो ठोस अवस्था में स्थित धातु को जलीय विलयन में जलयोजित आयनों में रूपांतरित कर देता है। इस कार्य को तीन घटकों के योग के रूप में माना जा सकता है: परमाण्वीयकरण ऊर्जा – धातु के क्रिस्टल का पृथक परमाणुओं में बनना, धातु के स्वतंत्र परमाणुओं की आयनन ऊर्जा, तथा बनने वाले आयनों की जलयोजन ऊर्जा। परमाण्वीयकरण ऊर्जा दिये गए धातु की क्रिस्टलीय जाली की दृढ़ता की लाक्षणिक है। परमाणुओं की आयनन ऊर्जा – उनसे संयोजकता इलेक्ट्रानों के पृथक होने की ऊर्जा – प्रत्यक्ष रूप से आवर्त प्रणाली में धातु के स्थान द्वारा निश्चित होती है। जलयोजन के समय उत्सर्जित ऊर्जा आयन की इलेक्ट्रानी संरचना, उसके आवेश तथा अर्ध-व्यास पर निर्भर करती है। समान आवेश लेकिन विभिन्न अर्ध-व्यास वाले लीथियम तथा पोटैशियम के आयन अपने चारों ओर असमान वैद्युत क्षेत्र बनाएंगे। लीथियम के छोटे आयनों के चारों ओर बनने वाला क्षेत्र पोटैशियम के बड़े आयनों के चारों ओर बनने वाले क्षेत्र की तुलना में अधिक प्रबल होगा। यहाँ से स्पष्ट है कि लीथियम के आयनों के जलयोजन में पोटैशियम के आयनों की अधिक ऊर्जा उत्सर्जित होगी।

अतः, विचाराधीन रूपांतरण के दौरान परमाण्वीयकरण तथा आयनन में ऊर्जा का व्यय होता है तथा जलयोजन में ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। ऊर्जा का कुल व्यय जितना कम होगा, उतना ही आसानी से समस्त क्रिया होगी, तथा विभवों की श्रेणी के आरम्भ के उतने ही समीप नियत धातु स्थित होगा। ऊर्जा के सामान्य संतुलन के तीन घटकों में से केवल एक घटक – आयनन ऊर्जा – प्रत्यक्ष रूप से आवर्त प्रणाली में

धातु के स्थान द्वारा निश्चित होती है। अतएव, यह आशा करना निरधार है कि विभवों की श्रेणी में किन्ही भी धातुओं की पारस्परिक स्थितियाँ हमेशा आवर्त्त प्रणाली में उनके स्थानों के तदनुरूपी होंगी। अतः, लीथियम के लिये पोटैशियम की तुलना में ऊर्जा का कुल व्यय कम होता है, इसीलिए विभवों की श्रेणी में लीथियम पोटैशियम के पहले आता है।

कॉपर तथा जिंक के लिये स्वतंत्र परमाणुओं की आयनन ऊर्जा का व्यय तथा जल-योजन के समय उसकी पुनः प्राप्ति लगभग समान है। लेकिन जिंक की तुलना में धात्विक कॉपर अधिक दृढ़ क्रिस्टलीय जाली बनाती है, जो इन धातुओं के गलनांकों की तुलना से स्पष्ट है: जिंक का गलनांक 419.5° सें० है, तथा कॉपर का 1083° सें० इसी लिए इन धातुओं के परमाण्वीयकरण पर व्यय होने वाली ऊर्जा इतनी विभिन्न हैं, जिसके फलस्वरूप पूर्ण क्रिया का कुल ऊर्जा व्यय जिंक की स्थिति की तुलना में कॉपर की स्थिति में काफ़ी अधिक होता है, जो विभवों की श्रेणी में इन धातुओं के पारस्परिक स्थान का कारण है।

जल से निर्जलीय विलयकों में संक्रमण के समय विभवों की श्रेणी में धातुओं का पारस्परिक स्थान परिवर्तित हो सकता है। इसका कारण यह है कि विभिन्न धातुओं के आयनों के विलायकीयन की ऊर्जा एक विलायक में से दूसरे विलायक में संक्रमण के समय विभिन्न प्रकार से परिवर्तित होती है।

विशेषकर, कॉपर के आयन का कुछ कार्बनिक विलायकों में काफ़ी तीव्रता से विलाय-कीयन होता है। इसके परिणामस्वरूप ऐसे विलायकों में विभवों की श्रेणी में कॉपर हाइड्रोजन तक विस्तारित हो जाती है तथा उसे अम्लीय विलयनों में से निकाल देती है।

इस प्रकार, तत्वों की आवृत्ति प्रणाली के विपरीत, धातुओं की विभवों की श्रेणी एक सामान्य नियम नहीं बनाती है जिसके आधार पर धातुओं के रासायनिक गुणों को विभिन्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है। विभवों की श्रेणी केवल निश्चित अवस्थाओं में "धातु-धातु के आयन" वैद्युत रासायनिक विन्यास की अपचयोपचयन विशेषता को व्यक्त करती है: उसमें दी गई मात्राएँ जलीय विलयन, 25° सें० ताप तथा धातु के आयनों की सान्द्रता (सक्रियता) को व्यक्त करती हैं।

101. वैद्युतअपघटन वैद्युतअपघटन उन क्रियाओं का योग है जो दो इलैक्ट्रोडों तथा वैद्युतअपघट्य के विलयन या संलयन से बने वैद्युत रासायनिक विन्यास में से दिष्ट विद्युत धारा के गुज़ारने पर घटती हैं।

वैद्युत अपघट्य का उदाहरण मैग्नीशियम क्लोराइड के संलयन का वैद्युत-अपघट्य हो सकता है। $MgCl_2$ संलयन में से धारा प्रवाहित करने पर मैग्नीशियम के धनायन विद्युत क्षेत्र के प्रभाव में ऋणात्मक इलैक्ट्रोड की ओर जाते हैं। यहाँ, बाहरी परिपथ में से आने वाले इलेक्ट्रानों के साथ पारस्परिक क्रिया करके उनका अपचयन हो

जाता है :

$$Mg^{2+} + 2e^{-} = Mg$$

क्लोरीन के ऋणायन धनात्मक इलैक्ट्रोड की ओर विस्थापित हो जाते हैं, तथा अतिरिक्त इलेक्ट्रानों को दे कर, उनका उपचयन हो जाता है। यहाँ प्रथम क्रिया स्वयं वैद्युत-रासायनिकचरण – क्लोरीन के आयनों का उपचयन होती है

$$2Cl^{-} = 2Cl + 2e^{-}$$

तथा द्वितीय – बनने वाले क्लोरीन के परमाणुओं का अणु में युग्मन :

$$2Cl = Cl_2$$

इलैक्ट्रोडों पर होने वाली क्रियाओं के समीकरणों को जोड़ कर अपचयोपचयन अभिक्रिया का कुल समीकरण प्राप्त होगा जो $MgCl_2$ के संलयन के वैद्युत-अपघटन में होती है :

$$Mg^{2+} + 2Cl^{-} = Mg + Cl_2$$

यह अभिक्रिया स्वतः नहीं हो सकती हैं; उसके घटने के लिये आवश्यक ऊर्जा धारा के वाहरी स्रोत से आती है।

वैद्युत ऊर्जा के रासायनिक स्रोत की स्थिति में इलेक्ट्रोड, जिस पर अपचयन होता है, कैथोड कहलाता है; इलैक्ट्रोड जिसपर उपचयन होता है, ऐनोड कहलाता है। लेकिन वैद्युत-अपघट्य में कैथोड ऋणात्मक आवेशित होता है, तथा ऐनोड धनात्मक आवेशित होता है, यानी इलैक्ट्रोडों के आवेशों के चिन्हों का विस्तारण गैल्वैनी सेल में विस्तारण के विपरीत होता है। इसका कारण यह है कि वैद्युत-अपघटन में होने वाली क्रियाएँ नियमतः गैल्वैनी सेल में घटने वाली क्रियाओं के विपरीत होती हैं। वैद्युत-अपघट्य में रासायनिक अभिक्रिया बाहर से आने वाली वैद्युत धारा की ऊर्जा के कारण होती है, जबकि गैल्वैनी सेल में स्वतः घटने वाली रासायनिक अभिक्रिया की ऊर्जा वैद्युत ऊर्जा में रूपांतरित हो जाती है।

जलीय विलयनों के वैद्युत अपघटनों के अध्ययन में इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि वैद्युत-अपघट्य के आयनों के अतिरिक्त, प्रत्येक जलीय विलयन में ऐसे भी आयन होते हैं जो जल के वियोजन के उत्पाद होते हैं – H^{+} तथा OH^{-}। वैद्युत क्षेत्र में हाइड्रोजन के आयन कैथोड की ओर चले जाते है, तथा OH^{-} आयन – ऐनोड की ओर। अतएव, कैथोड पर वैद्युत-अपघट्य तथा हाइड्रोजन के धनायन अनावेशित हो सकते हैं। इसी प्रकार ऐनोड पर भी वैद्युत-अपघट्य के ऋणायन तथा हाइड्रोक्सो आयन अनावेशित हो सकते हैं। इसके अलावा, जल के अणुओं का वैद्युत-रासायनिक उपचयन या अपचयन हो सकता है।

वैद्युत-अपघटन में इलैक्ट्रोडों पर कौन-सी वैद्युत-रासायनिक क्रियाएँ घटेंगी – यह सर्वप्रथम तदनुरूपी वैद्युत-रासायनिक विन्यासों के इलैक्ट्रोनी विभवों के सापेक्षिक मानों पर निर्भर करता है। अनेक सम्भव क्रियाओं में से वह क्रिया घटेगी जिसमें ऊर्जा का कम से कम व्यय होगा। इस का अर्थ यह हुआ कि कैथोड पर अधिकतम इलैक्ट्रोडी विभव वाले वैद्युत्-रासायनिक विन्यासों के उपचयन रूपों का अपचयन होता है। कुछ वैद्युत-रासायनिक क्रियाओं के घटने की चाल पर इलैक्ट्रोड की वस्तु अवरोधी प्रभाव डालती है; ऐसी स्थितियों का वर्णन नीचे किया गया है।

कैथोडी क्रियाओं का अध्ययन करते हुए, जो जलीय विलयनों के वैद्युत-अपघटन में होती हैं, हम एक महत्वपूर्ण स्थिति पर रूकेंगे – कैथोडी अपचयन पर, जो स्वतंत्र अवस्था में तत्वों का पृथक्करण करता है। यहाँ हाइड्रोजन के आयनों की अपचयन क्रिया के विभव की मात्रा को आयनों की अपचयन क्रिया के विभव की मात्रा को ध्यान में रखना होगा। यह विभव हाइड्रोजन के आयनों की सान्द्रता पर निर्भर करता है (दे० पृ० 333) तथा उदासीन विलयनों की स्थिति में $(pH=7)\psi = -0.059 \cdot 7 = -0,41$ वो० मान रखता है। इसीलिए यदि वैद्युत-अपघटन का धनायन धातु है जिसका इलैक्ट्रोडी विभव -0.41 वो० की तुलना में काफी धनात्मक है, तो इस प्रकार के वैद्युत्-अपघटन के उदासीन विलयन में से धातु अलग होकर कैथोड पर इकट्ठा हो जाएगा ऐसे धातु विभवों की श्रेणी में हाइड्रोजन के समीप (लगभग टिन से शुरू होकर) तथा उसके बाद स्थित होते हैं। इसके विपरीत, यदि वैद्युत-अपघटन का धनायन धातु है जिसका विभव -0.41 वो० की तुलना में कहीं अधिक ऋणात्मक है तो धातु का अपचयन नहीं होगा तथा हाइड्रोजन का उत्सर्जन हो जाएगा। ऐसे धातुओं में विभवों की श्रेणी के आरम्भ के धातु आते हैं – जो लगभग टाइटेनियम तक हैं। अंत में, यदि धातु का विभव -0.41वो० मात्रा के समीप है (श्रेणी के मध्य भाग के धातु – Zn, Cr,Fe, Cd, Ni), तो विलयन की सान्द्रता तथा वैद्युत-अपघटन की अवस्थाओं * के आधार पर न केवल धातु का उपचयन सम्भव है, बल्कि हाइड्रोजन का उत्सर्जन भी सम्भव है; प्रायः धातु व हाइड्रोजन का उत्सर्जन भी देखने में आता है।

अम्लीय विलयनों में से हाइड्रोजन का वैद्युत-रासायनिक निष्कासन हाइड्रोजन के आयनों के अनावेशित होने के कारण होता है। उदासीन या क्षारीय माध्यमों की स्थिति में वह जल के वैद्युत-रासायनिक अपचयन का परिणाम होता है:

$$2H_2O + 2e^- = H_2 + 2OH^-$$

---

* वैद्युत-अपघटन की महत्वपूर्ण अवस्थाएँ है: धारा का घनत्व, ताप, विलयन की संयोजना। धारा बल तथा इलैक्ट्रोड के कार्य क्षेत्र का अनुपात धारा घनत्व कहलाता है।

अतएव जलीय विलयनों के वैद्युत-अपघटन के समय कैथोडी क्रिया की प्रकृति सर्व-प्रथम विभवों की श्रेणी में तदनुरूपी धातु के स्थान द्वारा निर्धारित होती है। अनेक स्थितियों में विलयन की pH, धातु के आयनों की सान्द्रता तथा वैद्युत अपघटन की अन्य अवस्थाएँ महत्व रखती है।

ऐनोडी क्रियाओं के अध्ययन के समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि वैद्युत्-अपघटन के दौरान ऐनोडी पदार्थ का उपचयन हो सकता है। इसी संदर्भ में निष्क्रिय ऐनोड के साथ वैद्युत्-अपघटन तथा सक्रिय ऐनोड के साथ वैद्युत-अपघटन में विभेद करते हैं। ऐनोड को सक्रिय कहते हैं यदि वैद्युत्-अपघटन में उसके पदार्थ का उपचयन हो जाता है। निष्क्रिय ऐनोडों के पदार्थ के रूप में प्राय: ग्रेफाइट, कार्बन, प्लैटिनम प्रयुक्त किया जाता है।

क्षारों, आक्सीजन वाले अम्लों तथा उनके लवणों, एवं हाइड्रोजन फ्लुओराइड तथा फ्लुओराइड के जलीय विलयनों के वैद्युत-अपघटन के दौरान निष्क्रिय ऐनोड पर जल का वैद्युत्-रासायनिक उपचयन होता है तथा ऑक्सीजन का उत्सर्जन होता है। विलयन के pH पर निर्भर करते हुये क्रिया विभिन्न प्रकार से होती है तथा विभिन्न समीकरणों द्वारा व्यक्त की जा सकती हैं। क्षारीय माध्यम में समीकरण का निम्न रूप होगा:

$$4OH^- = O_2 + 2H_2O + 4e^-$$

तथा अम्लीय या उदासीन माध्यम में:

$$2H_2O = O_2 + 4H^+ + 4e^-$$

विचाराधीन स्थितियों में जल का वैद्युत-रासायनिक उपचयन सर्वाधिक लाभजनक क्रिया है। आक्सीजन वाले ऋणायनों का या तो उपचयन हो ही नहीं सकता, या काफ़ी उच्च विभवों पर होता है। उदाहरणतया, SO_4^{2-} आयन के उपचयन का मानक

$$2SO_4^{2-} = S_2O_8^{2-} + 2e^-$$

2.010 वो० के बराबर है जो जल के उपचायन के मानक विभव (1.229 B) से कहीं अधिक है। F^- आयन के उपचयन का मानक विभव का मान और भी अधिक है (2.866 वो०)।

आक्सीजनरहित अम्लों व उनके लवणों (HF तथा फ्लुओरिन के अलावा) क जलीय विलयनों के वैद्युत्-अपघट्न के समय ऐनोड पर ऋणान अनावेशित हो जाते हैं। विशेषकर HI, HBr, HCl तथा इनके लवणों के विलयनों के वैद्युत अपघटन के समय ऐनोड पर तदनुरूपी हैलोजीन उत्सर्जित होती है। यह नोट किया जाना चाहिए कि HCl के तथा उसके लवणों के वैद्युत-प्रपघटन के दौरान क्लोरीन का उत्सर्जन मानक इलैक्ट्रोडी विभवों की श्रेणी में विन्यास की पारस्परिक स्थिति का अन्तर्विरोध करता है।

$$Cl_2 + 2e^- = 2Cl^- \qquad \varphi^\circ = 1.358\,B$$

तथा

$$O_2 + 4H^+ + 4e^- = 2H_2O \qquad \varphi^\circ = 1.229\,B$$

इस अशुद्धि का कारण इन दोनों इलेक्ट्रोडी क्रियाओं में दूसरी क्रिया के विभव का काफ़ी अधिक हो जाना है (दे० § 104) – ऐनोडी पदार्थ आक्सीजन की उत्सर्जन क्रिया पर अवरोधी प्रभाव डालता है।

सक्रिय ऐनोड की स्थिति में प्रतिस्पर्धा करने वाली उपचयन क्रियाओं की संख्या तीन तक पहुँच जाती है: जल का वैद्युत-रासायनिक उपचयन, जिसमें आक्सीजन का उपचयन होता हैं; ऋणायन का अनावेशित होना (यानी उसका उपचयन), तथा ऐनोडी पदार्थ का वैद्युत्-रासायनिक उपचयन (तथाकथित धातु का ऐनोडी विलयन)। इन सम्भव क्रियाओं में से केवल वही क्रिया घटेगी जो ऊर्जा की दृष्टि से सर्वाधिक लाभजनक है। यदि मानक विभवों की श्रेणी में ऐनोडी पदार्थ दोनों अन्य वैद्युत्-रासायनिक विन्यासों से पहले स्थित है, तो धातु का ऐनोडी विलयन होगा। विपरीत स्थिति में या तो आक्सीजन का उत्सर्जन हो जाएगा, या ऋणायन अनावेशित हो जाएगा।

आइये, जलीय विलयनों के वैद्युत अपघटन की कुछ आम स्थितियों को देखें।

निष्क्रिय ऐनोड के साथ $CuCl_2$ विलयन का वैद्युत-अपघटन। विभवों की श्रेणी में कॉपर हाइड्रोजन के बाद स्थित है: इसीलिए कैथोड पर Cu^{2+} आयनों का विसर्जन तथा धात्विक कॉपर का उत्सर्जन होगा। ऐनोड पर हाइड्रोक्साइड-आयनों का विसर्जन हो जाएगा।

कॉपर क्लोराइड (II) के विलयन के वैद्युत-आपघटन* का आरेख है:

$$CuCl_2$$

कैथोड ← Cu^{2+} $\qquad$ $2Cl^-$ → एनोड

$$Cu^{2+} + 2e^- = \boxed{Cu} \qquad \begin{aligned} 2Cl^- &= 2Cl + 2e^- \\ 2Cl &= \boxed{Cl_2} \end{aligned}$$

K_2SO_4 – विलयन का निष्क्रिय एनोड के साथ विद्युत-अपघटन। चूँकि विद्युतवाहक श्रेणी में पोटैशियम हाइड्रोजन की अपेक्षा कहीं अधिक ऊपर है, इसलिये हाइड्रोजन के निकलने और OH^- आयनों के एकत्रित होने की क्रिया कैथोड पर संपन्न होगी। एनोड पर आक्सीजन मुक्त होगी और H^+ आयन संचित होंगे। इसके साथ हीं, K^+ आयन कैथोड के स्थान पर पहुँचेंगे और SO_4^{2-} – ऐनोड के स्थान पर। इसीलिये विलयन सर्वत्र विद्युत-उदासीन रहेगा। कैथोड पर क्षार व ऐनोड पर अम्ल संचित होगा।

पोटैशियम सल्फेट के विलयन के विद्युत-अपघटन का आरेख है:

---

* इस आरेख में तथा अन्य आने वाले आरेखों में वैद्युत-अपघटन के अंत उत्पादों-पदार्थों के सूत्र कोष्ठकों में दिये गए हैं।

$$2K_2SO_4$$

कैथोड ← $4K^+$ $2SO_4^{2-}$ → एनोड

$$4H_2O + 4e^- = \boxed{\begin{matrix}4K^+\\4OH^-\end{matrix}} + 4H \qquad 2H_2O = \boxed{\begin{matrix}2SO_4^{2-}\\4H^+\end{matrix}} + 2O + 4e^-$$

$$4H = \boxed{2H_2} \qquad 2O = \boxed{O_2}$$

निकैल ऐनोड के साथ $NiSO_4$ विलयन का वैद्युत्-अपघटन। निकैल का मानक विभव (—0.250वो०) — 0.41वो० से कुछ अधिक है ; इसीलिए $NiSO_4$ के उदासीन विलयन के वैद्युत-अपघटन के समय कैथोड पर मुख्यत: Ni^{2+} आयनों का विसर्जन हो जाता है तथा धातु का उत्सर्जन हो जाता है। ऐनोड पर व्युत्क्रमणीय क्रिया घटती है – धातु का उपचयन, क्योंकि निकैल का विभव जल के उपचयन विभव से काफी कम है, तथा SO_4^{2-} आयन के उपचयन विभव से तो बहुत ही कम है। अतएव, नियत स्थिति में वैद्युत-अपघटन ऐनोडी धातु के विलयन तथा कैथोड पर उसके उत्सर्जन का कारण बनता है।

निकैल सल्फेट के विलयन के वैद्युत-अपघटन का आरेख :

$$NiSO_4$$

कैथोड ← Ni^{2+} SO_4^{2-} → एनोड

$$Ni^{2+} + 2e^- = \boxed{Ni} \qquad Ni = \boxed{\begin{matrix}SO_4^{2-}\\Ni^{2+}\end{matrix}} + 2e^-$$

यह क्रिया निकैल का वैद्युत शोधन करने के लिए प्रयुक्त की जाती है (तथाकथित वैद्युतअपघटनी शोधन, दे० *§ 103*)।

102 **वैद्युत-अपघटन के नियम.** सर्वप्रथम सांख्यिक रूप से वैद्युत-अपघटन क्रिया का अध्ययन 19 वीं० शताब्दी की चौथे दशक में अद्वितीय इंग्लिश वैज्ञानिक फौराडे* ने किया जिसने अपने शोध-कार्यों के आधार पर वैद्युत्-अपघटन के निम्न नियम बनायें :

1. वैद्युत-अपघटन के समय बनने वाले पदार्थ का द्रव्यमान विलयन में प्रवाहित विद्युत की मात्रा के आनुपातिक होता है।

---

* माइकेल फैराडे (1791 — 1867) — विख्यात अंग्रेज भौतिकविद व रसायनज्ञ। उनके अधिकतर कार्य विद्युत के अध्ययन से संबंधित हैं। उन्होंने विद्युत-विघटन के नियम स्थापित किये, विद्युत-उत्प्रेरण की संवृति को प्रकाश में लाया। कई गैसों (क्लोरीन, अमोनिया आदि) को पहली बार द्रव रूप में प्राप्त किया। बेंजीन व आइसोबुटेलिन की खोज की।

यह नियम वैद्युत्--अपघटन के सार पर आधारित है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है, धातु का विलयन के साथ स्पर्श होने के स्थान पर वैद्युत्-रासायनिक क्रिया होती है, यानी धातु के इलेक्ट्रानों के साथ वैद्युत्-अपघट्य के आयनों व अणुओं की पारस्परिक क्रिया होती है ताकि पदार्थ का वैद्युत-अपघटनी बनना इस क्रिया का परिणाम हो। स्पष्ट है कि इलैक्ट्रोड पर बनने वाले पदार्थ की मात्रा हमेशा परिपथ में से प्रवाहित इलेक्ट्रानों की सँख्या की आनुपातिक होगी, अर्थात विद्युत की मात्रा के आनुपातिक होगी।

2. विभिन्न रासायनिक यौगिकों के वैद्युत अपघटन में विद्युत की समान मात्राएँ पदार्थों की तुल्य मात्राओं का वैद्युत-रासायनिक रूपांतरण करती हैं।

उदाहरणतया, मान लें कि विद्युतधारा क्रमानुसार हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, सिल्वर नाइट्रेट, कॉपर क्लोराइड (II) तथा टिन क्लोराइड (IV) (चित्र 86) के विलयनों में से प्रवाहित होती है। कुछ समय के बाद वैद्युत-अपघटन के उत्सर्जित उत्पादों की मात्रा को मापा जाता है। ज्ञात होता है कि उस समय में, जिसके दौरान हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के विलयन में से 1| ग्रा० हाइड्रोजन यानी 1 मोल परमाणु, उत्सर्जित होती है, उतने समय में ही शेष विलयनों में से धातुओं के निम्नलिखित द्रव्यमान उत्सर्जित होते हैं:

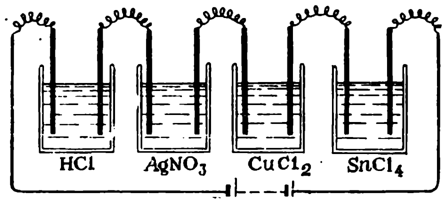
	वैद्युत-अपघट्य		
	$AgNO_3$	$CuCl_2$	$SnCl_4$
धातु के कैथोड पर उत्सर्जित द्रव्यमान, ग्रा०	107.9	31.8	29.7
धातु का परमाण्वीय द्रव्यमान	107.87	63.55	118.69.

धातुओ के उत्सर्जित द्रव्यमानों की उन्हीं धातुओं के परमाण्वीय द्रव्यमानों के साथ तुलना करके आप देखेंगे कि सिल्वर के 1 मोल परमाणु, कॉपर के $^1/_2$ मोल परमाणु तथा केटिन $^1/_4$ मोल परमाणु उत्सर्जित होते हैं। अन्य शब्दों में, कैथोड पर बनने वाले पदार्थों की मात्रा उनके तुल्यों के बराबर हैं। इसी परिणाम पर ऐनोड पर उत्सर्जित पदार्थों की मात्रा को माप कर पहुँचते हैं। अतः, पहले, तीसरे तथा चौथे उपकरण पर 35.5 ग्रा० क्लोरीन उत्सर्जित होती है, तथा दूसरे उपकरण पर 8 ग्रा० ऑक्सीजन; यह स्पष्ट है कि यहाँ भी पदार्थ अपने तुल्यों के बराबर की मात्रा में बनते हैं।

वैद्युत-अपघटन के दूसरे नियम को इलेक्ट्रानी सिद्धाँत के दृष्टिकोण से देखने पर आपको आसानी से समझ में आ जाएगा कि वैद्युत-अपघटन में पदार्थ रासायनिक तुल्य मात्राओं में क्यों उत्सर्जित होते हैं। उदाहरणतया, आइये कॉपर क्लोराइड (II) के वैद्युत-अपघटन को देखें। विलयन में से कॉपर के उत्सर्जन में कॉपर का प्रत्येक आयन

कैथोड से दो इलेक्ट्रान लेता है तथा उसी समय दो क्लोराइड-आयन ऐनोड को इलेक्ट्रान देते हैं, और क्लोरीन के परमाणुओं में रूपांतरित हो जाते हैं। अतएव, कॉपर के उत्सर्जित परमाणुओं की सँख्या हमेशा क्लोरीन के उत्सर्जित परमाणुओं की सँख्या की आधी होगी, अर्थात, कॉपर तथा क्लोरीन के द्रव्यमान उनके तुल्य द्रव्यमानों की भाँति एक दूसरे के साथ व्यवहार करेंगे।

परिमापों की मदद से सिद्ध हो चुका है कि एक तुल्य पदार्थ के वैद्युत-रासायनिक रूपांतरण को करने वाली विद्युत की मात्रा 96485 कूलम्ब (पूर्ण सँख्या में 96500) के बराबर है। विद्युत की यह मात्रा फैराडे कहलाती है तथा F अक्षर द्वारा निर्दिष्ट की जाती है।



चित्र 86. फैराडे नियम को प्रमाणित करने वाले उपकरण का आरेख।

वैद्युत-अपघटय का दूसरा नियम विभिन्न तत्त्वों के तुल्यों को निश्चित करने की प्रत्यक्ष विधि देता है। वैद्युत्-रासायनिक उत्पादों से सम्बंधित परिकलन इसी नियम पर आधारित हैं।

वैद्युत-अपघटन के नियम विलयनों, संलयनों तथा ठोस वैद्युत-अपघट्यो, जिनमें शुद्ध आयनी चालकता है, पर लागू होते हैं।

103. उद्योग में वैद्युत्-अपघटन. वैद्युत-अपघटन का महत्वपूर्ण उपयोग धात्विकी, रासायनिक उद्योग तथा गैल्वैनी तकनीकी में होता है।

धात्विक उद्योग में पिघले हुए यौगिकों तथा जलीय विलयनों के वैद्युत-अपघटन की मदद से धातु प्राप्त किये जाते हैं तथा वैद्युत-अपघटनी शोधन – धातुओं का हानिकारक अशुद्धियों का दूर करना तथा मूल्यवान् अवयवों का निकाला जाना किया जाता था।

संलयनों के वैद्युत-अपघटय की मदद से प्रबल ऋणात्मक इलैक्ट्रोडी विभव वाले धातु, तथा उनके कुछ ऐलाय प्राप्त किये जाते हैं।

उच्च ताप पर वैद्युत-अपघट्य तथा वैद्युत-अपघटन के उत्पाद परस्पर क्रिया कर सकते है; तथा वायु तथा इलैक्ट्रोडों और वैद्युत-अपघटयों के पदार्थों के साथ भी क्रिया कर सकते हैं। इसके फलस्वरूप वैद्युत-अपघटन का नियमतः सरल आरेख (जैसे, मैग्नीशियम के प्राप्त करने में $MgCl_2$ का वैद्युत अपघटन) जटिल हो जाता है।

प्रायः वैद्युत-अपघट्य पृथक पिघले हुए यौगिक नहीं होते हैं, बल्कि उनके मिश्रण होते हैं। मिश्रणों का महत्वपूर्ण लाभ उनका अपेक्षाकृत कम गलनांक है जिसकी मदद से कम ताप पर वैद्युत-अपघटन सम्भव है।

आजकल संलयनों के वैद्युत-अपघटन की मदद से ऐलुमिनियन, मैग्नीशियम, सोडियम, लीथियम, बेरिलियम तथा कैल्सियम प्राप्त किया जाता है। पोटैशियम, बेरियम, रूबीडियम तथा सीज़ियम को प्राप्त करने के लिए संलयनों का वैद्युत-अपघटन इन

धातुओं की उच्च रासायनिक सक्रियता तथा पिघले हुए लवणों में उनकी अधिक विले-यता के कारण व्यावहारिक रूप से प्रयोग नहीं की जा सकती है। गत वर्षों में पिघले हुए माध्यमों के वैद्युत-अपघटन का कुछ उच्च गलनांक वाले धातुओं को प्राप्त करने में भी महत्व बढ़ता जा रहा है।

विलयन में से धातु का वैद्युत-अपघटनीय पृथक्करण वैद्युत निष्कर्षण कहलाता है। अयस्क या समृद्ध अयस्क निश्चित अभिकर्मकों की मदद से अभिक्रियित होते हैं जिसके फलस्वरूप धातु विलयन में रूपांतरित हो जाता है। अशुद्धियों को दूर करने के बाद विलयन को वैद्युत-अपघटन के लिये भेज देते हैं। कैथोड पर धातु उत्सर्जित होता है तथा अधिकांश स्थितियों में उच्च आवृति रखता है। इस विधि द्वारा मुख्यतः जिंक, कॉपर तथा कैडमियम प्राप्त किये जाते हैं।

धातु का वैद्युत-अपघटनी शोधन उनमें से अशुद्धियों को दूर करने तथा उनमें विद्यमान अवयवों को अभिक्रिया के लिए उपयुक्त उत्पादों में रूपांतरित करने के लिए किया जाता है। शोधित किये जा रहे धातु में से प्लेट बनाई जाती हैं तथा उन्हें विद्युतअपघटक में ऐनोड के रूप में रख दिया जाता है। धारा प्रवाहित करने पर धातु का ऐनोडी विलयन हो जाता है – वह धनायनों के रूप में विलयन में रूपांतरित हो जाता है। बाद में धातु के धनायन कैथोड पर विसर्जित हो जाते हैं और शुद्ध धातु की एक महीन परत बनाते जाते हैं। ऐनोड में विद्यमान अशुद्धियाँ या तो अविलेय रहती हैं, और ऐनोडी अवशेष के रूप में बच जाती है, या वैद्युत-अपघट्य में रूपांतरित हो जाती हैं जहाँ से उन्हें धीरे-धीरे या लगातार दूर कर लिया जाता है।

उदाहरण के रूप में, आइये, कॉपर का वैद्युत-अपघटनी शोधन देखें। विलयन का मुख्य अवयव कॉपर सल्फेट है इस धातु का सर्वाधिक प्रचलित तथा सस्ता लवण है। लेकिन $CuSO_4$ विलयन में कम वैद्युत चालकता होती है। उसे बढ़ाने के लिए वैद्युत-अपघट्य में सल्फ्यूरिक अम्ल डाला जाता है। इसके अतिरिक्त विलयन में धातु की अतिरिक्त मात्राएँ भी डाली जाती है जो धातु की महीन परत बनाने में मदद करती है। अशुद्ध कॉपर में विद्यमान धात्विक अशुद्धियों को दो ग्रुपों में बाँटा जा सकता है:

1) Fe, Zn, Ni, Co । इन धातुओं में कॉपर की तुलना में काफ़ी अधिक ऋणात्मक इलैक्ट्रोडी विभव होता है। इसीलिए इनका ऐनोडी विलयन कॉपर के साथ हो जाता है, लेकिन कैथोड पर जमा नहीं होती हैं और ये वैद्युत-अपघट्य में जमा हो जाते हैं। इसीलिए वैद्युत-अपघट्यों को समयानुसार शुद्ध कर दिया जाता है।

2) Au, Ag, Pb, Sn। नोबेल धातुओं (Au, Ag) का ऐनोडी विलयन नहीं होता, तथा क्रिया के दौरान वे ऐनोड पर इकट्ठे हो जाते हैं तथा अन्य अशुद्धियों के साथ ऐनोडी अवशेष बनाते हैं जो समयानुसार निकाल लिया जाता है। टिन तथा लेड कॉपर के साथ विलीन हो जाते हैं, लेकिन वैद्युत-अपघट्य में कम विलीन होने वाले यौगिक बनाते हैं जो अवशेष में आ जाते हैं तथा इसी प्रकार निकाल लिये जाते हैं।

कॉपर, निकैल, लेड, टिन, सिल्वर, स्वर्ण का वैद्युत-अपघटनी शोधन होता है।

गैल्वैनीतकनीकी में गैल्वैनोनिक्षेपण तथा गैल्वैनोकल्पन आते हैं। गैल्वैनोनिक्षेपण क्रिया का अर्थ है वैद्युत-अपघटन की मदद से धात्विक वस्तुओं की सतह पर अन्य धातुओं की परत को इन वस्तुओं को संक्षारण से बचाने के लिए, इन वस्तुओं की सतह दृढ़ बनाने के लिये तथा सुन्दर बनाने के लिये चढ़ाया जाता है। तकनीकी में प्रयोग की जाने वाली अनेक गैल्वैनोतकनीकी क्रियाओं में मुख्य हैं: क्रोमियम-प्लैटिंग, जिंक-प्लैटिंग तथा निकैल-प्लैटिंग।

गैल्वैनीनिक्षेपण का सार निम्न है। उस वस्तु की सतह, जिस पर परत चढ़ाई जानी है, को अच्छी प्रकार साफ़ करके चिकनाहट दूर कर ली जाती है, फिर इसे उस धातु के विलयन में डाल दिया जाता है, जिसकी परत चढ़ाई जाएगी, और कैथोड के रूप में इसे दिष्ट धारा के परिपथ में जोड दिया जाता है; धारा प्रवाहित करने पर सतह पर धातु की परत चढ़ जाती है। सबसे अच्छी परत तब चढ़ती है जब महीन क्रिस्टलीय घनत्व वाले निक्षेपण होते हैं। ऐसे निक्षेपणों में, इसके अलावा, उत्तम यांत्रिकीय गुण भी विद्यमान होते हैं।

गैल्वैनोकल्पन वे क्रियाएँ हैं जिनकी मदद से धातु के वैद्युत निक्षेपण द्वारा रिलीफ़ वस्तुओं की यथशुद्ध धात्विक कॉपी बनाई जाती है। गैल्वैनोकल्मन की मदद से विभिन्न वस्तुओं को प्रेस करने के ठप्पे (जैसे ग्रामोफोन रेकॉर्ड, बटन आदि), चमड़े तथा कागज पर उच्चित्रण करने के ठप्पें, मुद्रित रेडियोतकनीकी परिपथ, मुद्रण प्लेटें आदि बनाये जाते हैं। गैल्वैनोकल्पन की खोज रूसी अकादमीशियन व० स० जैकोबी (1801-1874) ने 19 वीं० शताब्दी के चौथे दशक में की।

धातुओं की सतह पर वैद्युत-रासायनिक क्रिया के अन्य रूप भी गैल्वैनोतकनीकी में आते हैं: इस्पात की इलैक्ट्रोप्लेटिंग, ऐलुमिनियम व मैग्नीशियम का आक्साइडीकरण। अन्तिम धातु की ऐनोडी अभिक्रिया है, जिसमें निश्चित रूप से धातु की सतह पर आक्साइड परत की संरचना बदल जाती है। इसके फलस्वरूप धातु की संक्षारण के प्रति दृढ़ता और बढ़ जाती है। इसके अलावा, धातु का बाहरी रूप और अधिक सुन्दर हो जाता है।

रासायनिक उद्योग में वैद्युत-अपघटन द्वारा विभिन्न उत्पाद प्राप्त किये जाते हैं। ये हैं: फ्लुओरीन, क्लोरीन, दाहक सोडा, अधिक उच्च शुद्धता वाली हाइड्रोजन, अनेक उपचायक, विशेषकर, हाइड्रोजन परआक्साइड।

104. वैद्युत्-रासायनिक ध्रुवण. अतिवोल्टता. जब इलैक्ट्रोड पर संतुलन के बराबर का विभव होता है तो उस पर वैद्युत-रासायनिक संतुलन बन जाता है:

$$Ox + ze^- \rightleftarrows Red$$

इलैक्ट्रोड के धनात्मक या ऋणात्मक दिशा में विस्थापन होने से उस पर उपचयन

या अपचयन क्रियाएँ आरम्भ हो जाती हैं। इलैक्ट्रोड के विभव का उसके संतुलन के मान से विलयन वैद्युत-रासायनिक ध्रुवण या केवल ध्रुवण कहलाता है।

ध्रुवण को करने के लिए इलैक्ट्रोड को दिष्ट धारा के परिपथ में जोड़ना होगा। इसके लिये वैद्युत-अपघट्य तथा दो इलैक्ट्रोडों – विचाराधीन एवं सहायक – से वैद्युत-अपघटनी कोश बनाना होगा। उसे दिष्ट धारा के परिपथ में जोड़ कर विचाराधीन इलैक्ट्रोड को कैथोड या (व्युत्क्रमणीय दिशा में) ऐनोड में बदला जा सकता है। ध्रुवण की इस विधि को वैद्युत ऊर्जा के बाहरी स्रोत से ध्रुवण कहते हैं।

आइये, ध्रुवण के सरल उदाहरण को देखें। मान लें कि सभी अशुद्धियों से रहित, यहाँ तक कि विलीन आक्सीजन रहित, $CuSO_4$ के $0.1\,m$ विलयन में कॉपर इलैक्ट्रोड है। जब तक कि परिपथ बंद नहीं है, 25° सें० पर इलैक्ट्रोड के विभव के संतुलन का मान

$$\varphi = 0.337 + 0.030 \lg 10^{-1} \cong 0.31\,B$$

के बराबर होगा तथ धातु व विलयन के स्पर्श होने की सीमा पर वैद्युत-रासायनिक संतुलन बन जाएगा :

$$Cu^{2+} + 2e^{-} \rightleftarrows Cu$$

इलैक्ट्रोड को धारा स्रोत के ऋणात्मक ध्रुव से जोड़ दें – उसे कैथोड बना दें। इलैक्ट्रोड पर आने वाले अतिरिक्त इलैक्ट्रोडी विभव को ऋणात्मक दिशा में विस्थापित कर देंगे और उसी समय संतुलन बिगड़ जाएगा। इलेक्ट्रान विलयन में से कॉपर के ऋणायनों को आकृष्ट करेंगे – अपचयन क्रिया आरम्भ हो जाएगी :

$$Cu^{2+} + 2e^{-} = Cu$$

यदि इलैक्ट्रोड को धारा स्रोत के ऋणात्मक ध्रुव के स्थान पर धनात्मक ध्रुव के साथ जोड़ दिया जाये, उसे ऐनोड बना दिया जाये तो इलेक्ट्रानों के कुछ भाग को दूर करने के फलस्वरूप इलैक्ट्रोडी विभव धनात्मक दिशा में विस्थापित हो जाएगा तथा संतुलन उसी प्रकार बिगड़ जाएगा। लेकिन अब इलैक्ट्रोड पर उपचयन क्रिया हो जाएगी, क्योंकि इस क्रिया के दौरान इलेक्ट्रान स्वतंत्र हो जाते हैं :

$$Cu = Cu^{2+} + 2e^{-}$$

अतएव, ऋणात्मक दिशा में इलैक्ट्रोड का ध्रुवण अपचयन क्रिया के घटने से सम्बंधित है, तथा धनात्मक दिशा में ध्रुवण – उपचयन क्रिया के होने से सम्बंधित है। अपचयन क्रिया को अन्य शब्दों में कैथोडी क्रिया कहते हैं, तथा उपचयन क्रिया को – ऐनोडी। इसी संदर्भ में ऋणात्मक दिशा में ध्रुवण कैथोडी ध्रुवण कहलाता है, तथा धनात्मक दिशा में – ऐनोडी।

इलैक्ट्रोड के ध्रुवण की अन्य विधि है – वैद्युत-रासायनिक विन्यास के साथ उसका स्पर्श, जिसका इलैक्ट्रोडी विभव विचाराधीन इलैक्ट्रोड के विभव की तुलना में अधिक धनात्मक या ऋणात्मक मान रख सकता है।

आइये, कॉपर-जिंक गैल्वैनी सेल का कार्य देखें। खुले परिपथ में कॉपर तथा जिंक दोनों इलैक्ट्रोडों पर वैद्युत-रासायनिक संतुलन बन जाते हैं। लेकिन इन संतुलनों के इलैक्ट्रोडी विभव विभिन्न हैं। $0.1\,m$ विलयनों की स्थिति में वे समान हैं:

$$\varphi_{Cu/Cu^{2+}} = 0.337 + 0.030 \lg 10^{-1} \cong 0.31 \text{ B}$$
$$\varphi_{Zn/Zn^{2+}} = -0.763 + 0.030 \lg 10^{-1} \cong -0.79 \text{ B}$$

परिपथ को बंद करने पर दोनों इलैक्ट्रोड एक दूसरे पर ध्रुवण प्रभाव डालेंगे: जिंक को स्पर्श करने के प्रभाव में कॉपर इलैक्ट्रोड का विभव ऋणात्मक दिशा में विस्थापित हो जाता है, और कॉपर को स्पर्श करने के प्रभाव से जिंक इलैक्ट्रोड का विभव धनात्मक दिशा में विस्थापित हो जाता है। अन्य शब्दों में, कॉपर इलैक्ट्रोड का कैथोडी ध्रुवण, तथा जिंक इलैक्ट्रोड का ऐनोडी ध्रुवण हो जाता है। एक ही समय में दोनों इलैक्ट्रोडों पर वैद्युत-रासायनिक संतुलन बिगड़ जाते हैं तथा वैद्युत-रासायनिक क्रियाएँ आरम्भ हो जाती हैं: कॉपर इलैक्ट्रोड पर कैथोडी क्रिया, तथा जिंक इलैक्ट्रोड पर ऐनोडी:

$$Cu^{2+} + 2e^- = Cu$$
$$Zn = Zn^{2+} + 2e^-$$

इलैक्ट्रोड का ध्रुवण – इलैक्ट्रोडी क्रिया के घटने का आवश्यक प्रतिबंध है। इसके अलावा, इसकी मात्रा पर इलैक्ट्रोडी क्रिया की चाल निर्भर करती है: इलैक्ट्रोड का जितना तीव्र ध्रुवण होगा, उतनी ही तीव्र चाल से उस पर अर्धअभिक्रिया होगी।

ध्रुवण की मात्रा के अलावा, इलैक्ट्रोडी क्रिया की चाल पर कुछ अन्य कारणों से भी फर्क पड़ता है। आइये, हाइड्रोजन के आयनों का कैथोडी अपचयन देखें। यदि कैथोड प्लैटिनम से बना है, तो नियत चाल से हाइड्रोजन के उत्सर्जन के लिए कैथोडी ध्रुवण की निश्चित मात्रा आवश्यक है। प्लैटिनम इलैक्ट्रोड की जगह सिल्वर इलैक्ट्रोड प्रयुक्त करने पर (अन्य अवस्थाएँ समान रहने पर) उसी चाल पर हाइड्रोजन प्राप्त करने के लिए अधिक ध्रुवण की आवश्यकता होगी। कैथोड को लेड का बनाने पर और अधिक ध्रुवण की आवश्यकता होगी। अतएव, हाइड्रोजन के आयनों की अपचयन क्रिया के प्रति विभिन्न धातुओं में विभिन्न उत्प्रेरकीय सक्रियता होती है। निश्चित चाल से नियत इलैक्ट्रोडी क्रिया के घटने के लिए ध्रुवण की आवश्यक मात्रा नियत इलैक्ट्रोडी क्रिया की अतिवोल्टता कहलाती है। अतएव, विभिन्न धातुओं पर हाइड्रोजन के उत्सर्जन की अति वोल्टता विभिन्न है।

तालिका 23

विभिन्न धातुओं पर हाइड्रोजन के विसर्जन की अतिवोल्टता.

इलेक्ट्रोड का धातु	वैद्युत-अपघट्य	हाइड्रोजन के विसर्जन की अतिवोल्टता, B
लोह	HCl	0.5
कॉपर	H_2SO_4	0.6
रजत	HCl	0.7
जिंक	H_2SO_4	1.0
मरक्यूरी	H_2SO_4	1.2
लेड	H_2SO_4	1.3

तालिका 23 में 1 न० विलयनों के लिये कैथोडी ध्रुवण की मात्राएँ दी गई हैं, जिसे इलैक्ट्रोड पर करना आवश्यक है ताकि उसपर हाइड्रोजन इलैक्ट्रोड की कार्यकारी सतह 1 से० मी० ^{2} पर 0.1 मि० लि० प्रति मिनट की चाल से उत्सर्जित हो।

ध्रुवण की मात्रा तथा इलैक्ट्रोडी क्रिया की चाल के बीच सम्बंध को स्पष्ट करना वैद्युत-रासायनिक क्रियाओं के अध्ययन की महत्वपूर्ण विधि है। इस में सामान्यत: परिमापों के परिणाम ध्रुवण वक्रों के रूप में दिये जाते हैं—इलैक्ट्रोड पर ध्रुवण मात्रा पर धारा के घनत्व का निर्भरता वक्र। किसी भी इलैक्ट्रोडी क्रिया के ध्रुवण वक्र का रूप उसके घटने की विशेषताएँ बतलाता है। ध्रुवण वक्रों की विधि द्वारा अपचयोपचयन अभिक्रियाओं की गतिकी व यांत्रिकी, गैल्वैनी सेल के कार्य, संक्षारण तथा धातुओं की निष्क्रियता की परिघटनाओं एवं वैद्युत्-अपघटन की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन किया जाता है।

इलैक्ट्रोडी क्रियाओं की गतिकी तथा अतिवोल्टता सिद्धाँत के विकास में काफ़ी बड़ा योग सोवियत वैज्ञानिक अ० ना० फ्रूमकिन का है*।

---

* अलेक्सान्द्र नाउमोविच फ्रूमकिन (1895-1976)—महानतम् सोवियत वैद्युत-रसायनज्ञ, अकादमीशियन, लेनिन व राजकीय पुरस्कार विजेता। अणुओं के अधिशोषण पर वैद्युत क्षेत्र के प्रभाव का सांख्यिक सिद्धाँत का अध्ययन किया, धातु-विलयन सीमा की संरचना के सिद्धाँत का विकास किया, तथा गैल्वैनी सेल के वै० ग० ब० के सिद्धाँत के विकास में काफ़ी बडा योग दिया।

अध्याय X

परिक्षिप्त तंत्र. कोलाईड.

105. पदार्थ की परिक्षिप्त अवस्था. परिक्षिप्त तंत्र. किसी भी पदार्थ के क्रिस्टल, जैसे कि शर्करा या सोडियम क्लोराइड के क्रिस्टल, विभिन्न आकारों के हो सकते हैं – मोटे या महीन। क्रिस्टलों का आकार कोई भी क्यों न हो, उनकी आन्तरिक संरचना नियत पदार्थ के लिए समान रहती है यानी उनकी आण्विक या आयनी क्रिस्टलीय जाली समान रहती है।

शर्करा तथा सोडियम क्लोराइड के क्रिस्टल जल में विलीन होने पर क्रमशः आण्विक व आयनी विलयन बनते हैं। अतएव, एक ही पदार्थ अवचूर्णन की विभिन्न डिग्रियों में स्थित हो सकता है: स्थूलदर्शी कणों (आँख की विभेदन क्षमता, 0.2 — 0.1 मि० मी० से अधिक), सूक्ष्मकणों (0.2 — 0.1 मि० मी० से 400-300 ना० मी०* तक, श्वेत प्रकाश में सूक्ष्ममापी की विभेदन क्षमता) में तथा अण्विक (या आयनी) अवस्था में हो सकता हैं।

धीरे-धीरे ये विचार इकट्ठे होने लगे कि अणुओं तथा सूक्ष्मकणों के बीच पदार्थ के अवचूर्णन का क्षेत्र है जिसमें जटिल नए गुण विद्यमान हैं जो पदार्थ के इस रूप के लाक्षणिक हैं।

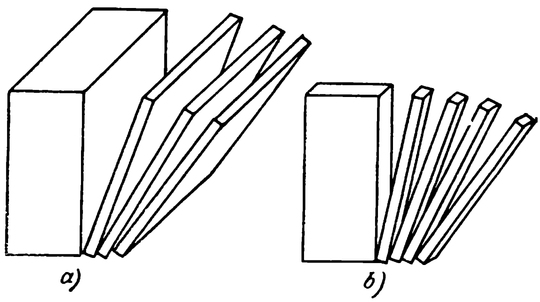
अनुमान करें कि आपके पास एक घन है। अब आप इसकी एक समतल की ओर से इसे समानांतर रूप से काटना शुरू कीजिए, फिर प्राप्त प्लेटों को डंडियों में काटिए और इन्हें फिर घन में काट दीजिए (चित्र 87)। पदार्थ के इस परिक्षेपण (चूर्णन)

---

* इस अध्याय में हम सूक्ष्म मात्राओं की दुनिया में रहेंगे। स्मरण रहे कि SI प्रणाली में: 1. मी० (मीटर) = 10^2 सें० मी० (सेंटीमीटर) = 10^3 मि० मी० (मिलीमीटर) = 10^6 मा० मी० (माइक्रोमीटर) = 10^9 ना० मी० (नानोमीटर)। अन्य प्राय प्रयुक्त की जाने वाली इकाईयां: माइ० (माइक्रोन), मिमाइ० (मिलीमाइक्रोन), और 1 सें० मी० = 10 मिमी० = 10^4 माइ० = 10^7 मिमाइ।

के फलस्वरूप तनुत्वचीय–, रेशेदार–, तथा कणिकापरिक्षिप्त (अवचूर्णित) विन्यास बनते हैं। यदि तनुत्वक की मोटाई, रेशे या कण (कणिका) का व्यास सूक्ष्ममापी की विभेदन क्षमता से कम है तो उन्हें सूक्ष्ममापी की मदद से देखा नहीं जा सकता। प्रकाशीय सूक्ष्ममापी में ऐसे अदृश्य कण कोलॉइडी कहलाते हैं तथा पदार्थों की 400-300 ना० मी० से 1 ना० मी० तक अवचूर्णित (परिक्षिप्त) अवस्था – पदार्थ की कोलॉइडी अवस्था कहलाती है।

परिक्षिप्त (अवचूर्णित) तंत्र विजातीय होते हैं। वे एक संतत निर्विघ्न कला–परिक्षिप्त माध्यम तथा इस माध्यम में स्थित किसी भी आकार और रूप के अवचूर्णित कणों – परिक्षिप्त कला – से बने होते हैं।



चित्र 87. पदार्थ का एक-; द्वि- और त्रिविम परिक्षेपण; *a* तनुत्वक; *b* तंतु; और *c* कणिकामय परिक्षेपण तंत्रों को बनाता है।

चूँकि परिक्षिप्त (अनिर्विघ्न) कला पृथक छोटे कणों के रूप में होती है, तो परिक्षिप्त तंत्र, संतत कलाओं वाले विजातीय तंत्र के विपरीत, माइक्रोविजातीय कहलाता है और कोलॉइडी-परिक्षिप्त तंत्र परामाइक्रोविजातीय कहलाता है ताकि इस बात पर जोर दिया जा सके कि इन तंत्रों में कला के विभाजन की सीमा प्रकाशीय सूक्ष्ममापी की मदद से नहीं देखी जा सकती। कोलाइडी अवस्था पदार्थ की चरम उच्च परिक्षिप्त अवस्था होती है।

जब पदार्थ चारों ओर के माध्यम में अणुओं या आयनों के रूप में होता है, तो ऐसे विलयनों को यथार्थ यानी सजातीय एककलीय विलयन कहते हैं।

परिक्षिप्त तंत्रों को प्राप्त करने का आवश्यक प्रतिबन्ध-परिक्षिप्त होने वाले पदार्थ व परिक्षिप्त माध्यम की पारस्परिक अविलयशीलता है। उदाहरणतया, जल में शर्करा या सोडियम क्लोराइड के कोलाइडी विलयन प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं, लेकिन उन्हें मिट्टी के तेल या बेन्ज़ीन में प्राप्त किया जा सकता है जिनमें ये व्यावहारिक रूप से अविलेय हैं।

परिक्षिप्त तंत्रों का वर्गीकरण उनके परिक्षेपण, परिक्षिप्त कला तथा परिक्षिप्त माध्यम की कुल अवस्था, उनकी पारस्परिक क्रिया की तीव्रता, परिक्षिप्त तंत्रों में संरचनाओं की अनुपस्थिति या बनना के आधार पर किया जाता है।

पदार्थ के परिक्षेपण (अवचूर्णन) की परिक्षेपण (अवचूर्णन) की सांख्यिक विशेषता – परिक्षेपण की डिग्री होती है (अवचूर्णन की डिग्री, D) – वह मात्रा जो परिक्षिप्त कणों के आकारों (a) की व्युत्क्रमणीय होती है :

$$D = \frac{1}{a}$$

यहाँ a या तो गोलीय अथवा रेशे के व्यास, या घनरूपी कण के किनारे की लम्बाई, या फिर तनुत्वक की मोटाई के बराबर होता है।

परिक्षेपण की डिग्री सँख्यात्मक रूप से कणों की उस सँख्य के बराबर होती है जिन्हें एक रेखा में दबा-दबा कर (या तनुत्वकों की गड्डी में) एक सें० मी० क्षेत्रफल में रखा जा सके। तालिका 24 में पदार्थों के विभिन्न परिक्षेपण वाले तंत्रों के कणों के आकारों की सोप्रतिबंधित सीमाएँ दी गई हैं।

तालिका 24

परिक्षेपन की डिग्री के आधार पर कणिकामय परिक्षेपण तंत्रों का वर्गीकरण.

तंत्र	पदार्थ का अनचूर्णन	कण का अनुप्रस्था काट सें	परिक्षेपण की डिग्री D, सें० मी०$^{-1}$	एककण में परमाणुओं की सँख्या
स्थूल रूप से परिक्षिप्त	स्थूलदर्शी	$1—10^{-2}$	$1—10^{2}$	$>10^{18}$
	सूक्ष्मदर्शी	$10^{-2}—10^{-5}$	$10^{2}—10^{5}$	$>10^{9}$
अत्यधिक उच्च परिक्षिप्त	कोलाइडी	$10^{-5}—10^{-7}$	$10^{5}—10^{7}$	$10^{9}—10^{3}$
आण्विक तथा आयनी	आण्विक तथा आयनी	$10^{-7}—10^{-8}$	$>10^{7}$	$<10^{3}$

यदि परिक्षिप्त कला के सभी कणों के समान आकार हैं तो ऐसे तंत्रों को समापकीर्ण तंत्र कहते हैं (चित्र 88 a, तथा c)।

परिक्षेपण के बढ़ने के साथ-साथ पदार्थ के परमाणु अधिक से अधिक सँख्या में परिक्षिप्त कला के कणों के आयतन की आन्तरिक सँख्या की तुलना में ऊपरी सतह पर यानी कला के पृथक्करण की सीमा पर स्थित हो जाते हैं। सतह तथा आयतन के बीच अनुपात को आपेक्षिक सतह व्यक्त करती है: S आपे० $= S/V$, जो गोलीय

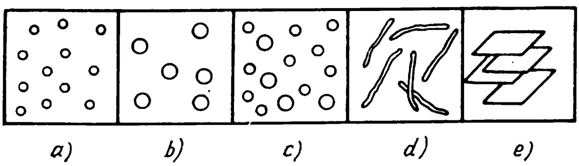
ग्राकृति वाले कण के लिए

$$S_{\text{ग्रापे}} = \frac{4\pi r^2}{\frac{4}{3}\pi r^3} = \frac{3}{r} = \frac{6}{d}$$

के बराबर है ; तथा घनरूपी कण के लिए

$$S_{\text{ग्रापे}} = \frac{6l^2}{l^3} = \frac{6}{l}$$

के बराबर है। यहाँ r = गोले का अर्धव्यास, d = उसका व्यास ; l = घन के किनारे की लम्बाई।



चित्र 88. स्वतंत्र परिक्षेपण तंत्र : कणिका – (a–c), तंतु – (d) तथा तनुत्वक् परिक्षेपण ; a,b – समायकीर्ण तंत्र ; c – बहुपरिक्षेपित तंत्र।

ग्रत:, माइक्रोन घनों तक ग्रवचूर्णित पदार्थ की सापेक्षिक सतह $6 \cdot 10^4$ सें० मी०$^{-1}$ के बराबर है। इसमें 1 से० मी०^3 में से 10^{12} माइक्रोन घन बनते हैं जिनकी कुल सतह ($S = S$ग्रापे० $\cdot V$) $6 \cdot 10^4$ सें० मी०^2 (6 मी०^2 के बराबर है। 1 सें० मी०^3 पदार्थ के कोलाइडी परिक्षेपण घन तक ग्रौर ग्रधिक ग्रवचूर्णित होने पर, जैसे कि किनारे की लम्बाई $l = 10^{-6}$ सें० मी० (10 ना० मी०), उनकी सँख्या 10^{18} कणों तक पहुँच जाती है, तथा कुल सतह — $6 \cdot 10^6$ सें० मी० (600 मी^{2}) तक पहुँच जाती है, ग्रापेक्षिक सतह — $6 \cdot 10^6$ सें० मी०$^{-1}$ हो जाती है।

ग्रतएव, पदार्थ के परिक्षेपण बढ़ने से उसके गुणों का मान बढ़ता जाता है जो सतही परिघटनाग्रों द्वारा निर्धारित होते हैं, ग्रर्थात ग्रन्तरा कलीय सतह में घटने वाली कुल क्रियाग्रों द्वारा निर्धारित होते हैं। इस प्रकार, परिक्षिप्त तंत्रों की मौलिकता का निर्धारण परिक्षिप्त कला की बड़ी ग्रापेक्षिक सतह, ग्रौर कलाग्रों के पृथक्करण की सीमा पर परिक्षिप्त माध्यम तथा परिक्षिप्त कला की भौतिकीय-रासायनिक क्रिया द्वारा होता है।

परिक्षिप्त तंत्रों की ग्रनेकरूपता का कारण यह है कि बनने वाली कलाएँ तीनों कुल ग्रवस्थाग्रों में से किसी भी ग्रवस्था में स्थित हो सकती हैं। परिक्षिप्त तंत्रों की कुल ग्रवस्थाग्रों को ग्रारेख द्वारा व्यक्त करते समय, पहले परिक्षिप्त माध्यम कुल ग्रवस्था को निम्न ग्रक्षरों द्वारा लिखते हैं : गै० (गैस), द्र० (द्रव), ठो० (ठोस) ; फिर डैश का चिन्ह लगाकर परिक्षिप्त कला की कुल ग्रवस्था को लिखते हैं।

गैसीय परिक्षिप्त माध्यम के परिक्षिप्त विन्यासों को ऐरोसॉल कहते हैं। धुंध एक प्रकार के द्रव परिक्षिप्त कला (गै०$_1$ – द्र०$_2$) का ऐरोसॉल है, तथा धूल व धुम्रा – ठोस परिक्षिप्त कला (गै०$_1$ – ठो०$_2$) को ऐरोसॉल हैं ; धूल पदार्थों के परिक्षेपण के फलस्वरूप बनती है, तथा धुम्राँ वाष्पशील पदार्थों के संघनन से बनता है।

झाग – यह गैस का द्रव में परिक्षेपण (द्र०$_1$ – गै०$_2$) है, इस बीच झाग में द्रव महीन तनुत्वकों तक बन जाता है जो गैस के अलग-अलग बुलबुले को पृथक रखता है। ऐमल्शन उन परिक्षिप्त तंत्रों को कहते हैं जिनमें एक द्रव दूसरे द्रव में अवचूर्णित होता है जो पहले द्रव में अविलेय रहता है (द्र०$_1$ – द्र०$_2$)। द्रवों में ठोस कणों के कम परिक्षिप्त तंत्रों (द्र०$_1$ – ठो०$_2$) को निलंबन कहते हैं, और परम उच्चपरिक्षिप्त तंत्रों को कोलाइॅडी विलयन, या सॉल* कहते हैं ; तथा प्रायः लियोसॉल भी कहते हैं ताकि इस बात पर ज़ोर दिया जा सके कि परिक्षिप्त माध्यम द्रव होता है (ग्रीक "लिओस" – द्रव)। यदि परिक्षिप्त माध्यम जल है, तो ऐसे सॉलों को हाइड्रोसॉल कहते हैं। और कार्बनिक द्रव की स्थिति में कार्बनोसॉल कहते हैं।

ठोस परिक्षिप्त माध्यम में गैस, द्रव तथा ठोस पदार्थों का परिक्षेपण हो सकता है। ठो०$_1$-गै०$_2$ (ठोस झाग) तंत्रों में झालीय पर्पटी झावा, झागदार कंक्रीट, गैसयुक्त धातु आदि आते हैं। मौलिक ठोस झागों के रूप में सेकी हुई रोटी, बॅन आदि को भी लिया जा सकता है। ठोस झागों में गैस पृथक बंद कोशों में रहती है जो परिक्षिप्त माध्यम द्वारा अलग किए होते हैं। ठो०$_1$-द्र०$_2$ तंत्र का उदाहरण है प्राकृतिक मोती जो कैल्सियम कार्बोनेट है जिसमें कोलाइडी-परिक्षिप्त जल विद्यमान है।

ठो०$_1$ — ठो०$_2$ तंत्रों का बहुत अधिक व्यावहारिक महत्व है। इनमें महत्वपूर्ण निर्माण पदार्थ आते हैं (जैसे, कंक्रीट), तथा उसी प्रकार धातुयुक्त चीनी मिट्टी।

ठो०$_1$ + ठो०$_2$ परिक्षिप्त तंत्रों में इसी प्रकार कुछ ऐलॉय, रंगीन कॉच, ऐमॉल, अनेक खनिज, विशेषतः, कुछ बहुमूल्य तथा अर्धबहुमूल्य पत्थर, कई ज्वालामुखी से उत्पन्न चट्टानें, जिनमें लावा के ठंडा होने पर क्रिस्टल अलग हो जाते हैं।

रंगीन काँच सिलिकेट काँच में धातुओं तथा उनकी आक्साइडों की अशुद्धियों जो उन्हें रंग देती हैं, के परिक्षेपण के फलस्वरूप बनता है। उदाहरणतया, रूबी काँच में 4-30 मा० मी० आकार वाले स्वर्ण के कण 0.01-0.1% हैं। हल्के लाल रंग के रूबी व अन्य रंगीन काँच बनाने की अवस्थाओं का अध्ययन म० व० लोमोनोसोव ने भी किया था। ऐमॉल – ये सिलिकेट कॉच हैं जिनमें रंगों की कुछ मात्रा है

---

* सॉल (लातीनी sotutio से) का अर्थ है घोल। इसका उपयोग तब शुरू हुआ था, जब कोलाइडी व विषमांगी प्रणालियों की वास्तविक घोल से भिन्नता स्पष्ट नहीं हुई थी।

(SnO_2, TiO_2, ZrO_2) जो ऐमॉल को पारदर्शिता तथा रंग देती है। बहुमूल्य तथा अर्ध-बहुमूल्य पत्थर प्रायः धातुओं की आक्साइड हैं जो ऐलुमिना या क्वार्टज में परिक्षिप्त होते हैं (उदाहरणतया, रूबी – यह Cr_2O_3 है जो Al_2O_3 में परिक्षिप्त है)।

परिक्षिप्त तंत्र स्वतंत्र परिक्षिप्त (चित्र 88) तथा आबन्धी परिक्षिप्त (चित्र 89, a-b) कला के कणों के बीच पारस्परिक क्रिया की अनुपस्थिति या विद्यमानता के आधार पर पाये जाते हैं। स्वतंत्र परिक्षिप्त तंत्रों में ऐरोसॉल, लियोसॉल, तनु निलंबन तथा इमल्शन आते हैं। वे वाष्पशील हैं। इन तंत्रों में परिक्षिप्त कला के कणों का संपर्क नहीं होता है, ये अव्यवस्थित तापीय गति में भाग लेते हैं तथा गुरूत्वीय बल के प्रभाव में स्वतंत्र रूप से स्थानांतरित होते रहते हैं। आबन्धीपरिक्षिप्त तंत्र ठोस होते हैं; ये परिक्षिप्त कला के कणों के सम्पर्क से बनते हैं जो संरचना को फ्रेम या जाली के रूप में बनाता है। ऐसी संरचना परिक्षिप्त कला की श्यानता को सीमित कर देती है तथा उसे अपनी आकृति बनाये रखने की विशेषता देती है। समान संरचनात्मक कोलॉइडी तंत्र जेल (gel) कहलाते हैं। सॉल का जेल में संक्रमण, जो सॉल के स्थायीत्व के कम होने के फलस्वरूप बनता है, जिलेटिनन कहलाता है। परिक्षिप्त कणों की अधिक खिँची हुई और तनुत्वक्-पर्णसदृश आकृति उनके बीच सम्पर्कों की सम्भावना को बढ़ाती है तथा परिक्षिप्त कला की कम सान्द्रता पर जेल के बनने में योग देता है। पाउडर, सान्द्रित इमल्शन तथा निलंबन (पेस्ट), झाग – आबन्धीपरिक्षिप्त तंत्रों के उदाहरण हैं। मृदा खनिजों और ह्यूमस (कार्बनिक पदार्थों) के परिक्षिप्त कणों के सम्पर्क तथा संघनन के फलस्वरूप बनने वाली मृदा भी आबन्धी परिक्षिप्त तंत्र है।

रंध्र तथा केशिकाएँ, जो केशिकापरिक्षिप्त तंत्र बनाते हैं, पदार्थ के संतत द्रव्यमान में प्रवेश कर सकते हैं (चित्र 89, d, e) उदाहरणतया, इनमें आते हैं: लकड़ी, विभिन्न प्रकार की झिल्लियाँ तथा डायाक्रॉम, चमड़ा, कागज़, गला कपड़ा, इत्यादि।

106. **कला के पृथक्करण की सीमा पर पदार्थ की अवस्था.** सभी द्रव तथा ठोस पिंड अपनी बाहरी सतह द्वारा सीमित होते हैं जिस पर वे अन्य संयोजन या संरचना के साथ सम्पर्क बनाते हैं, जैसे गैस, अन्य द्रव या ठोस पदार्थ के साथ। इस अन्तराकलीय सतह में, जिसकी मोटाई परमाणुओं या अणुओं के अर्ध-व्यास के लगभग होती है, पदार्थ के गुण कला के आयतन के अन्दर के गुणों से पृथक होते हैं। ठोस, द्रव या गैसीय अवस्था में शुद्ध पदार्थ के आयतन के अन्दर किसी भी अणु को उसी के समान अणु घेरे हुये होते हैं। सीमावर्ती स्तर में अणु या तो पारस्परिक क्रिया में स्थित होते हैं या अणुओं की भिन्न सँख्या के साथ (जैसे, द्रव या ठोस पदार्थ व उसकी गैस की सीमा पर) अथवा विभिन्न रासायनिक प्रकृति वाले अणुओं के साथ होते हैं (जैसे, दो पारस्परिक कम विलेयशील द्रवों की सीमा पर)। प्रत्येक कला पर लागू अन्तरा आण्विक बलों के बीच तीव्रता जितनी अधिक होगी, अन्तरा कलीय सतह की विभव ऊर्जा उतनी ही अधिक होगी, जिसे संक्षिप्त में पृष्ठ ऊर्जा भी कहते हैं।

कला के पृथक भाग की नई सतह की इकाई के आइसो तापीय तथा व्युत्क्रमणीय निर्माण पर किया गया कार्य जो तदनुरूपी क्रिया में गिब्ज़ ऊर्जा में परिवर्तन के बराबर है, आपेक्षिक स्वतंत्र पृष्ठ ऊर्जा (σ) कहलाता है (दे० § 67)। दो संघनन कलाओं की सीमा की स्थिति में इस मात्रा को सीमावर्ती, तथा द्रव व उसकी वाष्प की सीमा के लिए–पृष्ठ तनाव कहते है।

पृष्ठ तथा सीमावर्ती तनाव अर्ग बटा क्षेत्रफल की इकाई में नापा जाता है (स्मरण रहे कि 1 अर्ग = 1 डाइन सें. मी० = 10^{-7} जू; 1 मी^{2} = 10^4 सें. मी^{2}) :

$$1 \frac{\text{अर्ग}}{\text{से०मी०}^2} 10^{-3} \frac{\text{जू०}}{\text{मी०}^2} = 1 \frac{\text{डाइन}}{\text{से०मी०}}$$

σ का मान संपर्क करने वाली कलाओं की प्रकृति, ताप तथा विलीन पदार्थों की अतिरिक्त मात्रा पर निर्भर करती है।

अधिकांश शुद्ध द्रवों के लिए वायु के साथ उनकी सीमा पर जो उनकी वाष्पों से संतृप्त है (कमध्रुवीय माध्यम), पृष्ठ तनाव $1 - 5.10^{-2}$ जू०/मी^{2} के परिसर में होता है, तथा अधिक ध्रुवीय द्रव-जल के लिए 20° सें०. पर $\sigma = 7.275.10^{-2}$ जू०/मी^{2} ताप के बढ़ने के साथ σ की मात्रा कम हो जाती है (अन्तरा-आण्विक पारस्परिक क्रिया का शीण होना) और क्रांतिक ताप पर जब द्रव तथा वाष्प में सीमा लुप्त हो जाती है, $\sigma = 0$

400 — 1000° सें. पर पिघले हुए लवणों के लिए $\sigma \approx 0.15$ जू०/सें. मी^{2}। सामान्य ताप पर मरक्यूरी के लिए $\sigma \approx 0.48$ जू०/मी^{2}। पिघली हुई अवस्था में अन्य धातुओं के लिए σ का मान 1 जू०/मी^{2} तथा अधिक हो जाता है।

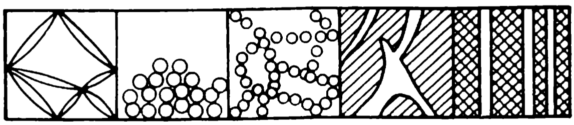
सभी स्वतः घटने वाली क्रियाएं गिब्ज़ ऊर्जा के कम होने की दिशा में घटती हैं (दे० § 67)। इसी प्रकार कला के पृथक्करण की सीमा पर स्वतंत्र पृष्ठ ऊर्जा, जो उसके विशिष्ट मान (σ) तथा पृष्ठ की मात्रा (S) के गुणनफल के बराबर है, के कम होने की दिशा में घटती है। सभी तंत्रों में σS गुणनफल की न्यूनतम मान की ओर प्रवृत्ति होती है जो नियत तंत्र के लिए उसके आयतन में बिना कोई परिवर्तन हुए सम्भव हो। इसके फलस्वरूप परिक्षिप्त तंत्र नियमतः तापीय गतिकी दृष्टिकोण से अस्थिर होते हैं।

यदि σ का मान स्थायी हो, तो कुल सतह (S) के कम होने की दिशा में क्रियाएँ स्वतः घटेंगी जिसके फलस्वरूप परिक्षेपण कम हो जाएगा, अर्थात कणों का आधार बढ़ जाएगा। इसीलिए छोटी-छोटी बूंदों का धुंध, बर्षा के अभ्रों व इमल्शनों में मिलन हो जाता है, सभी उच्च परिक्षिप्त कणों का स्वरूप अधिक विशाल हो जाता है, यह सब परिक्षिप्त तंत्र को नष्ट कर देता है : धुंध तथा वर्षा अभ्र वर्षा द्वारा बह जाते हैं, इमल्शनों का पृथक्करण हो जाता है, कोलाइडी विलयनों का स्कंदन हो

जाता है यानी परिक्षिप्त कला के निक्षेपणों तथा परिक्षिप्त माध्यम में विभाजन हो जाता है (स्कंद, चित्र 89 b c), या फिर परिक्षिप्त कला के खिंचे हुये कणों की स्थिति में जेल में रूपांतरण हो जाता है (चित्र 89, a)।

अपनी परिक्षेपण डिग्री बनाए रखने की अवचूर्णित तंत्रों की विशेषता पुंज स्थायित्व कहलाती है। पदार्थ की कोलाइडी अवस्था के पुंज अस्थायित्व का कारण कोलॉइडी तंत्रों के समय एवं विभिन्न प्रकार के पदार्थों को डालने के प्रभाव में बदलता है।

यदि किसी तंत्र में पृष्ठ मात्रा परिवर्तित नहीं हो सकती है, तो σS गुणनफल का स्वतः कम हो जाना कला के पृथक्करण की सीमापर σ के मान का कम हो जाने से होता है। यह अधिशोषण क्रियाओं (दे० § 109) के घटने का कारण है जो कला के पृथक्करण की सीमा पर पदार्थ की सान्द्रता तथा संयोजन को परिवर्तित करती हैं।



चित्र 89. संबंधित परिक्षेपित (*a–c*) तथा केशिका-परिक्षेपित तंत्र (*d,e*) जेल (*a*), घनत्व वाले (*b*) तथा रंध्रयुक्त (*c*)।

स्वतंत्र पृष्ठ ऊर्जा को कम करने की स्वतः होने वाली क्रियाओं की सामान्य प्रकृति न केवल उच्च परिक्षिप्त तंत्रों की चंचलता का कारण हैं, बल्कि अन्तराकलीय पृष्ठों को बदल कर परिक्षेपण स्थायित्व का मार्ग खोल देता है। (दे० § 113)

पदार्थ की उच्च परिक्षिप्त अवस्था गुणात्मक रूप से उसकी विद्यमानता का विशेप रूप है। इसीलिए प्रकृतिविज्ञान का वह भाग, जो पृष्ठ परिघटनाओं एवं विजातीय उच्च-परिक्षिप्त तंत्रों के वस्तुनिष्ठ भौतिकीय तथा रासायनिक नियमों का अध्ययन करता है, एक स्वतंत्र वैज्ञानिक विषय बना जिसका नाम रखा गया कोलाइॅडी रसायन।

107. **कोलाइड तथा कोलाइडी विलयन.** कोलाइडी आकारों वाले कणों की विभिन्न आंतरिक संरचना हो सकती है जिसका काफ़ी प्रभाव न केवल कोलाइडी विलयनों को बनाने की विधियों पर, बल्कि उनके गुणों पर भी पड़ता है। कोलाइडी आकारों वाले मूल कणों की आंतरिक संरचना तीन प्रकार की हैं।

1. ससपेन्डाइड (या अनुत्क्रमणीय कोलाइड, द्रव-विरोधी कोलाइड)। ये धातुओं, उनके आक्साइडों, हाइड्रोक्साइड, सल्फाइडों, तथा अन्य लवणों के कोलाइडी विलयनों को कहते हैं। इन पदार्थों के कोलाइडी विलयनों की परिक्षिप्त कलाओं के मूल कण अपनी आन्तरिक संरचना के अनुसार तदनुरूपी संहत पदार्थ की संरचना से भिन्न नहीं हैं तथा आण्विक या आयनी क्रिस्टलीय जाली रखते हैं। सस्पेन्डाइड – आम विजातीय

उच्चपरिक्षिप्त तंत्र हैं जिनके गुण काफ़ी अधिक विकसित अन्तराकलीय पृष्ठ द्वारा निश्चित होते हैं। निलंबनों से इनकी भिन्नता अधिक उच्चपरिक्षेपण के कारण है। इन्हें ससपेन्डाइड इसीलिये कहा जाता है कि, निलंबनों की भाँति, ये काफ़ी देर तक परिक्षेपण के स्थायीकारी की अनुपस्थिति में नहीं रह सकते। इन्हें अनुत्क्रमणीय इसलिये कहते हैं कि निक्षेपण, जो ऐसे कोलाइडी विलयनों के वाष्पीकरण के बाद बच जाते हैं, पुनः परिक्षिप्त माध्यम के सम्पर्क में आकर सॉल नहीं बनाते हैं। द्रव-विरोधी इनको नाम देने का कारण यह कल्पना थी कि इस प्रकार के कोलाइडी विलयनों के विशेष. गुण परिक्षिप्त कला तथा परिक्षिप्त माध्यम की बहुत ही क्षीण पारस्परिक त्रिया के कारणवश् हैं। द्र-विरोधी सॉलों की सान्द्रता अधिक नहीं होती, प्रायः 0.1% से कम होती है। ऐसे सॉलों की श्यानता परिक्षिप्त माध्यम की श्यानता से नगण्य रूप से ही पृथक होती है।

सामान्यतः परिक्षिप्त तंत्रों की भांति द्रव-विरोधी सॉल अणुओं और स्थूल पिंडों के विश्व के बीच अपने मध्यवर्ती स्थान के अनुसार दो प्रकार से प्राप्त किये जा सकते हैं: परिक्षेपण विधि द्वारा, अर्थात स्थूल पिंडों के अवचूर्णन द्वारा, और आण्विक-या आयनी-विलीन पदार्थों के संघनन की विधि द्वारा। दलन, पैषक व अपघर्षण द्वारा अवचूर्णन अपेक्षाकृत स्थूलपरिक्षिप्त पाउडर बनाता है (>60 मा० मी०)। और अधिक अवचूर्णन करने के लिए या तो विशेष उपकरणों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें कोलाइडी चक्की कहते हैं, या परध्वनि प्रयुक्त की जाती है।

संघनन विधि – अविलयशील यौगिकों को विनिमय, जलयोजन, अपचयन, उपचयन अभिक्रियाओं द्वारा प्राप्त करना है।

अत्यधिक तनु विलयनों तथा एक घटक की अतिरिक्त मात्रा होने पर इन अभिक्रियाओं को करके निक्षेपण के स्थान पर कोलाइडी विलयन प्राप्त किये जाते हैं।

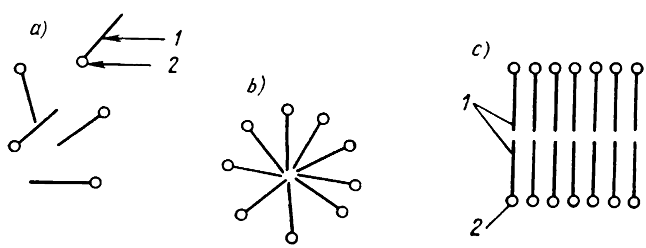
लियोसॉस को विलायक के विनिमय द्वारा करने की विधि भी संघनन विधियों में आती है। उदाहरणतया, कॉलोफोनी का कोलाइडी विलयन प्राप्त करने के लिए उसके स्प्रिट विलयन में जल डालना होगा जिसमें यह अविलयशील है।

जैसा कि गत पृष्ठों में स्पष्ट किया गया था (§ 106) परिक्षेपण जितना अधिक होगा, स्वतंत्र पृष्ठ ऊर्जा उतनी ही अधिक होगी, परिक्षेपण स्वतः कम करने की प्रकृति उतनी ही अधिक होगी। इसीलिये स्थायी अर्थात काफी देर तक संरक्षित निलंबन, इमल्शन, कोलाइडी विलयनों के लिये न केवल निश्चित परिक्षेपण आवश्यक है, बल्कि उनके स्थायित्व की अवस्थाएँ तैयार करना भी आवश्यक है। इसको ध्यान में रखते हुये स्थायी परिक्षिप्त तंत्र कम से कम तीन घटकों से बने हैं: परिक्षिप्त माध्यम, परिक्षिप्त कला तथा परिक्षिप्त तंत्र के स्थायीकारी।

स्थायीकारी की प्रकृति आयनी, आण्विक तथा प्रायः उच्च-आण्विक भी होती है। द्रव-विरोधी कोलॉइडों के सॉलों का आयनी स्थायित्व उन वैद्युतअपघट्यों की कम

सान्द्रता की विद्यमानता के साथ सम्बंधित है जो परिक्षिप्त कला तथा परिक्षिप्त माध्यम के बीच ग्रायनी सीमावर्ती स्तर बनाते हैं (दे० § 112 तथा 113)।

उच्चग्राण्विक यौगिक (प्रोटीन, पॉलिपेप्टाइड, पॉलि वाइनिल स्प्रिट तथा अन्य), जिन्हें परिक्षिप्त तंत्रों के स्थायित्व के लिये डाला जाता है, रक्षी कोलाइड कहलाते हैं। कला के पृथक्करण की सीमा पर अधिशोषण करके वे पृष्ठ स्तर पर जालीदार व जेलरूपी संरचना बनाते हैं और संरचनात्मक यांत्रिकीय अवरोध खड़ा करते हैं जो परिक्षिप्त कला के कणों को जुड़ने से रोकता है। निलंबित अशुद्धियों, पेस्ट, झाग,



चित्र 90. मिसेली कोलाइडों के विलयन: आण्विक विलयन (*a*), गोल (*b*) तथा शीत शीटनुमा मिसेल(*c*) के कोलाइडी विलयन।
डाइफिली अणु: 1– हाइड्रोकार्बन; 2– ध्रुवीय (–COOH, –OOH. –NH_2 ग्रुप।

सकेन्द्रित इमल्शन के स्थायित्व के लिए संरचनात्मक-यांत्रिकीय स्थायित्व का बहुत महत्व है।

II सहस्थित या मिसेली कोलाइड. इन्हें अर्ध-कोलाइड कहते हैं। इस प्रकार के कोलाइडी परिक्षिप्त कण निम्नग्राण्विक पदार्थों के डाइफिली * अणुओं की पर्याप्त सान्द्रता पर गोलीय या प्लेटनुमा आकृति वाले अणुओं के पुंजों – मिसेल – के साथ सहवास करके पैदा होते हैं (चित्र 90):

$$\text{आण्विक, पथार्थ विलयन} \rightleftarrows \text{मिसेली, कोलाइडी विलयन (सॉल)}$$

मिसेल सही प्रकार स्थित अणुओं के पुंज है जिन्हें परिक्षिप्त बलों द्वारा रोक लिया गया है।

धोने वाले पदार्थों के जलीय विलयनों (उदाहरणतया, साबुन) उच्चवसीय अम्लों के क्षारीय लवण एवं बड़े अणुओं वाले कुछ कार्बनिक है। अन्य माध्यमों में – जैसे, ऐथिल स्प्रिट में, – ये पदार्थ आण्विक विलयन बना कर विलीन हो जाते हैं।

---

* डाइफिल उन अणुओं को कहते हैं जो अध्रुवीय विलायकों के साथ सम्बंधित हाइड्रोकार्बन मूलकों एवं जल के साथ संम्बंधित हाइड्रोफिल (ध्रुवीय) ग्रुप से बने हैं।

III आण्विक कोलाइड. इन्हें उत्क्रमणीय या लयरागी कोलाइड भी कहते हैं। [illegible] दस हज़ार से कई लाखों आण्विक द्रव्यमान वाले अणुओं* से बने प्राकृतिक तथा संश्लिष्ट उच्चआण्विक पदार्थ हैं। इन पदार्थों के अणुओं का आकार कोलाइडी कणों के आकार के बराबर होता है, इसीलिए इन अणुओं को स्थूलअणु कहते हैं।

उच्चआण्विक यौगिकों के तनु विलयन—ये पथार्थ, सजातीय विलयन हैं जो परम तनु होने पर तनुविलयनों के सामान्य नियमों में अनुसार व्यावहार करते हैं। उच्च-आण्विक यौगिकों के विलयनों को द्रव्यमान की उच्च सान्द्रता को दस और दस से अधिक प्रतिशत द्वारा भी बनाया जा सकता है। लेकिन ऐसे विलयनों की मोल सान्द्रता विलीन हुए पदार्थ के अधिक आण्विक द्रव्यमान के कारणवश कम है। अतः, 100 000 आण्विक द्रव्यमान वाले पदार्थ का दस-प्रतिशत विलयन लगभग 0.0011 M विलयन है।

शुष्क पदार्थ को उपयुक्त विलायक के सम्पर्क में लाने से आण्विक कोलॉइडों के विलयनों से प्राप्त किया जा सकता है। अध्रुवीय स्थूल अणु हाइड्रोकार्बनों में विलीन हो जाते हैं (जैसे, रबड़—बेन्जीन में), और ध्रुवीय स्थूल अणु—ध्रुवीय विलायकों में (जैसे, कुछ प्रोटीन—जल तथा लवणों के जलीय विलयनों में)। इस प्रकार के पदार्थ को उत्क्रमणीय कोलाइड इसीलिए कहा गया कि उनके विलयनों का वाष्पीकरण करने के बाद विलायक की कुछ मात्रा और मिलाने पर शुष्क अवशेष पुनः विलयन में आ जाता है। लयरागी कोलाइड नाम इस कल्पना पर आधारित है कि (यह कल्पना गलत लगी थी) माध्यम के साथ तीव्र पारस्परिक क्रिया द्रव-विरोधी कोलाइड से इनका विभेद कराती है।

स्थूलआण्विक कोलाइडों का विलयन फूलन स्तर से भी गुज़रता है जो इस प्रकार के पदार्थ की महत्वपूर्ण गुणात्मक विशेषता है। विलायक के अणु फूल कर ठोस पॉलिमेर में प्रवेश कर जाते हैं तथा स्थूल अणुओं को उनके स्थान से हटाने लगते हैं जो अपने बड़े आकार के कारण धीरे-धीरे विलयन में विसरित होते हैं जिसके कारण बाहरी तौर पर पॉलिमेर का आकार और बढ़ जाता है। फूलना असीमित भी होता है जब इसका अन्तिम परिणाम पॉलिमेर का विलयन में संक्रमण हो,—तथा सीमित भी होता है जब फूलने से पॉलिमेर विलीन नहीं होता है। प्रायः सीमित फूलन उन पॉलिमेरों का होता है जिनकी संरचना त्रिविम होती है जो इस बात द्वारा भिन्न है कि पूर्ण पदार्थ के परमाणु संयोजकता आबन्धों द्वारा जुड़े हुए हैं। पॉलिमेर का फूलन कम करने के उद्देश्य से उनके स्थूल अणुओं की सिलाई. करके पॉलिमेरों का रूपांतरण अनेक वस्तुओं को बनाने की क्रिया का महत्वपूर्ण चरण है) सिझे हुए चमड़े को पीटना, रबड़ का वल्कनीकरण)।

---

* प्राकृतिक व संश्लिष्ट उच्चआण्विक यौगिकों व पालिमेरों के बारे में दे० § 177.

उच्चआण्विक यौगिकों के विलयनों में श्यानता काफी अधिक होती है जो विलयन की सान्द्रता के बढ़ने के साथ-साथ बढ़ जाती है। स्थूल आण्विक विलयनों के संघनन की वृद्धि, पदार्थों की अतिरिक्त मात्रा का बढ़ाया जाना, जो पॉलिमेर की विलेयशीलता को कम कर देते हैं, तथा, प्रायः, ताप का कम हो जाना—ये सब जेलीकरण कर देते हैं अर्थात् अधिक श्यान, लेकिन वाष्पशील, विलयन का रूपांतरण ठोस जेल में कर देते हैं, जो अपनी आकृती बनाये रखती है। अधिक खिंचे हुए स्थूल आण्विक पॉलिमेरों के विलयन विलयनों की थोड़ी-सी सान्द्रता पर जेल बन जाते हैं। अतएव, जिलेटिन तथा एगार-एगार 0.2-1.0% विलयनों के जेल तथा जेली बनाते हैं। शुष्क जेल पुनः फूल सकते हैं (यह उनका जैली से काफी अधिक विभेद है)।

पॉलिमेर के विलयनों में से केशिका पदार्थों को प्राप्त करने के लिए जेल का बनना एक महत्वपूर्ण चरण है। उच्चआण्विक यौगिकों के विलयनों के गुण उनकी सान्द्रता में वृद्धि होने के साथ निम्न-आण्विक यौगिकों के विलयनों के गुणों से भिन्नता काफ़ी बढ़ती जाती है। इसका कारण है पृथक स्थूल अणुओं के बीच पारस्परिक क्रिया जिसके फलस्वरूप परआण्विक संरचना बन जाती है जो पालिमेर से बनी वस्तु के गुणों पर काफी प्रभाव डालती है (केशिकाएँ, प्लास्टिक)।

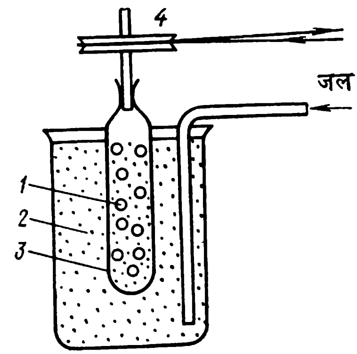
अन्य पदार्थों की भाँति, उच्चआण्विक यौगिक उपयुक्त स्थितियों में उच्चपरिक्षिप्त—कोलाइडी अवस्था में भी प्राप्त किये जा सकते हैं। पॉलिमेरों के अविलय द्रवों में अधिकांशतः जल में, उनके ऐसे परिक्षेपण लैटेक्स कहलाते हैं, लैटेक्सों की परिक्षिप्त कला के कण की आकृति लगभग गोलाकार होती है तथा इनका आकार 10-100 ना० मी० तक होता है।

पारिभाषिक शब्द "कोलाइडी", जिसका अर्थ है "गोंद-सा" (ग्रीक "कोला"—गोंद, "एईदोस"—जैसा) 1861 में प्रयुक्त हुआ था, जब स्काटलैंड के रसायनज्ञ थामस ग्राहम ने पदार्थों को अलग करने के लिए अपोहन प्रयुक्त किया (चित्र 91)। अपोहन विधि का आधार है विलयनों के घटकों की महीन फिल्मों या झिल्लियों (जैसे, सेलोफेन, पाचमेंट, नाइट्रो सेल्युलोस, ऐसिटो सेल्युलोस) में से विस्तारित होने की विशेषता। कोलाइडी विलयनों तथा उच्चआण्विक यौगिकों के विलयनों का शोधन करने के लिये इस विधि को बहुत प्रयुक्त किया जाता है। अपोहन के दौरान झिल्लियों में से न गुज़रने वाले पदार्थों का नाम ग्राहम ने कोलाइड रखा, तथा अपोहित हो जाने वाले पदार्थों का नाम क्रिस्टलाभ रखा क्योंकि उनके विलयनों के वाष्पीकरण के फलस्वरूप क्रिस्टलीय निक्षेपण रह जाते हैं।

पदार्थों का कोलाइड तथा क्रिस्टलाभ में विभाजन त्रुटिपूर्ण सिद्ध हुआ। प० प० वेईमार्न, पीटर्सबर्ग खनिज संस्थान के अध्यापक, ने कोलाइडी अवस्था में अनेक सामान्य "क्रिस्टलाभ" प्राप्त किये तथा इस प्रकार (1906 में) सिद्ध किया, कि उपयुक्त स्थितियों में किसी भी पदार्थ को कोलाइडी अवस्था में प्राप्त किया जा सकता है।

20 वीं शताब्दी की चौथे-पाँचवे दशक में उत्क्रमणीय (लयरागी) कोलाइडी के मूल कणों की, जो स्थूल अणु थे, रासायनिक प्रकृति स्पष्ट हुई। इसके साथ ही कोलाइडी रसायन का एक भाग अलग हुआ – एक नया रासायनिक विषय – उच्चआण्विक यौगिकों का भौतिकीय रसायन। लेकिन कुछ ऐतिहासिक कारणों से, कोलाइडी रसायन का विषय, § 106 में बताये गए विस्तृत विवरण की तुलना में कहीं अधिक है और वह है: पदार्थों के अन्तराकलीय पृष्ठों व उच्चआण्विक यौगिकों की विजातीय परिक्षिप्त अवस्था का भौतिकीय रसायन, जिसका आधार है: लयरागी तथा द्रव-विरोधी कोलाइडों के आण्विक-गतिकीय गुण, आण्विक कोलइडों में विजातीय संरचनाओं का प्रायः बन जाना, उच्चआण्विक यौगिकों तथा उच्च परिक्षिप्त तंत्रों की अनेक रचनाओं की विद्यमानता (जैसे, रबड़ अनेक वार्निश, कॉच-प्लास्टिक, फेन-प्लास्टिक)।

108. **परिक्षेपण विश्लेषण. परिक्षिप्त तंत्रों के प्रकाशीय तथा आण्विक-गतिकीय गुण.** परिक्षेपण विश्लेषण परिक्षिप्त कला के विशिष्ट पृष्ठ और कणों के आकारों को निश्चित करता है तथा वह परिक्षिप्त तंत्रों की स्थिति में विभिन्न आकारों वाले भागों में परिक्षिप्त पदार्थ के विस्तारण को निश्चित करता है।

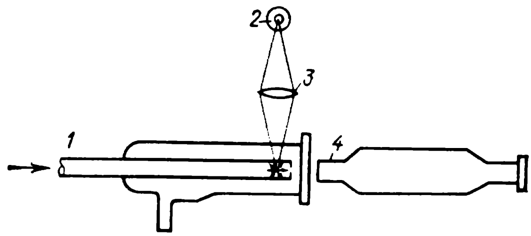


चित्र 91. अपोहन का आरेख:– 1 आन्तरिक मूलक जिसका अपोहन होता है; 2 – बाहरी द्रव; 3 – अपोहन करने वाली झिल्ली। इसके रंध्रों में से केवल निम्न आण्विक पदार्थ ही गुजरते हैं, 4– घिरनी, जिसके द्वारा आन्तरिक विलयन वाली झिल्ली को घुमाया जाता है।

परिक्षेपण विश्लेषण की सरलतम विधि है: चालनी विधी – विचाराधीन नमूने को निश्चित आकार वाले छिद्रों की चालनी में से विप्रथन किया जाता है। प्रत्येक भाग का द्रव्यमान ज्ञात करके विभिन्न आकार वाले भागों में विचाराधीन नमूने के विस्तारण को ज्ञात किया जा सकता है। चालनी विधि द्वारा 600 मा० मी० व्यास वाले पाउडर का विश्लेषण किया जा सकता है। अधिक उच्च परिक्षिप्त तंत्रों के परिक्षेपण विश्लेषण की विधियाँ उनके प्रकाशीय तथा आण्विक-गतिकीय गुणों पर आधारित होती हैं।

पदार्थ के साथ प्रकाश की पारस्परिक क्रिया प्रकाश के तरंग दैर्घ्य और कण के आकार जिस पर प्रकाश किरण गिर रही है, के अनुपात पर निर्भर करती है। यह पारस्परिक क्रिया ज्यामितीय प्रकाशिकी के नियमों (परावर्तन, अपवर्तन) के अनुसार होती है, यदि पदार्थ के आकार प्रकाश के तरंग दैर्घ्य से अधिक हों। यदि कण के आकार गिरने वाले प्रकाश के तरंग दैर्घ्य के आधे से कम हों, तो प्रकाश के विवर्तन

के परिणाम स्वरूप उसका प्रकीर्णन हो जाना है। दृश्य प्रकाश का क्षेत्र 760 से 400 ना० मी० तरंग-दैर्घ्य द्वारा व्यक्त होता है। इसीलिए आण्विक तथा कोलाइडी तंत्रों में दृश्य प्रकाश का प्रकीर्णन होता है, तथा पार हो जाने वाले प्रकाश में ये विलयन पारदर्शी हैं। प्रकाश के प्रकीर्णन की अधिकतम तीव्रता कोलाइडी तंत्रों में होती हैं, जिनके लिए प्रकाश का प्रकीर्णन एक विशिष्ट गुण है। प्रकाश स्रोत की किरण के मार्ग को विलयन में इस प्रकार देखने से, ताकि आप विलयन को इस किरण की दिशा से 90° कोण पर देखें, कोलाइडी विलयन तथा यथार्थ विलयन में विभेद किया जा सकता है। इसी नियम के आधार पर अतिसूक्ष्मदर्शी उपकरण बनाया गया है जिसमें, अन्य सामान्य सूक्ष्मदर्शी के विपरीत, वस्तु में से गुज़र रहे प्रकाश की किरण पर 90°



चित्र 92. ब० व० देरयागिन तथा ग० य० व्लासेन्को के किरण-पुंजी परासूक्ष्ममापी का आरेख। 1 – टैंक; 2 – प्रकाश-स्रोत; 3 – लेन्स; 4 – सूक्ष्ममापी की नलिका।

कोण बनाते हुए वस्तु को देखते हैं। ब० व० देरयागिन और ग० या० व्लासेन्को के अतिसूक्ष्मदर्शी का आरेख चित्र 92 में दिया गया है। इस उपकरण की मदद से ऐरोसॉल तथा कोलाइडी विलयनों में परिक्षिप्त कणों की सान्द्रता निश्चित की जाती है।

कोलाइडी कणों, विषाणुओं, अनेक स्थूल अणुओं, अधिक बड़े प्रोटीनों के अणुओं की आकृति को सर्वप्रथम प्रतिदीप्तिशील पर्दे पर देखा गया तथा इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी की मदद से जिसे 20 वीं शताब्दी के चौथे दशक में बनाया गया था, चित्र भी लिया गया। पर्याप्त त्वरणकारी विभवान्तर पर इलेक्ट्रानों के प्रवाह का तरंग दैर्घ्य 10^{-10} मी० है जो कोलाइडी कणों के आकार से कम है। इसीलिए इलेक्ट्रानों की कोलाइडी कणों के साथ पारस्परिक क्रिया ज्यामितीय प्रकाशिकी के नियमों के साथ होती है।*

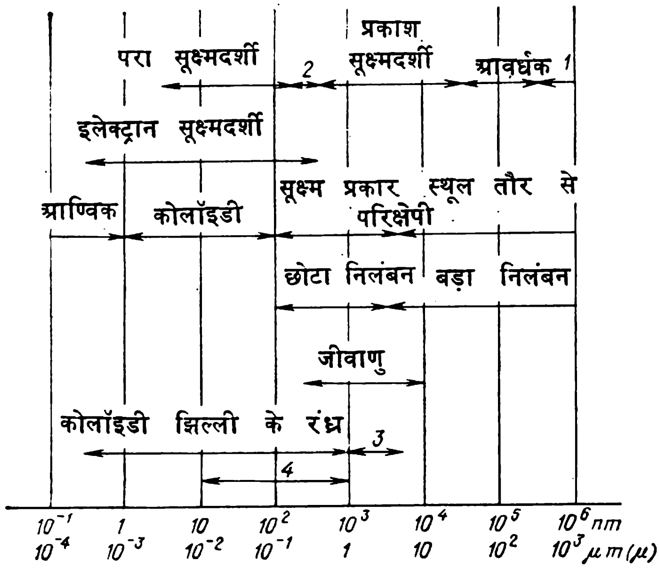
चित्र 93 में परिक्षिप्त तंत्रों के अध्ययन की प्रकाशीय विधियों की सीमाएँ दी गई हैं। कोलाइडी कण कागज़ के फिल्टरों में से तो गुज़र जाते हैं लेकिन पराफिल्टरों में से नहीं गुज़र पाते (झिल्लीदार फिल्टर) जो फिल्म के रूप में पॉलिमरों के जेली

---

* इलेक्ट्रानी सूक्ष्मदर्शी का अधिकतम आवर्धन 600 000 गुना है, जबकि प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी का केवल 1500 गुना।

होते हैं। पराफिल्टर के रंध्र का अर्धव्याम ज्ञात होने पर कोलाइडी कणों का आकार मालूम किया जा सकता है।

आण्विक गतिकीय वे गुण होते हैं जो किसी तंत्र को बनाने वाले कणों की अव्यवस्थित तापीय गति के साथ सम्बंधित है। आण्विक–कोलाइडी तथा सूक्ष्ममापी–परिक्षिप्त तंत्रों के आण्विक-गतिकीय व्यवहार में भिन्नताएँ इन तंत्रों को बनाने वाले कणों के आकारों पर निर्भर करती हैं, तथा इनकी सांख्यिक प्रकृति होती है।



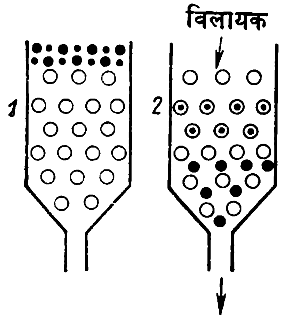
चित्र 93. परिक्षेपित तंत्रों के कणों के आकार तथा परिक्षेपण को निश्चित करने की प्रकाशीय विधियों का प्रयोग। 1–आँख; 2–परावैगनी सूक्ष्ममापी। तुलना करने के लिये कागज़ के फिल्टरों के रंध्र (3) तथा पराफिल्टरों के रंध्र (4) दिखाये गये है।

परिक्षिप्त तंत्रों के आण्विक-गतिकीय गुणों में ब्राउनी गति, विसरण तथा अवसादन आते हैं।

कोलाइडी तथा सूक्ष्ममापी परिक्षिप्त कणों की अव्यवस्थित गति–प्रकाश-किरण में नाचरहे मच्छरों की गति की भाँति–ब्राउनी गति कहलाती है। इस परिघटना का नाम इंग्लिश वनस्पतिज्ञ रोबर्ट ब्राउन के नाम पर रखा गया, जिसने 1827 में सर्वप्रथम सूक्ष्मदर्शी में जल में पौधे के पराग के निलम्बन में उसके कणों की निर्विघ्न कम्पायमान गति देखी थी।

सन् 1905 में आइन्स्टाइन ने तथा सन् 1906 में उससे स्वतंत्र पोलैंड के भौतिकतज्ञ म० स्मोलूखोवस्की ने ब्राउनी गति का आण्विक-सांख्यिकीय सिद्धांत विकसित

किया, व यह सिद्ध किया कि वह परिक्षिप्त माध्यम के अणुओं की अदृश्य तापीय अव्यवस्थित गति का सूक्ष्मदर्शी में परावर्तन है। माध्यम के अणुओं की ओर से एक ही समय में कण को मिलने वाली टक्करें जितनी कम प्रतिकारित होंगी, ब्राउनी गति की तीव्रता उतनी ही अधिक होगी। वह ताप के बढ़ने, कणों के आकार का छोटा हो जाने तथा माध्यम की श्यानता कम हो जाने से बढ़ जाती है। 1-3 मा० मी० से अधिक बड़े कणों के लिये ब्राउनी गति रूक जाती है। 20 वीं शताब्दी के पहले दशक में जीन पेरेन ने आइन्स्टाइन-स्मोलूखोवस्की समीकरण की मदद से गीलाकरा कणों की ब्राउनी गति का अध्ययन करते हुये ऐवोगाड्रो सँख्या ज्ञात की, जिस का मान अन्य विधियों द्वारा प्राप्त किये गये इसके मान के साथ भली प्रकार मिलता था। इस प्रकार ब्राउनी गति के आण्विक-सांख्यिकीय सिद्धाँत की सच्चाई सिद्ध हुई तथा निर्विघ्न तापीय अव्यवस्थित गति में स्थित परिक्षिप्त माधयम के अणुओं की विद्यमानता भी सही प्रमाणित हुई। वर्तमान समय में ब्राउनी गति के अध्ययन को परिक्षिप्त कणों के आकारों को निश्चित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है।



चित्र 94. जेल-क्रोमैटोग्राफी का आरेख. 1 – जेल (गोलाकार श्वेत कण) वाले स्तम्भ पर विचाराधीन विलयन लाया जाता है; 2 – वियायक द्वारा स्तम्भ को धोने पर।

माध्यम के स्थायी ताप व श्यानता पर विसरण की चाल कण की मात्रा तथा आकृति पर निर्भर करती है। विसरण का धीमा होना कोलाइडी तंत्रों को निम्न आण्विक पदार्थों के यथार्थ विलयनों से पृथक करता है।

गुरूत्वीय क्षेत्र के प्रभाव में कणों का श्यान माध्यम में स्वतंत्र रूप से निक्षेपण अवसाद कहलाता है। अवसाद की चाल पृथ्वी के गुरूत्वीय क्षेत्र के त्वरण g, कणों तथा चारों ओर के माध्यम के घनत्वों में अन्तर, अवसाद करने वाले गोलाकार कणों के अर्ध-व्यास के वर्ग के समानुपातिक है तथा माध्यम की श्यानता के व्युत्क्रमानुपातिक है (स्टोक्स नियम, 1880 ई०)।

केवल पर्याप्त रूप से बड़े कणों का ही अवसाद होता है। अतः, क्वार्टस के पाँच माइक्रोनी कण जल में एक घंटे में 3 सें. मी० सादन करते हैं। एक माइक्रोनी या अधिक छोटे कणों के अवसाद को ब्राउनी गति रोकती है। इसीलिए यथार्थ तथा कोलाइडी विलयन, उच्चआण्विक यौगिकों के विलयनों को मिलाकर, अवसादी रूप से स्थिर होते हैं, तथा निलंबन अस्थिर होते हैं।

गुरूत्वीय वल के प्रभाव में निलंबनों का सादन कराके, कुछ निश्चित समय के वाद निलंबन में निश्चित गहराई पर स्थित किये गए प्याले में इकट्ठे हुए कणों के द्रव्यमान

को ज्ञान करें। इस प्रकार विभिन्न आकार के भागों में कणों के वितरण को ज्ञात किया जा सकता है। परिक्षेपण विश्लेषण की इस विधि का नाम अवसाद विश्लेषण रखा गया। 100 से 1 मा० मी० वाले कणों के, विशेषतः मृदा तथा भूमि, परिक्षिप्त तंत्रों के अध्ययन में इसे काफ़ी प्रयुक्त किया जाता हैं।

द्रुत अपकेन्द्रित, जिसमें त्वरण गुरूत्वीय बल के त्वरण से दस लाख गुना अधिक है, के प्रयोग ने प्रोटीनों व अन्य उच्चआण्विक यौगिकों तथा विषाणुओं के अवसाद के अध्ययन को सम्भव कर दिया।

उच्चआण्विक पदार्थों के पृथक्करण एवं उनके आण्विक द्रव्यमानों को ज्ञात करने के लिए गत वर्षो में इ० पोराट तथा य० फलोडीन (स्वीडन) द्वारा प्रस्तुत जेली-फिल्टरन विधि (जेली-क्रोमेटोग्राफी) का प्रयोग बहुत प्रचलित हो गया है। विचाराधीन विलयन को फूले हुये त्रिविम पॉलिमरों के कणों द्वारा भरी नलिकाओं में से फिल्टरन करने को जेली-क्रोमेटोग्राफी कहते हैं (सेफाईक्स)। सेफाईक्स के फूले हुए कण एक प्रकार के मौलिक "कोश" हैं जिनके अन्दर केवल उपयुक्त आकार वाले अणु (या आयन) ही विसरण की मदद से जा सकते हैं। अधिक बड़े अणु फिल्टर के प्रवाह के साथ सेफाईक्स के कणों के बराबर से निकल जाते हैं (चित्र 94)। "कोशों" के अलग-अलग आकारों पर आधारित सेफाईक्स की विभिन्न कोटियों की मदद से निम्न आण्विक पदार्थों को उच्चआण्विक पदार्थों से पृथक किया जाता है तथा स्थूलअणुओं का पृथक्करण, स्थूलआण्विक विलयनों में सहवासियों के बनने का अध्ययन किया जाता है।

109. शोषण तथा शोषण क्रियाएँ. आण्विक अधिशोषण. एक पदार्थ (शोष्य) का दूसरे पदार्थ (शोषी) द्वारा अवशोषण की कोई भी क्रिया, जो अवशोषण की यांत्रिकी से स्वतंत्र है, को शोषण कहते हैं। (लैटिनी „sorbeo" — शोषण)। शोषण की यांत्रिकी के आधार पर अधिशोषण, अवशोषण रसायनिक शोषण तथा केशिका संघनन में भेद करते हैं।

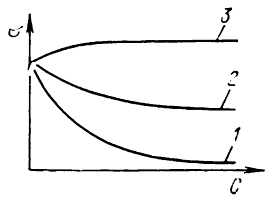
कला के पृथक्करण की सीमा पर पदार्थ की सान्द्रता में परिवर्तन अधिशोषण कहलाता है। किसी भी अन्तराकलीय पृष्ठ पर अधिशोषण हो सकता है तथा किसी भी पदार्थ का अधिशोषण हो सकता हैं। अधिशोषण संतुलन यानी सीमावर्ती कोशों तथा कलाओं के बीच पदार्थ का संतुलित विस्तारण गतिज संतुलन होता है तथा तुरंत ही बन जाता है। ताप में वृद्धी होने के साथ-साथ अधिशोषण कम हो जाता है।

अनेक स्थितियों में एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ द्वारा अवशोषण पृष्ठीय कोश द्वारा ही सीमित नहीं होता बल्कि शोषी के सम्पूर्ण आयतन में होता है। इस शोषण को अवशोषण कहते हैं। अवशोषण क्रिया का उदाहरण गैसों का द्रवों में विलीन होना है। एक पदार्थ का दूसरे द्वारा अवशोषण, जिसमें रासायनिक अभिक्रिया भाग लेती है रासायनिक अवशोषण कहलाता है। अतः, अमोनिया या हाइड्रोजन क्लोराइड का

जल द्वारा अवशोषण नमी और आक्सीजन का धातुओं द्वारा अवशोषण व आक्साइड तथा हाइड्रोक्साइड का बनना, कार्बन डाइआक्साइड का कैल्सियम आक्साइड द्वारा अवशोषण – रासायनिक अवशोषण के उदाहरण हैं। केशिका संघनन सूक्ष्मरंध्री शोषी में वाष्पों का द्रव बनने को कहते हैं। इसका कारण यह है कि द्रव द्वारा गीली की हुई तंग केशिकाओं में द्रव के convex meniscus के ऊपर वाष्पीय दाव उसी ताप पर द्रव की समतल सतह के ऊपर संतृप्त वाष्प के दाब की तुलना में कम होता है।

अतएव, शोषण क्रियाएँ अपनी यांत्रिकी के आधार पर भिन्न होती हैं। लेकिन कोई भी शोषण क्रिया द्रव गैसीय या ठोस कलाओं के स्पर्श करने की सीमा पर अधिशोषण से आरम्भ होती है।

जैसा § 106 में बताया गया था कि कलाओं के पृथक्करण की सीमा पर स्वतः होने वाली सभी क्रियाएँ स्वतंत्र पृष्ठ ऊर्जा के कम होने की दिशा में घटती हैं। अतएव, धनात्मक अधिशोषण, जो सीमावर्ती कोश में पदार्थ की सान्द्रता को बढ़ाता है, केवल उसी स्थिति में सम्भव है जब इस समय पृष्ठ तनाव की मात्रा कम होती है।

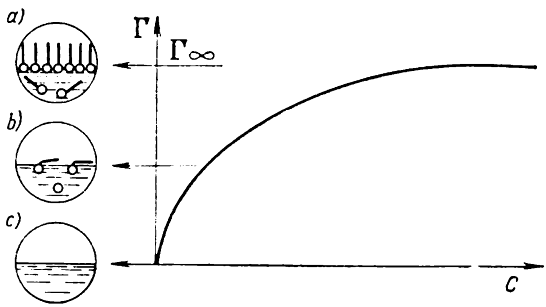


चित्र 95. विलयनों के सतही संकुचन के समतापी (σ – सतही संकुचन, c – विलयन की सान्द्रता) 1– स० स० प० के विलयन-अधिक सतही सक्रियता – (1), कम सतही सक्रियता – (2); (3)– सतही निष्क्रिय पदार्थ।

आइये, द्रव/गैस सीमा पर अधिशोषण वाले विलयनों के पृष्ठ तनावों का पारस्परिक सम्बन्ध देखें। विलयनों का पृष्ठ तनाव विलायक तथा विलीन होने वाले पदार्थ की प्रकृति, अन्तिम की सान्द्रता तथा ताप पर निर्भर करता है। स्थिर ताप पर विलयनों के पृष्ठ तनाव की विलीन पदार्थ की सान्द्रता पर निर्भरता आइसोतापीय पृष्ठ तनाव कहलाता है। विलीन पदार्थ या तो विलायक के पृष्ठ तनाव को कम कर देते हैं, तथा स्थिति में इन्हें पृष्ठ-सक्रिय पदार्थ कहते हैं (पृ० स० प०), या पृष्ठ तनाव को बढ़ा देते हैं (पृष्ठ निष्क्रिय पदार्थ), या विलायक के पृष्ठ तनाव पर कोई प्रभाव नहीं डालते (चित्र 95)। जलीय विलयनों में ध्रुवीय कार्बनिक यौगिक (स्प्रिट, अम्ल, ऐमाइन, फिनाइल) पृष्ठ-सक्रिय होते हैं। अधिकांश प्रबल वैद्युत-अपघट्य पृष्ठ-निष्क्रिय होते हैं। पृष्ठ सक्रिय पदार्थ को सतही सक्रिय पदार्थ भी करते हैं।

पृष्ठ-सक्रिय पदार्थ बड़े उपग्रुपों में विभाजित होते हैं: 1 (यथार्थ रूप से जल में विलयशील; तथा 2) मिसेली कोलाइड। पहले उपग्रुप के पृ० स० प० छोटे हाइड्रोजन कार्बन मूलकों के डिफाइल अणु होते हैं, तथा दूसरे उपग्रुप के पृ० स० प० – दीर्घ हाइड्रोजन कार्बन मूलकों के डिफाइल अणु होते हैं, जो जल में कम विलयशील हैं।

पृष्ठ कोश में विलीन पदार्थ की सान्द्रता तथा विलयन के आयतन के अन्दर इसी प्रकार के कोश में विलीन पदार्थ की सान्द्रता के अन्तर को इस पदार्थ की पृष्ठ अतिरिक्त मात्रा कहते हैं, और इसे ग्रीक अक्षर Γ ("गामा") द्वारा लिखते हैं। पृ० स० प० पृष्ठ कोश में धनात्मक रूप से अधिशोषित होते हैं, तथा, अतएव, इनके लिए $\Gamma > 0$, चूंकि इससे पृष्ठ तनाव कम हो जाता है। इसके विपरीत, पृष्ठ-निष्क्रिय पदार्थों का अधिशोषण ऋणात्मक होता है, अर्थात्, पृष्ठ कोश में इनकी सान्द्रता विलयन के आयतन में इनकी सान्द्रता की तुलना में कम होती है ($\Gamma < 0$)। इस समय पृष्ठ तनाव कुछ बढ़ जाता है तथा इसका कारण यह है कि शुद्ध जल की तुलना



चित्र 96. सतही-सक्रिय पदार्थ के विलयन में सतही अतिरिक्त मात्रा का समतापी (Γ)। सतही स्तर की संरचना: *a*—शुद्ध विलायक; *b*—स० स० प० का असंतृप्त एक आण्विक स्तर; *c*—स० स० प० का संतृप्त आण्विक स्तर।

में प्रबल वैद्युत-अपघट्यों के विलयनों में जल के पृष्ठ अणु अधिक बल के साथ विलयन के अन्दर की ओर शोषित होते हैं।

पृष्ठ सक्रिय पदार्थों के लिये अधिशोषण के आइसोताप का उदाहरण चित्र 96 में दिया गया है। विदित है कि विलयन की सान्द्रता बढ़ने के साथ Γ का मान परम स्थान तक पहुँच जाता है (Γ_∞), जब सम्पूर्ण पृष्ठ कोश में पृ० स० प० के अणु स्थित होते हैं, जिन्हें विलयकों के अणुओं ने और संघनित कर दिया है। ऐसी संतृप्त एक आण्विक पृष्ठ कोशों में पृ० स० प० के अणु सही प्रकार स्थित हैं—उनका ध्रुवी ग्रुप उनकी ध्रुवीय कला की ओर है (जैसे, जल की ओर), तथा उनके अध्रुवी हाइड्रोजन कार्बन मूलक—अध्रुवी कला (जैसे, वायु) की ओर हैं, व घेरा (pali—sade) बनाते हैं।

इसी प्रकार सीमावर्ती तनाव परिवर्तित हो जाता है तथा दो अमिश्रित द्रवों की सीमा पर तीसरे घटक का अधिशोषण हो जाता है।

ठोस पदार्थों की सतह पर गैसों व वाष्पों का अधिशोषण भी स्वतंत्र पृष्ठ ऊर्जा के कम हो जाने के फलस्वरूप होता है। ठोस पदार्थों के पृष्ठ तनाव को मापने की

कठिनाई को ध्यान में रखते हुए अधिशोषण के बारे में निष्कर्ष इन्हीं के आधार पर किये जाते हैं और इसके लिए प्रत्यक्ष रूप से पदार्थ को अधिशोषित मात्रा ज्ञात की जाती है। अन्तिम जितनी अधिक होती है, अधिशोषी पृष्ठ भी उतना ही अधिक होगा। इसीलिए अधिशोषी क्रियाओं के घटने के लिए उच्चरंध्रयुक्त अधिशोषी का बनाना अत्यंत आवश्यक है जिसका आन्तरिक पृष्ठ विकसित हो व जिसे विशिष्ट पृष्ठ, यानी 1. ग्रा० अधिशोषी के पृष्ठ, द्वारा व्यक्त किया जा सकता हो। महत्वपूर्ण रंध्री अधिशोषी सक्रिय कार्बन तथा सिलिका जैली हैं। कार्बन की अधिशोषण क्षमता XVIII शताब्दी से ही नोट कर ली गई थी। लेकिन सन् 1915 मे न० द० जेलीन्सकी * ने सक्रिय कार्बन प्राप्त करने की विधि तैयार की इसके लिए उसने यह माना कि यह विषैले पदार्थों का सर्वव्यापी अधिशोषक है। उसने अ० ल० कुमान्त के साथ मिलकर रबड़ का गैस मास्क (gas mask) बनाया। लकड़-कार्बन को सक्रिय बनाने की एक आरम्भिक विधि थी। उसकी अत्यधिक गर्म वाष्प में अभिक्रिया करना ताकि लकड़ी के शुष्कउर्ध्वपातन (sublimation) के समय उस पर इकट्ठे हुए रेसिन (resin) पदार्थों को दूर किया जा सके और सामान्य कार्बन के भरे हुए रंध्रों को साफ किया जा सके। हमारे देश में सक्रिय कार्बन को प्राप्त करने तथा उसके अध्ययन करने की आधुनिक विधियाँ म० म० दूबोनीन* ने प्रस्तुत की। सक्रिय कार्बनों का विशिष्ट पृष्ठ 1000 वर्ग मी०^2 प्रति ग्रा० तक हो जाता है। सक्रिय कार्बन जल विरोधी अधिशोषी है, वह जलीय वाष्प का अच्छी प्रकार अवशोषण नहीं करता तथा हाइड्रोजन कार्बनों का अच्छी प्रकार अवशोषण करता है।

जलीय वाष्प के अवशोषण के लिये जलरागी अधिशोषी प्रयुक्त किया जाता है जो निर्जलीय सिलिकेट अम्ल का ऐरोजेल है तथा सिलिका जेली कहलाता है। विभिन्न आकारों तथा रंध्रों के विभिन्न विस्तारण वाले सिलिका जेली के अनेक स्वरूप उद्योग में बनाये जाते हैं।

द्रवों के पृष्ठों के विपरीत, ठोस पदार्थों के पृष्ठों के सभी बिन्दु उनकी अधिशोषण विशेषता के प्रति समान रूप से मूल्य नहीं रखते हैं। गैसों की कम सान्द्रता होने पर

---

* निकोलाई दमीत्रीविच ज़ेलीन्सकी (1861 - 1953) — अकादमीशियन् समाजवादी श्रम का होरो, कार्बनिक रसायनज्ञों के विशाल स्कूल का संस्थापक। कार्बनिक उत्प्रेरण के क्षेत्र में शास्त्रीय कार्यों, एवं तेल के रसायन तथा तेल में से अनेक बहुमूल्य उत्पाद निकालने का श्रेय इन्हें ही है।

* मिखाईल मिखाईलोविच दूबोनीन (ज० 1901)। अकादमीशियन् राष्ट्रीय पुरस्कार विजेता, शोषण के क्षेत्र में महान वैज्ञानिक स्कूल का अध्यक्ष, गैसों व वाष्पों के शोषण की यांत्रिकी के बारे नयी अवधारणाएं प्रस्तुत किया, शोपक पदार्थ प्राप्त करने की नयी विधियां दीं।

अधिशोषण अधिशोषी के अधिकतम सक्रिय भागों में एकआण्विक होता है–जिसके "सक्रिय केन्द्र" पृष्ठ के पृथक परमाणु या परमाणुओं के ग्रुप हैं, जिनका बल क्षेत्र न्यूनतम संतृप्त है। अपने क्रांतिक ताप से कम ताप पर स्थित गैसों के अधिशोषण होने में दाब के बढ़ने से एकआण्विक अधिशोषण बहुअणविक अधिशोषण में रूपांतरित हो सकता है।

ताप में वृद्धि तथा दाब में पात के कारण गैसों तथा वाष्पों का विशोषण हो सकता है। इसके फलस्वरूप वायुमंडल में से विभिन्न पदार्थों को प्राप्त करने के लिये और गैसों व वाष्पों का पृथक्करण करने के लिये उद्योग में शोषण-विशोषण विधियों का काफ़ी अधिक प्रयोग किया जाता है।

विलयनों में से विलीन पदार्थों का अधिशोषण करने के लिए ठोस अधिशोषी पर हमेशा किसी न किसी मात्रा में विलायकों का अधिशोषण भी हो जाता है। इसीलिए विलयनों में से अधिशोषण का व्यवहार विलीन पदार्थों व विलायकों के बीच प्रतिस्पर्धा का होता है। विलीन वैद्युत-अनपघट्य तथा वैद्युत-अपघट्य–दोनों ही का अधिशोषण हो सकता है। इसी संदर्भ में विलयनों के आण्विक तथा आयनी अधिशोषण में विभेद किया जाता है।

जलीय विलयनों में से आण्विक शोषण के समय विलायक के अधिशोषण को कम करने के लिए प्रायः जलविरोधी अधिशोषी-सक्रिय कार्बन–प्रयोग किया जाता है, तथा अध्रुवी विलायकों–(हाइड्रोजन कार्बन)–जलरागी अधिशोषी–सिलिका जैली–प्रयुक्त किया जाता है, अधिशोषण अधिशोषी के सक्रिय केन्द्रों पर होता है, और यह प्रायः एक आण्विक होता है। व उच्च वरण क्षमता रखता है। विलयनों में से इसी प्रकार गैसों व वाष्पों में से भी, आण्विक अधिशोषण की समतापी रेखाएँ चित्र 96 में दिए गए वक्र जैसी होती हैं। द्रवों की मदद से किया गया विशोषण प्रायः धावपृथकन कहलाता है तथा इसके लिए प्रयुक्त किये गए द्रव या विलयन धावपृथकक कहलाते हैं।

शोषण स्थिर तथा गतिज दोनों ही अवस्थाओं में हो सकता है। शोषण स्थिर तब कहलाएगा जब गैसीय या द्रव अवस्था में स्थित पदार्थ (शोष्य), जिसका अवशोषण होना है, स्थिर शोषी के सम्पर्क में लाया जाता है या उसमें मिला दिया जाता है। शोषी की स्थिर सक्रियता निश्चित अवस्थाओं में शोषी के इकाई द्रव्यमान पर अवशोषित पदार्थ की मात्रा द्वारा निश्चित होती है।

शोषण को गतिज उस स्थिति में कहते हैं जब अवशोष्य पदार्थ गतिज द्रव या गैसीय कला में होता है जिसके शोषी का परतों में से फिल्टरकरण कर दिया गया है। अधिशोषी की गतिज सक्रियता को अधिशोष्य के डाले जाने से उसके पारवेधन, अर्थात जब तक कि वह अधिशोषी की परत को पार नहीं कर लेता, तक के समय द्वारा व्यक्त किया जाता है (न० अ० शीलोव, 1917)। उद्योग में नियमतः शोषण-विशोषण क्रियाएँ गतिज अवस्थाओं में की जाती है, क्योंकि इससे तकनीकी क्रियाओं की गति निर्विघ्न बनी रहती है और उन्हें स्वचलित बनाने की सम्भावना होती है।

110. आयन विनिमय अधिशोषण. वैद्युत अपघट्यों के अधिशोषण के समय अधिकतर उन धनायनों या ऋणायनों का अधिशोषण होता है जो अधिशोषी के उसी चिन्ह वाले आयनों की तुल्य मात्रा द्वारा प्रतिस्थापित हो जाते हैं। इसमें विलयन वैद्युत के प्रति उदासीन रहता है। इस प्रकार, वैद्युत्-अपघट्यों का अधिशोषण समान चिन्ह वाले आयनों के तुल्य विनिमय के द्वारा होता है, और तभी इसका नाम आयन विनिमय अधिशोषण रखा गया। वैद्युत-अपघट्यों के अधिशोषण की आयन विनिमय यांत्रिकी आरम्भ में कृषि-वैज्ञानिकों तथा मृदाविज्ञों द्वारा मृदा वैद्युत अपघट्यों के एक आयनों का अन्य आयनों द्वारा विस्थापन के समय देखी गई। क० क० गेदरोइत्स* (1918) ने मृदा में धनायनों के विनिमय की तुल्यता को सिद्ध किया तथा मृदा अवशोषी तंत्र (मृदा का उच्च परिक्षिप्त कार्बनिक खनिज भाग) के सिद्धाँत को बनाया, जिसके कारण मूल अशन के लिए प्राप्त रूप में पौधों के लिए आवश्यक विलीन लवणों को बचा कर रखने की मृदा की विशेषता है।

अकार्बनिक तथा कार्बनिक पदार्थ, जो आयन हैं, आयन विनिमयक कहलाते हैं। इन्हें धनायन विनिमयक (धनायकों के विनिमयक के लिए) तथा ऋणायन विनिमयक (ऋणायनों के विनिमय के लिए) में बाँटा गया हैं। रासायनिक उद्योग विभिन्न संश्लिष्ट आयन विनिमय पदार्थों को कणिकी पाउडर, केशिकाओं तथा झिल्लियों के रूप में बनाते हैं।

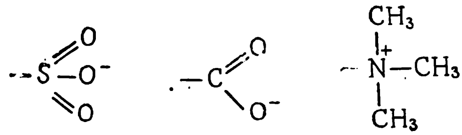
अकार्बनिक तथा कार्बनिक आयन विनिमयक जल में अविलेय होते हैं। इनकी आकृति त्रिविम होती है जिसमें आवेश के वाहक परमाणुओं के ग्रुप होते हैं, जिन्हें विभव निर्धारक आयन कहते हैं। विपरीत चिन्हों वाले आयनों को प्रतिआयन कहते हैं। वे आकृति के विभव निर्धारक आयनों के साथ स्थिर वैद्युत बल द्वारा जुड़े होते हैं, तथा इसीलिए अन्य आयनों द्वारा इनका विनिमय सम्भव है। अतः, कांच की संरचना सिलिकेन-आक्सीजन (सिलिकेट) आयनों की त्रिविम जाली है। इस त्रिविम सिलिकेन-आक्सीजन जाली के रिक्त स्थानों में क्षारीय या मृदा क्षारीय धातुओं के धनायन होते हैं जिन्हें स्थिर वैद्युत बलों द्वारा रोक लिया गया है तथा अन्य धनायनों द्वारा (विशेषकर, हाइड्रोजन के आयनों द्वारा) इनका विनिमय हो सकता है।

कार्बनिक आयन विनिमयकों में त्रिविम आकृति कार्बन परमाणुओं की जाली से बनी है, जिसके साथ सहसंयोजी आबन्धों द्वारा, उदाहरणतया, सल्फो-, कार्बोक्सी-,

---

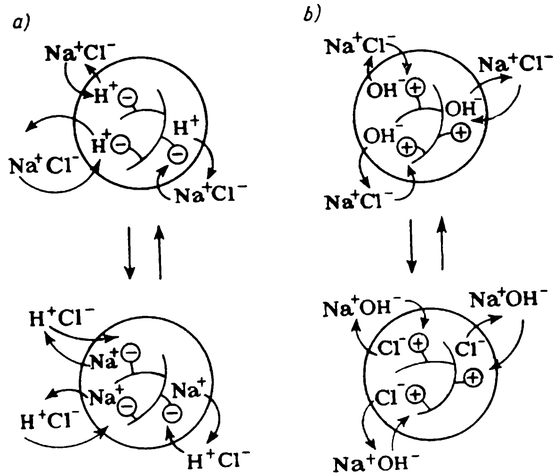
*कन्सतान्तीन कायतानोविच गेद्रोइत्स (1812-1932) अकादमीशियन, लेनिन पुरस्कारविजेता, एक प्रतिभाशाली मृदा व कृषि वैज्ञानिक व रसायनज्ञ थे। जमीन द्वारा अधिशोषण परिघटनाओं और उर्वरता में उनकी धारा भूमिका के बारे में उन्होंने मौलिक विचार प्रस्तुत किये। मिट्टी के रसायनिक विश्लेषण की अनेक विधियों को भी उन्होंने जन्म दिया।

या ट्राइमेथिलअमोनिय-ग्रुप जुड़े हैं :



चित्र 97 में धनायनों का धनायन विनिमयकों के H^+ रूप द्वारा विनिमय तथा ऋणायनों का ऋणायन विनिमयकों के OH^- रूप द्वारा विनिमय दिखाया गया है।

आयन विनिमय उत्क्रमणीय क्रिया है। बहुसंयोजक वैद्युत अपघट्य की भाँति ; धनायन विनिमयक, जिसकी संयोजकता x है, को R^{x-} द्वारा लिखें। तब वैद्युत-



चित्र 97. (a) धनायनों तथा ऋणायनों के कणों में आयनी विनिमय का आरेख। विभवमापी आयन–आयन विनिमयक की आकृति के साथ रासायनिक रूप से सम्बंधित आयनजनी समूह : क्रमश : ⊖ तथा ⊕। धनायन विनिमयक H^+ रूप में, ऋणायन विनिमयक OH^- रूप में ; H^+ तथा OH^-–आयन है, जो NaCl विलयन में क्रमश: Na^+ तथा Cl^- आयनों के साथ विनिमय करने हैं।

अपघट्य के विलयन में, उदाहरणतया, NaCl के विलयन में धनायन विनिमयक का H^+ रूप लाने पर निम्न संतुलन बन जाएगा :–

$$\underset{\text{धनायन विनिमयक}}{R^{x-}xH^+} + \underset{\text{विलयन}}{xNaCl} \rightleftarrows \underset{\text{धनायन विनिमयक}}{R^{x}(x-y)H^+yNa^+} + \underset{\text{विलयन}}{(x-y)NaCl} +$$

$$+\, yHCl \rightleftarrows \underset{\text{धनायन विनिमयक}}{R^{x-}xNa^+} + \underset{\text{विलयन}}{xHCl}$$

1 ग्रा० आयन विनिमयक द्वारा विनिमय विधि की मदद से आयनों की अवशोषित अधिकतम मात्रा अवशोषण क्षमता या विनिमय क्षमता* कहलाती है। वह 6-10 मि० ली० तुल्यांक/ग्रा० तक होती है। आयन विनिमय संतुलन आयन विनिमयक की प्रकृति, विनिमयकारी आयनों के जलयोजन, आयन विनिमयक की कला व विलयन में उनकी सान्द्रताओं द्वारा निश्चित होता है। समान संयोजकता वाले आयनों का विनिमय भी उनके आवेशों की मात्रा पर निर्भर करता है। आयन विनिमय की धारणा तथा प्रयोग में काफ़ी अधिक योग ब० प० निकोल्स्की** का है।

आयन विनिमयकों को जल की कठोरता को कम करने तथा जल का विलयणीकरण करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। (दे० §212)। इसी प्रकार इनका प्रयोग विभिन्न प्रकार के अकार्बनिक एवं कार्बनिक आयनों का विभेदन तथा पृथक्करण करने के लिए किया जाता है। चमड़ा, जल-अपघटनी, औषधीय उद्योगों में विलयनों के शोधन के लिये तथा शर्कराचाश्नी, दुग्ध एवं मदिरा में से लवणों को दूर करने के लिए आयन विनिमय को प्रयुक्त किया जाता है। प्राकृतिक विलयनों और विभिन्न उत्पादों के क्रियान्वित जलों में बहुमूल्य तत्त्वों को निकालने के लिए आयन विनिमयकों की मदद ली जाती है। आयन विनिमयकों के प्रयोग के फलस्वरूप जीवनदायक सूक्ष्मजैवों (प्रतिजैविक, ऐमीनो अम्ल) के अनेक पदार्थों का औद्योगी उत्पाद सम्भव हो सका अथवा काफ़ी अधिक सस्ता हो गया। आयन विनिमय की मदद से अनेक अकार्बनिक व कार्बनिक पदार्थों का गुणात्मक तथा सांख्यिक विश्लेषण पूर्णतया समझा जा सका।

आयन-विनिमय गुण वाले पदार्थों में काँच की कुछ किस्में होती हैं। उनकी संरचना सिलिकेट आकृति व स्थिर वैद्युत द्वारा सम्बंधित धनायनों, जो विलयन की हाइड्रोजन के आयनों से विनिमय कर सकते हैं, से बनी है। ऐसे काँच से काँच के इलैक्ट्रोड बनाये जाते हैं जिनमें हाइड्रोजन के इलैक्ट्रोड के गुण विद्यमान होते हैं। (दे० पृ० 332)। काँच के इलैक्ट्रोडों को उन स्थितियों में, जब हाइड्रोजन इलैक्ट्रोडों को प्रयुक्त करना कठिन हो या असम्भव हो (जैसे, प्रबल उपचायकों की उपस्थिति में), विलयनों की pH ज्ञात करने के लिए किया जाता है। ऐसे काँच भी तैयार कर लिये

---

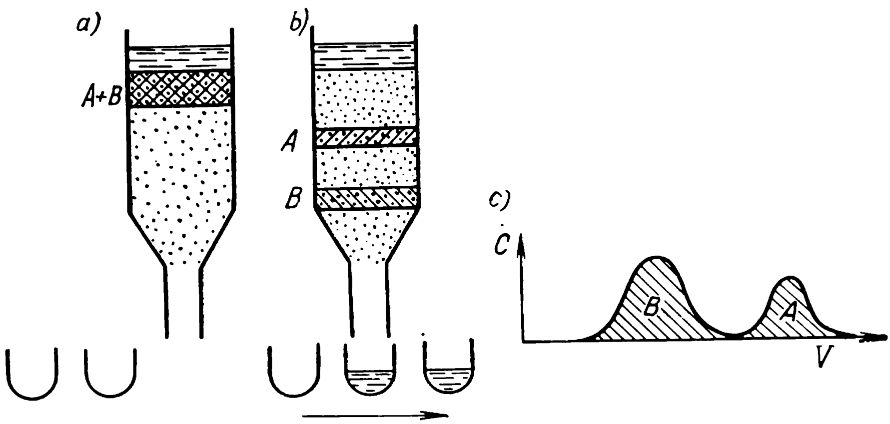
* मृदा की अवशोषण क्षमता को 100 ग्रा० मृदा के साथ सम्बंधित किया गया है तथा इसे मृदा की अवशोषण विशेषता कहते हैं।

** बोरीस पेत्रोविच निकोल्स्की (ज० 1900) – अकादमीशियन, समाजवादी श्रम का हीरो, लेनिन व राजकीय पुरस्कार विजेता, आयन विनिमय क्षेत्र में महान् वैज्ञानिक स्कूल के अध्यक्ष, काँच के इलैक्ट्रोडों के आयन विनिमय सिद्धाँत के तापीय गतिकी आधार का लेखक।

गए हैं जिनका इलैक्ट्रोडी विभव धातुओं के आयनों की सान्द्रता द्वारा निश्चित होता है – उदाहरणतया सोडियम का आयन।

111. क्रोमैटोग्रैफी (वर्णलेखन). यह विचार कि गतिज स्थितियों में अधिशोषण जटिल मिश्रणों को पृथक करना आसान बना देगा, सर्वप्रथम म० स० त्स्वेत को सूझा। इस विचार के आधार पर सन् 1903 में उन्होंने ऐसे मिश्रणों के विश्लेषण की नई विधि पेश की, जिसका नाम उन्होंने क्रोमेटोग्राफिक विधि रखा।

इस किधि का सार निम्न हैं। विचाराधीन मिश्रण के विलयन को "क्रोमेटोगैफी स्तम्भ" में रख दिया जाता है – यानी एक काँच की नली में, जिसमें पहले से घुला



चित्र 98. डेवेलेपन क्रोमैटोग्राफी (धावपृथकन) a – आरम्भिक क्रोमैटोग्राम; b – डेवेलेपित क्रोमैटोग्राम; c – डेवेलेपन विश्लेषण का प्राप्त वक्र।

हुआ अधिशोषी तथा फिर संतृप्त विलयन डाला जाता है। मिश्रण के घटकों का अधि शोषण स्तम्भ के ऊपरीभाग में होता है। इस बीच उनका पृथक्करण नहीं होता था, फिर अंशतः होता हैं। इस प्रकार पहला क्रोमेटोग्राम (चित्र 98, a) बनता है। इसके बाद इसे डेवेलप किया जाता है। इसके विलयन के लिए शुद्ध विलायक (धावपृथकक) डाला जाता है, जो अधिशोषित पदार्थों का विशोषण कर देता है तथा अपने प्रवाह द्वारा उन्हें स्तम्भ में नीचे की ओर विस्थापित कर देता है। स्तम्भ में गति के समय अधिशोषण व विशोषण की अनेक क्रियाएँ होती हैं जो म० स० त्स्वेत के अधिशोषण विस्थापन के नियम के अनुसार मिश्रण के घटकों का पृथक्करण करती हैं। यह नियम निम्न प्रकार है: यदि विलीन पदार्थ A, B, C... अधिशोषी के साथ अपने आपेक्षिक सजातीयता के अनुसार अधिशोषण श्रेणी $A > B > C....$ बनाते हैं तो अधिशोषण श्रेणी का प्रत्येक सदस्य अपने से अगले को विस्थापित करता है, तथा वह अपने क्रम में अपने से पूर्व स्थित अधिक तीव्रता से अधिशोषित सदस्यों द्वारा

विस्थापित होता है। इसके परिणामस्वरूप स्तम्भ पर डेवेलेपित क्रोमेटोग्राम बनता है (चित्र 98, b)। म० स० त्स्वेत ने इस विधि को पौधों के पत्तों के वर्णकों के मिश्रण में से अधिशोषी पर श्वेत वर्ण को अलग करने के लिए प्रयुक्त किया (चाक, कैल्सियम आक्साइड, स्टार्च, सेलुलोस)। विभिन्न वर्णों के क्षेत्रों द्वारा क्रोमेटोग्राम का रंजन हो जाता है। यहाँ से म० स० त्स्वेत द्वारा प्रस्तुत विधि का नाम क्रोमेटो-ग्रेफी रखा गया (ग्रीक "क्रोमोस" – वर्ग, "ग्राफी" लिखना, अतः "वर्णलेखन")।

विलायक द्वारा स्तम्भ का धावन जारी रखते हुए अलग हुए उन पदार्थों को उसमें से निकलने वाले विलयन (निक्षालन द्रव) के भागों का विश्लेषण करके प्राप्त होते हैं। यदि निर्गम वक्र बनाया जाये, यानी स्तम्भ में निकलने वाले विलयन के आयतन (V) पर निक्षालक-द्रव (C) की सान्द्रता की निर्भरता का वक्र बनाया जाए, तो इस वक्र पर स्तम्भ में से मूल मिश्रण के घटकों के निर्गम को वर्ण लेखी शिखर व्यक्त करेंगे। प्रायः, घटकों का सम्पूर्ण पृथक्करण नहीं होता है और पृथक शिखरों का पारस्परिक तौर पर अध्यारोपण हो जाता है। निर्गम वक्रों को बनाना स्तम्भी वर्णलेखन का सर्वाधिक प्रचलित रूप है, क्योंकि यह न तो पृथक हुए घटकों के वर्णों के साथ सम्बंधित है, तथा न ही अधिशोषी के वर्ण के साथ।

सन् 1936 में म० म० दूबीनीन ने वाष्पों का अधिशोषण वर्णलेखन किया। आने वाले वर्षों में वर्णलेखी विधि के अन्य रूपांतरण प्रस्तुत किये गये। वर्तमान समय में गैसों, वाष्पों, द्रवों या विलीन पदार्थों के मिश्रणों के घटकों को पृथक करने की ऐसी भौतिकीय-रासायनिक विधियों को वर्णलेखन कहते हैं जो गतिज अवस्थाओं में शोषण की मदद से होती हैं।

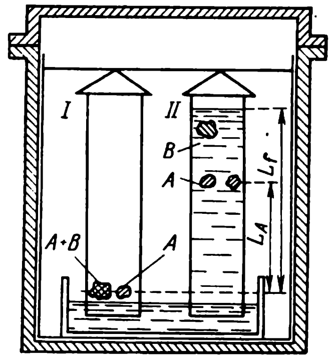
मिश्रण के घटकों का पृथक्करण करने वाली अभिभावी भौतिकीय-रासायनिक शोषण क्रिया के आधार पर वर्णलेखन को अधिशोषण वर्णलेखन, आयन विनिमय वर्णलेखन तथा वितरण वर्णलेखन में बाँटा गया है। ये पृथक किये गये घटक अस्थिर द्रव या गैसीय कला में स्थित हो सकते हैं, तथा स्थिर कला ठोस भी हो सकती है एवं द्रव भी हो सकती है। अधिशोषी या आयन विनिमयक के कण स्तम्भ को भर सकते हैं (स्तम्भी वर्णलेखन) या काँच की प्लेट पर महीन संघनित परत बना सकते हैं (महीन परत वाला वर्ण लेखन)।

विश्लेषण की वर्णलेखी विधियों को ज्ञात करने व उन में प्रवीणता हासिल करने के फलस्वरूप आधुनिक आण्विक जीव-विज्ञान, दुर्लभ मृदा तत्त्वों व परायूरेनियम तत्त्वों के रसायन का काफ़ी हद तक तेज़ी से विकास हुआ। विभिन्न प्रकार के पदार्थों का पृथक्करण व विभेदन करने की वर्णलेखी विधियों को विशाल उद्योगों में भी प्रयोग किया गया।

विलयनों के बहुत छोटे आयतनों (0.01 = 0.1 मि० लि०) के विश्लेषण के लिए अत्यधिक महत्व कागज पर वितरण वर्णलेखन का हुआ। कोन्सडेन (इंग्लैंड) ने इसे

1944 में प्रस्तुत किया। इसका आधार यह है कि दो अविलेय द्रवों के बीच एक तीसरा घटक इस पदार्थ के लिये लाक्षणिक विस्तारण स्थिरांक के अनुसार वितरित होता है। यह विस्तारण स्थिरांक सीमावर्ती द्रवों में इस पदार्थ की सान्द्रताओं का अनुपात है (वितरण नियम, दे० § 76)।

वर्णलेखन क्रिया के घटने के लिये यह आवश्यक है कि द्रव का एक स्तर दूसरे स्तर के प्रति विस्थापित होता है। इस स्थिति में द्रव के दो स्तरों के बीच विलीन पदार्थों का विस्तारण गतिज अवस्थाओं में अनेक बार होता है। कागज़ पर वर्णलेखन में एक अधिक ध्रुवी द्रव केशिकाओं द्वारा कागज़ पर एकत्रित हो जाता है और स्थिर द्रव कला बनाता है, तथा दूसरा कम ध्रुवी द्रव कागज़ पर कोशिकीय उन्नयन परिघटना के कारण चढ़ जाता है।



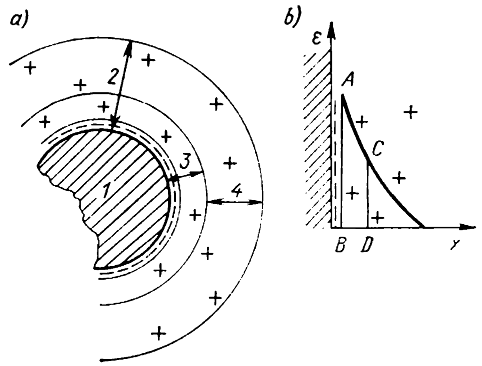
चित्र 99. उभरती हुई विस्तारण पेपर क्रोमैटोग्राफी।

चित्र 99 में कागज़ पर वितरण वर्णलेखन का आरेख दिया गया है। वर्ण लेखी कागज़ की पट्टी आरम्भिक रेखा पर पदार्थों (A+B) के मिश्रण के विचाराधीन विलयन की एक-एक बूंद अलग-अलग से डाली जाती है तथा मिश्रण के प्रस्तावित घटक ("साक्ष्य") की बूंद भी डाली जाती है (चित्र 99, I)। कागज की पट्टी के नीचे का किनारा विलायक में डुबोया जाता है। जब, L_f दूरी को तय करके (चित्र 99, II); विलायक की सीमा कागज़ की पट्टी के ऊपर के किनारे तक लगभग पहुँच जाती है, यदि विलायकों के तंत्र का चयन सही प्रकार हुआ हो, तो मूल मिश्रण के घटक अनेक धब्बों में पृथक हो जाते हैं जिन्हें आपेक्षित घटकों पर तदनुरूपी वर्णी अभिक्रियाओं की मदद से, तथा "साक्ष्य" धब्बों की स्थिति द्वारा, अनावरित कर लिया जाता है। मूल मिश्रण (L_A) के A घटक द्वारा तय की गई दूरी नियत पदार्थ के विस्तारण स्थिरांक द्वारा निश्चित की जाती है। इस दूरी की सापेक्षिक मात्रा L_A/L_f सी० जिसे Rf_A द्वारा लिखा जाता है (अंग्रेजी relative front – सापेक्षिक फ्रंत), विलायकों के निश्चित तंत्र में प्रत्येक पदार्थ के लिये लाक्षणिक होती है।

112. वैद्युतगतिक परिघटनाएँ. वैद्युत क्षेत्र में एक कला का दूसरी कला के प्रति विस्थापन और रंध्रीं पदार्थों में से विभव के गुजरने पर बनने वाला विभवान्तर (प्रवाह विभव) या कणों के निसादन के समय बनने वाला विभवान्तर (निसादन विभव) ये सब परिघटनाएँ वैद्युतगतिक परिघटनाएँ कहलाती हैं। वैद्युत क्षेत्र में कोलाइडी कणों का अभिगमन वैद्युत कण-संचलन कहलाता है, तथा केशिकीय तंत्रों में से विभवान्तर

के प्रभाव में द्रव का गुज़रना विद्युत-परासरण कहलाता है। इन दोनों परिघटनाओं की खोज मास्को विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर फ० फ० रेईस ने 1809 में की थी।

वैद्युतगतिक परिघटनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि कला के पृथक्करण की सीमा पर द्वि-विद्युत स्तर बन जाता है जो विभिन्न स्थानों पर स्थित विपरीत चिन्हों वाले वैद्युत अवेशों से बना एक महीन पृष्ठीय स्तर है। परिक्षिप्त तंत्रों में द्वि-वैद्युत स्तर का आयन और द्वि-ध्रुवी अणु बनाते हैं। आयनी द्वि-विद्युत स्तर या तो ठोस के पदार्थ के आयनीजनन ग्रुप के वियोजन के फलस्वरूप बनता है, या ठोस कला की क्रिस्टलीय जाली को पूर्ण करने वाले आयनों के चयन अधिशोषण के परिणामस्वरूप बनता है।



चित्र 100· द्वि-वैद्युत स्तर में (a) कोलाइडी मिसेली की संरचना और (b) विभव के परिवर्तन का आरेख। 1 – नाभिक; 2 – द्वि-वैद्युत स्तर; 3 – उसका अधिशोषी भाग; 4 – उसका विसरण भाग; AB– अन्तराकलीय ε – विभव; CD– वैद्युत गतिज ς – विभव; "–" विभवमापी आयन; "+" प्रतिआयन।

ठोस कला एवं विलयन की सीमा पर इसके परिणामस्वरूप संघनित्र-सा बन जाता है जिसकी आन्तरिक प्लेट विभव निर्धारण आयनों से, और बाहरी – प्रतिआयनों से बनी होती है।

आयनों के चयन अधिशोषण द्वारा द्वि-वैद्युत स्तर के बनने को, आइये, $AgNO_3$ व KI के अत्यधिक तनु विलयनों में, यहाँ KI की थोड़ी-सी अतिरिक्त मात्रा है, $AgNO_3$ तथा KI की पारस्परिक क्रिया के समय AgI के कोलाइडी कणों को प्राप्त करने के उदाहरण पर देखें।

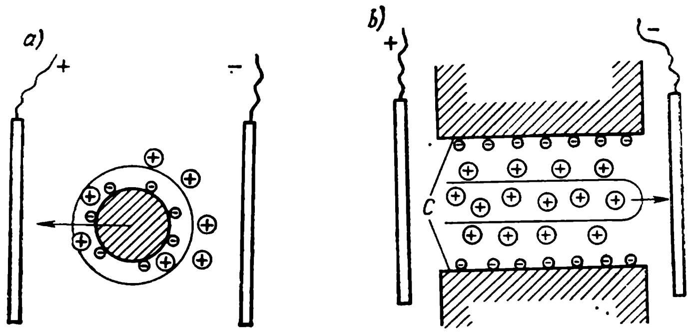
क्रिस्टलों के पृष्ठ पर क्रिस्टलीय जाली बनाने वाले आयनों के समान रूपी या उनसे मिलते-जुलते आयनों का अधिशोषण मुख्यतः हो जाता है। विचाराधीन स्थिति में I^- आयनों का अधिशोषण होगा, तथा AgI क्रिस्टलों के पृष्ठ का आवेश ऋणात्मक हो जाता है। अन्तराकलीय विभव या ε-विभव (ग्रीक० ε = "एपसीलोन") कूलॉन बलों के विरुद्ध कार्य है जो विपरीत चिन्ह वाले इआई आवेशों को क्रिस्टलीय पृष्ठ से अनंत तक ले जाए।

अतिकायन (इस स्थिति में K^+ आयन) आवेशित पृष्ठ तथा तापीय गति, जो इन्हें आयतन में समान रूप से विस्तारित करने की चेष्टा करती है, के वैद्युत क्षेत्र के प्रभाव में स्थित होते हैं। इसके फलस्वरूप प्रतिआयनों का नियमबध्द गतिक विस्तारण है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि अभ्र का घनत्व आवेशित पृष्ठ से उसके दूर

चले जाने पर कम हो जाता है। प्रतिआयनों के इस अभ्र की बाहरी सीमा द्वि-वैद्युत परत की मुटाई निर्धारित करती है (चित्र 100)।

ठोस पृष्ठ व आयनों के जलयोजन के फलस्वरूप कलाओं के सापेक्षिक विस्थापन के समय विसर्पण की सीमा ठोस पृष्ठ से कुछ दूरी पर होती है। इसके फलस्वरूप द्वि-वैद्युत स्तर घनत्व (अधिशोषित) तथा विसरण भाग में बँट जाता है (चित्र 100)।

द्वि-वैद्युत स्तर का अधिशोषित (घनत्व) भाग विभव निर्धारण आयनों तथा कुछ प्रतिआयनों से बना है। द्वि-वैद्युतस्तर का विसरण भाग शेष प्रतिआयनों से बना है। वैद्युत क्षेत्र में कला विस्थापन की चाल विसर्पण पृष्ठ पर विभव की मात्रा द्वारा निश्चित होती है, जिसे इसीलिए वैद्युतगतिक विभव कहते हैं तथा संक्षिप्त रूप में ζ-विभव



चित्र 101. (*a*) वैद्युत कण-संचलन तथा (*b*) केशिकाओं में से द्रव का वैद्युत परासरण स्थानांतरण (*K* – केशिका की आन्तरिक सतह) में कोलाइडी कण की गति का आरेख। केशिका व कोलाइडी कण की सतहे ऋणात्मक आवेशित हैं।

(जीटा-विभव) द्वारा लिखते हैं। इस विभव को ठोस पृष्ठ के आवेश का चिन्ह दिया जाता है।

स्थायी बाहरी वैद्युत क्षेत्र में कोलाइडी भाग उस इलैक्ट्रोड की ओर विस्थापित हो जाता है, जिसके आवेश का चिन्ह कोलाइडी कण के पृष्ठ के आवेश के चिन्ह के विपरीत है (चित्र 101, a)। द्रव का वैद्युत-परासरणी संक्रमण उस इलैक्ट्रोड की ओर होता है, जिसका चिन्ह वैसा ही है जो *K* केशिका पृष्ठ का है (चित्र 101, b)। इस स्थिति में वैद्युत क्षेत्र में वे जलयोजित प्रतिआयन अस्थिर होते हैं जो जल के उनके साथ लगे हुए स्तरों को आकृष्ट करते हैं।

द्वि-वैद्युत स्तर की संरचना में परिवर्तन कई दिशाओं में हो सकता है। वैद्युत-अपघट्यों की बहुत ही कम सान्द्रता होने पर, पृष्ठ के सक्रिय केन्द्रों की विभव निर्धारण आयनों द्वारा पूर्ति होने पर निर्भर करते हुये ε-विभव की वृद्धि होगी। उच्च अधिशोषण क्षमता रखने वाले प्रतिआयन (उदाहरणतया, बहुआवेशित आयन) अधिशोषित स्तर में उस सँख्या में प्रवेश कर सकते हैं जो आरम्भिक विभव-निर्धारण आयनों के परातुल्य

है; अतएव ये पृष्ठ के आवेश के चिन्ह को भी परिवर्तित कर देते हैं एवं सम्पूर्ण द्वि-वैद्युत स्तर की तदनुरूपी संरचना पुनः करते हैं। (कोलाइडों का पुनः आवेशन)।

द्वि-वैद्युत स्तर का विसरण भाग अत्यधिक अस्थायी है तथा इसमें परिवर्तन हो सकते हैं। प्रतिआयनों का उसी चिन्ह वाले अन्य आयनों द्वारा विनिमय हो सकता है। विलयन की सान्द्रता बढ़ने से द्वि-वैद्युत स्तर के विसरण भाग में से घनत्वभाग में प्रतिआयनों का "संघनन" हो जाता है। द्वि-वैद्युत स्तर की मोटाई तथा ζ-विभव की मात्रा कम हो जाती हैं। विलयन की एक निश्चित सान्द्रता (लगभग 0.1 न०) पर सभी प्रतिआयनों का अधिशोषी स्तर में संघनन हो जाता है एवं ζ-विभव का मान शून्य के बराबर हो जाता है। इस स्थिति में अन्तराकलीय विभव का परिवर्तन-ठोस कला पर उसके अधिकतम मान से शून्य तक—पूर्णतया अधिशोषित स्तर में होता है। कोलाइडी मिसेल की ऐसी अवस्था को आइसोवैद्युत अवस्था कहते हैं।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि वैद्युत-गतिक परिघटनाएँ वैद्युत-अपघट्यों के तनु विलयनों में होती हैं (<0.1 न०)। वैद्युत गतिक विभव का मान 0.001 से 0.1 वो० तक होता है। ζ-विभव, हालाँकि इसका मान बहुत कम है, का कोलाइडी-परिक्षिप्त तंत्रों को स्थायित्व देने में काफी योग है (दे० § 113)।

वैद्युत गतिक परिघटनाएँ व्यावहारिक महत्व भी रखती हैं। अतः, वैद्युत कण-संचलन की मदद से महीन निलम्बनों से विभिन्न वस्तुओं के साँचे बनाये जाते हैं तथा फिर उनका केलन होता है। वैद्युत कण-संचलन की विधि को जैव कोलाइडों, विशेषकर प्रोटीनों, का पृथक्करण, विभेदन एवं अध्ययन करने के लिये प्रयोग किया जाता है। इसका सरल रूपांतरण, जो "कागज़ पर वैद्युत कण-संचलन" कहलाता है, निम्न प्रकार है: कागज़ की पट्टी पर लगाया गया प्रोटीन के विचाराधीन मिश्रण के धब्बे को उनके आवेशों की मात्रा, तथा, अतएव, दिष्ट वैद्युत धारा के क्षेत्र में उनकी गति की चाल के अनुसार पृथक किया जाता है। इस विधि से रक्त एवं अन्य जीव-वैज्ञानिक द्रवों के प्रोटीनों के संख्यात्मक तथा गुणात्मक संयोजन का अध्ययन किया जाता है।

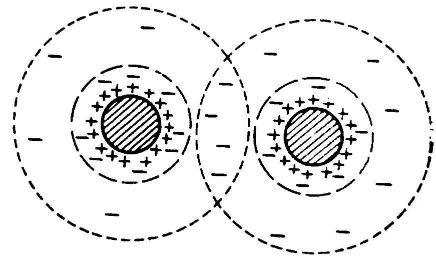
वैद्युत-परासरण की मदद से केशिकीय रंध्र-युक्त तंत्रों में से नमी को दूर किया जाता है और हाइड्रोतकनीकी या अन्य इमारतों के बनाने में अव-मृदा जल का स्तर नीचे किया जाता है। अव-मृदा जल के प्रवाह से वैद्युत क्षेत्र के उत्पन्न होने का उपयोग खनिज साधनों एवं जल-स्रोतों की भू-वैज्ञानिक खोज में किया गया।

113. परिक्षिप्त तंत्रों का स्थायित्व और स्कंदन. जैसा § 106 में बताया गया था कि परिक्षिप्त तंत्रों की गुणात्मक विशेषता उनके कुल स्थायित्व पर निर्भर करती है।

परिक्षिप्त तंत्रों के स्थायित्व के तीन घटकों के प्रभाव के फलस्वरूप कुल आरम्भिक परिक्षिप्त कणों से छुटकारा पाया जा सकता है। ये तीन घटक हैं: 1) गतिक घटक; 2) वैद्युत घटक; तथा 3) संरचनात्मक-यांत्रिकीय घटक।

परिक्षिप्त कला के दो कणों के जुड़ने के लिए आवश्यक प्रतिबन्ध उनकी समीपता है जो आकर्षण बल का प्रभाव डालने के लिए पर्याप्त होनी चाहिये। यदि कोलाइडी कणों की टक्करों की आवृत्ति कम है तो परिक्षिप्त तंत्र स्थायी हो सकता है (स्थायित्व का गतिक घटक)। यह या तो बहुत कम सान्द्रता वाले परिक्षिप्त कणों में हो सकता है (जैसे, कुछ ऐरोसॉलों में) या फिर बहुत अधिक श्यानता वाले परिक्षिप्त माध्यम में (जैसे, ठो$_1$ – ठो$_2$ प्रकार के प्ररि प्त तंत्र में)।

परिक्षिप्त कला व परिक्षिप्त माध्यम के अतिरिक्त अधिकतर परिक्षिप्त तंत्रों में एक और तीसरा घटक होता है जिसे परिक्षेपण का स्थायीकारक कहते हैं। आयन तथा अणु – दोनों ही स्थायीकारक हो सकते हैं। इसीलिये परिक्षिप्त तंत्रों के स्थायीकरण की दो विधियाँ हैं: वैद्युत तथा आण्विक-अधिशोषी (दे० पृ० 392)।



चित्र 102. दो कोलाइडी कणों के आयनी वायुमंडल के अध्यारोपण का आरेख।

परिक्षिप्त तंत्रों का वैद्युत स्थायीकरण कला के पृथक्करण की सीमा पर द्विवैद्युत स्तर के उत्पन्न होने के साथ सम्बंधित है। ऐसे स्थायीकरण का मुख्य महत्त्व ध्रुवी माध्यम में, उदाहरणतया, जल में, लियोसॉल तथा निलंबनों को प्राप्तकरने में हैं। किसी भी हाइड्रोसॉल में सभी कोलाइडी कणों के आवेश का चिन्ह समान होता है। लेकिन द्वि-वैद्युत स्तर के बनने के परिणामस्वरूप कोलाइडी मिसेल पूर्णतः वैद्युत के प्रति उदासीन होता है। इसीलिए कोलाइडी कणों के बीच स्थिर-वैद्युत प्रतिकर्षण (स्थायीकरण का वैद्युत कारण) उनके बीच पर्याप्त समीपता होने के कारण होता है और जब उनके आयनी आकाशों का अध्यारोपण होता है (चित्र 102)। स्थिर-वैद्युत प्रतिकर्षण की विभव ऊर्जा उतनी ही अधिक होगी, कोलाइडी कणों के द्वि-वैद्युत स्तर के विसरण भागों का अध्यारोपण जितना अधिक होगा, अर्थात् उनके बीच की दूरी (x) जितनी कम होगी, तथा द्वि-वैद्युत स्तर की मोटाई जितनी अधिक होगी।

स्थिर-वैद्युत प्रतिकर्षण के अतिरिक्त, कोलाइडी कणों के बीच, किसी भी पदार्थ के अणुओं के बीच की भाँति, अन्तरा आण्विक आकर्षण बल लागू होते हैं, जिनमें सबसे अधिक रोल परिक्षिप्त बलों का होता है। अलग-अलग अणुओं के बीच लागू परिक्षिप्त बल उनके बीच की दूरी के बढ़ने के साथ शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। लेकिन कोलाइडी कणों की पारस्परिक क्रिया का कारण कोलाइडी कणों के स्पर्श करने की सतह पर स्थित सभी अणुओं के बीच आकर्षण के परिक्षिप्त बलों का कुल योग है। इसीलिए पृथक अणुओं की स्थिति की अपेक्षा कोलाइडी कणों के बीच आकर्षण बल धीरे-धीरे समाप्त होते हैं तथा अधिक दूरी पर प्रकट होते हैं।

कोलाइडी कणों के बीच पारस्परिक क्रिया की विभव ऊर्जा (U) स्थिर वैद्युत प्रतिकर्षण की विभव ऊर्जा ($U_{स्थि०}$) तथा उनके बीच परिक्षिप्त आकर्षण की विभव ऊर्जा ($U_{प०}$) का अंकगणितीय योग होता है।:

$$U = U_{प०} + U_{स्थि०}$$

यदि U स्थि०$>U$ प० (निरपेक्ष मान), तो प्रतिकर्षण आकर्षण पर हावी हो जाता है तथा परिक्षिप्त तंत्र स्थायी बन जाता है। यदि $U_{स्थि} < U_{प०}$, तो ब्राउनी गति के दौरान कोलाइडी कणों के टकराव से और अधिक विशाल घटकों में उनका युग्मन हो जाता है तथा फिर इन बड़े घटकों का अवसादन हो जाता है। कोलाइडी विलयन स्कंदित हो जाता है, यानी स्कंदन एवं परिक्षिप्त माध्यम में बंट जाता है।

वैद्युत स्थायीकरण और परिक्षिप्त तंत्रों के स्कंदन के सिद्धांत का सार यह ही है जिसे सर्वप्रथम ब० व० देरयागिन* (1937) ने, तथा फिर ल० द० लन्दाऊ और हॉलैंड के वैज्ञानिक फेखे व ओवेरबेक (1948) ने विकसित किया। वैज्ञानिकों के नाम के प्रथम अक्षरों द्वारा सिद्धांत को द० ल० फ० ओ० कहते हैं।

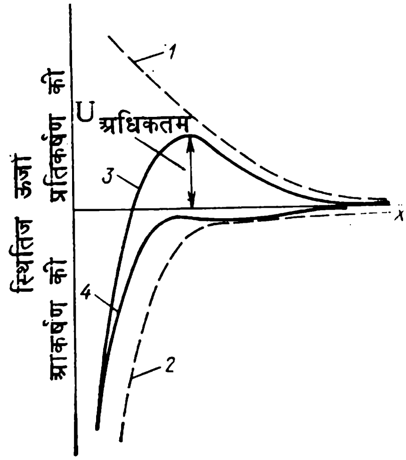
चित्र 103 में कोलाइडी कणों के बीच की दूरी पर $U_{परि०}$ व $U_{स्थि०}$ की मात्राओं की निर्भरता दी गई हैं। इस में, जैसा भौतिकी में किया जाता है, आकर्षण की विभव ऊर्जा पर ऋणात्मक चिन्ह लगाया जाता है, तथा प्रतिकर्षण की ऊर्जा पर– धनात्मक चिन्ह। विदित है कि पास्परिक क्रिया की परिणामी ऊर्जा (चित्र 103 में तीसरा वक्र) कणों के बीच बहुत ही कम दूरी होने पर ($U < 0$) आकर्षण तथा बहुत ही अधिक दूरी होने पर ($U > 0$) प्रतिकर्षण करती है। परिक्षिप्त तंत्रों के स्थायित्व के लिए अन्तिम मान प्रतिकर्षण तंत्रों के स्थायित्व के लिए अन्तिम मान प्रतिकर्षण के विभवी रोधिका का होता है, जो अपने क्रम में, $U_{परि०}$ तथा $U_{स्थि०}$ वक्रों के बढ़ने पर आधारित होता है। इस रोधिका का मान अधिक होने पर कोलाइडी तंत्र स्थिर होता है। कोलाइडी कणों का समूहन उनकी पारस्परिक दूरी काफी कम होने से ही सम्भव होता है। इसके लिए प्रतिकर्षण की विभवी रोधिका पर काबू पाना होगा। $U_{अधिकतम}$ (वक्र 3) के एक निश्चित कम धनात्मक मान होने पर केवल कुछ कोलाइडी कण ही, जिनकी गतिक ऊर्जा काफी अधिक है, इस पर काबू पा सकते हैं। यह धीमे स्कंदन के चरण का तदनुरूप है जब कोलाइडी कणों की टक्करों का केवल छोटा-सा भाग ही उन्हें जोड़ता है। धीमे स्कंदन में समय के साथ-साथ 2—3 मूल कणों से एक

---

* बोरीस व्लादीमीरोविच देरयागिन (ज० 1902), सोवियत भौतिकविद-रसायनज्ञ, सो० स० की विज्ञान अकादमी का सदस्य, कोलाइडों के स्थायित्व तथा स्कंदन, समूहन एवं जुड़ने के वैद्युत सिद्धांत के लेखक, इस के साथ ही ऐरोसॉल के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण शोधकार्यों के लेखक।

बड़ा कण बनने के फलस्वरूप कोलाइडी कणों की सामान्य संख्या कम हो जाती है, लेकिन इससे स्कंदन धीमा नहीं होता। कोलाइडी विलयन में न होने वाले विदित परिवर्तन में सदृश स्कंदन संचित स्कंदन कहलाता है। विभवी रोधिका के और कम हो जाने पर स्कंदन की चाल, जो समय की इकाई में कणों की सँख्या में होने वाले परिवर्तन द्वारा व्यक्त होता है, बढ़ जाती है। अंत में, यदि विभवी रोधिका प्रतिकर्षण क्षेत्र में से आकर्षण क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है (वक्र 4, चित्र 103), तो तीव्र स्कंदन होता है, जब कोलाइडी कणों की प्रत्येक टक्कर उन्हें जोड़ती है; कोलाइडी विलयन में स्कंदन बनता है; यहाँ प्रत्यक्ष स्कंदन घटना है।

प्रतिकर्षण की विभवी रोधिका (U अधिकतम) कोलाइडी कणों के बीच लागू प्रतिकर्षण व आकर्षण बलों के कुल योग के फलस्वरूप ही बनती है। इसीलिए 1 और 2 वक्रों (चित्र 103) के विकास पर, प्रभाव डालने वाले सभी कारणों के फलस्वरूप $U_{\text{अधिकतम}}$ की मात्रा में भी परिवर्तन हो जाता है तथा उसके शिखर की स्थिति में भी परिवर्तन हो जाता है (अर्थात् $U_{\text{अधिकतम}}$ की तदनुरूपी x दूरी)।



चित्र 103. दो समान आवेशित कणों के बीच पारस्परिक क्रिया की विभव ऊर्जा: 1 – वैद्युत प्रतिकर्षण ($U_{\text{वै॰}}$); 2 – परिक्षेपण आकर्षण ($U_{\text{प॰}}$); 3 – परिस्परिक क्रिया की परिणामी ऊर्जा (U); 4 – वही, लेकिन वक्र के अधिक अतिप्रवण 1 होने पर; x – कणों के बीच दूरी; $U_{\text{अधिक॰}}$ – परिक्षेपण कणों की पारस्परिक क्रिया का विभव अवरोध।

$U_{\text{अधिकतम}}$ की काफ़ी कमी कोलाइडी विलयन में वैद्युत-अपघट्य बढ़ा देने से स्थिर वैद्युत प्रतिकर्षण की विभवी ऊर्जा में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप होती है (अर्थात 1 वक्र के विकास की)। किसी भी वैद्युत अपघट्य की सान्द्रता बढ़ने से कोलाइडी कणों के चारों ओर द्वि-वैद्युत स्तर की पुनः संरचना होती है: द्वि-वैद्युत स्तर के विसरण भाग में से अधिशोषण भाग में प्रतिआयनों का संघनन हो जाता है। द्वि-वैद्युत स्तर के विसरण भाग की मोटाई (चित्र 100 में स्तर 4), तथा इसके साथ ही सम्पूर्ण द्वि-वैद्युत स्तर की मोटाई (चित्र 100 में स्तर 2) कम हो जाती है। इसीलिये स्थिर वैद्युत प्रतिकर्षण की विभवी ऊर्जा का वक्र चित्र 103 में 1 वक्र की तुलना में अधिक तीखा मोड़ लेता है। इसके परिणामस्वरूप प्रतिकर्षण की विभवी रोधिका (U अध्रितकम) कम हो जाती है तथा कोलाइडी कणों के बीच कम दूरी की दिशा

में विस्थापित हो जाती है। जब द्वि-वैद्युत स्तर अधिशोषण स्तर की मोटाई तक दबती है (चित्र 100, स्तर 3), तो परिक्षिप्त कणों की पारस्परिक क्रिया का सम्पूर्ण वक्र आकर्षण क्षेत्र में आ जाता है (चित्र 103, वक्र 4), वहाँ तीव्र स्कंदन स्थान लेता है। कोलाइडी विलयन के स्थायित्व में ऐसा परिवर्तन किसी भी वैद्युत-अपघट्य के डालने से होता है।

वैद्युत-अपघट्यों के स्कंदन प्रभाव को स्कंदन देहली, यानी वैद्युत-अपघट्य की न्यूनतम सान्द्रता जो स्कंदन करती है, द्वारा व्यक्त करते हैं। वैद्युत-अपघट्य तथा कोलाइडी विलयन की प्रकृति के आधार पर स्कंदन देहली के परिवर्तन का परिसर निम्न है: 10^{-5} से 0.1 मोल प्रति लि० सॉल। स्कंदन देहली पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रभाव वैद्युत-अपघट्य के स्कंदन आयन के आवेश का होता है, अर्थात वह आयन, जिसका आवेश कोलाइडी कण के आवेश के चिन्ह के विपरीत चिन्ह वाला हो।

वैद्युत-अपघट्य के बहुआवेश वाले प्रतिआयन में एक आवेश वालों की तुलना में अधिक अधिशोषण क्षमता होती है तथा द्वि-वैद्युत स्तर के अधिशोषण भाग में अधिक सँख्या में प्रवेश करते हैं। इस समय स्कंदन देहली प्रतिआयन के आवेश की मात्रा के आनुपातिक नहीं अपितु काफ़ी अधिक तेज़ी से कम हो जाती है।

द० ल० फ० ओ० सिद्धाँत का अच्छा प्रमाण देर्यागिन और लन्दाऊ के (1945) परिकलन से मिला जो आवेश की विभिन्न मात्राओं वाले आयनों के वैद्युत-अपघट्यों के स्कंदन देहली के मानों का अनुपात व्यक्त करता था। ज्ञात हुआ कि स्कंदन देहली स्कंदित आयन के आवेश की छठी घात के व्युत्क्रमानुपातिक है। अतएव, एक, दो, तीन और चार आवेशों वाले आयनों के स्कंदन देहली के मानों के बीच निम्न अनुपात होना चाहिए:

$$1:\left(\frac{1}{2}\right)^6:\left(\frac{1}{3}\right)^6:\left(\frac{1}{4}\right)^6 = 1:0.016:0.0014:0.00024$$

यह उन वैद्युत-अपघट्यों की सान्द्रताओं के बीच समानुपातों के लगभग है, जो विभिन्न प्रकार के हाइड्रोसॉलों के स्कंदन के समय दिखाई दिये थे। इन सब बातों से तालिका 25 के आंकड़ों का सही होने का प्रमाण मिलता है, जहाँ वैद्युत-अपघट्यों $C_{\text{सा}})$; की तुल्य सान्द्रताएँ दी गई हैं जो आर्सेनिक आक्साइड (III) के हाइड्रोसाल का स्कंदन करती है।

परिक्षिप्त तंत्रों का आण्विक-अधिशोषण स्थायित्व जलीय तथा निर्जलीय माध्यमों में परिक्षेपण के स्थायित्व में काफ़ी महत्वपूर्ण रोल अदा करता है। अध्रुवी एवं निर्जलीय परिक्षिप्त माध्यम में परिक्षिप्त कला के कणों का आवेश नहीं होता। स्थायीकरण का वैद्युत कारण यहाँ अनुपस्थित है। परिक्षिप्त कणों के बीच केवल पारस्परिक आकर्षण बल ही लागु होते हैं। इन बलों की क्षीणता, जिसके कारणवश, परिक्षिप्त तंत्रों का स्थायीकरण होता है, परिक्षिप्त माध्यम के अणुओं एवं उनमें विलीन पदार्थों के अणुओं से कोलाइडी कणों के चारों ओर अधिशोषित स्तरों के बनने से होती है। ऐसे स्तर

तालिका 25

ऋणात्मक आवेशित सॉल As_2O_3 का वैद्युत-अपघट्य द्वारा स्कंदन (C_k) की सीमाएँ.

वैद्युत-अपघट्य	$C_k \cdot 10^3$, न०	$\frac{(Ck)\ x}{(C_k)\ LiCl}$
LiCl	58.4	1.00
NaCl	51.0	0.87
KCl	49.5	0.85
KNO_3	50.0	0.86
$MgCl_2$	0.717	0.012
$CaCl_2$	0.649	0.011
$SrCl_2$	0.635	0.011
$AlCl_3$	0.093	0.0016

परिक्षिप्त कला के कणों के पारस्परिक आकर्षण को क्षीण कर देते हैं तथा उनके मिलने या जुड़ने में यांत्रिकीय रूकावट बना देते हैं।

परिक्षिप्त माध्यम के अणुओं द्वारा परिक्षिप्त तंत्रों का स्थायीकरण दोनों ही माध्यमों अध्रुवी तथा ध्रुवी में सम्भव है। अतः, सिलिका अम्ल व कले के कणों का जलवियोजन जलीय माध्यम में कले के निलम्बनों और सिलिका अम्लों के स्थायीकरण में काफ़ी महत्व रखते हैं।

लेकिन परिक्षिप्त तंत्रों का स्थायीकरण काफ़ी प्रभावशाली होता है यदि उनमें पृष्ठ-सक्रिय पदार्थ (पृ० स० प०) तथा उच्चआण्विक यौगिक, जो कला के पृथक्करण की सीमा पर अधिशोषित हो जाते हैं, डाल दिये जाएँ। पृ० स० प० और उच्चआण्विक यौगिकों के अधिशोषित स्तर अपनी प्रत्यास्थता तथा यांत्रिकीय कठोरता के कारण परिक्षिप्त कणों के समूहन को रोकते हैं। ऐसे आण्विक-अधिशोषण ठोस पृष्ठीय स्तरों को प० अ० रेबीन्देर* ने "परिक्षिप्त तंत्रों के स्थायीकरण का संरचनात्मक-यांत्रिकीय

* प्योत्र अलेक्सान्द्रोविच रेबीन्देर (1898-1972) — सोवियत भौतिकविद-रसायनज्ञ, आकादमीशियन, समाजवादी मेहनत का हीरो, राजकीय पुरस्कार विजेता, परिक्षिप्त तंत्रों के भौतिकीय-रसायन के क्षेत्र में महान वैज्ञानिक स्कूल का संस्थापक। उनके द्वारा किये गए कार्य जो परिक्षिप्त तंत्रों के गुणों के प्रयोग करने, उनके बनने व बिगड़ने की क्रियाओं के साथ सम्बंधित हैं, महत्वपूर्ण तकनीकी समस्याओं के हल करने में गहरा रोल अदा करते हैं।

कारण" नाम दिया। परमस्थायी उच्चसान्द्रित झागों, इमलशनों, कोलाइडी विलयनों तथा निलंबनों को जलीय तथा निर्जलीय माध्यमों में प्राप्त करने में स्थायीकरण की इस विधि का बहुत महत्व है। जलीय माध्यम में परिक्षेपण के संरचनात्मक-यांत्रिकीय स्थायीकरण के लिये क्षारीय धातुग्रों के साबुन, प्रोटीन, स्टार्च; तथा निर्जलीय माध्यम में – क्षारीय-मृदा धातुग्रों के साबुन, रेसिन, रबड़ प्रयुक्त करते हैं। इन पदार्थों को रक्षी कोलाइड कहते हैं।

114. परिक्षिप्त तंत्रों में संरचना का बनना. ठोस पदार्थों व परिक्षिप्त संरचनाग्रों की भौतिकीय-रासायनिक यांत्रिकी. जैसा § 105 में बताया गया था कि परिक्षिप्त तंत्रों को दो ग्रुपों में बाँटा गया है: स्वतंत्र परिक्षिप्त या ग्रसंरचनात्मक, एवं ग्राबन्धी-परिक्षिप्त या संरचमात्मक तंत्र। ग्रन्तिम तंत्र परिक्षिप्त कणों के बीच सम्पर्क पैदा होने के फलस्वरूप बनते हैं। इन सम्पर्कों की विशेषता परिक्षिप्त कणों की प्रकृति, मात्रा, ग्राकृति, सान्द्रता, तथा इन कणों के ग्राकार के ग्राधार पर विस्तारण एक परिक्षिप्त माध्यम के साथ पारस्परिक क्रिया पर निर्भर करती हैं।

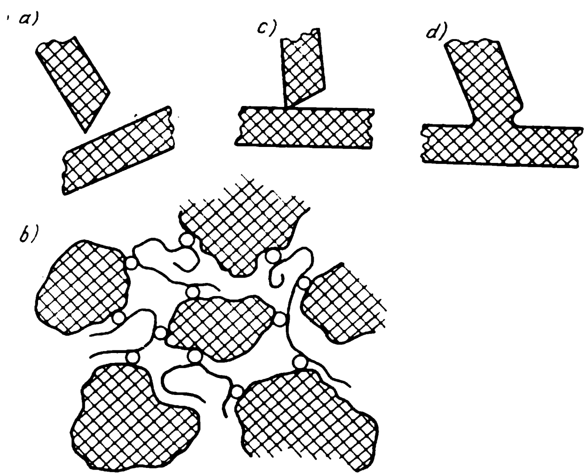
चित्र 104 में संरचनात्मक परिक्षिप्त तंत्रों में कणों के बीच सम्भव सम्पर्कों के स्वरूप ग्ररेखों की मदद से दिखाए गए हैं। गुणों के ग्राधार पर ग्राकाशीय संरचनाग्रों की दो श्रेणियाँ पृथक की गई हैं जिनके नाम प० ग्र० रेबीन्देर के ग्रनुसार स्कंदित एवं संघनित संरचनाएँ हैं। इन संरचनाग्रों में मुख्य विभेद परिक्षिप्त कला के कणों के बीच की ग्रसमान प्रकृति हैं। स्कंदित संरचनाग्रों में यह सम्पर्कों या तो परिक्षिप्त माध्यम के बहुत ही महीन उपस्तरों (चित्र 104, "a") द्वारा, या बिन्दु सम्पर्कों द्वारा (चित्र 104, "c"), या स्थूल ग्रणुग्रों की मदद से बनाया जाता है (चित्र 104, "b")। संघनित संरचनाएँ पृष्ठ के ग्रलग-ग्रलग भागों में परिक्षिप्त कला के कणों के जुड़ने, वेल्डन, समूहन के परिणामस्वरूप बनती हैं (चित्र 104, "d")।

स्कंदित ग्राकाशीय संरचनाएँ स्वतंत्र परिक्षिप्त तंत्रों से बने हैं, जब कणों के बीच परिक्षिप्त ग्राकर्षण स्थिर-वैद्युत प्रतिकर्षण पर हावी हो जाता है। इस स्थिति में कणों के परिणामी पारस्परिक ग्राकर्षण की तुलना उनकी तापीय ब्राउनी गति की ऊर्जा के साथ की जा सकती है।

स्कंदित पारस्परिक क्रिया के पहले चरणों में दो, तीन कणों के यौगिक, तथा कभी-कभी मूल परिक्षिप्त कणों की पूरी श्रृंखला बनती है। कोलाइडी विलयन की श्यानता बनी रहती है क्योंकि संरचना का विकास निर्विघ्न जाली के बनने तक नहीं हुग्रा है। द्रवरूपी स्कंदित संरचना बनती है (संचित स्कंदन के चरण के तदनुरूपी, दे० § 113)। द्रव के प्रवाह में पुंज टुटते हैं तथा पुनः बन जाते हैं; प्रवाह की प्रत्येक चाल के लिये पुंज की ग्रपनी संतुलित मात्रा होती है। ग्रतएव, द्रव के प्रवाह के प्रतिरोध की भी ग्रपनी मात्रा होती है। इसीलिए विलयनों में ग्राकाशीय संरचनाग्रों का उत्पन्न होना द्रव के प्रवाह की चाल के ग्राधार पर श्यानता में परिवर्तन के द्वारा

निश्चित होता है।* पुंजों का भावी विकास स्कंदन या जेल (चित्र 89,) बनाता है। ठोस आकाशीय स्कंदित संरचना बनती है जो संघनित भी हो सकती है तथा असंबद्ध भी।

संघनित संरचना (चित्र 89, "b") तब बनती है जब परिक्षिप्त कला के कण अवसाद में अत्यधिक संघनित रूप में हों, एक दूसरे के साथ "फिसलते" हों; यदि मूल कण श्रृंखला में जुड़ जाते हैं, तो स्कंदित संरचना असंबद्ध–"चापाकार" होगी (चित्र 89, "c") परिक्षिप्त कला के कणों की ऊभरी हुई आकृति विशेष रूप से



चित्र 104. आकाशीय परिक्षिप्त संरचनाओं में सम्पर्कों के स्वरूप: *a, b*–(*a*) निम्न आण्विक विलायक संकरों वाले स्कंदन सम्पर्क; (b) उच्च आण्विक विलायक संकरों वाले स्कंदन सम्पर्क; *c*–बिंदु सम्पर्क; *d*–कलीय सम्पर्क।

जेल को बनाती है (चित्र 89, "a"), लेकिन अधिक सान्द्रता होने पर जेल का बनना गोलाकार कणों की स्थिति में भी सम्भव है यदि उनमें श्रृंखला बनाने की प्रवृति है।

अनेक स्थितियों में नवजात स्कंदन पुन: साल की अवस्था में जा सकते हैं। स्कंदन–सॉल का ऐसा आइसोतापीय संक्रमण पेप्टाइज़ेशन कहलाता है तथा वे पदार्थ जो इसे करते हैं → पेप्टीकारक कहलाते हैं। पेप्टीकारक परिक्षिप्त तंत्रों के स्थायीकारक कहलाते हैं तथा ये आयनी (वैद्युत-अपघट्य) एवं आण्विक प्रकृति वाले पदार्थ होते

---

* स्तरीय प्रवाह की स्थिति में सामान्य द्रवों के लिये श्यानता द्रव के प्रवाह की चाल पर निर्भर नहीं करती है।

हैं। मूल पदार्थों की सतह पर अधिशोषित होकर पेप्टीकारक उनके बीच पारस्परिक क्रिया को क्षीण कर देते हैं जिसके फलस्वरूप पुंज टूट जाता है और स्कंदन का सॉल अवस्था में संक्रमण हो जाता है। फ़िल्टर पर स्थित नवजात धातुओं की हाइड्रोक्साइडों तथा सल्फाइड़ों के नवजात अवसादों का आसवित जल द्वारा धावन करते समय पेप्टाइज़ेशन देखा जा सकता है। आसावित जल द्वारा धावन करने से वैद्युत-अपघट्यों की सान्द्रता कम हो जाती है जिसके फलस्वरूप द्वि-वैद्युत स्तर में परिवर्तन हो जाता है—प्रतिआयनों का एक भाग अधिशोषण स्तर से विसरण स्तर में आ जाता है, और स्कंदन के कणों का वैद्युतगतिक विभव बढ़ जाता है। इसके फलस्वरूप फ़िल्टर पर हाइड्रोक्साइड या सल्फाइड का अवसाद कम हो जाता है—उसका पेप्टाइज़ेशन हो जाता है जब वह फ़िल्टर के रंध्रों में से सॉल के रूप गुज़रता है।

सामान्यतः स्कंदनों की पेप्टाइज़ेशन करने की विशेषता मूल कणों के बीच बिन्दु संपर्कों के बनने के फलस्वरूप समय के साथ-साथ कम हो जाती है; स्कंदित संरचनाएँ और दृढ़ हो जाती हैं। कोलाइडी विलयनों, स्कंदनों, जेली तथा जेलों के स्वतः गुणों में इस प्रकार परिवर्तन हो जाने को कोलाइडों का कालप्रभावन कहते हैं। यह परिक्षिप्त कला के कणों के पुंजों में, उनकी सँख्या के कम होने में, उनके विलायकीयन की डिग्री के कम होने में (जलीय विलयनों की स्थिति में—जल योजन की डिग्री के कम होने में), तथा कलाओं के बीच पृथक्करण के पृष्ठ और अधिशोषण विशेषता के कम होने में व्यक्त होते हैं।

स्कंदनी संरचनाओं में निश्चित यांत्रिकीय गुण होते हैं जो परिक्षिप्त कला के कणों के सम्पर्कों के स्थान पर परिक्षिप्त माध्यम के महीन उपस्तरों द्वारा होते हैं। परिक्षिप्त कणों से बनी जालिका आकृति अन्तराआण्विक बलों के स्थान पर रह जाती हैं, इनकी सँख्या अधिक नहीं होती है। इसीलिए स्कंदित संरचनाओं की दृढ़ता अधिक नहीं होती हैं।

ऊभरे हुये या प्लेटनुमा आकृति वाले कणों, तथा शृंखलानुमा पुंजों से बने स्कंदित संरचनाओं के लिये कंपानुवर्तिता लाक्षणिक होती है। यह संरचना का उत्क्रमणीय नष्ट होना है जिसमें यांत्रिकीय प्रभाव के कारण श्यान अवस्था में संक्रमण हो जाता है; उदाहरणतया, हिलाये जाने पर; और फिर संरचना पुनः स्वतः बन जाती है, एवं विराम अवस्था में "कठोर" बन जाती है। कंपानुवर्तिता एक लाभदायक गुण है: जैसे, तेल वर्ग, जिन्हें यांत्रिकीय विधि द्वारा तनु कर दिया गया है, उर्ध्वाधर पृष्ठ से कंपानुवर्ती संरचना के फलस्वरूप बहुत नहीं हैं।

स्कंदित संरचनाएँ संरचनात्मक श्यानता भी व्यक्त करती है, अर्थात श्यानता का परिवर्तन उसके परम उच्चमान से, जब संरचना अभी टूटी नहीं थी, परम निम्न मान तक जब संरचना पूर्णतया टूट चुकी थी और कणों की स्थिति इस प्रकार हो ताकि उनके दीर्घ अक्ष द्रव के प्रवाह की दिशा में हो। श्यानता के इन परम मानों

का अन्तर 10^8 से 10^9 गुना तक हो सकता है। [illegible]
(पेस्ट) आनम्य होती हैं यानी उनकी विकृति उत्क्रमणीय नहीं होती।

स्कंदन संरचना वाले पदार्थों को सुखाते समय स्कंदन सम्पर्कों का बिन्दु [illegible] संक्रमण हो जाता है, पदार्थ की कठोरता तेजी से बढ़ जाती है। ऐसे सूखे हुए पदार्थ को भिगोने से (जैसे कि, कागज़ को, सूखी कले को या चीनी मिट्टी को) वह गीली हो जाती है तथा कठोरता कम हो जाती है।

सूखे परिक्षिप्त तंत्रों में कणों की क्षीण पारस्परिक क्रिया उनके चूर्णित रूप का कारण है, जिससे, विशेषतः, क्षीण संरचनात्मक भूमि के उपजाऊपन पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है। भूमि की खराब संरचना को ठीक करने के लिये उनमें कार्बनिक उर्वर डाले जाते हैं। आजकल भूमि की संरचना को अच्छा करने के लिये उनमें सश्लिष्ट पॉलिमर, जैसे पॉलिऐक्रिलऐमाइड, डाले जाते हैं। भूमि में इनकी सान्द्रता इतनी होनी चाहिए कि स्थूल अणु, भूमि के कणों द्वारा अधिशोषित होकर, ऐसे कई कणों को जोड़ कर एक पुंज बना दें (चित्र 104, "b")। सदृश रूप में रेत को मिलाया जाता है तथा दृढ़ भूमि की सड़के बनायी जाती हैं।

संघनित परिक्षिप्त संरचनाएँ परिक्षिप्त कला के कणों के बीच कलीय सम्पर्क बनने की विधि (चित्र 105, "d") पर निर्भर करते हुए दो उपग्रुपों में बाँटे गए हैं। क) केकन संरचना तथा ख) जमने की क्रिस्टलित संरचनाएँ।

केकन की संघनित संरचनाएँ स्पर्श बिन्दुओं पर परिक्षिप्त कणों के वेल्डन, ऐलॉय-करण, केकन या जोड़ने के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। ऐसी संरचना स्कंदित क्रिया की तापीय क्रिया करने पर प्राप्त होती है जब परिक्षिप्त कला के कण बिन्दु सम्पर्कों के स्थानों पर वेल्ड किए जाते हैं। वह कई अधिशोषियों के लिये भी लाक्षणिक हैं (सिलिका जेल, ऐलुमाजेल), जो असंबद्ध संरचना के कारण भंगुर होते हैं।

परिक्षिप्त कणों के उच्च संघनन के होने से केकन की संघनित संरचनाओं में उच्च कठोरता एवं प्रायः ऊष्मा-प्रतिरोधकता होती है। धातुओं तथा धातुओं की दुर्गलनीय आक्साइड, जैसे केकन किया हुआ ऐलुमिनियम पाउडर (के ए पा)। ऐलुमिनियम पाउडर पर आक्साइड की एक महीन परत जमायी जाती है और पाउडर का दाब पर केकन किया जाता है। के ए पा की संरचना 10 — 20 ना० मी० मोटी Al_2O_3 की परत होती है, जिसके कोश में ऐलुमिनियम के कण होते है तथा उनके बीच आंशिक सम्पर्क बने रहते हैं। अतएव, संघनित संरचनाएँ परिक्षिप्त कला व परिक्षिप्त माध्यम की आकृतियाँ होती हैं जो एक दूसरे में घुसी हुई होती हैं तथा परिक्षेपण को बनाए रखती हैं।

अतिसंतृप्त वाष्पों, विलयनों या द्रवों की परिक्षिप्त कला के संघनन के समय संघनित संरचना प्राप्त की जा सकती है। सान्द्रित अतिसंतृप्त तंत्रों में से नवजात कला के बनने व विकास के समय परिक्षिप्त कला के विकासशील कणों के एकसाथ

बढ़ने तथा एक दूसरे के साथ उलझ जाने से निर्विघ्न जालिका आकृति बन सकती है। यदि ये कण क्रिस्टल हैं तो बनने वाली संरचनाओं को जमने के क्रिस्टलित-संघनित संरचनाएँ कहते हैं।

खनिज कषाय पदार्थों के जलयोजित जमने की क्रिया में क्रिस्टलित संरचनाओं के बनने पर (ऐलुमिनियन-सिलिकेट सीमेंट, जिप्सम, निलंबन) प० अ० रेबीन्देर स्कूल में काफ़ी विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

कंक्रीट मिश्रण सीमेंट तथा पुंजों–रेत, पत्थर, कंकरों–से बना होता है। सीमेंट के कण, जो कैल्सियम ऐलुमिनेट तथा सिलीकेट होते हैं धीरे-धीरे विलीन हो जाते है तथा अतिसंतृप्त विलयन में से हाइड्रेट के कम विलेय क्रिस्टल बाहर आ जाते हैं। कंक्रीट का जमना इन क्रिस्टलों के एक साथ बढ़ने व लिपटने से होता है जो रेत, कंकर, पत्थर आदि को मोनोलिथ में जोड़ देते हैं। कंक्रीट मिश्रणों में पृष्ठ-सक्रिय पदार्थों, वैद्युत-अपघट्यों को डालने पर, कम्पायमान यांत्रिकीय क्रियाएँ प्रयुक्त करके कंक्रीट पदार्थों को बनाने की नई तकनीक प्राप्त हुई है, जिससे ये अधिक दृढ़ व कठोर होते तथा उसी समय इनकी लागत भी काफ़ी कम हो गई हैं।

संघनित संरचना वाले तत्त्वों के जुडना रासायनिक आबन्धों की मदद से किया जाता है जिससे ये संरचनाएँ और भी कठोर हो जाती है। संघनित संरचनाएँ न तो कंपानुवर्ती होती है तथा न ही आनम्य होती है। कंपानुवर्ती-व्युत्क्रमणीय स्कंदित संरच-नाओं के विपरीत, ये प्रत्यास्थ-भंगुर, अनुत्क्रमणीय रूप से टूटने वाली संरचनाएँ होती हैं।

पदार्थों व परिक्षिप्त संरचनाओं की विकृति, बिगड़ने तथा पदार्थ के बनने की भौति-कीय रसायन का अध्ययन करने वाला विज्ञान का क्षेत्र "ठोस पदार्थों व परिक्षिप्त संरचनाओं की भौतिकीय-रासायनिक यांत्रिकी" कहलाता है। यह क्षेत्र प० अ० रबीन्देर के तथा उसके स्कूल के कार्यों के फलस्वरूप इस शताब्दी के मध्य में विज्ञान के एक नये क्षेत्र के रूप में बना। इस की सीमाएँ कोलाइडी रसायन, ठोस पदार्थों की आण्विक भौतिकी, पदार्थों की यांत्रिकी तथा उनके उत्पादन की तकनीकी क्षेत्रों से सम्बंधित है। भौतिकीय-रासायनिक यांत्रिकी का मुख्य ध्येय नियत गुणों वाले तथा उनके उपयोग के लिये उत्तम संरचना वाले पदार्थों को बनाना है। विशेषतः, भौतिकी-रासायनिकी यांत्रिकी का ध्येय पदार्थों की कठोरता को बढ़ाना है। इससे द्रव्यमान कम हो जाता है तथा पदार्थ की आयु बढ़ जाती है, उनकी लागत भी कम हो जाती है जिससे निर्माण मितव्ययी होता है।

भौतिकीय-रासायनिक यांत्रिकी का दूसरा ध्येय यांत्रिकीय तकनीकी के साथ सम्बंधित है–कूटना, दबाना, काटना, केशिकाएँ बनाना–की मदद से धातुओं, चट्टानों, काँच तथा प्लास्टिक की क्रिया करने के साथ सम्बंधित है तथा विकृति क्रियाओं, नए पृष्ठों का बनाना तथा परिक्षेपण क्रियाओं पर नियंत्रण रखना है।

सन् 1928 में प० अ० रेबीन्देर ने ज्ञात किया कि सेंधा नमक तथा जिप्सम के क्रिस्टलों की कठोरता, वायु में उनकी कठोरता की तुलना में, पृ० स० प० के जलीय विलयनों में काफ़ी कम हो जाती है। इस प्रकार "रेबिन्देर प्रभाव" नामी नया पदार्थों की कठोरता का अधिशोषण पात व विकृति के कम होने का प्रभाव ज्ञात किया गया।

क्रिस्टलीय जाली के विकृत स्थानों पर पृ० स० प० के अधिशोषण के फलस्वरूप (महीन दरारें, नवजात दरारें, बहुक्रिस्टलीय पदार्थों में कणों की सीमाएं) किसी भी ठोस पदार्थ की विकृति तथा टूटना कम हो जाती है। पृ० स० प० का अधिशोषण पृष्ठीय ऊर्जा को कम कर देता है और इस प्रकार पदार्थों के टूटने पर नए पृष्ठों का बनना आसान कर देता है।

ठोस पदार्थों की कठोरता के अधिशोषण पात व विकृति के कम होने के प्रभाव ने विभिन्न प्रकार की तकनीकी क्रियाओं पर काबू पाने में काफ़ी योग दिया। इस प्रभाव को प्रयुक्त करके पहाड़ी चट्टानों में छेद करने की चाल को काफ़ी अधिक किया जा सका, धातुओं को काटने, पीटने तथा उनके तार कर्षण को काफी आसान बनाया जा सका, उनके पृष्ठों को पॉलिश आदि करके काफी साफ़ किया जा सका, तथा यंत्रों के घटकों के अच्छे कार्य के लिए अधिक उत्तम पॉलिश तैयार की गई।

वास्तविक पदार्थों की कठोरता उनकी क्रिस्टलीय संरचना में विकृति के कारण आदर्श मोनोक्रिस्टलों की कठोरता से काफ़ी कम होती है। यदि पदार्थों को उनके कणों तक परिक्षिप्त किया जाए ताकि उनके आकार उनकी संरचना की विकृतियों के आकारों के समान हो जाएँ तो ऐसे उच्चपरिक्षिप्त कणों की कठोरता आदर्श ठोस पदार्थों की कठोरता के लगभग होगी। यहाँ से पदार्थों की कठोरता को बढ़ाने की विधि के बारे में विचार उत्पन्न हुआ जिसके अनुसार पहले पदार्थ को कूटा जाए, फिर संयोजन किया जाए और संघनित परिक्षिप्त पाउडरों का केकन किया जाए। इस विचार के आधार पर नए पदार्थों व उनसे बनी वस्तुओं का उत्पादन किया गया— पाउडर धात्विकी, धातुमृत्तिका।

अकार्बनिक पदार्थों व कार्बनिक यौगिकों के पॉलिमरों के संयोजन के आधार पर नई वस्तुओं को बनाने की विस्तृत सम्भावनाएँ ज्ञात हो रही हैं। इनके उदाहरण हैं: रेजिन, जो वल्कनीत रबड़ तथा सिलिका से बना है, जिसका द्रव्यमान रेज़िन का 50% हो जाता है। घटकों तथा रबड़ में गन्धक एवं सिलिका के अनुपात के आधार पर विभिन्न गुणों वाली रेज़िन प्राप्त की जा सकती है। इस उदाहरण के आधार पर पदार्थ व वस्तु में विभेद को समझाया जा सकता है। रबड़, सिलिका, गन्धक—ये पदार्थ हैं, जिनसे निश्चित संरचना की वस्तु—रेज़िन तैयार की जाती है।

पाठकों से

"मीर" प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन सम्बन्धी आपके विचारों के लिए आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये :

"मीर प्रकाशन"
पेर्वी रीज़्स्की पेरेऊलोक, २
मास्को, सोवियत संघ।